ॐ

परमात्मने नमः

श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन साहित्य स्मृति संचय, पुष्प नं.

अष्टपाहुड़ प्रवचन

भाग-२

परम पूज्य श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा रचित
परमागम श्री अष्टपाहुड़ पर
परम उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
धारावाहिक शब्दशः प्रवचन
(सूत्रपाहुड़ गाथा 1 से 27 तथा
चारित्रपाहुड़ गाथा 1 से 45)

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

: सह-प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

प्रथम संस्करण :

ISBN No. :

न्यौछावर राशि : 20 रुपये मात्र

प्राप्ति स्थान :

1. **श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,**
   सोनगढ़ (सौराष्ट्र) – 364250, फोन : 02846-244334
2. **श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
   302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
   मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820 Email - vitragva@vsnl.com
3. **श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (मंगलायतन)**
   अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216 (उ.प्र.)
4. **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,**
   ए-4, बापूनगर, जयपुर, राजस्थान-302015, फोन : (0141) 2707458
5. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट,**
   कहान नगर, लाम रोड, देवलाली-422401, फोन : (0253) 2491044
6. **श्री परमागम प्रकाशन समिति**
   श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, दतिया (म.प्र.)
7. **श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान आध्यात्मिक ट्रस्ट**
   योगी निकेतन प्लाट, 'स्वरुचि' सवाणी होलनी शेरीमां, निर्मला कोन्वेन्ट रोड
   राजकोट-360007 फोन : (0281) 2477728, मो. 09374100508

टाईप-सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

मुद्रक :

प्रकाशकीय

शासननायक अन्तिम तीर्थंकर देवाधिदेव श्री महावीर परमात्मा का वर्तमान शासन प्रवर्त रहा है। आपश्री की दिव्यध्वनि द्वारा प्रकाशित मोक्षमार्ग, परम्परा हुए अनेक आचार्य भगवन्तों द्वारा आज भी विद्यमान है। श्री गौतम गणधर के बाद अनेक आचार्य हुए, उनमें श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव का स्थान श्री महावीरस्वामी, श्री गौतम गणधर के पश्चात् तीसरे स्थान पर आता है, यह जगत विदित है।

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य विक्रम संवत् ४९ के लगभग हुए हैं। आपश्री ने स्वयं की ऋद्धि द्वारा वर्तमान विदेहक्षेत्र में प्रत्यक्ष विराजमान श्री सीमन्धर भगवान के समवसरण में आठ दिन रहकर दिव्यदेशना ग्रहण की है, वहाँ से आकर उन्होंने अनेक महान परमागमों की रचना की। उनमें अष्टप्राभृत ग्रन्थ का भी समावेश होता है। आचार्य भगवन्त की पवित्र परिणति के दर्शन उनकी प्रत्येक कृतियों में होते हैं। भव्य जीवों के प्रति निष्कारण करुणा करके उन्होंने मोक्षमार्ग का अन्तर–बाह्यस्वरूप स्पष्ट किया है। आचार्य भगवन्त ने मोक्षमार्ग को टिका रखा है, यह कथन वस्तुत: सत्य प्रतीत होता है।

चतुर्थ गुणस्थान से चौदह गुणस्थानपर्यन्त अन्तरंग मोक्षमार्ग के साथ भूमिकानुसार वर्तते विकल्प की मर्यादा कैसी और कितनी होती है वह आपश्री ने स्पष्ट किया है। इस प्रकार निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग का स्वरूप स्पष्ट करके अनेक प्रकार के विपरीत अभिप्रायों में से मुमुक्षु जीवों को उभारा है। अष्टप्राभृत ग्रन्थ में मुख्यरूप से निर्ग्रन्थ मुनिदशा कैसी होती है और साथ में कितनी मर्यादा में उस गुणस्थान में विकल्प की स्थिति होती है, यह स्पष्ट किया है।

वर्तमान दिगम्बर साहित्य तो था ही परन्तु साहित्य में निहित मोक्षमार्ग का स्वरूप यदि इस काल में किसी दिव्यशक्ति धारक महापुरुष ने प्रकाशित किया हो तो वे हैं परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी। पूज्य गुरुदेवश्री ने शास्त्रों में निहित मोक्षमार्ग को स्वयं की दिव्य श्रुतलब्धि द्वारा समाज में निर्भीकता से उद्घाटित किया है। शास्त्र में मोक्षमार्ग का रहस्य तो प्ररूपित था ही परन्तु इस काल के अचम्भा समान पूज्य गुरुदेवश्री की अतिशय भगवती प्रज्ञा ने उस रहस्य को स्पष्ट किया है। पूज्य गुरुदेवश्री का असीम उपकार आज तो गाया ही जाता है किन्तु पंचम काल के अन्त तक गाया जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा अनेक परमागमों पर विस्तृत प्रवचन हुए हैं। उनमें अष्टपाहुड़ का भी समावेश होता है। प्रस्तुत प्रवचन शब्दश: प्रकाशित हों, ऐसी भावना मुमुक्षु समाज में से व्यक्त होने से श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विले पार्ला, मुम्बई द्वारा इन प्रवचनों का अक्षरश: प्रकाशित करना सहर्ष स्वीकार किया गया तद्नुसार ये प्रवचन लगभग सात भाग में प्रकाशित होने की सम्भावना है। इस द्वितीय भाग में **सूत्रपाहुड़** की गाथा 1 से 27 तथा **चारित्रपाहुड़** की गाथा 1 से 45 तक के 28 प्रवचनों का समावेश है।

सम्यग्दर्शन धर्म का मूल है। सम्यग्दर्शन का स्वरूप आचार्य भगवन्त ने स्वयं की मौलिक

शैली में सुचारूरूप से दर्शनपाहुड़ में वर्णन किया है। तत्पश्चात् सूत्रपाहुड़ में आचार्य भगवान ने जिनसूत्र अनुसार आचरण जीव को हितरूप है और जिनसूत्र विरुद्ध आचरण अहितरूप है, यह संक्षेप में बताया है तथा जिनसूत्र कथित मुनि लिंगादि तीन लिंगों का संक्षिप्त में वर्णन किया गया है।

तत्पश्चात् चारित्रपाहुड़ की 45 गाथाओं में सम्यक्त्वचरण चारित्र तथा संयमचरण चारित्र के स्वरूप का वर्णन किया गया है। संयमचरण चारित्र में देशसंयमचरण तथा सकलसंयमचरण— ऐसे दो प्रकार के भेद से वर्णन किया है। उसमें श्रावक के बारह व्रत और मुनिराज के पंचेन्द्रिय संवर, पाँच महाव्रत, प्रत्येक महाव्रत की पाँच-पाँच भावना, पाँच समिति इत्यादि का निर्देश किया गया है।

उपरोक्त विषयों की सम्पूर्ण छनावट पूज्य गुरुदेवश्री ने अनेक पहलुओं से प्रस्तुत प्रवचनों में की है। आचार्य भगवान के हृदय में प्रविष्ट होकर उनके भावों को खोलने की अलौकिक सामर्थ्य के दर्शन पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों में होते हैं। सम्यक्त्वसहित चारित्र का स्वरूप कैसा होता है, इसका विशद वर्णन प्रस्तुत प्रवचनों में हुआ है।

इन प्रवचनों को सी.डी. में से सुनकर गुजराती भाषा में शब्दश: तैयार करने का कार्य नीलेशभाई जैन, भावनगर द्वारा किया गया है, तत्पश्चात् इन प्रवचनों को श्री चेतनभाई मेहता, राजकोट द्वारा जाँचा गया है। बहुत प्रवचन बैटरीवाले होने से जहाँ आवाज बराबर सुनायी नहीं दी, वहाँ .... करके छोड़ दिया गया है। वाक्य रचना पूर्ण करने के लिये कोष्ठक का भी प्रयोग किया गया है।

हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज में भी इन प्रवचनों का व्यापक प्रचार-प्रसार हो इस भावना से इन प्रवचनों का हिन्दी रूपान्तरण एवं सी.डी. से मिलान करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियाँ (राजस्थान) ने किया है। तदर्थ संस्था सभी सहयोगियों का सहृदय आभार व्यक्त करती है।

ग्रन्थ के मूल अंश को बोल्ड टाईप में दिया गया है।

प्रवचनों को पुस्तकारूढ़ करने में जागृतिपूर्वक सावधानी रखी गयी तथापि कहीं क्षति रह गयी हो तो पाठकवर्ग से प्रार्थना है कि वे हमें अवश्य सूचित करें। जिनवाणी का कार्य अति गम्भीर है, इसलिए कहीं प्रमादवश क्षति रह गयी हो तो देव-गुरु-शास्त्र की विनम्रतापूर्वक क्षमायाचना करते हैं। पूज्य गुरुदेवश्री के चरणों में तथा प्रशममूर्ति भगवती माता के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन समर्पित करते हुए भावना भाते हैं कि आपश्री की दिव्यदेशना जयवन्त वर्तो.. जयवन्त वर्तो..

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ www.vitragvani.com पर रखा गया है।

अन्तत: प्रस्तुत प्रवचनों के स्वाध्याय द्वारा मुमुक्षु जीव आत्महित की साधना करें इसी भावना के साथ विराम लेते हैं।

निवेदक

ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

एवं

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़

श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृतने पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

श्री सद्‌गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्‌घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म**

का श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर,

पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त

पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

: सूत्रपाहुड़ :

प्रवचन क्रमांक	दिनांक	गाथा	पृष्ठ नम्बर
२१	२९–०६–१९७०	१	००१
२२	३०–०६–१९७०	१ से ३	००५
२३	०१–०७–१९७०	३ – ४	०३०
२४	०२–०७–१९७०	४ से ६	०५०
२५	०३–०७–१९७०	६	०७२
२६	०४–०७–१९७०	६	०८९
२७	०५–०७–१९७०	६	१०५
२८	०६–०७–१९७०	६	१२२
२९	०७–०७–१९७०	७ से ९	१३९
३०	०८–०७–१९७०	१० से १३	१५७
३१	०९–०७–१९७०	१४ से १७	१७५
३२	१०–०७–१९७०	१८ – १९	१९६
३३	१२–०७–१९७०	२० से २४	२१६
३४	१३–०७–१९७०	२५ से २७	२३६

: सूत्रपाहुड़ :

३५	१४–०७–१९७०	१ से ४	२५९
३६	१५–०७–१९७०	५ – ६	२७६
३७	१६–०७–१९७०	६ – ७	२९४
३८	१७–०७–१९७०	७ से ९	३१२
३९	१९–०७–१९७०	१० से १३	३१२

४०	२०–०७–१९७०	१३ से १६	३४९
४१	२१–०७–१९७०	१७ से १९	३६६
४२	२२–०७–१९७०	२० से २३	३८५
४३	२३–०७–१९७०	२३ से २२५	४०५
४४	२४–०७–१९७०	२६ से ३०	४२३
४५	२६–०७–१९७०	३१ से ३३	४४४
४६	२७–०७–१९७०	३४ से ३८	४६५
४७	२८–०७–१९७०	३९ से ४३	४८७
४८	२९–०७–१९७०	४३ से ४५, १–२	५१०

ॐ

नमः श्री सिद्धेभ्यः

अष्टपाहुड़ प्रवचन

(श्रीमद् भगवत कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री अष्टपाहुड़ ग्रन्थ पर
अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचन)

भाग-२

सूत्रपाहुड़
-२-

(दोहा)

वीर जिनेश्वर को नमूं गौतम गणधर लार।
काल पंचमा आदि मैं भए सूत्रकरतार।।१।।

इसप्रकार मंगल करके श्री कुन्दकुन्द आचार्यकृत प्राकृत गाथा बंध सूत्रपाहुड की देशभाषामय वचनिका लिखते हैं ह्न

गाथा-१

प्रथम ही श्रीकुन्दकुन्द आचार्य सूत्र की महिमागर्भित सूत्र का स्वरूप बताते हैं ह्न

अरहंतभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
सुत्तत्थमग्गणत्थं सवणा साहंति परमत्थं।।१।।

अर्हद्भाषितार्थं गणधरदेवैः ग्रथितं सम्यक्।
सूत्रार्थमार्गणार्थं श्रमणाः साधयंति परमार्थम्।।१।।

अरहंत–भाषित अर्थमय गणधर ग्रथित सत सूत्र उन।
सूत्रार्थ मार्गण से श्रमण सब साधते परमार्थ नित।।१।।

***अर्थ* – जो गणधरदेवों ने सम्यक् प्रकार पूर्वापरविरोधरहित गूँथा (रचना की), वह सूत्र है। वह सूत्र कैसा है ? सूत्र का जो कुछ अर्थ है, उसको मार्गण अर्थात् ढूंढने जानने का जिसमें प्रयोजन है और ऐसे ही सूत्र के द्वारा श्रमण (मुनि) परमार्थ अर्थात् उत्कृष्ट अर्थ प्रयोजन जो अविनाशी मोक्ष को साधते हैं।**

यहाँ गाथा में 'सूत्र' इसप्रकार विशेष्य पद नहीं कहा तो भी विशेषणों की सामर्थ्य से लिया है।

***भावार्थ* – जो अरहंत सर्वज्ञ द्वारा भाषित है तथा गणधरदेवों ने अक्षरपद वाक्यमयी गूंथा है और सूत्र के अर्थ को जानने का ही जिसमें अर्थ–प्रयोजन है – ऐसे सूत्र से मुनि परमार्थ जो मोक्ष, उसको साधते हैं। अन्य जो अक्षपाद, जैमिनि, कपिल, सुगत आदि छद्मस्थों के द्वारा रचे हुए कल्पित सूत्र हैं, उनसे परमार्थ की सिद्धि नहीं है, इसप्रकार आशय जानना।।१।।**

प्रवचन–२१, गाथा–१, सोमवार, ज्येष्ठ कृष्ण ११, दिनांक २९–०६–१९७०

दूसरा सूत्रपाहुड़। उसमें तो दूसरा चारित्रपाहुड़ है। है और लिखा है। वैसे मेल यह आता है।

वीर जिनेश्वर को नमूं गौतम गणधर लार।
काल पंचमा आदि मैं भए सूत्रकरतार।।१।।

सिद्धान्त के करनेवाले भगवान महावीर और गणधर दो हुए। वीर जिनेश्वर परमात्मा त्रिलोकनाथ वीरप्रभु को नमस्कार करता हूँ। **गौतम गणधर लार**। उनके साथ गौतम भगवान को भी साथ में नमन करता हूँ। '**काल पंचमा**' पंचम काल की शुरुआत में भगवान महावीर और गौतम गणधर हुए, वे सूत्र के करनेवाले हुए, इसलिए उन्हें पहले नमस्कार करता हूँ।

इस प्रकार मंगल करके श्री कुन्दकुन्द आचार्यकृत प्राकृत गाथा बद्ध सूत्रपाहुड

की देशभाषामय वचनिका लिखते हैं - प्रथम ही श्रीकुन्दकुन्द आचार्य सूत्र की महिमागर्भित सूत्र का स्वरूप बताते हैं :- लो! यह सूत्र की महिमागर्भित सूत्र का माहात्म्य।

अरहंतभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
सुत्तत्थमग्गणत्थं सवणा साहंति परमत्थं।।१।।

यह पहले कुन्दकुन्दाचार्य मांगलिक करते हैं। **जो गणधरदेवों ने सम्यक् प्रकार पूर्वापरविरोधरहित गूँथा (रचना की) वह सूत्र है।** गौतम भगवान ने वीतराग की वाणी सुनकर सूत्र रचे हैं। एक क्षण में बारह अंग और चौदहपूर्व प्रगट हुए। आहाहा! समझ में आया? ऐसे सूत्र के रचनेवाले गणधर थे, उनके सूत्र को यहाँ नमस्कार करते हैं। **वह सूत्र कैसा है ? सूत्र का जो कुछ अर्थ है,...** सूत्र का जो अर्थ है, भावार्थ है, परमार्थ है **उसको मार्गण अर्थात् ढूंढने जानने का जिसमें प्रयोजन है...** ऐसे साधु यह कहते हैं। **ऐसे ही सूत्र के द्वारा श्रमण (मुनि)...** शास्त्रों का भाव-रहस्य क्या है, वह समझकर जो श्रमण हुए हैं, उन्हें यहाँ साधु कहा जाता है।

परमार्थ अर्थात् उत्कृष्ट अर्थ प्रयोजन जो अविनाशी मोक्ष को साधते हैं। आहाहा! क्या कहते हैं? भगवान ने जो सूत्र कहे... भगवान ने तो अर्थ कहे और फिर गणधर ने सूत्र गूँथे। उस सूत्र का भावार्थ, परमार्थ, रहस्य क्या है, वह जिसने शोधकर जिसने परमार्थ मुनि ने साधा है। देखो! शास्त्र कैसे होते हैं-उसकी व्याख्या करते हैं। समझ में आया? यह अभी तो सब फेरफार हो गया है। भगवान के नाम से चढ़ाये शास्त्र, वे शास्त्र नहीं हैं। इसके लिए दूसरी गाथा में कहेंगे। भगवान के कहे हुए और गणधर के गूँथे हुए और उसमें से परमार्थ शोधकर साधु स्वयं उत्कृष्ट अर्थ को प्राप्त हुए अर्थात् मोा को प्राप्त हुए।

यहाँ गाथा में 'सूत्र' इसप्रकार विशेष्य पद नहीं कहा तो भी विशेषणों की सामर्थ्य से लिया है। ऐसा। **'अरहंतभासियत्थं'** शब्द है न वहाँ? **'अरहंतभासियत्थं'** शब्द है, भाई! सूत्र नहीं। इसका अर्थ सूत्र नहीं, परन्तु ऐसा ले लेना-ऐसा कहते हैं। इसमें से अर्थ किया है। इसलिए वह सूत्र शब्द यहाँ नहीं, परन्तु ले लेना। ऐसा भगवान ने अर्थ

किया और गणधर ने सूत्र रचे। समझ में आया ? आहाहा ! वीर हिमाचल से निकली। वाणी निकली भगवान के मुख से। गौतम गणधर ने चार ज्ञान (धारी ने) चौदह पूर्व की रचना अन्तर्मुहूर्त में प्रगट की, उन्होंने यह शास्त्र रचे। ये गणधर के रचे शास्त्र, इनके अन्दर में रहस्य क्या है ? उसे खोजकर जिन्होंने–सन्तों ने परमार्थ को साधा और वह परमार्थ साधकर जो मोक्ष को प्राप्त हुए, ऐसे सूत्र को आगम और परमागम कहा जाता है।

भावार्थ – जो अरहंत सर्वज्ञ द्वारा भाषित है तथा गणधरदेवों ने अक्षरपद वाक्यमयी गूंथा है... भगवान के तो अर्थ में निकला है। फिर गणधरों ने शब्दों–वाक्यों की रचना की है। **सूत्र के अर्थ को जानने का ही जिसमें अर्थ–प्रयोजन है – ऐसे सूत्र से मुनि परमार्थ जो मोक्ष उसको साधते हैं।** वास्तव में तो आगम में जो परमार्थ भगवान ने कहा है, उसे साधकर परमार्थ अर्थात् मोक्ष को मुनि साधते हैं। जिनके खोटे साधन... उसमें परमार्थ नहीं होता। इसलिए यह सूत्र कहा है। समझ में आया ? बहुत कठिन बात है।

अन्य जो अक्षपाद, जैमिनि, कपिल, सुगत आदि छद्मस्थों के द्वारा रचे हुए कल्पित सूत्र हैं,... छद्मस्थ ने रचे शास्त्र, **उनसे परमार्थ की सिद्धि नहीं है,..** भगवान के परमार्थ से कहे सिद्धान्त। उनके रहस्य को समझकर जिन्होंने परमार्थ–मोक्ष का पाया, उसे यहाँ सूत्र कहा जाता है। समझ में आया ? फिर प्रश्न करते हैं कि तब वह सूत्र किसे कहना ? अभी तो गणधर नहीं और अरिहन्त भी नहीं। इसकी दूसरी गाथा है। उनकी कही परम्परा में आये हुए – भगवान की कही परम्परा में आये हुए को सूत्र और शास्त्र कहा जाता है। यह बात दूसरी गाथा में कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन-२२ गाथा-१-२-३ मंगलवार, ज्येष्ठ कृष्ण १२, दिनांक ३०-०६-१९७०

यहाँ दूसरा अधिकार चलता है। दर्शनपाहुड़, वह पहला अधिकार हो गया है। दर्शन अर्थात् सम्यग्दर्शन बिना जन्म-मरण का अन्त कहीं किसी का नहीं आता, यह पहली बात आ गयी है। समझ में आया? यह आत्मा अनन्त काल से चौरासी के अवतार में एक-एक अवतार में अनन्त-अनन्त भव कर चुका है। उसमें इसने अनन्त बार बाहर की दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, तप, तीर्थयात्रा—ऐसे भाव भी अनन्त बार किये हैं। भोगीलालभाई! परन्तु वह सब भाव शुभ था। सम्यग्दर्शन के बिना जन्म-मरण का अन्त कभी किसी को कहीं नहीं आता। समझ में आया?

मुमुक्षु : जैन में हों, वे सब सम्यग्दृष्टि ही होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी जैन किसे कहना? जैन में जन्मे (इसलिए जैन हो गये)? थैली में (भरा हो) चिरायता और ऊपर लिखे शक्कर, इससे कहीं चिरायता (की) कड़वाहट मिट जाएगी? भाई! जैन अर्थात् तो कोई अलौकिक बात है। ऐसी इसके दृष्टि के अनुभव में आवे, तब वह चैतन्यस्वरूप का स्वामी होता है, तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। यह बात है। भारी कठिन काम जगत को ऐसा। ओहो! अनन्त-अनन्त काल चला गया, भाई! शरीर के रजकण बिखर गये और यह भी मिट्टी में मिल जाएगा। यह कहीं आत्मा नहीं है। समझ में आया? देह लगे रूपवान, अच्छी, परन्तु यह तो इसमें कीड़े पड़ेंगे। यह तो मिट्टी है। यह कहीं आत्मा है? समझ में आया?

अन्दर में भगवान आत्मा शरीर से रहित (है)। यह शरीरवाला नहीं है। ऐसे चैतन्यस्वरूप में तो आनन्द, ज्ञान, शान्ति और वीतरागता पड़ी है। यह बात बहुत सूक्ष्म है। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने सर्वज्ञता और वीतरागता जो प्रगट किया, वह कहाँ से आता है? अन्दर से। भोगीलालभाई! दृष्टान्त दिया नहीं था? वहाँ अपने... पीपर के दाने में चौंसठ पहरा चरपरा रस पड़ा है, तो वह प्रगट होता है। अन्दर पड़ा है, भाई! खबर नहीं है। इसी प्रकार यह भगवान आत्मा देह के रजकण-रजकण की पर्याय की क्रिया से अत्यन्त भिन्न और पुण्य-पाप के भाव होते हैं, वे आस्रव हैं, नवीन बन्ध का कारण है। वे मोक्ष के परिणाम

का कारण नहीं है। क्या हो ? बात ऐसी मिली नहीं न! ऐसे काल चला जाता है। आहाहा! देह की स्थिति पूरी होने को समय जाता है। सामने जाता है। सामने जाता है ? भोगीलालभाई! जो स्थिति लेकर आया है, उसके सामने जाता है। देह छूटने के निकट में (जाता है)। आहाहा!

कहते हैं कि भाई! भगवान परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव की वाणी में शास्त्र आये। उन शास्त्रों में आत्मा का स्वरूप ऐसा पूर्णानन्द शुद्ध चैतन्य है। उसका जो अनुभव करे, उसे अन्दर सम्यग्दर्शन होता है। ऐसी बात है। समझ में आया ? जब तक इसे पुण्य और पाप के भाव राग है, उनका अनुभव है और वहाँ दृष्टि है; इसलिए तब तक यह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ? नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। जैन का साधु होकर बाह्य पाँच महाव्रत आदि के परिणाम (हुए), परन्तु रागरहित मेरी चीज़ क्या है, उसकी निज सत्ता के निज पद को इसने सुना नहीं। भोगीलालभाई! आत्मा के ये बाहर के पद-वद नहीं है। आहाहा!

जहाँ नहीं, वहाँ इसने माना है और जहाँ स्वयं है, उसे इसने माना नहीं; इसलिए यहाँ भगवान ने अष्टपाहुड़ में कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने दर्शनपाहुड़ पहले कहा। सम्यग्दर्शन के बिना जो कुछ करे, उसके फलरूप में संसार में भटकना है। शुभभाव होवे तो स्वर्ग आदि या यह धूल का सेठ होकर फिर नरक में जाएगा। बात तो यह है। सेठ हो या (चाहे जो हो)। भोगीलालभाई! यहाँ तो यह है, बापू! यहाँ तो बापू! मार्ग यह है। आहाहा!

जो आत्मा का वैभव अन्दर में है। अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति-वीतरागता, इस वैभव की जिसे प्रतीति-भरोसा और अनुभव नहीं, वह बाहर के वैभव को अपना मानता है। आहाहा! समझ में आया ? इसलिए यहाँ दर्शनपाहुड़ में पहली समकित की व्याख्या की है। अब यहाँ दूसरे पाहुड़ में सूत्र—ज्ञान की व्याख्या करते हैं।

भगवान के कहे हुए शास्त्र का इसे सम्यग्ज्ञान होवे तो इसे जन्म-मरण मिट जाएँ। इसका—सुई का दृष्टान्त तीसरी गाथा में देंगे। सुई होती है न, सुई! वह डोरारहित होवे तो खो जाती है, हाथ नहीं आती, परन्तु यदि डोरा-सूत पिरोया हो (और) चिड़िया माला में ले गयी हो तो भी वह डोरा लटकता देखकर हाथ आ जाती है। सुई वहाँ है। इसी प्रकार

परमात्मा कहते हैं – भाई! यह आत्मा क्या है? जड़ क्या है? ऐसा जो भगवान शास्त्र में कहते हैं, वैसा जिसने ज्ञानरूपी डोरा आत्मा में पिरोया, उसे अब जन्म-मरण में भटकना नहीं रहेगा। जहाँ जाएगा, वहाँ से निकल जाएगा। ज्ञान का डोरा हाथ में पकड़ा है। समझ में आया? इस सम्यग्ज्ञान के बिना अनन्त काल से शुभ-अशुभभाव अनन्त बार किये, परन्तु उसमें कहीं जन्म-मरण मिटे नहीं। यह बात ऐसी है। इसलिए यहाँ दूसरे अध्याय में दूसरी गाथा अपने लेनी है। पहली में जरा आया था न? पहली गाथा में, '**सुत्तत्थमग्गणत्थं सवणा साहंति परमत्थं**' पहली गाथा में थोड़ा आया था। मुनि-धर्मात्मा भगवान के कहे हुए शास्त्रों के रहस्य को शोधकर,.. मार्गणा कहा था न? भाई! मार्गणा (अर्थात्) शोधना। आहाहा! भगवान ने—परमात्मा ने जो वाणी, भगवान की दिव्यध्वनि इच्छा बिना खिरी। सर्वज्ञ हुए, वीतराग हुए, तब वाणी निकली। वीतराग तो बारहवें गुणस्थान में होते हैं, और केवलज्ञान तेरहवें में होता है, तब वाणी निकलती है। ॐ ध्वनि। इन्द्रों की उपस्थिति में—गणधरों की उपस्थिति में। कहते हैं कि वे शास्त्र जो गणधरों ने सुने और गणधरों ने रचे... पहली गाथा में यह आया है, भाई! सूत्र रचे। भगवान की वाणी में अर्थ आया और गणधरों ने सुनकर सूत्र गूँथे। उन शास्त्रों में मुनि अन्दर जो रहस्य शोधते हैं कि ओहो! क्या कहते हैं इन शास्त्रों में! वह रहस्य शोधते हैं कि सूत्र में कहना है वीतरागता। समझ में आया? उस आगम को वाँचकर, शोधकर उसमें से वीतरागता निकालते हैं।

यदि तुझे धर्म करना हो तो राग, पुण्य-पाप की उपेक्षा कर और वीतरागस्वरूप आत्मा की अपेक्षा करके उसका स्पर्श कर। ऐसा भाव सूत्र में से निकालते हैं, भाई! आहाहा! सूत्र में यह कहा है, उसमें से निकालते हैं। यह निकालना चाहिए। राग की क्रिया निकाले तो वह भगवान की वाणी का रहस्य यह है ही नहीं। आहाहा! क्या हो? जगत अनादि से लुटा है। अरे! जीते जी लुटता है।

भगवान ऐसा चैतन्यबिम्ब पूरा स्थित है न! कहते हैं कि उसे शास्त्र में से खोज, रहस्य शोध। परमात्मा को तो वीतरागता कहनी है। क्योंकि वे हुए वीतराग और हुए सर्वज्ञ। इसलिए वे अल्पज्ञ और राग का अभाव करके सर्वज्ञ और वीतराग हुए तो उनकी वाणी में सर्वज्ञ और वीतराग होने का ही वाणी में आया है। समझ में आया? परन्तु इसे अन्दर निर्णय करने के (लिये) निवृत्ति नहीं मिलती, समय नहीं मिलता। अररर! व्यर्थ के पाप के

परिणाम में किसी के लिये-स्त्री, यह पुत्र, पति... अरे ! तेरे थे कब ? कहीं से भटकते-भटकते आये हैं। तू भटकता हुआ यहाँ आया। उसमें बाहर से दिखायी देते हैं। उसमें तेरे थे कब ? एक रजकण-परमाणु भी तेरा नहीं न ! तेरी धारणाप्रमाण यह शरीर नहीं रहेगा। बदल जाएगा। कीड़े पड़े.. लट पड़े... जीवांत पड़े। आहाहा !

एक व्यक्ति का कहा था न ? बहुत वर्ष पहले 'वावडी' में गये थे। शरीर इतना सड़ गया था, सड़ गया, हों ! वीशाश्रीमाली था 'गोपाणी।' रात्रि में मरने की तैयारी। हम एक दिन गये थे। महिलाएँ उसके पुत्र को कहे - भाई ! इनको नियम लेने को कहो। (तो कहे), अभी नहीं, अभी नहीं। कदाचित् इसमें से स्वस्थ हो जाऊँगा तो विषय (नहीं ले सकूँगा)। अर र र ! अरे ! भगवान ! (जहाँ) हम उतरे थे, वहाँ रात्रि को सुना कि मर गया। वहाँ गाँव में ही थे। 'वावडी' है न ! यहाँ 'राणपुर' के पास। 'राणपुर' के पास है। 'खस' और 'वावडी'। बहुत वर्ष की बात है। आहा ! क्या परन्तु जीव की कहाँ ममता ? नहीं उसे मम् (-मेरा मानता है)। जो मेरा नहीं, उसे मेरा (मानता है)। और जो मेरा (-स्व) है, उस पर नजर नहीं है। भोगीलाल भाई ! बराबर होगा ? आहाहा !

कहते हैं कि सूत्र में भगवान ने संयोग और संयोगी पुण्य-पाप के भाव, उनकी परमात्मा ने उपेक्षा करायी है और आत्मा आनन्दस्वरूप की अपेक्षा करायी है। सूत्र का तात्पर्य यह है न, भाई ! सेठी ! आहा ! भाई ! तेरे जन्म-मरण के दुःख। आहाहा ! कल सवेरे कहा था। नहीं ? वह लड़का मर गया न ? नहीं ? शान्तिभाई ! शान्तिभाई नहीं ? भावनगर में इंजीनियर थे। शान्तिभाई इंजीनियर थे। रेल में कुचलकर मर गया। अट्ठाईस वर्ष की उम्र। उसके भाई-बन्ध थे। वजुभाई वहाँ इंजीनियर थे न ? वजुभाई वहाँ इंजीनियर थे। वह तो गुजर गया। उनका पुत्र अभी रेल में कुचलकर मर गया। अट्ठाईस वर्ष का। अरे ! क्या किया जीव ने ? कहाँ से आया ? कहाँ से आया ? कुछ बात नहीं मिलती।

मुमुक्षु : इकलौता पुत्र।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; इकलौता। भाई के मित्र थे न ! उसके पिता वजुभाई के मित्र थे। ऐसे जन्म-मरण तो, भगवान ! अनन्त बार किये, भाई ! तुझे ऐसा लगता है कि उसे (हुए हैं)। उसे नहीं, तुझे (भी ऐसे हो गये हैं)। क्या हो ? अनन्त काल का प्रवाह। कितना

काल कहाँ... कहाँ.. कहाँ.. रहा ? और कहाँ किस प्रकार से देह आयी और किस प्रकार से छूटी। उसका इसने विचार भी नहीं किया।

कहते हैं, ऐसे अनन्त मरण, भाई! ऐसे किये कि तेरी माँ रोवे, उसके अश्रु से स्वयंभूरमणसमुद्र अनन्त भर जाएँ। ऐसे तूने मरण किये, बापू! तुझे खबर नहीं है। यह आत्मा सम्यग्दर्शन बिना... समझ में आया ? भोगीभाई! यहाँ तो यह है, बापू! साधु हुआ बाहर से क्रियाकाण्ड करके, परन्तु सम्यग्दर्शन बिना उससे जन्म-मरण मिटता नहीं। कोई पुण्य बाँधे, स्वर्ग में जाए, वहाँ से वापस गिरकर पशु हो।

'द्रव्यसंयम से ग्रैवेयक पायो फेर पीछो पटक्यो'—चार सज्झायमाला आती है, उसमें यह आता है। सज्झायमाला चार दुकान पर पढ़ते थे। दुकान का याद रह गया है। (संवत्) १९६५-६६ की बात है। चार सज्झायमाला है। अपने नहीं ? तुमने नहीं देखी होगी। मैंने तो सब दुकान पर देखी है। सज्झायमाला चार है। दो-दो सौ, तीन सौ, चार सौ सज्झाय एक-एक में। ऐसी चार है। अपने है। सज्झायमाला नहीं देखी होगी कभी। भोगीलालभाई! उसमें हजारों सज्झाय आती हैं। चार पुस्तकें हैं अपने। सज्झायमाला मैंने दुकान पर देखी थी। सब, हों! एक-एक। उसमें यह आया था। यह उस दिन का याद है। (संवत्) १९६५-६६ की बात है। 'द्रव्यसंयम से ग्रैवेयक पायो फेर पीछो पटक्यो।' आत्मा के सम्यग्दर्शन बिना इस राग और पुण्य से धर्म होगा, ऐसा मनकर इसने संयम के इन्द्रिय दमन किये, स्त्री-पुत्र छोड़े, दीक्षाएँ पालन की, परन्तु उस संयम-शुभभाव के कारण स्वर्ग में गया। वहाँ से गिरा। 'फिर पीछो पटक्यो'—यह उस दिन का मस्तिष्क में याद है, हों! यहाँ चार सज्झायमाला है, उसमें होगा। चारों चार हैं। यहाँ बच्छराजभाई में है न ? नहीं ? चारों पुस्तकें हैं। सज्झायमाला। एक-एक के सज्झाय रची है। बहुत सज्झाय है। एक-एक में दो सौ, तीन सौ, चार सौ, पाँच सौ होगी। ऐसी चार पुस्तकें हैं।

'सहजानन्दी रे आत्मा...' उसमें एक... है। 'सूतो कँई निश्चिंत रे, मोहतणा रे रणिया भमे, ऐ,.. जाग-जाग मतिवन्त रे... लूटे जगत ना जन्त रे..।' स्त्री कहे-तुमने किसलिए विवाह किया ? पुत्र कहे - हम किसलिए तुम्हारे घर में आये हैं ?... तुमसे खर्च नहीं होता। ये जगत के (जीव) लूटते हैं। भिखारी की टोली होकर... क्या कहते हैं ? लुटेरों की टोली एकत्रित होकर लूटती है। ऐसा शास्त्र में पाठ है। यह सब लुटेरों की टोली है।

भोगीलालभाई ! ये बकुभाई और सब ये, हों ! बड़े का दृष्टान्त दिया जाता है न ! उसमें यह श्लोक है, हों ! 'लूटे जगत का जंत रे, नाखी वॉक अनन्त रे... कोई विरला उगरंत रे... सहजानन्दी रे आत्मा... ।'

हे नाथ ! तुझमें तो सहज आनन्द पड़ा है न, प्रभु ! जहाँ-तहाँ आनन्द मानने जाता है, वह मिथ्यात्वभव है, मिथ्यादृष्टिपना है। यह स्त्री में, पुत्र में, पैसे में, शरीर में, कीर्ति में, पुण्य और पाप के भाव में सुख माना है। वह (सुख) इनमें नहीं और माना है, इसका नाम मिथ्यात्व है। समझ में आा ? ऐसा भगवान ने शास्त्र में कहा है। उसे सन्तों ने उसमें से शोध लिया है। आहाहा ! यह पहली गाथा में आया। अब दूरी कहते हैं।

इस प्रकार सूत्र का अर्थ आचार्यों की परम्परा से प्रवर्तता है,... दूसरी गाथा का उपोद्‌घात है। दूसरी गाथा का शीर्षक है न ? **आगे कहते हैं... इस प्रकार सूत्र का अर्थ...** इसमें हिन्दी है। **आचार्यों की परम्परा से प्रवर्तता है,...** भगवान ने जो वाणी कही थी, वह परम्परा-आचार्यों की परम्परा से अभी शास्त्रों-भगवान के परमागम चले आते हैं। समझ में आया ? उसे जानकर **मोक्षमार्ग को साधते हैं,...** देखो ! उसे जानकर मोक्षमार्ग को (साधते हैं)। क्योंकि उसमें मोक्षमार्ग कहा है, भाई ! आहाहा ! त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव, जिनेन्द्रदेव सौ इन्द्रों के पूजनीय प्रभु समवसरण के मध्य में वर्तमान में तो महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धर भगवान तीर्थंकरदेव विहरमान जीवन्तस्वामी विराजते हैं। पाँच सौ धनुष की देह है, करोड़ पूर्व का आयुष्य है। ऐसे भगवन्तों ने जो वाणी की थी, उसकी परम्परा के सूत्र अभी यहाँ वर्तते हैं। उसे मोक्षमार्ग साधकर, उसे जानकर। भगवान क्या कहते हैं ? अभी उसके ज्ञान का ठिकाना नहीं होता। समझ में आया ? शरीर की क्रिया हो, उसमें से मुझे लाभ हो, अब ऐसी तो मान्यता। वह तो जड़ है, अजीव है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : कस निकाल ले न !

पूज्य गुरुदेवश्री : कस किसका निकाले ? जड़ में कस है। भगवान आत्मा का कस तो अन्दर स्वभाव में है। उस स्वभाव में तो अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, शान्ति, आनन्द का महापिण्ड है। उसकी खबर नहीं होती, उसका विश्वास नहीं होता और जहाँ-तहाँ आनन्द और सुख मानकर भटककर चौरासी के अवतार बहुत पूरे किये। भाई ! शास्त्र

तो ऐसा कहते हैं, भगवान! उसमें से-हम कहते हैं, उसमें से तू मोक्षमार्ग शोध ले। समझ में आया? यह दया, दान के परिणाम भी मोक्षमार्ग नहीं है—ऐसा भगवान शास्त्र में कहते हैं। उस राग से रहित आत्मा जो शुद्ध चिदानन्द प्रभु है, उसमें यह मोक्षस्वरूप है, उसकी अन्तरश्रद्धा, ज्ञान, शान्ति अन्तर के स्वभाव में निर्विकल्पता प्रगट होना, इसका नाम भगवान सम्यग्दर्शन-ज्ञान और शान्ति-चारित्र कहते हैं। समझ में आया? ऐसा शास्त्र में खोज ले, परम्परा से शास्त्र में ऐसा कहा है-ऐसा कहते हैं। गाथा। उसे **साधते हैं, वे भव्य हैं**... ऐसा लिखा है न? ऐसा मोक्षमार्ग साधे, वे भव्य जीव हैं। बाकी सब अभाव जैसे हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : भव्य से ही बात की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ से की है। आहाहा!

गाथा-२

आगे कहते हैं कि जो इस प्रकार सूत्र का अर्थ आचार्यों की परम्परा से प्रवर्तता है, उसको जानकर मोक्षमार्ग को साधते हैं, वे भव्य हैं ह्न

सुत्तम्मि जं सुदिट्ठं आइरियपरंपूरेण मग्गेण।
णाऊण दुविह सुत्तं वट्टदि सिवमग्ग जो भव्वो।।२।।

सूत्रे यत् सुदृष्ट आचार्यपरंपरेण मार्गेण।
ज्ञात्वा द्विविधं सूत्रं वर्त्तते शिवमार्गे यः भव्यः।।२।।

आचार्य संतति मार्ग से जो सूत्र में उपदिष्ट को।
सूत्रार्थ जान प्रवर्तता शिवमार्ग में है भव्य वो।।२।।

अर्थ - **सर्वज्ञभाषित सूत्र में जो कुछ भलेप्रकार कहा है, उसको आचार्यों की परम्परारूप मार्ग से दो प्रकार के सूत्र को शब्दमय और अर्थमय जानकर मोक्षमार्ग में प्रवर्तता है, वह भव्यजीव है, मोक्ष पाने के योग्य है।**

भावार्थ – यहाँ कोई कहे – अरहंत द्वारा भाषित और गणधर देवों से गूंथा हुआ सूत्र तो द्वादंशागरूप है, वह तो इस काल में दीखता नहीं है, तब परमार्थरूप मोक्षमार्ग कैसे सधे, इसका समाधान करने के लिए यह गाथा है, अरहंतभाषित गणधररचित सूत्र में जो उपदेश है, उसको आचार्यों की परम्परा से जानते हैं, उसको शब्द और अर्थ के द्वारा जानकर जो मोक्षमार्ग को साधता है, वह मोक्ष होने योग्य भव्य है। यहाँ फिर कोई पूछे कि आचार्यों की परम्परा क्या है ? अन्य ग्रन्थों में आचार्यों की परम्परा निम्न प्रकार से कही गई है ह्न

श्री वर्द्धमान तीर्थंकर सर्वज्ञदेव के पीछे तीन केवलज्ञानी हुए – १. गौतम, २. सुधर्म, ३. जम्बू। इनके पीछे पाँच श्रुतकेवली हुए; इनको द्वादशांग सूत्र का ज्ञान था, १. विष्णु, २. नंदिमित्र, ३. अपराजित, ४. गौवर्द्धन, ५. भद्रबाहु। इनके पीछे दस पूर्व के ज्ञाता ग्यारह हुए; १. विशाख, २. प्रौष्ठिल, ३. क्षत्रिय, ४ जयसेन, ५. नागसेन, ६. सिद्धार्थ, ७. धृतिषेण, ८. विजय, ९. बुद्धिल, १०. गंगदेव, ११. धर्मसेन। इनके पीछे पाँच ग्यारह अंगों के धारक हुए; १. नक्षत्र, २. जयपाल, ३. पांडु, ४. ध्रुवसेन, ५. कंस। इनके पीछे एक अंग के धारक चार हुए; १. सुभद्र, २. यशोभद्र, ३. भद्रबाहु, ४. लोहाचार्य। इनके पीछे एक अंग के पूर्णज्ञानी की तो व्युच्छित्ति (अभाव) हुई और अंग के एकदेश अर्थ के ज्ञाता आचार्य हुए। इनमें से कुछ के नाम ये हैं ह्न अर्हद्बलि, माघनंदि, धरसेन, पुष्पदंत, भूतबलि, जिनचन्द्र, कुन्दकुन्द, उमास्वामी, समंतभद्र, शिवकोटि, शिवायन, पूज्यपाद, वीरसेन, जिनसेन, नेमिचन्द्र इत्यादि।

इनके पीछे इनकी परिपाटी में आचार्य हुए, इनसे अर्थ का व्युच्छेद नहीं हुआ, ऐसी दिगम्बरों के संप्रदाय में प्ररूपणा यथार्थ है। अन्य श्वेताम्बरादिक वर्द्धमान स्वामी से परम्परा मिलाते हैं, वह कल्पित है, क्योंकि भद्रबाहु स्वामी के पीछे कई मुनि अवस्था में भ्रष्ट हुए, ये अर्द्धफालक कहलाये। इनकी सम्प्रदाय में श्वेताम्बर हुए, इनमें 'देवर्द्धिगणी' नाम का साधु इनकी संप्रदाय में हुआ है, इसने सूत्र बनाये हैं, सो इनमें शिथिलाचार को पुष्ट करने के लिए कल्पित कथा तथा कल्पित आचरण का कथन किया है, वह प्रमाणभूत नहीं है। पंचमकाल में जैनाभासों के शिथिलाचार की अधिकता है सो युक्त है, इस काल में सच्चे मोक्षमार्ग की विरलता है, इसलिए शिथिलाचारियों के सच्चा मोक्षमार्ग कहाँ से हो इसप्रकार जानना।

अब यहाँ कुछ द्वादशांगसूत्र तथा अङ्गबाह्यश्रुत का वर्णन लिखते हैं – तीर्थंकर

के मुख से उत्पन्न हुई सर्व भाषामय दिव्यध्वनि को सुनकर के चार ज्ञान, सप्तऋद्धि के धारक गणधर देवों ने अक्षर पदमय सूत्ररचना की। सूत्र दो प्रकार के हैं – १. अंग, २. अङ्गबाह्य। इनके अपुनरुक्त अक्षरों की संख्या बीस अम प्रमाण है, ये अम एक घाटि इकट्ठी प्रमाण हैं। ये अम –ह्न १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ इतने अक्षर हैं। इनके पद करें तब एक मध्यपद के अक्षर सोलह सौ चौतीस करोड़ तियासी लाख सात हजार आठ सौ अठ्यासी कहे हैं। इनका भाग देने पर एक सौ बारह करोड़ तियासी लाख अठावन हजार पाँच इतने पावें, ये पद बारह अंगरूप सूत्र के पद हैं और अवशेष बीस अमों में अक्षर रहे, ये अङ्गबाह्य सूत्र कहलाते हैं। ये आठ करोड़ एक लाख आठ हजार एक सौ पिचहत्तर अक्षर हैं, इन अक्षरों में चौदह प्रकीर्णक रूप सूत्ररचना है।

अब इन द्वादशांगरूप सूत्ररचना के नाम और पद संख्या लिखते हैं ह्न प्रथम अंग आचारांग हैं, इसमें मुनीश्वरों के आचार का निरूपण है, इसके पद अठारह हजार हैं।

दूसरा सूत्रकृत अंग है, इसमें ज्ञान का विनय आदिक अथवा धर्मक्रिया में स्वमत परमत की क्रिया के विशेष का निरूपण है, इसके पद छत्तीस हजार हैं।

तीसरा स्थान अंग है, इसमें पदार्थों के एक आदि स्थानों का निरूपण है जैसे जीव सामान्यरूप से एक प्रकार विशेषरूप से दो प्रकार, तीन प्रकार इत्यादि ऐसे स्थान कहे हैं, इसके पद बियालीस हजार हैं।

चौथा समवाय अंग है, इसमें जीवादिक छह द्रव्यों का द्रव्य–क्षेत्र–कालादि द्वारा वर्णन है, इसके पद एक लाख चौसठ हजार हैं।

पाँचवाँ व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग है, इसमें जीव के अस्ति नास्ति आदिक साठ हजार प्रश्न गणधरदेवों ने तीर्थंकर के निकट किये उनका वर्णन है, इसके पद दो लाख अठाईस हजार हैं।

छठा ज्ञातृधर्मकथा नाम का अंग है, इसमें तीर्थंकरों के धर्म की कथा जीवादिक पदार्थों के स्वभाव का वर्णन तथा गणधर के प्रश्नों का उत्तर का वर्णन है, इसके पद पाँच लाख छप्पन हजार हैं।

सातवाँ उपासकाध्ययन नाम का अङ्ग है, इसमें ग्यारह प्रतिमा आदि श्रावक के आचार का वर्णन है, इसके पद ग्यारह लाख सत्तर हजार हैं।

आठवाँ अन्त:कृतदशांग नाम का अंग है, इसमें एक–एक तीर्थंकर के काल में

दस दस अन्त:कृत केवली हुए उनका वर्णन है, इसके पद तेईस लाख अठाईस हजार हैं।

नौवां अनुत्तरोपपादक नाम का अंग है, इसमें एक-एक तीर्थंकर के काल में दस-दस महामुनि घोर उपसर्ग सहकर अनुत्तर विमानों में उत्पन्न हुए उनका वर्णन है, इसके पद बाणवै लाख चवालीस हजार हैं।

दसवां प्रश्न व्याकरण नाम का अंग है, इसमें अतीत अनागत काल संबंधी शुभाशुभ का प्रश्न कोई करे उसका उत्तर यथार्थ कहने के उपाय का वर्णन है तथा आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेदनी, निर्वेदनी ह्न इन चार कथाओं का भी इस अंग में वर्णन है, इसके पद तिराणवें लाख सोलह हजार हैं।

ग्यारहवाँ विपाकसूत्र नाम का अंग है, इसमें कर्म के उदय का तीव्र, मंद अनुभाग का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा लिए हुए वर्णन है, इसके पद एक करोड़ चौरासी लाख हैं। इसप्रकार ग्यारह अंग हैं, इनके पदों की संख्या को जोड़ देने पर चार करोड़ पंद्रह लाख दो हजार पद होते हैं।

बारहवाँ दृष्टिवाद नाम का अंग है, इसमें मिथ्यादर्शन संबंधी तीन सौ तरेसठ कुवादों का वर्णन है, इसके पद एक सौ आठ करोड़ अड़सठ लाख छप्पन हजार पाँच हैं। इस बारहवें अंग के पाँच अधिकार हैं -ह्न१. परिकर्म, २. सूत्र, ३. प्रथमानुयोग, ४. पूर्वगत, ५. चूलिका। परिकर्म में गणित के करण सूत्र हैं; इनके पाँच भेद हैं ह्न प्रथम चन्द्रप्रज्ञप्ति है, इसमें चन्द्रमा के गमनादिक परिवार वृद्धि, हानि, ग्रह आदि का वर्णन है, इसके पद छत्तीस लाख पाँच हजार है। दूसरा सूर्यप्रज्ञप्ति है, इसमें सूर्य की ऋद्धि, परिवार, गमन आदि का वर्णन है, इसके पद पाँच लाख तीन हजार हैं। तीसरा जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति है, इसमें जम्बूद्वीप संबंधी मेरु गिरि क्षेत्र कुलाचल आदि का वर्णन है, इसके पद तीन लाख पच्चीस हजार हैं। चौथा द्वीप सागर प्रज्ञप्ति है, इसमें द्वीपसागर का स्वरूप तथा वहाँ स्थित ज्योतिषी, व्यन्तर भवनवासी देवों के आवास तथा वहाँ स्थित जिनमन्दिरों का वर्णन है, इसके पद बावन लाख छत्तीस हजार हैं। पाँचवाँ व्याख्याप्रज्ञप्ति है, इसमें जीव अजीव पदार्थों के प्रमाण का वर्णन है, इसके पद चौरासी लाख छत्तीस हजार हैं। इसप्रकार परिकर्म के पाँच भेदों के पद जोड़ने पर एक करोड़ इक्यासी लाख पाँच हजार होते हैं।

बारहवें अंग का दूसरा भेद सूत्र नाम का है, इसमें मिथ्यादर्शन संबंधी तीन सौ

तरेसठ कुवादों का पूर्वपक्ष लेकर उनको जीव पदार्थ पर लगाने आदि का वर्णन है, इसके पद अठ्यासी लाख हैं। बारहवें अंग का तीसरा भेद प्रथमानुयोग है, इसमें प्रथम जीव के उपदेशयोग्य तीर्थंकर आदि तरेसठ शलाका पुरुषों का वर्णन है, इसके पद पाँच हजार हैं। बारहवें अंग का चौथा भेद पूर्वगत है, इसके चौदह भेद हैं, प्रथम उत्पाद नाम का है इसमें जीव आदि वस्तुओं के उत्पाद व्यय ध्रौव्य आदि अनेक धर्मों की अपेक्षा भेद वर्णन है, इसके पद एक करोड़ हैं। दूसरा अग्रायणी नाम का पूर्व है, इसमें सात सौ सुनय दुर्नय का और षट्द्रव्य, सप्ततत्त्व, नव पदार्थों का वर्णन है, इसके छिनवें लाख पद हैं।

तीसरा वीर्यानुवाद नाम का पूर्व है, इसमें छह द्रव्यों की शक्तिरूप वीर्य का वर्णन है, इसके पद सत्तर लाख हैं। चौथा अस्तिनास्तिप्रवाद नाम का पूर्व है, इसमें जीवादिक वस्तु का स्वरूप द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा अस्ति, पररूप द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा नास्ति आदि अनेक धर्मों के विधि निषेध करके सप्तभंग के द्वारा कथंचित् विरोध मेटनेरूप मुख्य गौण करके वर्णन है, इसके पद साठ लाख हैं।

पाँचवाँ ज्ञानप्रवाद नाम का पूर्व है, इसमें ज्ञान के भेदों का स्वरूप, संख्या, विषय, फल आदि का वर्णन है, इसके पद एक कम करोड़ हैं। छठा सत्यप्रवाद नाम का पूर्व है, इसमें सत्य, असत्य आदि वचनों की अनेक प्रकार की प्रवृत्ति का वर्णन है, इसके पद एक करोड़ छह हैं। सातवाँ आत्मप्रवाद नाम का पूर्व है, इसमें आत्मा (जीव) पदार्थ के कर्ता, भोक्ता आदि अनेक धर्मों का निश्चय-व्यवहारनय की अपेक्षा वर्णन है, इसके पद छब्बीस करोड़ हैं।

आठवाँ कर्मप्रवाद नाम का पूर्व है, इसमें ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों के बंध, सत्व, उदय, उदीरणा आदि का तथा क्रियारूप कर्मों का वर्णन है, इसके पद एक करोड़ अस्सी लाख हैं। नौवाँ प्रत्याख्यान नाम का पूर्व है, इसमें पाप के त्याग का अनेक प्रकार से वर्णन है, इसके पद चौरासी लाख हैं। दसवाँ विद्यानुवाद नाम का पूर्व है, इसमें सात सौ क्षुद्रविद्या और पाँचसौ महाविद्याओं के स्वरूप, साधन, मंत्रादिक और सिद्ध हुए इनके फल का वर्णन है तथा अष्टांग निमित्तज्ञान का वर्णन है, इसके पद एक करोड़ दस लाख हैं।

ग्यारहवाँ कल्याणवाद नाम का पूर्व है, इसमें तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि के गर्भ आदि कल्याणक का उत्सव तथा उसके कारण षोडश भावनादि के तपश्चरणादिक तथा चन्द्रमा सूर्यादिक के गमन विशेष आदि का वर्णन है, इसके पद छब्बीस करोड़ हैं।

बारहवाँ प्राणवाद नाम का पूर्व है, इसमें आठ प्रकार वैद्यक तथा भूतादिक की व्याधि के दूर करने के मंत्रादिक तथा विष दूर करने के उपाय और स्वरोदय आदि का वर्णन है, इसके तेरह करोड़ पद हैं। तेरहवाँ क्रियाविशाल नाम का पूर्व है, इसमें संगीतशास्त्र, छन्द, अलंकारादिक तथा चौसठ कला, गर्भाधानादि चौरासी क्रिया, सम्यग्दर्शन आदि एक सौ आठ क्रिया, देववंदनादिक पच्चीस क्रिया, नित्य नैमित्तिक क्रिया इत्यादि का वर्णन है, इसके पद नव करोड़ हैं।

चौदहवाँ त्रिलोकबिंदुसार नाम का पूर्व है, इसमें तीनलोक का स्वरूप और बीजगणित का स्वरूप तथा मोक्ष का स्वरूप तथा मोक्ष की कारणभूत क्रिया का स्वरूप इत्यादि का वर्णन है, इसके पद बारह करोड़ पचास लाख हैं। ऐसे चौदह पूर्व हैं, इनके सब पदों का जोड़ पिच्याणवे करोड़ पचास लाख है।

बारहवें अंग का पाँचवाँ भेद चूलिका है, इसके पाँच भेद हैं, इनके पद दो करोड़ नव लाख निवासी हजार दो सौ हैं। इसके प्रथम भेद जलगता चूलिका में जल का स्तंभन करना, जल में गमन करना। अग्निगता चूलिका में अग्नि स्तंभन करना, अग्नि में प्रवेश करना, अग्नि का भक्षण करना इत्यादि के कारणभूत मंत्र तंत्रादिक का प्ररूपण है, इसके पद दो करोड़ नव लाख, निवासी हजार दो सौ हैं। इतने इतने ही पद अन्य चार चूलिका के जानने। दूसरा भेद स्थलगता चूलिका है, इसमें मेरु पर्वत भूमि इत्यादि में प्रवेश करना, शीघ्र गमन करना इत्यादि क्रिया के कारण मंत्र तंत्र तपश्चरणादिक का प्ररूपण है।

तीसरा भेद मायागता चूलिका है, इसमें मायामयी इन्द्रजाल विक्रिया के कारणभूत मंत्र तंत्र तपश्चरणादिक का प्ररूपण है। चौथा भेद रूपगता चूलिका है, इसमें सिंह, हाथी, घोड़ा, बैल, हरिण इत्यादि अनेक प्रकार के रूप बना लेने के कारणभूत मंत्र, तंत्र, तपश्चरण आदि का प्ररूपण है तथा चित्राम, काष्ठलेपादिक का लक्षण वर्णन है और धातु रसायन का निरूपण है। पाँचवाँ भेद आकाशगता चूलिका है, इसमें आकाश में गमनादिक के कारणभूत मंत्र-यंत्र-तंत्रादिक का प्ररूपण है। ऐसे बारहवाँ अंग है। इसप्रकार से बारह अंग सूत्र हैं।

अंगबाह्य श्रुत के चौदह प्रकीर्णक हैं। प्रथम प्रकीर्णक सामायिक नाम का है, इसमें नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के भेद से छह प्रकार इत्यादि सामायिक

का विशेषरूप से वर्णन है। दूसरा चतुर्विंशतिस्तव नाम का प्रकीर्णक है, इसमें चौबीस तीर्थंकरों की महिमा का वर्णन है। तीसरा वंदना नाम का प्रकीर्णक है, इसमें एक तीर्थंकर के आश्रय से वन्दना-स्तुति का वर्णन है।

चौथा प्रतिक्रमण नाम का प्रकीर्णक है, इसमें सात प्रकार के प्रतिक्रमण का वर्णन है। पाँचवाँ वैनयिक नाम का प्रकीर्णक है, इसमें पाँच प्रकार के विनय का वर्णन है। छठा कृतिकर्म नाम का प्रकीर्णक है, इसमें अरहंत आदि की वंदना की क्रिया का वर्णन है। सातवाँ दशवैकालिक नाम का प्रकीर्णक है, इसमें मुनि का आचार, आहार की शुद्धता आदि का वर्णन है। आठवाँ उत्तराध्ययन नाम का प्रकीर्णक है, इसमें परीषह उपसर्ग को सहने के विधान का वर्णन है।

नवमा कल्पव्यवहार नाम का प्रकीर्णक है, इसमें मुनि के योग्य आचरण और अयोग्य सेवन के प्रायश्चित्तों का वर्णन है। दसवां कल्पाकल्प नाम का प्रकीर्णक है, इसमें मुनि को यह योग्य है और यह अयोग्य है ऐसा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा वर्णन है। ग्यारहवाँ महाकल्प नाम का प्रकीर्णक है, इसमें जिनकल्पी मुनि के प्रतिमायोग, त्रिकालयोग का प्ररूपण है तथा स्थविरकल्पी मुनियों की प्रवृत्ति का वर्णन है। बारहवाँ पुण्डरीक नाम का प्रकीर्णक है, इसमें चार प्रकार के देवों में उत्पन्न होने के कारणों का वर्णन है।

तेरहवाँ महापुण्डरीक नाम का प्रकीर्णक है, इसमें इन्द्रादिक बड़ी ऋद्धि के धारक देवों में उत्पन्न होने के कारणों का प्ररूपण है। चौदहवाँ निषिद्धिका नाम का प्रकीर्णक है, इसमें अनेकप्रकार के दोषों की शुद्धता के निमित्त प्रायश्चित्तों का प्ररूपण है, यह प्रायश्चित्त शास्त्र है, इसका नाम निसितिका भी है। इसप्रकार अंगबाह्य श्रुत चौदह प्रकार का है।

पूर्वो की उत्पत्ति पर्यायसमास ज्ञान से लगाकर पूर्वज्ञानपर्यन्त बीस भेद हैं, इनका विशेष वर्णन, श्रुतज्ञान का वर्णन गोम्मटसार नाम के ग्रन्थ में विस्तारपूर्वक है, वहाँ से जानना।।२।।

गाथा-२ पर प्रवचन

सुत्तम्मि जं सुदिट्ठं आइरियपरंपूरेण मग्गेण।
णाऊण दुविह सुत्तं वट्टदि सिवमग्ग जो भव्वो।।२।।

भव्य जीव ऐसे होते हैं, कहते हैं। आहाहा!

अर्थ - सर्वज्ञभाषित सूत्र में... इसमें हिन्दी है। जो **सर्वज्ञभाषित...** परमात्मा –सर्वज्ञ के मुख से जो वाणी निकली, उसमें **जो कुछ भलेप्रकार कहा है,...** उसमें जो कुछ भले प्रकार से (अर्थात्) यथार्थ वीतरागता की बात उसमें की है। समझ में आया? **उसको आचार्यों की परम्परारूप मार्ग से...** भगवान तो अभी रहे नहीं और उनकी वाणी भी अभी तो सीधी (मिलती नहीं), परन्तु भगवान ने कही हुई वाणी मुनियों ने—सन्तों ने अनुभव की और पश्चात् वाणी की है, वह परम्परा आचार्यों से ठेठ वीतराग से चली आयी है। समझ में आया? आहाहा!

सर्वज्ञभाषित सूत्र में जो कुछ... 'सुदिट्ठं' है न? भाई! इसमें। **'सुत्तम्मि जं सुदिट्ठं'** भले प्रकार से जो उसमें कहा है, उसे जानकर। **सूत्र को शब्दमय और अर्थमय जानकर...** शास्त्र में जो शब्द कहे, उन्हें भलीभाँति जानना और शब्द में अर्थ क्या कहना है, उसे भी जानना। यहाँ आगम की–शास्त्र की परम्परा वीतरागमार्ग अन्दर क्या है, उसे शास्त्र कहते हैं। उसका ज्ञान नहीं हो और ऊपरी तौर पर यह क्रिया करो और यह करो और यह करो। मर गया ऐसा कर - करके, सुन न! सेठी! आहाहा! कहते हैं, सूत्र का शब्द और उसका अर्थ। जो भगवान को कहना है, वैसा अर्थ - ऐसा। ऐसा जानकर, उसे भलीभाँति जानकर, कि भगवान को तो शास्त्र में यह कहना है कि तेरा निज पद आनन्दस्वरूप है। उसका अन्दर अनुभव करके श्रद्धा कर। उसका ज्ञान कर। हम जो कहते हैं, वह ज्ञान में तेरा ज्ञान करने को कहते हैं, ऐसा कहते हैं, भाई! आहाहा! समझ में आया? अन्दर महा चैतन्यहीरा पड़ा है, जिसकी कीमत वीतराग–वाणी में भी पूरी नहीं आ सकती। वाणी जड़; वह चैतन्य हीरा अरूपी आनन्दकन्द। वाणी जड़, उसका शत्रु। शत्रु द्वारा उसकी (चैतन्य हीरा की) बातें करना। भोगीलालभाई! आहा! यह तो जड़ वाणी है; वह अन्दर चैतन्य हीरा है। महाप्रभु पूर्णानन्द का नाथ सहजात्म आनन्दस्वरूप है।

कहते हैं कि उन्होंने शास्त्र में जो वाणी में कहा, उसका अर्थ समझकर भलीभाँति जान कि भगवान को क्या कहना है ? भाई ! भगवान को तो राग और अज्ञान का अभाव कराना है और वीतराग तथा सर्वज्ञ की प्राप्ति कराना है। समझ में आया ? ऐसा जानकर **मोक्षमार्ग में प्रवर्तता है,...** है न पाठ में ? **'सिवमग्ग' 'वट्टदि सिवमग्ग'** यहाँ कहना क्या है ?-कि सूत्र के अर्थ में शिवमार्ग-मोक्ष का मार्ग कहा है। शिव अर्थात् मोक्ष। शिव अर्थात् वे शंकर-शिव नहीं, हों ! नमोत्थुणं में नहीं आता ? 'सिवमलयमरु।' नमोत्थुणं में आता है। भोगीलालभाई ! परन्तु नमोत्थुणं नहीं आता होगा। 'नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं, आइगराणं तित्थयहाणं सयंसंबुद्धिणं...' अन्त में आता है, 'सिवमलयमरुयमणंतम्' यह नमस्कार है। 'सिवय अवलं अचलं' शिव अर्थात् निरुपद्रवी कल्याणस्वरूप। वह शिव, हों ! यह शंकर-वंकर, वह शिव नहीं। नमोत्थुणं में आता है। परन्तु अर्थ की खबर नहीं होती, भाव की खबर नहीं होती। यह तो बिना भान के गाड़ी हाँकता है। आहाहा ! अरे, भाई ! सच्चा ज्ञान किये बिना तेरा सुलझाव नहीं आयेगा, भाई ! समझ में आया ? संसार में भी जानते हैं न बात को ? तब उसे कोई पूछे और पूछने आवे न ?-या अनजान को पूछने जाते होंगे ? इसी प्रकार तू कौन है ? भगवान क्या कहते हैं ?

नव तत्त्व जाति ही भिन्न है। जड़ भिन्न, पुण्य-पाप के भाव आस्रव हैं; भगवान आस्रव और अजीवतत्त्व रहित चीज़ है। ऐसा जो भगवान ने कहा है, उसे भलीभाँति जानकर मोक्षमार्ग में प्रवर्ते। अर्थात् वास्तव में भगवान ने शास्त्र में मोक्ष का मार्ग कहा है - ऐसा जानकर उसमें प्रवृत्त, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? रागादि हो, परन्तु भगवान ने उन्हें जानने को कहा है, आदरने को नहीं कहा। यह तो वीतरागमार्ग है, सर्वज्ञ परमेश्वर का (मार्ग है)। यह इसके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं है, बापू ! यह तो अपूर्व मार्ग है।

कहते हैं कि शिवमार्ग है। है न ? **'सिवमग्ग जो भव्वो' 'णाऊण दुविह सुत्तं वट्टदि सिवमग्ग'** उस शिव-मोक्ष के मार्ग में वर्तता है, तो मोक्ष का मार्ग तो यह है। शरीर, वाणी, मन की क्रिया तो जड़ की है। उसके सन्मुख न देख। वह तत्त्व तेरे तत्त्व का नहीं है, वह तो जड़ का तत्त्व है और तुझमें पुण्य और पाप के भाव होते हैं, वह तो आस्रवतत्त्व है। भावबन्धस्वरूप है, द्रव्यबन्ध का कारण है, वह तत्त्व भी तेरा नहीं है। इस तरह भगवान

के शास्त्र में ऐसा कहा गया है। समझ में आया? चिमनभाई! यह बाहर में कुछ धूल भी नहीं है, ऐसा कहते हैं। यह पैसे मिले–दस लाख, बीस लाख या इज्जत मिली। धूल में घुस गया है, सुन न! कहाँ वह चीज़ तेरी थी? तेरी है, वहाँ देखना नहीं और नहीं है, वहाँ 'मेरा' मानना। मिथ्याभ्रम में पड़ा है, कहते हैं। भोगीलालभाई! बात तो यह हो (या) दूसरी क्या होगी? आहाहा! वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा जिस पद को प्राप्त हुए, वह पद पाने की व्याख्या करे कि संसारपद ऐसा है, उसे ज्ञान कराते हैं। परन्तु संसार का पद, रागादि का पद, वह आदरणीय है – ऐसा भगवान कहाँ कहते हैं? तो उन्होंने क्यों (राग को) छोड़ा? आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि **आचार्यों की परम्परारूप मार्ग से दो प्रकार के सूत्र को शब्दमय और अर्थमय जानकर...** अरे! आठ–आठ वर्ष के राजकुमार भगवान के समय में और बाद में भी सुनकर ऐसे... आहाहा! यह मार्ग! और आत्मा के अन्तर में अनुभव हुआ। पश्चात् वैराग्य होकर जब स्वरूप में रमने का प्रयत्न करते हैं, तब दीक्षा के लिये माता–पिता के निकट कहते हैं, माता! हमारे निजपद का हमें अनुभव है। भाई! चरणानुयोग (अधिकार) में आता है न? प्रवचनसार में। हमारी ज्ञानानुभूति, हमारे आनन्द की अनुभूति हमें प्रगट हुई है। माँ! अब आज्ञा दे। हम वन में जायेंगे। हमें कहीं चैन नहीं पड़ता, हमें कहीं चैन नहीं पड़ता, माँ! तुझे एक बार रोना हो तो रो ले, परन्तु फिर से अब माँ नहीं करेंगे। ऐसे अवतार नहीं करेंगे—ऐसे भाव में जाते हैं। भोगीलालभाई! ऐसी जिन्हें नीचे मणि–रत्न की टाईल्स थी। समझ में आया? जिनके मणि–रत्न के बँगले! अरे! वह तो धूल है, भाई! उस धूल में 'मेरापन' मानकर तुझे तेरापन छूट गया है। आहाहा!

अरे! मैं तो ज्ञान और आनन्द के स्वभाववाला हूँ न! मेरी शान्ति और आनन्द कहाँ होगा? शुभभाव हो, उसमें भी मेरी शान्ति और आनन्द नहीं है, तो फिर इन स्त्री, पुत्र में, धूल धमाका, चक्रवर्ती के राज्य सब राख के पिण्ड हैं। आहाहा! ऐसी दृष्टि पहले होनी चाहिए। आहा! ऐसी दृष्टि की खबर नहीं होती। सम्यग्दर्शन क्या? इसकी उत्पत्ति कैसे होती है – इसकी खबर नहीं होती और धर्म हो, बापू! (ऐसे) धर्म नहीं होता, भाई! जीव ठगा जाता है, हों! अनन्त काल से ठगाता है। कुछ न कुछ अमुक हुआ और व्रत, तप, भक्ति और दया के विकल्प (हुए), वे विकल्प तो परसन्मुख लक्ष्यवाली वृत्ति है। हमने

धर्म किया। ठगा गया है, भाई! इसके भव को यह हार गया है। आहा! जादवजीभाई!

जा भाई! फिर माता कहती है, बेटा! जा भाई! तेरा काम कर, बापू! हमें भी यह मार्ग होओ, हो! वापस ऐसा कहती है। हमारे सुख का मार्ग तो यह है। आहाहा! आत्मा का अनुभव—ऐसा सम्यग्दर्शन, वह सुख का मार्ग है और फिर स्वरूप में रमणता-ऐसा चारित्र, वह सुख का उग्र मार्ग है। समझ में आया? आहाहा! धर्मी को आत्मा के आनन्द के अतिरिक्त कहीं मजा और कहीं चैन नहीं पड़ती है। चक्रवर्ती का राज हो तो भी उसे राख का पिण्ड जानता है। धूल का है, बापू! यह आनन्द का सागर तो आत्मा है, भाई! उसमें से थोड़े आनन्द को पी ले न! उस आनन्द को पिये बिना, उस सुधारस के स्वाद बिना तुझे सम्यग्दर्शन नहीं होगा। आहाहा! शान्तरस! समझ में आया?

श्रेणिक राजा। देखो, पहले साधु की असातना की थी। तैतीस सागर का आयुष्य बँध गया था, सातवें नरक का तैतीस सागर! परन्तु मुनि के योग से आत्मज्ञान-समकित को प्राप्त हुए। ओहो! यह आत्मा तो राग की क्रिया से भी पार-भिन्न है-ऐसा जहाँ चैतन्य का भान होकर समकित प्राप्त हुए; भगवान कहते हैं कि तैतीस सागर का आयुष्य बाँधा था, वह चौरासी हजार वर्ष का हो गया। भोगीलालभाई! श्रेणिक राजा अभी नरक में हैं, पहले नरक में हैं। वहाँ से निकलकर आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर होनेवाले हैं। जैसे यहाँ महावीर भगवान तीर्थंकर थे, वैसे (तीर्थंकर होनेवाले हैं।) यह त्याग, वैराग्य, चारित्र, संयम नहीं था, परन्तु सम्यग्दर्शन है। आज लोगों को सम्यग्दर्शन क्या और उसकी महिमा क्या – इसकी खबर नहीं होती। यह बाहर की प्रवृत्ति यह की और यह की और यह की। वह तो धूल की, सुन न अब। आहाहा! वे श्रेणिक राजा मुनि के पास आत्मज्ञान प्राप्त हुए। ओहो! उनकी रानी चेलना का निमित्त था। रानी धर्म प्राप्त थी और फिर वहाँ गये। कहती है – मुझे कहीं चैन नहीं पड़ता, राजा! मुझे यहाँ जिनमन्दिर और भगवान के दर्शनों का विरह है। यहाँ में कहीं जिनमन्दिर नहीं देखती। तुम बौद्धधर्मी हो। वे (श्रेणिक) तो बौद्धधर्मी थे न? चेलना समकिती-ज्ञानी थी, आत्मानुभवी थी। हो, रानी संसारी तो क्या है? समझ में आया? उसे आनन्द का स्वाद आया था और ज्ञान की, चैतन्य की मूर्ति हूँ, ऐसा ज्ञेय करके भान किया था। राजा को समझाया। महाराजा! यह वीतराग का मार्ग अलग है, तुम मानते हो वह नहीं, हों! समझ में आया? फिर मुनि के पास आते हैं न! मुनि पर

सर्प डाला डाला (था) मुनि ध्यान में थे। नग्न दिगम्बर मुनि आत्मा के आनन्द में (मस्त थे।) (राजा श्रेणिक) बौद्ध को मानता था। मरा हुआ सर्प था, उसे (मुनि के) गले में डाला। करोड़ों चींटियाँ (चढ़ गयीं)। घर आकर बात करते हैं, तुम्हारे मुनि है, उन पर मैंने सर्प डाला है। निकाल दिया होगा। (चेलना रानी कहते हैं), अरे! राजन! हमारे मुनि-सन्त आनन्द में झूलनेवाले; उन्हें उपसर्ग आवे, उसे वे (स्वयं) नहीं निकालते। चलो, तब देखते हैं, रानी को कहते हैं-चलो। वहाँ मुनि तो आनन्द में... आनन्द में (थे)। शरीर के रजकणों की क्रिया, वह पर है। रोग किसे? रोग और अरोग, वह तो जड़ की दशा है। मेरे अस्तित्व में वह है ही नहीं। ऐसे अन्तर आनन्द में अन्तर में रमण करते थे। लो, राजन! करोड़ों चींटियाँ थी। ओहो! ऐसा मुनिमार्ग! ऐसे सन्त तेरे जैनदर्शन के!! अन्तर आनन्द में-अतीन्द्रिय आनन्द में, जहाँ क्लेश का कण नहीं। समझ में आया? जिसे शरीर के रोग का अस्तित्व, वह रोग मुझमें नहीं, वह तो जड़ की अवस्था है। वह मुझे दुःख है नहीं। आहाहा! समझ में आया? वे (श्रेणिक राजा) समकित को प्राप्त हुए।

तैतीस सागर किसे कहते हैं? एक सागरोपम में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम और एक पल्योपम में असंख्य भाग में असंख्य अरब वर्ष होते हैं। वीतराग की वाणी, भाई! महान है। यह तो सर्वज्ञ ने देखा, वह बात है। तैतीस सागर की स्थिति थी। काट दी। चौरासी हजार वर्ष रह गयी। समकित को प्राप्त हुए इसलिए। (नरक में तो) जाना पड़ा। लड्डू होता है न? लड्डू बाँधा हो, फिर उसमें से अधिक न खाये, इसलिए सुखाये, परन्तु वह लड्डू खाना ही पड़ेगा। उसमें से घी निकालकर पूड़ी तल जाए, आटा निकालकर रोटी हो, ऐसा नहीं होता। इसी प्रकार जो आयुष्य एक बार बँध गयी, (वह) वह कम हो, परन्तु वह आयुष्य टूटकर अभाव हो जाए – ऐसा नहीं होता।

आयुष्य बँध गया, पश्चात् समकित को प्राप्त हुए। स्थिति घटाई, अभाव नहीं कर सकते। अभी नरक में गये हैं, परन्तु क्षायिक समकित है, अभी वहाँ तीर्थंकर गोत्र बाँधते हैं। यहाँ बाँधते-बाँधते गये हैं। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति पूरी होगी। यह सम्यग्दर्शन का माहात्म्य है। समझ में आया? तीर्थंकर तीन लोक के नाथ माता के गर्भ में आयेंगे, वहाँ छह महीने इन्द्र आकर सेवा करेंगे। नहीं संयम, नहीं चारित्र, कुछ नहीं था। ऐ... मणिभाई! आहाहा! बापू! जिसे समकित कहते हैं, उसकी खबर भी (अज्ञानी को) नहीं होती।

आहा! यह बाहर का संयम और त्याग सब एक बिना के शून्य हैं। आहाहा! पानी रहित सरोवर, पतिरहित नारी, राजारहित प्रजा; वैसे समकितरहित ये सब कलायें झूठी हैं। समझ में आया?

यह यहाँ कहते हैं कि सूत्र में से खोजकर तू यह निकालना। **सूत्र को शब्दमय और अर्थमय जानकर मोक्षमार्ग में प्रवर्तता है, वह भव्यजीव है, मोक्ष पाने के योग्य है।** ऐसा जिसे शास्त्र में कहा, वैसा सम्यग्ज्ञान-आत्मज्ञान हो, वह अल्प काल में केवलज्ञान पाकर मोक्ष जायेगा। भले चारित्र न आया हो। चारित्र तो अलौकिक बात! चारित्र अर्थात् ओहोहो! बाहर की क्रिया कहीं चारित्र नहीं है। सम्यग्दर्शन में अन्तर आनन्द का भान हुआ है। उस अतीन्द्रिय आनन्द में घुसकर अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में उग्रता आ जाना, इसका नाम चारित्र है। आहाहा! क्या हो? समझ में आया?

मुमुक्षु - व्याख्या सब अलग।

पूज्य गुरुदेवश्री - दूसरी व्याख्या सब अलग है। चन्दुभाई कहते थे न? चन्दुभाई थे न? सिहोर के। गोंडल में रेवेन्यु अधिकारी थे। विद्या अधिकारी थे। पटेल थे न? चन्दुभाई पटेल को कभी मिले नहीं? चन्दुभाई पटेल 'गोंडल' राजा के मान्य। वहाँ बड़ा बँगला दिया है। वहाँ उतरे थे। उनके भाई यहाँ भावनगर रहते हैं। जयन्तीलाल पटेल। जयन्तीलाल पटेल भावनगर रहते हैं। उनका भाई। बहुमान था। दरबार के पास-भगतसिंह के पास। वह चन्दुभाई सुनता है, बहुत बार व्याख्यान में आता है। इसलिए कहे, यह तो शब्दों की व्याख्या बदलती है। दरबार के पास जाए, तब दरबार के पास बात करे कि महाराज ऐसा कहते थे। यह तो सब अर्थ ही अलग प्रकार का करते हैं। तब कहे, यह शब्द अपने शब्दकोश में डालना, दरबार कहे भगतसिंह। शब्दकोश बनाया है न इतना बड़ा। है यहाँ। परन्तु यहाँ के शब्द डाले हैं। निद्धतकर्म किसे कहना, निकाचित कर्म किसे कहना और सम्यग्दर्शन किसे कहना। सब व्याख्या हुई। यह तो सब व्याख्या बदलती है। कहा, यह शब्दकोश ही अलग प्रकार का है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **वह भव्यजीव है, मोक्ष पाने के योग्य है।** आहा! जिसने आगम-सर्वज्ञ परमात्मा के शास्त्रों, उनमें अन्दर कहा हुआ आत्मा का स्वरूप, उसका जिसने ज्ञान किया है, अल्प काल में भव्य होकर, वह भव्य जीव है, शिव पायेगा। भले

कहते हैं, चारित्र न हो। समझ में आया ? वीतरागता पूर्ण प्रगट न हुई हो, परन्तु सम्यग्दर्शन और ज्ञान सच्चा प्रगट हुआ है, (वह) हाथ में आया है, डोरा हाथ में आया। कुएँ में डोल और पानी सब पड़ा हो और डोरा भी अन्दर गया हो, परन्तु गाँठ हाथ में रखी हो तो (सब खींच लेता है)।

इसी प्रकार सम्यग्दर्शन एक महागाँठ अन्दर है। फिर आत्मा उस भव जल में नहीं जाता। समझ में आया ? आहाहा! वह भव्य जीव मोक्ष-प्राप्ति के योग्य है, ऐसा लिखा है न ? आहाहा! शिवमार्ग में वर्ते, वह शिव हो। शिव अर्थात् मोक्ष। शिव अर्थात् वह शंकर नहीं, हों! यह तो वीतराग। शिव अर्थात् कल्याणपद। निरुपद्रव कल्याण पद, वह मोक्ष है। शिवपद, उसका मार्ग, वह शिव का मार्ग अर्थात् मोक्ष का मार्ग। वह मार्ग अर्थात् सूत्र में जो कहा। राग, विकल्प और निमित्त से पार भगवान आत्मा की अन्तर्दृष्टि और अनुभव और उसमें स्थिरता (होना), वह मोक्ष का मार्ग है। गजब काम, भाई! अपूर्व बात तो ऐसी होवे न, बापू! पूर्व में अनन्त बार किया, उस जाति का होवे तो वह कोई अपूर्व नहीं है। परन्तु क्या हो ?

ऐसा भ्रमाया है न काल। मरते सब देखेंगे, हों! कण्ठ पकड़ायेगा, आवाज नहीं निकले, देखो! यह सब किया और तुम कुछ सहायता नहीं करते ? तेरे लिये सब पाप किये। किये थे तो इसने स्वयं के लिये, हों! यह सब पैसे एकत्रित किये, शरीर का पोषण किया, हड्डियों का पोषण किया, नहलाया, यह किया और... ओहो! परन्तु यह कहाँ इसका था ? देखो! भाई!

मुमुक्षु - अब देखो ऐसा कहे।

पूज्य गुरुदेवश्री - अब देखो, कहे। पहले थोड़ा-बहुत चढ़ाया। इंजेक्शन (दे)। अब नहीं रहेगा, ऐसा कहे। भोगीलालभाई! ऐसे होशियार लोग वहाँ गये हो न। अब सब करना रहने दो। क्योंकि ऐसा बोले नहीं कि... जाएगा। अब सब रहने दो। अर्थात् क्या ? कि देखो! अभी घण्टे-दो घण्टे में निपट जाएगा। आहा! तेरा कुछ नहीं ? था कब परन्तु तेरा वह हो वहाँ ? यह तेरा सगा नहीं - ऐसा अपने कहते हैं न ? इसका अर्थ क्या ? तेरा नहीं चलेगा अब। आहाहा! बापू! तेरी दूसरी चीज़ तो कहीं रह गयी। वह तो रजकण की क्रिया है। वह तो परमाणु की-मिट्टी की है। यहाँ से यहाँ तक आवे, वह जड़ की क्रिया है।

यह जिस दिन अटकेगी और नाभि से खड़ा जरा सांस छूटेगा (तो) नीचे नहीं रख सकेगा, क्योंकि वह क्रिया तेरी नहीं है। तू चैतन्य है, वह जड़ है। बराबर है ? ऐ... भोगीलालभाई ! यह बराबर है या नहीं ? बहुत देखने जाए। घर के होशियार (होवे, उन्हें) देखने के लिये बुलावे। आहाहा !

कहते हैं कि अरे ! श्वास के परमाणु भी जड़ की-अजीव की दशा है। बापू ! तेरा श्वास लेने में तू ले नहीं सकता। वह तो पर है। तेरा उसमें तूने क्या किया ? समझ में आया ? आहाहा ! उस श्वास की क्रिया से पार आत्मा भिन्न है और उसकी ओर के लक्ष्य से-परलक्ष्य से पुण्य-पाप के विकल्प, राग हो, उससे भगवान भिन्न है। अरेरे ! इसकी खबर नहीं होती। सुनने को मिलता नहीं, वह प्रयोग कब करे ? और यह माने कब ?

मुमुक्षु - सुना ही न हो तो !

पूज्य गुरुदेवश्री - सुना न हो, वह कब विचारे ? जीवन ऐसा का ऐसा जाता है। दुनिया बाहर से मनवा लेती है और उसमें इसे सन्तोष हो जाता है कि हम कुछ हैं, हों ! ऐसे सामने की सेठाई हो गयी हो, या पैसे (रुपये) हुए हों और पाँच-पचास हजार खर्च किये हों। धूल में भी नहीं। तेरे लाख खर्च कर तो उसमें धर्म नहीं है। वह तो जड़ है। और जड़ मैंने खर्च किये, यह मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। अजीव तो जगत का तत्त्व है। उस अजीवतत्त्व को मैंने प्रयोग किया तो अजीव का स्वामी होता है। मिथ्यात्व है। (क्योंकि) अजीव को जीव मानता है।

मुमुक्षु - अजीव को जीव माने तो मिथ्यात्व ?

पूज्य गुरुदेवश्री - क्या होगा ? पच्चीस मिथ्यात्व में नहीं आता ? दस दिन तो पालता है। अजीव को जीव माने तो मिथ्यात्व; कुमार्ग को मार्ग माने तो मिथ्यात्व; अधर्म को धर्म माने तो मिथ्यात्व। परन्तु विचारना कहाँ है ? यह तो ऐसे के ऐसे पहाड़े बोलता है। जादवजीभाई !

मुमुक्षु - ऐसा का ऐसा चलता हो, ऐसा चले न ?

पूज्य गुरुदेवश्री - चलता है। नहीं चलता ? चलता है संसार। अरे ! भाई ! उसमें नया क्या है ? भाई ! तुझे तेरे चैतन्य के आनन्द का प्रेम जागृत न हुआ और जगत के रागादि

तथा श्वास आदि का प्रेम जिसे रह गया, रुचि का प्रेम, हों! आसक्ति की बात अलग। परन्तु ये मेरे हैं और मुझे सहायता करते हैं, मेरे हैं – यह मिथ्यात्वभाव है, भाई! जिसे परमेश्वर मिथ्यादर्शन शल्य कहते हैं। आहाहा! एक सूक्ष्म शल्य भी अन्दर जीव की शान्ति का घात कर डालती है। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ – यहाँ कोई कहे – अरहंत द्वारा भाषित और गणधर देवों से गूंथा हुआ सूत्र तो द्वादंशागरूप है,... वह तो बारह अंग है। **वह तो इस काल में दीखता नहीं है,...** भगवान ने जो बारह अंग कहे, वे बारह अंग तो अभी है नहीं। तब अब हमें किसका आश्रय लेना? **इस काल में दीखता नहीं है, तब परमार्थरूप मोक्षमार्ग कैसे सधे, इसका समाधान करने के लिए यह गाथा है,...**

अरहंतभाषित गणधररचित सूत्र में... भगवान ने कहा और गणधर ने गूँथा। गौतमस्वामी आदि परमात्मा के युवराज। तीर्थंकर राजा और गणधर युवराज। आहा! शास्त्र में तो भगवान के पुत्र कहा है, हों! गणधर को सर्वज्ञ का पुत्र कहा है। सर्वज्ञ ने कहा, उसका उन्होंने उत्तराधिकार रखा। गणधर बारह अंग की रचना अन्तर्मुहूर्त में करते हैं। ऐसे (अंग-पूर्व) गणधर ने गूँथे। उस **सूत्र में जो उपदेश है, उसको आचार्यों की परम्परा से जानते हैं,...** लो! अभी तक आचार्यों, सन्तों, धर्मात्माओं से भगवान की परम्परा चली आयी है। **उसको शब्द और अर्थ के द्वारा जानकर...** उसे शब्द और अर्थ से जानकर **जो मोक्षमार्ग को साधता है, वह मोक्ष होने योग्य भव्य है।** समझ में आया?

यहाँ फिर कोई पूछे कि आचार्यों की परम्परा क्या है? फिर परम्परा का वर्णन किया है। नाम दिये हैं। तीसरी गाथा। तीसरी।

गाथा-३

आगे कहते हैं कि जो सूत्र में प्रवीण है, वह संसार का नाश करता है ह्न

[1]सुत्तं हि जाणमाणो भवस्स भवणासणं च सो कुणदि।
सूई जहा असुत्ता णासदि सुत्तेण सहा णो वि।।३।।

सूत्रे ज्ञायमान: भवस्य भवनाशनं च स: करोति।
सूची यथा असूत्रा नश्यति सूत्रेण सह नापि।।३।।

धागा सहित सुइ नहीं खोती रहित उससे नहिं मिले।
संसार में जन्मादि को त्यों सूत्र ज्ञायक नहिं करे।।३।।

अर्थ – **जो पुरुष सूत्र को जाननेवाला है, प्रवीण है, वह संसार में जन्म होने का नाश करता है, जैसे लोह की सूई सूत्र (डोरा) के बिना हो तो नष्ट (गुम) हो जाय और डोरा सहित हो तो नष्ट नहीं हो, यह दृष्टान्त है।।३।।**

भावार्थ – **सूत्र का ज्ञाता हो, वह संसार का नाश करता है, जैसे सूई डोरा सहित हो तो दृष्टिगोचर होकर मिल जावे, कभी भी नष्ट न हो और डोरे के बिना हो तो दीखे नहीं, नष्ट हो जाय; इस प्रकार जानना।।३।।**

गाथा-३ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो सूत्र में प्रवीण है, वह संसार का नाश करता है। तीसरी गाथा। हिन्दी में ५३ पृष्ठ है। गुजराती तो एक ही है, एक ही। यह तीसरी गाथा। हिन्दी है ? गुजराती दो कहाँ से आये ? हें ? इनके पास गुजराती थी ? हाँ! कान्तिभाई... ? किसका ? तीसरी गाथा। **आगे कहते हैं...** अब कहते हैं कि **सूत्र में...** भगवान के कहे हुए आगम का जिसे सच्चा ज्ञान है। प्रवीण अर्थात् सच्चा। भगवान ने नौ तत्त्वों को भिन्न-भिन्न कहा है। नहीं

---

१. सुत्तम्मि। सूत्रहि पाठान्तर षट्पाहुड।

तो नौ तत्त्व नहीं रहते। नौ किसे कहना? – कि अजीव को अजीवरूप से रखे; पुण्य-पाप को आस्रवरूप से रखे; बन्ध को बन्धरूप से रखे; संवर को संवर; (निर्जरा को) निर्जरारूप से भिन्न रखे और आत्मा को उसका आश्रय करके संवर-निर्जरा हो तो उस आत्मा को भिन्न रखे।

मुमुक्षु - पुण्य से संवर नहीं होता?

पूज्य गुरुदेवश्री – पुण्य से, राग से संवर होगा? पुण्य तो राग है। बहुत कठिन। अभी यह बड़ी गड़बड़ चलती है न! शुभभाव की क्रिया, वह धर्म, बस! पाप से बचने के लिये वह धर्म। तब पुण्य क्या? पुण्य, वह धर्म और पाप, वह पाप, तो पुण्य किसे कहना? धर्म अलग चीज़ है, पुण्य अलग चीज़ है, पाप अलग चीज़ है। धर्म, संवर-निर्जरा है। वह आत्मा के आनन्दस्वरूप का आश्रय लेकर शुद्धता प्रगट करे, वीतरागता प्रगट करे, उसे संवर-निर्जरा कहते हैं और राग का भाग है, वह आस्रवतत्त्व, पुण्यतत्त्व है और अशुभभाव है, वह पाप है। इसलिए पाप अलग, पुण्य अलग और धर्म अलग। तीनों चीज़ें भिन्न हैं। यहाँ तो (अज्ञानी ने) पुण्य को धर्म माना है। भोगीलालभाई! पुण्य को धर्म माना है।

मुमुक्षु - मनवाया है, क्या करें हम?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु माना इसने न? मणिलालभाई! भाई ने नहीं कहा? देवचन्दजी ने। तपगच्छ में देवचन्दजी हुए न? 'द्रव्यक्रिया रुचि जीवड़ा ने भावधर्म रुचि हीन...' भगवान की स्तुति की है। 'चन्द्रानन' भगवान। बीस भगवान बिराजते हैं। 'द्रव्यक्रिया रुचि जीवड़ा जी, भावधर्म रुचि हीन, उपदेशक भी तेहवा जी, शु करे जीव नवीन रे... चन्द्रानन जिन सांभलीए अरदास।' बीस तीर्थंकर है न? उनमें 'चन्द्रानन' भगवान बिराजते हैं। महाविदेह में अभी बीसों बिराजते हैं। जागती ज्योत जीवन्त है। 'द्रव्य क्रिया रुचि जीवड़ा...' दया, दान, व्रत, तप जो पुण्यभाव, वह द्रव्यक्रिया है। 'भावधर्म रुचि हीन...' परन्तु राग की क्रिया से भिन्न शुद्धस्वभाव है, उसकी रुचि की दृष्टि से जीव हीन पड़ गये हैं, प्रभु! तेरा पड़ा विरह भरतक्षेत्र में और बाद में ऐसे पके। 'उपदेशक भी तेहवा जी..' उपदेशक भी ऐसे निकले कि इसे पुण्य से धर्म मनाया। प्रभु! 'शु करे जीव नवीन...' यह नया अपूर्व धर्म सम्यग्दर्शन कहाँ से करे? आहाहा!

यह तो इसके हित की बात है, हों! आहा! इसके हित की बात है। आहाहा! बापू! भाई! तूने तेरा हित कैसे हो, इस बात को तूने दृष्टि में नहीं लिया। मान बैठा है कुछ हित करता हूँ। परन्तु हित का रास्ता क्या है, इसकी तुझे खबर नहीं है। आहाहा! अन्दर की सँभाल किये बिना, इन पुण्य-पाप के विकल्प की उपेक्षा करके, स्वभाव अखण्डानन्द प्रभु चैतन्य की अपेक्षा का आश्रय लेकर स्पर्शे, उसे जो रागदशा रही, वीतरागी पर्याय सम्यग्दर्शन हो, वह मार्ग सर्वज्ञ का है। इन सर्वज्ञ ने कहे हुए शास्त्रों का वह ज्ञान है। आहा! इसके बिना सब ज्ञान पढ़े, वह सब एकड़े बिना के शून्य है।

अर्थ – **जो पुरुष सूत्र को जाननेवाला है, प्रवीण है,...** देखो अर्थ! **वह संसार में जन्म होने का नाश करता है,...** देखो! जहाँ आत्मा का ज्ञान हुआ, भगवान कहते हैं वैसा। अर्थात् कि राग और पुण्य के परिणाम से भिन्न भगवान, ऐसे आत्मा का ज्ञान हुआ, उसे प्रवीण पुरुष कहा जाता है। उसे प्रवीण और पण्डित कहा जाता है। बाकी सब अप्रवीण और अपण्डित है। समझ में आया? **वह संसार में जन्म होने का नाश करता है,...** क्योंकि भगवान की वाणी में जो आया था। विकारी परिणाम का अभाव करना और निर्विकारी स्वभाव की प्रगट जागृति करना। आहा! भारी परन्तु बात कठिन! लोगों को अभ्यास नहीं और सुनने को नहीं मिलता और नीचे से बाहर से कुछ मिल जायेगा (–ऐसा मान बैठे)। अनन्त काल से यह अटका हे और इस अटकने के कारण यह भटका है।

भगवान आत्मा.. कहते हैं कि रागरहित ऐसा जो आत्मा का ज्ञान, ऐसे ज्ञान से **संसार में जन्म होने का नाश करता है,...** उसे संसार में उत्पन्न होने का नाश हो जाता है। श्रेणिक राजा, भरत चक्रवर्ती इत्यादि लो। भरत चक्रवर्ती छह खण्ड के राज्य में थे, छियानवें हजार स्त्रियाँ थीं, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान था। ८३ लाख पूर्व के पाप का भाव अन्तर्मुहूर्त में नष्ट करके केवलज्ञान को प्राप्त हुए। समझ में आया? क्योंकि सम्यग्दर्शन और ज्ञान के जोर में उन्हें आसक्ति थोड़ी हो, उसका पाप भी थोड़ा बँधता है। और जिसे आसक्ति है, उसे उसके साथ पर की रुचि है, उसे तो मिथ्यात्व का महापाप लगता है।

जैसे लोह की सूई सूत्र (डोरा) के बिना हो तो नष्ट (गुम) हो जाय... यह दृष्टान्त तो याद रहेगा। भोगीलालभाई! आज सुनने आये तो यह दृष्टान्त तो याद रहेगा न?

सुई का। सुई डोरारहित हो, वह खो जाएगी और डोरासहित होगी तो नष्ट नहीं होगी। **यह दृष्टान्त है।** है ? आहाहा! इसी प्रकार जिसे आत्मा का...

मुमुक्षु : मूल गाथा में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल गाथा है न। भगवान आत्मा का ज्ञान हो, अर्थात् कि पुण्य-पाप के विकल्प का ज्ञान हो, परन्तु वे मुझमें नहीं हैं - ऐसा ज्ञान होता है। और अज्ञान में तो वे पुण्य-पाप भाव मेरे हैं, ऐसा जो ज्ञान, वह अज्ञान है। भगवान की वाणी में ऐसा नहीं आया था और इसने माना है। समझ में आया ? आहाहा!

नष्ट नहीं हो, यह दृष्टान्त है। लो! सुई डोरा सहित हो, वह खोती नहीं है और डोरारहित सुई नाश को पाती है, खो जाती है, हाथ नहीं आती। इसी प्रकार भगवान ने कहा हुआ सम्यग्ज्ञान, चैतन्य का भेदज्ञान। राग और पुण्य और शरीर से भिन्न ऐसा जो आत्मा का भेदज्ञान, वह जिसे होता है, वह संसार में नहीं रहता। चाहे जहाँ जायेगा, गति में से निकलकर क्रम से मोक्षमार्ग प्राप्त कर जाएगा। लो, अधिकार (पूरा) हुआ। घण्टे भर में पूरा हुआ। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-२३, गाथा-३-४, बुधवार, ज्येष्ठ कृष्ण १३, दिनांक ०१-०७-१९७०

सूत्रपाहुड की तीसरी गाथा का भावार्थ। **सूत्र का ज्ञाता हो, वह संसार का नाश करता है,...** अर्थात् क्या ? यह तो शब्द हुआ। **सूत्र का ज्ञाता हो, वह संसार का नाश करता है, जैसे सूई डोरासहित हो तो दृष्टिगोचर होकर मिल जावे,...** देखे। **कभी भी नष्ट न हो और डोरे के बिना हो तो दीखे नहीं, नष्ट हो जाय; इस प्रकार जानना।** सुई का दृष्टान्त (दिया है)। यदि सुई में डोरा पिरोया हुआ हो तो खो नहीं जाती। चाहे जहाँ से भी उसे हाथ (आ जाती है)। प्राप्त कर सकता है, परन्तु डोरारहित सुई तो खो जाती है।

इसी प्रकार यह आत्मा, भगवान सर्वज्ञ तीर्थंकरदेव ने कहा हुआ। शास्त्र में उन्होंने आत्मा को कहा, ऐसे यदि इसे ज्ञान में आवे। कैसा कहा ? यह बात पहले आ गयी है और

बाद में भी आयेगी। यह आत्मा तो देह की मिट्टी–रजकणों से भिन्न चीज़ है। वे तो जड़तत्त्व हैं, वे तो अजीवतत्त्व हैं। चैतन्यतत्त्व का अन्दर भिन्न स्वरूप है।

मुमुक्षु - वह तो मर जाए, तब न?

पूज्य गुरुदेवश्री - अभी। मर जाए कहाँ? मरे कौन? मरे कौन? जड़ मरे? चैतन्य मरे? मरे कौन? रूपान्तर होता है।

यहाँ परमात्मा तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी परमात्मा ने जो आत्मा देखा, ऐसा भगवान ने वाणी में कहा। उस वाणी को यहाँ सूत्र कहा जाता है। उस सूत्र का जो जाननेवाला हो, वह जाननेवाला किस प्रकार यह कहेंगे। चौथी गाथा में कहेंगे कि अपना आत्मा शरीर, अन्दर कर्म से है, उनसे भिन्न है। है भिन्न। और दया, दान, व्रत, काम–क्रोध के शुभ–अशुभभाव होते हैं, वह विकार है, उनसे भी भिन्न है। ऐसे आत्मा का अन्तर में स्व–प्रत्यक्ष स्वयं से संवेदन हो, ज्ञान में राग से रहित यह आत्मा आनन्दस्वरूप है, ऐसा जिसे ज्ञान हो, वह ज्ञान का धारक संसार में भटकता नहीं है। जिसे ऐसा ज्ञान नहीं है, वह चार गति में चौरासी के अवतार में भटकता और मरता है। समझ में आया? यह कहते हैं।

सूत्र के ज्ञाता। भगवान ने–परमेश्वर ने जो कुछ वाणी में आया, कहा, उसे सूत्र कहते हैं, आगम कहते हैं। **वह संसार का नाश करता है,..** उसे जाने। उसमें जाननेवाले अर्थात् कि आत्मा का वह जाननेवाला होता है। मैं तो एक आत्मा अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति का भरपूर स्वभाववाला मैं आत्मा हूँ। मैं आत्मा, ये पुण्य–पाप के विकल्प–भाव हों, उनमें मैं नहीं आता और वह हूँ मैं नहीं। समझ में आया? ऐसा ज्ञान जिसे हो, वह ज्ञानी कहलाता है और वह आत्मा कहलाता है और धर्मी कहलाता है।

मुमुक्षु - उसने सूत्र पढ़ा कहलाता है?

पूज्य गुरुदेवश्री - उसने सूत्र पढ़ा कहलाता है। सेठी! आहाहा! यह बाद में कहेंगे। इसका स्पष्टीकरण चौथी (गाथा में करेंगे)।

यहाँ तो सूत्र का जाननेवाला अर्थात् सूत्र में कहा, ऐसा आत्मा का जाननेवाला। वह संसार का नाश करता है। विकार जो भाव मिथ्यात्व और अज्ञान और राग–द्वेष भाव है, उसकी दशा में। उस स्वरूप का ज्ञान करने पर उसके राग–द्वेष और अज्ञान का नाश होता

है। उनके नाश होने पर उसका संसार नहीं रहता। सूक्ष्म बात है, भाई! यह सब बाहर के पठन-वठन कहलाते हैं, यह वकालात का; रामजीभाई का और इन डॉक्टर का दवाखाना, वह सब शून्य है, कहते हैं। ऐई! समझ में आया? वह ज्ञान तो लौकिक और कुविद्या है। डॉक्टर!

भगवान तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी प्रभु परमेश्वर उसे ज्ञान कहते हैं, भाई! तू अन्दर चैतन्य वस्तु है न? चैतन्यज्ञान का पिण्ड है। अन्तर में तेरे स्वभाव में तो ज्ञान के साथ आनन्द रहा हुआ है। यह तुझे ज्ञान और आनन्द के स्वभाववाला आत्मा है, उसका तुझे ज्ञान नहीं; इसलिए तूने पर के ज्ञान में मैं हूँ - ऐसा माना है। रागवाला मैं हूँ, पुण्यवाला मैं हूँ, शरीरवाला मैं हूँ, कर्मवाला मैं हूँ, यह बाहर की कोई पदवी पाँच-दस हजार का वेतन की मिले, ऐसा मैं हूँ, यह सब मिथ्या भ्रमभाव है। सेठी! आहाहा!

मुमुक्षु - लड़कों को क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री - लड़कों को यह करना? कहाँ गया? ऐई! क्या करना लड़कों को (-ऐसा) पूछते हैं रामजीभाई!

मुमुक्षु - यही काम करना।

पूज्य गुरुदेवश्री - अच्छा! यही काम करना। ऐई! भाषा स्पष्ट बोलता है, हिन्दी भी...

मुमुक्षु - स्पष्ट और मीठी।

पूज्य गुरुदेवश्री - मीठी। लो! हमारे वजुभाई कहते हैं। यही काम करना। काम क्या? काम दूसरा क्या? जड़ का काम कर सकते हैं? शरीर, वाणी, मन तो जड़-मिट्टी है, धूल है। जड़ का काम जड़ से होता है। आत्मा से होता है? यह हिलना, चलना, बोलना- यह आत्मा का काम है? यह तो जड़ का काम है। इसका (आत्मा का) काम तो या तो अज्ञानरूप से राग-द्वेष और शरीर मैं - ऐसा मानना, वह अज्ञान का काम है तथा ज्ञान का काम यह है कि राग और द्वेष के विकल्पों से-वृत्तियों से भिन्न भगवान निर्मलानन्द प्रभु शुद्ध चैतन्य है। सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने जैसा प्रगट किया, वैसा यह आत्मा अन्दर सर्वज्ञस्वभावी और आनन्दमूर्ति है। आहाहा! समझ में आया? उसे जो जाने, **वह संसार का नाश करता है,...** क्योंकि आत्मा में राग-द्वेष और अज्ञान नहीं है और आत्मा में

आनन्द और ज्ञान है, ऐसा जिसे भान होता है, उसे संसार का भाव नाश हो जाता है।

जैसे सूई डोरा सहित हो... डोरासहित होवे तो। वह सूत कहलाता है न? सूत, सूत कहलाता है न? सुई में सूत पिरोयो। यह सूत्र का ज्ञान, वह सूत। डोरासहित सुई जैसे चिड़िया ले जाए, तो भी माला में से वह डोरा देखकर भी पकड़ ले। अरे! यह अपनी सुई यहाँ है। ऐसे डोरासहित सुई दृष्टिगोचर होती है - ऐसा कहते हैं। ख्याल में आ जाती है कि यह डोरा अपना है। देखो! यह लाल डोरा पिरोया है, वह है।

कभी भी नष्ट न हो... वह सुई नहीं खोती। **डोरे के बिना हो तो दीखे नहीं,...** इसी प्रकार सम्यग्ज्ञान होवे तो आत्मा दिखे। सम्यग्ज्ञान बिना आत्मा दिखता नहीं और उसे संसार का नाश होता नहीं। इसे विशेष कहते हैं। इतना ज्ञाता का कहा। अब ज्ञाता की व्याख्या करते हैं।

गाथा-४

आगे सूई के दृष्टान्त का दार्ष्टान्त कहते हैं -

पुरिसो वि जो ससुत्तो ण विणांसइ सो गओ वि संसारे।
सच्वेदण पच्चक्खं णासदि तं सो अदिस्समाणो वि।।४।।

पुरुषोऽपि यः ससूत्रः न विनश्यति स गतोऽपि संसारे।
सच्चेतनप्रत्यक्षेण नाशयति तं सः अदृश्यमानोऽपि।।४।।

भव में रहे पर सूत्र-युत जो जीव वह खोता नहीं।
वह स्वानुभव प्रत्यक्ष से भव मेटता अदृश्य भी।।४।।

_अर्थ_ - जैसे सूत्रसहित सूई नष्ट नहीं होती है, वैसे ही जो पुरुष संसार में गत हो रहा है, अपना रूप अपने दृष्टिगोचर नहीं है तो भी वह सूत्रसहित हो (सूत्र का ज्ञाता हो) तो उसके आत्मा सत्तारूप चैतन्य-चमत्कारमयी स्वसंवेदन से प्रत्यक्ष अनुभव में आता

है, इसलिए गत नहीं है, नष्ट नहीं हुआ है, वह जिस संसार में गत है, उस संसार का नाश करता है।

***भावार्थ* – यद्यपि आत्मा इन्द्रियगोचर नहीं है तो भी सूत्र के ज्ञाता के स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से अनुभवगोचर है, वह सूत्र का ज्ञाता संसार का नाश करता है, आप प्रकट होता है, इसलिए सूई का दृष्टान्त युक्त है।।४।।**

गाथा-४ पर प्रवचन

आगे सुई के दृष्टान्त का दार्ष्टान्त कहते हैं :-

चौथी गाथा।

पुरिसो वि जो ससुत्तो ण विणांसइ सो गओ वि संसारे।
सच्चेदण पच्चक्खं णासदि तं सो अदिस्समाणो वि।।४।।

बहुत सरस गाथा है, देखो!

अर्थ – जैसे सूत्रसहित सूई नष्ट नहीं होती है... डोरासहित की सुई नष्ट नहीं होती। **वैसे ही जो पुरुष भी...** पुरुष अर्थात् आत्मा। आत्मा भी **संसार में गत हो रहा है,...** अज्ञान और राग-द्वेष में भटक रहा है। अनादि से अपने स्वरूप की इसे खबर नहीं है कि मैं कौन हूँ? मेरी जाति में क्या है? ऐसे अज्ञान और राग-द्वेषरूपी संसार में यह गत है, भटक रहा है। समझ में आया? **अपना रूप अपने दृष्टिगोचर नहीं है...** पुण्य-पाप-राग, शरीर-वाणी यह सब इसे दिखता है, परन्तु इसे देखनेवाला नहीं दिखता। समझ में आया?

अनादि संसार में यह प्रभु चैतन्यस्वरूप सच्चिदानन्द मूर्ति यह है। कौन जाने, क्या खबर पड़े, कहाँ होगा? सत् शाश्वत् वस्तु है और उसमें चिद्-ज्ञान, ज्ञान और आनन्द ऐसा इसकी चीज़ का स्वरूप और स्वभाव है। यह जीव अपने स्वरूप के भान बिना अपने अज्ञान से राग-द्वेष, शरीर-वाणी-मन, वह मैं; उनमें मैं; वे मेरे (-ऐसा मानता है)। जिनसे लाभ माने, उन्हें 'मेरा' माने बिना नहीं रहता। समझ में आया? आहाहा! शरीर से मुझे ठीक पड़ता है; पाप के परिणाम में मुझे मजा पड़ता है; पुण्य के परिणाम से मुझे ठीक पड़ता है,

ये सब जिसे ठीक पड़ते हैं, पर से अपने को मानता है, वह 'पर अपना स्वरूप है' - ऐसा वह मानता है। समझ में आया? यह दया, दान और व्रत, भक्ति के परिणाम शुभ हैं, वह पुण्य है। उनसे लाभ माने, वह पुण्य परिणाम को अपना मानता है। अपने नहीं, उन्हें अपने मानता है।

मुमुक्षु - तीर्थंकरदेव....।

पूज्य गुरुदेवश्री - तीर्थंकर से कहाँ होता है? यह तो बाहर का पद मिले। केवलज्ञानपना अपने पवित्र पद से मिलता है। समझ में आया?

जो पुरुष संसार में गत हो रहा है,... अहो! संसार नरक और निगोद, एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय के भव है न? उनमें रहा है, उनमें एकमेक हो गया है। शरीर मैं; राग मैं; पुण्य मैं; पाप मैं—ऐसी संसार की दशा में परिणम रहा है। **अपना रूप अपने दृष्टिगोचर नहीं है...** इससे उसे संसार अर्थात् अज्ञानभाव में और राग-द्वेष के भाव में स्वयं नहीं है, वहाँ स्वयं रहा है - ऐसा माना है। इसलिए उसे आत्मा राग से रहित दृष्टिगोचर नहीं होता। मुकुन्दभाई! आहाहा!

तो भी वह सूत्रसहित हो (सूत्र का ज्ञाता हो)... परन्तु यदि भगवान के कहे हुए शास्त्रों में कथित आत्मा का यदि इसे ज्ञान हो **तो उसके आत्मा सत्तारूप चैतन्य...** क्या कहते हैं? इस आत्मा का अस्तित्व, सत्ता अर्थात् होनापना। मैं एक अस्तित्ववाली चीज़ हूँ, सत्तावाली चीज़ हूँ। सत् हूँ। कैसा सत् हूँ? - कि **चैतन्य चमत्कारमयी स्वसंवेदन से प्रत्यक्ष अनुभव में आता है,...** ऐसा मैं हूँ। आहाहा! समझ में आया? सूत्र में ऐसा कहा है, भाई! ऐसा कहा है, ऐसा यह जाने, तब इसे सूत्र का जाननेवाला कहा जाता है। आहा!

कैसा है आत्मा? सत्तारूप है। अस्तित्ववाली चीज़ है। जैसे यह शरीर-वाणी-मन अस्तित्ववाले पदार्थ हैं, सत्तावाली चीज़ है; वैसे आत्मा भी एक सत्तावाली-अस्तित्ववाली-अस्ति एक तत्त्व है कि जो अनादि-अनन्त है और चैतन्यचमत्कारमय है। अब यह कहते हैं, है कैसा? यह तो आत्मा कहा। परन्तु उसका स्वभाव क्या तब? चैतन्य-चमत्कार। जानने-देखने के स्वभाव में तीन काल-तीन लोक को जाने—ऐसा वह चैतन्य-चमत्कार

स्वभाववाला आत्मा है। करे नहीं आत्मा के अतिरिक्त किसी का; जाने बिना रहे नहीं। आत्मा और पर सब जानने में आवे। इस प्रकार (जाने बिना की चीज़) कोई रहे नहीं। जाने बिना रहे - ऐसी कोई चीज़ रही नहीं। ऐसा आत्मा चैतन्य चमत्कारमय वस्तु है। चिमनभाई! सूक्ष्म बहुत है, हों! परन्तु दरकार ही नहीं।

यह देह.. आहा! चली जाती है देह। छोटी-छोटी उम्र के लोगों को देखो न, मरकर चले (जाते हैं) बेचारे। उम्र किसे कहना, बापू! तू तो अनादि-अनन्त है, भाई! यह तो सब मिट्टी के पुतले जड़ के हैं, धूल के हैं। यह तो धूल है। आहाहा! इसे अपना माना है, इससे इसे अपनी चीज़ देखने में-नजर में नहीं आती।

दूसरी प्रकार से, इसे पुण्य और पाप के भाव होते हैं न? शुभ-अशुभभाव। ऐसा चैतन्यसत्तावाला यह नहीं है। चैतन्य तो, राग और द्वेष के भाव हों, उन्हें जानने के स्वभाववाला है। उनके भाववाला नहीं।

फिर से, आहाहा! यहाँ सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा ने त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने, जिन्हें तीन काल-तीन लोक का ज्ञान हुआ, उन भगवान ने चैतन्य सत्तामय आत्मा को देखा। ऐसा चैतन्य सत्तावाला चमत्कारमय और वह भी स्वसंवेदन से अनुभव में आवे ऐसा। आहाहा!

मुमुक्षु - सूत्र में ऐसा कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री - सूत्र में ऐसा कहा है कि तू ऐसा है। आहाहा! समझ में आया?

सिद्धान्त में, आगम में, परमागम में भगवान ने ऐसा कहा कि भाई! तू आत्मा है। वह आत्मा सत्तावाली-अस्तित्ववाली-अस्ति तत्त्वस्वरूप है। उसका अस्तित्व कब नहीं होगा? है, वह आदिरहित है; है, वह अन्तरहित तत्त्व तू अनादि-अनन्त है। आहाहा! और तब उसमें क्या स्वभाव है? वह तो चैतन्यचमत्कार है। जो तीन काल-तीन लोक को जाने, तो भी वह तीन काल-तीन लोक को जानने पर भी पर को अपना न माने।

मुमुक्षु - जानने पर भी?

पूज्य गुरुदेवश्री - जानने पर भी पर को अपना न माने। अरे! धर्म कैसे होता है, इसकी खबर नहीं होती। हॉंके रखे गाड़ा (विपरीत भाव बनाये रखे) ऐसा होता है और ऐसा

होता है और ऐसा होता है। बापू! धर्म तो कोई अपूर्व चीज़ है। आहाहा! जन्म-मरण का अन्त लाने की (चीज़) है। यही कहते हैं न? देखो न! **इसलिए गत नहीं है,...** ऐसा जिसे भान हो, वह संसार में नहीं रह सकता। संसार का नाश करके मोक्ष की पदवी प्राप्त करेगा।

फिर से, कहते हैं, भगवान की वाणी में सूत्र आये। और उन सूत्र को जिसने जाना, उसमें—भगवान की वाणी में आत्मा कैसा कहने में आया? एक तो, आत्मा एक चीज़ है – ऐसा कहने में आया। किसी ने उसे उत्पन्न किया है, कोई उसका कर्ता है, तथा नहीं था और चीज़ हुई है – ऐसा नहीं है। जो होता है, वह कभी नहीं होगा – ऐसा नहीं बन सकता तथा जो है, उसे कोई करे तो रहे – ऐसा नहीं है। वह तो अनादि की है, है और है। वह वस्तु-चीज़ सत्ता अनादि की है। है क्या? तब उसका स्वरूप क्या? चैतन्य चमत्कार। जानना-देखना—ऐसी चमत्कारी चीज़ है। काल अल्प और जाने तीन काल के सब पदार्थों को, ऐसी वह चैतन्य-चमत्कारी चीज़ है। समझ में आया? वह जानने के कार्य को करे – ऐसा वह आत्मा है। पर के कार्य करे और राग-द्वेष के कार्य को करे – ऐसा वह नहीं है। राग-द्वेष, शरीर आदि को, तीन काल को जानने पर भी, वे मेरे हैं – ऐसा न माने, ऐसी चैतन्य चमत्कार चीज़ है।

अल्प काल में, अपने स्वक्षेत्र में रहा होने पर भी, अल्प काल में सब क्षेत्र की बात, तीन काल की बात और सब अपने अतिरिक्त के, एक अतिरिक्त के अनन्त पदार्थों का भाव वह अपने क्षेत्र में और अपनी ज्ञानदशा में रहा होने पर भी जाने—ऐसा वह चैतन्य चमत्कारी चीज़ है। समझ में आया? तो भी उन सब अनन्त द्रव्यों को, अनन्त क्षेत्र को, तीन काल को, अनन्त गुणों आदि को धरनेवाली परवस्तु को ज्ञान में यह जाने – ऐसी चैतन्य चमत्कार चीज़ है। इसमें यह चमत्कार है, कहते हैं। आहाहा! अल्प काल में, अल्प क्षेत्र में रहने पर भी महाक्षेत्र को और तीन काल को एक द्रव्य सिवाय दूसरे अनन्त-अनन्त द्रव्यों को भी जिसका जानने का चैतन्य चमत्कार स्वभाव है। अरे! गजब बात! कहो, ...भाई! करने का कुछ नहीं, हों! कोई कर नहीं सकता। यह वाणी-बाणी बोले, वह सब जड़ की क्रिया है – ऐसा कहते हैं। वह तो अजीवतत्त्व है।

मुमुक्षु – डाक्टर इंजेक्शन देता है।

पूज्य गुरुदेवश्री – इंजेक्शन किसी को दे सकता नहीं। जाने और या अभिमान करे कि मैं देता हूँ। दो बात। इसके अतिरिक्त तीसरी बात नहीं। समझ में आया? रामजीभाई वहाँ बहुत करते थे। वकालात में, ३० वर्ष पहले कोर्ट में जाते थे न!

मुमुक्षु – कौन करे? आप तो निषेध करते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री – कहते थे कि ऐसा होता है। जज को भी एक बार पानी भरावे। ऐसा कोई कहता था। तीस वर्ष पहले पाँच घण्टे के दो सौ रुपये लेते थे। ग्यारह से पाँच घण्टे कोर्ट में रहे तो दो सौ रुपये (लेते थे)। एक दिन के पाँच घण्टे के दो सौ रुपये लेते थे वकील। समझ में आया? एक व्यक्ति एकान्त में कहता था, रामजीभाई नहीं थे तब। यह तुम्हारे रामजीभाई जज को पानी भरावे। भरी दोपहरी तारे दिखाते हैं। वह ज्ञान सब कुज्ञान था। ऐ... सेठी!

मुमुक्षु – मेहनत करके....

पूज्य गुरुदेवश्री – मेहनत क्या की उसने? अभिमान किया है। मैं वाणी बोलता हूँ, मैं दूसरों को जिताता हूँ। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, उन सब चीज़ों को अल्प काल में अपने स्व-अस्ति में रहकर, पर को स्पर्श किये बिना जानना पूरा करे, पूरा करे – ऐसी चैतन्य चमत्कारी सत्तावाली यह चीज़ है। आहाहा! अरे! इसने स्वयं कौन है – इसकी नजर कभी की नहीं। मर गया पर में कर-करके हैरान हो गया चौरासी के अवतार में। बड़ा मानधाता हो, दस-दस हजार और पचास हजार और लाख-लाख का वेतन महीने में मिलता हो। ऐई... इसका... कितना था? प्रतिदिन का दस हजार पैदा करता है। इसका लड़का। मलूकचन्दभाई का। दस हजार, एक दिन का दस हजार। इसके पास दो-तीन करोड़ रुपये है न! मुम्बई में है। पूनमचन्द मलूकचन्द। वह इनका लड़का है। एक भटकता है वहाँ स्वीट्जरलैण्ड। दो करोड़ रुपये उसके पास है और इसके पास तीन करोड़ हैं। इनके दो लड़के हैं। दु:खी है, कहते हैं।

मुमुक्षु – रुपये हुए, इसलिए दु:खी?

पूज्य गुरुदेवश्री – नहीं। वे मेरे हैं, मैं कमाता हूँ और कमाने से पैसा मिले, इसलिए

मुझे ठीक पड़ता है, ऐसी मान्यता से अज्ञान से वह दुःखी है। समझ में आया? क्योंकि जो परचीज़ है, वह मुझसे आती है, यह बात मिथ्या है। यह तो मेहनत की, किसने कहा? मेहनत बहुत की न। सेठी ने कहा। सेठी ने हीरा, माणेक के धन्धे में मेहनत की थी न! धूल भी नहीं की थी, सुन न! यहाँ कहते हैं। सेठी! विकल्प किया था। ऐसा करूँ, यह करूँ, वृत्ति.. वृत्ति की थी। परचीज़ का कुछ भी (नहीं कर सकता) क्योंकि परचीज़ की सत्ता, अस्तित्ववाली परचीज़ स्वयं से अस्तिवाली वह चीज़ है। तो परचीज़ जो अस्तित्ववाली उससे है, तो उसका बदलना और उसमें पलटना और उसका कार्य उससे होता है, तो भी अज्ञानी स्वयं जाननेवाला सबका है।

चैतन्य चमत्कारमात्र वस्तु कहते हैं। थोड़े क्षेत्र में, थोड़े काल में सब क्षेत्र को, सब काल को एक सिवाय अनन्त द्रव्यों को (जान ले)। स्वयं को भी साथ जाने। समझ में आया? परन्तु यह तो चमत्कार कहना है न! अनन्त द्रव्य! अनन्त आत्माओं, अनन्त परमाणुओं, अनन्त क्षेत्र-आकाश। यह लोक चौदह ब्रह्माण्ड भगवान ने देखा है। उसमें जीव और जड़ (रहे हुए हैं)। इसके अतिरिक्त खाली भाग है। खाली.. खाली.. खाली.. खाली.. खाली.. उस खाली का कहीं अन्त नहीं। जिसे भगवान आकाश कहते हैं। उसका -आकाश का कहीं अन्त नहीं है। ऐसे का ऐसे चलता जाए, चलता जाए... नहीं, नहीं कहो तो बाद में क्या? ऐसे अनन्त आकाश को चैतन्य अपने स्वकाल में अथवा स्वक्षेत्र में अल्प काल में जानने के स्वभाववाला चैतन्य चमत्कार है। किसी चीज़ को स्पर्श किये बिना और उसे किये बिना, उसे स्पर्श किये बिना अपने में जानने का स्वभाव है, ऐसा आत्मा है। आहाहा! परन्तु खबर नहीं होती। स्वयं की खबर नहीं होती। वर रहित बारात जोड़ दी है। आहाहा!

भाई! परमेश्वर कहते हैं, पाठ में है न? '**सच्चेदणपच्चक्खं**' एक शब्द रखा है। आहा! क्या कहते हैं? **प्रत्यक्ष अनुभव में आता है,...** देखो! क्या कहते हैं? जो चैतन्य चमत्कारमय वस्तु है, राग और द्वेष होने पर भी; शरीर, वाणी आदि अनन्त पदार्थ होने पर भी, उनके अस्तित्व को स्पर्श किये बिना, अपने अस्तित्व में उनका और अपना चैतन्य चमत्कारी ज्ञान करनेवाला वह अपने स्वसंवेदन से पर की अपेक्षा रखे बिना पर को जाने, तो पर है, इसलिए जानता है, ऐसी अपेक्षा किये बिना स्वयं स्वयं से प्रत्यक्ष अनुभव में

आये, ऐसा यह आत्मा है। और ऐसा ज्ञान हो, **इसलिए गत नहीं है,...** अब वह संसार में भटकेगा नहीं। उसे एक-दो भव में अन्त आ जाएगा। मुक्ति पायेगा, सिद्ध होगा। समझ में आया ? कहो, प्रकाशदादाजी ! यह ऐसी बात है। स्वयं साहेब का साहेब है।

कहते हैं अनन्त साहेब सिद्धपरमात्मा हैं, उन्हें भी अपनी ज्ञान की दशा में, उन्हें स्पर्श किये बिना, और वे हैं, इसलिए यहाँ ज्ञान होता है - ऐसा (भी) नहीं। अपना सर्वज्ञ और सर्वदर्शी चैतन्य चमत्कारी स्वभाव है, इसलिए उन सबको जानने के चमत्कारवाला आत्मा है। आहाहा ! समझ में आया ?

कहते हैं, सूत्रसहित हो। सूत्र का ज्ञाता हो। क्योंकि सूत्र में आत्मा को ऐसा कहा है - ऐसा कहते हैं। सिद्धान्त में सर्वज्ञ परमेश्वर ने, तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ भगवान ने ऐसा आत्मा कहा है। केवलज्ञानी प्रभु ने (कहा है)। अनन्त तीर्थंकर हो गये और वर्तमान में महाविदेहक्षेत्र में तीर्थंकर परमेश्वर विराजते हैं। सीमन्धर भगवान (आदि) बीस तीर्थंकर अभी महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। विद्यमान तीर्थंकर कहते हैं न ? विद्यमान, विहरमान, विद्यमान, जीवन्तस्वामी भगवान विराजते हैं। उन भगवान की वाणी में यह आया। इसलिए सूत्र कहो, वाणी कहो।

उस सूत्र में ऐसा आया था, भाई ! हम आत्मा उसे कहते हैं और उसे आत्मा ऐसा है - ऐसा जाने, तब उसने आत्मा जाना कहलाये और ऐसा आत्मा जाने, वह संसार के भाव का नाश किये बिना रहे नहीं। आहाहा ! संसार अर्थात् ? विकारी भाव। संसार कहीं स्त्री-पुत्र, वह संसार नहीं है। आत्मा के स्वरूप का अज्ञान और विपरीत मान्यता, ऐसी जो जीव की दशा का मिथ्यात्व भाव, वह संसार है। परन्तु चैतन्य ऐसा है, चैतन्य चमत्कारी वस्तु हूँ, सबको जानने-देखनेवाला हूँ—ऐसा ज्ञाता-दृष्टा का स्वयं से प्रत्यक्ष होकर अनुभव में आवे, ऐसा है। ऐसा जिसने अनुभव में लिया है, उसे संसार नहीं रहता। अर्थात् संसार की उत्पत्ति का नाश होकर उसे केवलज्ञान आदि की उत्पत्ति होती है, (ध्रुव) तो है। समझ में आया ? आहाहा !

समझ में आये ऐसा है। क्या कहा जाता है, यह तो समझ में आये, ऐसा है न ? भले फिर न बैठे अन्दर... न रहे। परन्तु क्या कहना चाहते हैं, यह तो ख्याल में आवे या नहीं। रमणीकभाई ! दुकान में कहीं मिले, ऐसा नहीं है। बाहर में जाए तो यह बात मिले, ऐसी

(नहीं है)। यह करो, भक्ति करो, पूजा करो, दया पालो और दान करो। परन्तु तू कौन है? कह तो सही! तू कौन है? भूतड़ा लगा है, उसे मिर्ची देकर बुलावे। नलिया में। नलिया होता है न, नलिया? उसमें... कौन है? यह सब मैंने देखा है। हमारे यहाँ एक था। पोस्टमास्टर के यहाँ ऐसा होता था। घर वहाँ नजदीक था। स्वामीनारायण का मन्दिर है, वहाँ... मैं अमुक हूँ – ऐसा बोले। होवे भले खोटा। परन्तु उसे मिर्ची लगे न!

यहाँ तो कहते हैं कि कौन है तू? है कौन तू? शरीरवाला है? शरीर तेरा है? पुण्य-पाप के भाववाला तू है? यह तेरा त्रिकाली स्वरूप है? आहाहा! गजब! मार्ग गजब! परन्तु इसमें करना क्या? यह करना, कहते हैं न! आत्मा स्वयं चैतन्य चमत्कार स्वभावभाववाला स्वभाव, स्वभाववान है। चैतन्य चमत्कार स्वभाववाला यह आत्मा। आत्मा स्वभाववान हुआ और यह चैतन्य चमत्कार स्वभाव हुआ। उस स्वभाव को स्वयं अपने ज्ञान द्वारा (जान सकता है)। क्योंकि राग और विकल्प, यह कोई इसकी चीज़ नहीं है कि उनके द्वारा यह स्वयं ज्ञात हो। स्वयं अपनी ज्ञान की पर्याय-अवस्था-वर्तमान की हालत, पर की अपेक्षा छोड़कर जो प्रत्यक्ष ज्ञानमूर्ति को स्वपर्याय में प्रत्यक्ष करे और अनुभव करे कि यह आत्मा। ऐसा जिसे आत्मा प्रत्यक्ष करे और अनुभव करे कि यह आत्मा। ऐसा जिसे आत्मा का अन्तर ज्ञान हो, (तब) उसकी पर्याय में अज्ञान और राग-द्वेष संसार है, वह नहीं रहता। कहो, समझ में आया? कहो, जादवजीभाई! ऐसा भाव है। आहाहा!

हमारे संसार में रहकर ऐसा करना किस प्रकार? ऐसा कोई कहता है। ऐई! सेठी! यह स्त्री पड़ी है, लड़के पड़े हैं... क्या कहलाता है? हमारे सिर पड़े हैं। क्या (कहते हैं)? भाषा दूसरी कुछ है। पनारे (आश्रित) पड़े हैं। अब उनका क्या करना? हाथ पकड़कर स्त्री लाये, यह लड़के हुए हैं। अब इनका करना क्या हमारे? गौशाला में रखे नहीं जाते और हमारे इन्हें कमाकर खिलाना पड़े। करना क्या? तुम कहते हो कि... ऐ ....भाई! देखो न! इसे भी जाना पड़ता है न? मकान छोड़कर, बापू! क्या करे तू? यह पर है, वह पर तो उसके कारण से टिक रहा है। तू उसे टिकावे तो टिके – ऐसी वह चीज़ नहीं है। समझ में आया?

यहाँ तो ऐसा कहते हैं, उन सब चीज़ों को, तुझमें रहकर, तू तुझे और उन्हें जानने के स्वभाववाला तू है। किसी का कुछ कर दे और किसी से कुछ तुझमें हो – ऐसा स्वभाव तुझमें नहीं है। गजब बात, भाई! समझ में आया? इस शरीर के अनन्त रजकण हैं। अनन्त

हैं। इसके टुकड़े करो तो अनन्त है। यह परमाणु–पॉईन्ट, जो मूल पॉईन्ट है, इसके दो भाग नहीं होते। उसके टुकड़े करते... करते... करते अन्तिम भाग पॉईन्ट रहे, उसे भगवान परमाणु कहते हैं। परम–अणु अर्थात् अन्तिम में अन्तिम छोटा। ऐसे अनन्त रजकण का यह (शरीर) दल है। ऐसे अनन्त रजकणों का दल। समझ में आया ?

एक में आया था। ऐ... तू कौन है ? नाम आया था। किसे तू अपना मानता है ? कुछ आया था। नाम का, हों ! बहुत नाम दिये है, हों ! नाम बहुत दिये हैं। नामावली। आहाहा ! देखो ! नाम है। 'नाम अनेक समीप तू, अंग–अंग सब... जासो तू अपनो के सो भ्रमरूपी ओर।' तू कौन ?... शिष्य तू ?... तू ?.. तू ? वरुणी पलक, नैन, गोलक, कपोल, देह, नासा, मुख,... यह तू ? वे तो जड़ हैं। 'अधर' दो शब्द हैं। 'बैठने की बैठक, दसम, ओथ, रचना, मसूड़ा, तालु, घटिका, चिंबु, कण्ठ, कन्धा, कर... काठ, कटि, भुजा, कर, नाभि... पेट, अंगुली, नाम अंगन के हैं, तामें तू विचार नर तेरा नाम कौन है ?' हमें नाम रखना है, इसके ऊपर से आया है। हमारे नाम रखना है, इतने पैसे देकर। ऐई ! महिलाओं को नाम रखना है न ? उनके लिये... क्या होगा, कौन जाने। नाम रखना है। परन्तु किसका नाम ? – ऐसा यहाँ कहते हैं। इस शरीर के जितने नाम है, वे तेरे हैं ? किसका नाम तुझे रखना है ? आहाहा ! समझ में आया ? रखा है। यह तो सब जड़ के अंग, भाग हैं। उन भाग के नाम तो उनके हैं। उसमें शरीर भी किसे कहना ? और यह भाग कहना, इसे नख कहना, इसे प्रमाण कहना... सब होकर फिर पूरे शरीर को कहे। परन्तु वह चीज़ तो पर है।

उन अनन्त रजकणों को अनन्त अवस्था होनेवाले को तुझमें जानने का चैतन्य चमत्कार, उन्हें छुए किये बिना, स्पर्श किये बिना, उनके सन्मुख देखे बिना जानने का स्वभाव तुझमें है, ऐसा कहते हैं। ऐसा तू है। इसकी तुझे अनन्त काल से खबर नहीं पड़ी। कहो, चिमनभाई ! यह सब बातें बाहर की कैसी करे वहाँ ? मकान ऐसा लेना, अमुक यह लेना... तू कौन ?... बाहर की सब पंचायत की बातें आवे। तू कौन ? इन सबका जाननेवाला... जाननेवाला। वह कितना ? और कौन ? और कहाँ ? और कितना, क्या होगा आत्मा। आहा ! जो हो, वह करो। परन्तु जो हो, वह करो, ऐसा बाहर में वह सही – ऐसा रखता है ? वहाँ तो तू निर्णय करता है कि इसका कैसे है ? कितने हाथ का लम्बा ? कितना मकान करना ? कितने लाख का करना ? सब निश्चित करता है या नहीं ? तू कौन है ? कहाँ है ?

तुझे इसका निर्णय करना है या नहीं ? उसके बिना है, है, है। परन्तु कौन है ? कैसा है ? इसका निर्णय तो कर, ऐसे कहते हैं। आहाहा!

बहुत देखो ने, अधिकार इसमें सूत्र में यह डाला, देखो! **सच्चेदण पच्चक्खं णासदि तं सो अदिस्समाणो वि।** कहते हैं, भले न दिखे, अरूपी है, परन्तु अनुभव में आवे, ऐसा है, क्योंकि तेरा अनुभव पुण्य-पाप के राग, शुभ-अशुभभाव और शरीर मेरा - ऐसा भाव का तुझे अनुभव है। वह संसार, और दुःखरूप और अज्ञान और भ्रम है। अब तेरा अनुभव अर्थात् क्या ? - कि मैं तो चैतन्य चमत्कार हूँ। चमत्कार अर्थात् क्या ? ऐसा स्वभाव ? एक समय में, एक क्षेत्र में अपने में रहकर, परक्षेत्र अनन्त... वह कितना अनन्त ? जिसका अन्त नहीं। काल कितना ? आदि और अन्तरहित जगत का काल, उसे जाननेवाला चैतन्य चमत्कार। वह चमत्कार तेरा यह है। जानने का तेरा स्वभाव, वह चमत्कार है। आहाहा! पर का करना और पर से कुछ लेना, यह तेरा स्वभाव नहीं है। आहाहा!

भारी कठिन परन्तु जगत को। अभ्यास नहीं न, अभ्यास नहीं होता। उस विपरीत अभ्यास में चढ़ गये। यह अभ्यास ही इसने किया नहीं। यह जैनवाड़ा में जन्में हों, उन्हें भी खबर नहीं होती। हम जैन हैं। चलो, बारह महीने में एक यात्रा कर आवें। पालीताणा और पूनम की। धूल भी नहीं वहाँ यात्रा। सुन न! यात्रा तो यहाँ है। वह तो एक शुभभाव है। पुण्य का भाव होता है, पाप से बचने के लिये। इतनी बात है। परन्तु वह कोई धर्म नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? इन लड़कों को अवकाश होता है न ? मैं तो प्रतिदिन सवेरे दिशा जाऊँ न, बहुत मोटरें मिलती हैं। बेचारे पहिचानते हैं, इसलिए खड़ी रखते हैं। जाती होवे न वहाँ ? अवकाश के दिनों में। बहुत लड़के... कहाँ के हो ? अमुक के। कहाँ के हो ? अमुक के। एक वर्ष वहाँ जा आवे, तो हो गया, धर्म किया। धूल में भी धर्म नहीं। सुन न!

तू तो जाननेवाला है। वह क्रिया जड़ की होती है और भगवान की प्रतिमा तथा साक्षात् भगवान, उन्हें तुझमें रहकर तू उन्हें जाननेवाला, उनकी सत्ता की अपेक्षा रखे बिना, ऐसी तेरी चैतन्यसत्ता ज्ञान की ऐसी है। वजुभाई! आहाहा! इसने मारा डाला है। इतना न माना न, उसने जीव को मार डाला है, हिंसा की है, भाई! ऐसा चैतन्य चमत्कारी तत्त्व, कि जिसे अकेला जानना। तीन काल-तीन लोक ख्याल में आवे कि यह तीन काल, ख्याल में आवे कि यह तीन लोक (ऐसा) उसकी दशा में सब ख्याल में आ जाए। परन्तु वह

ख्याल में आने पर भी उसे ऐसा ख्याल मेरा बड़ा है और उसका धारक मैं हूँ, इसकी प्रतीति में नहीं आता। समझ में आया? डॉक्टर है, यह लॉजिक से बात है। ख्याल में आता है न? यह कहीं... की बात नहीं। लॉजिक से-न्याय से है। यह तो वीतराग का—तीर्थंकरदेव का मार्ग है। ऐसे का ऐसे नहीं मानना। समझ कर किस प्रकार वस्तु है, (वह समझना)। समझ में आया?

कहते हैं, गजब गाथा आयी, हों! यह शब्द डालकर **'सच्चेदण पच्चक्खं' 'गओ वि संसारे।'** वह संसार में दिखता नहीं तो भी उसे नाश करेगा। अरूपी है न? कहते हैं। ऐसे प्रत्यक्ष (नहीं दिखता), परन्तु अनुभव में आवे, ऐसा है।

मुमुक्षु - भले दिखायी न दे....

पूज्य गुरुदेवश्री - भले न दिखे तो क्या है? समझे? अपना दर्शन नहीं। संसार में रहता है न, तो भी। परन्तु सूत्रसहित जाने, तब तो दृष्टिगोचर होता है। समझ में आया? आहाहा! देखनेवाला जाने नहीं अपने को और देखनेवाला पर को जानकर सन्तोष होवे, वह तो अज्ञान है, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! न्याय से भी बात समझ में आती है या नहीं? लॉजिक से-न्याय से (कही जाती है)।

मुमुक्षु - राज खोल देता है - ऐसी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री - ऐसी बात है? राज खोल देता है। वस्तु ही ऐसी है। भगवान चैतन्य चमत्कार! इतने में रहा, तथापि पूरे क्षेत्र को, एक समय के ज्ञान में, तथापि तीन काल को (जान लेता है)। आहा! ऐसा जिसका चैतन्य चमत्कार रूप और स्वरूप है, उसे अपने अन्तर वेदन द्वारा इतना बड़ा भगवान है, उसे जब पर्यायदृष्टि टलकर द्रव्य पर दृष्टि जाए तो उसे चैतन्य का प्रत्यक्षपना होता है। उसे संसार का नाश हुए बिना नहीं रहता। आहाहा!

संसार अर्थात् दुःखदशा। उसका नाश होकर आनन्ददशा प्रगटती है, क्योंकि स्वयं सर्व को जाननेवाला है। इससे आनन्द को संग्रहित कर बैठा है। समझ में आया? इसके समाधान के लिये किसी दूसरी चीज़ की आवश्यकता नहीं। कहो, सेठी! आहाहा! यह तो आनन्दस्वरूप है। एक बार दृष्टान्त नहीं दिया था? करोड़पति मनुष्य हो। उसके लड़के को ऐसा कहे कि देख, बेटा! कुछ कमाना नहीं, हों! सट्टा-बट्टा करना नहीं। अपने-अपने

बहुत है। वह कैसे रहे ? बाप का कमाया हुआ बासी खाने की अपेक्षा मैं कुछ नया करूँ न ! ऐसा करते हुए किया सट्टा। दस लाख गँवाये। अब ? देना कहाँ से ? उसके पास नहीं थे। बाप के पास जाए तो बाप इनकार करता था। सत्ताप्रिय व्यक्ति था। उसका बाप अर्थात् सत्ताप्रिय व्यक्ति। जिसने इनकार किया, उससे कैसे माँगना ? मित्र को कहा, भाई ! बापू के पास जा। सवेरे से पहले दस लाख ले आ। सवेरा होते ही मुझे दस लाख देना पड़ेगा। नहीं तो सवेरे मुँह नहीं दिखेगा। गले में फाँसी खाकर मर जाऊँगा। चन्दुभाई ! फिर उसके मित्र को कहा।

मित्र उसके बापूजी के पास गया। बापूजी ! बापूजी ही कहे न मित्र के बाप को ? बापूजी ! भाई ने दस लाख गँवाये हैं। दो-चार गालियाँ दी। एकदम सत्ताप्रिय व्यक्ति। इनकार किया था। सुनो तो सही, बापूजी ! मित्र कहता है। सुनो ! मैं एक बात कहता हूँ। तुम्हारे पास एक करोड़ रुपये हैं या नहीं ? वे करोड़ उसे देने थे या नहीं ? तुम्हें हुए साठ वर्ष; उसे हुए हैं पच्चीस। अब तुम्हें दो भाग करने हैं। उसे करोड़ देने थे न ? वे दस लाख तुम्हारे गये या उसके ? - यह विचार किया है कभी ? दस लाख उसके गये। तुम्हारे कहाँ गये ? तुम्हें तो उसे देने थे। नब्बे लाख। दस लाख उसके गये। बदल डालो न दृष्टि। मेरे हैं - ऐसा मानकर दुःख होता है। इसकी अपेक्षा उसके थे और उसके गये, (ऐसा मानने से) तुम्हें सन्तोष होगा। डॉक्टर ! समझ में आया ? तुम्हें समाधान होगा।

प्रतिकूलता का योग होने पर भी जिस ज्ञान में ऐसा समाधान करने की सामर्थ्य है, दृष्टि बदलने से। मेरा माने, वहाँ दुःख था। यह नहीं, मेरे नहीं, ये तो उसके थे। ऐसे जिस ज्ञान में ऐसी प्रतिकूलता आ पड़ी होने पर भी, आ पड़ने पर भी समाधान करने की सामर्थ्य है। वह अनन्त प्रतिकूलता आवे तो भी समाधान करके आनन्द में रहे - ऐसा उसका स्वभाव है। चिमनभाई ! न्याय समझ में आता है ? लॉजिक से-न्याय क्या है ? आहाहा ! ऐसी उसकी सामर्थ्य है। अनन्त प्रतिकूलता हों, परन्तु वे तो ज्ञेय हैं और मैं तो उनका ज्ञाता हूँ। चैतन्य चमत्कार किसे कहे ? अनन्त प्रतिकूलता, वह तो परज्ञेय है। उन्हें जाननेवाला मैं चैतन्य चमत्कार हूँ। प्रतिकूल है - ऐसा मानना मेरे स्वभाव में नहीं है। वह चीज़ ज्ञेय है और मैं ज्ञान हूँ - ऐसा मेरा स्वभाव है। समझ में आया ?

अरे ! इस लड़के को बड़ा किया। पचास हजार, लाख-दो लाख खर्च किये और

अन्त में विवाह करके पत्नी को लेकर अलग होकर अमेरिका चला जाता है। तब हमारे क्या करना ? ऐई.. ! परन्तु माना तूने था न ? – कि यह मेरा है। तेरा नहीं – ऐसा मान न ! वह तो उसकी स्वतन्त्रता से उसकी पर्याय का कार्य वह करेगा। तूने सब पढ़ाया और दो लाख खर्च किये, इसलिए अब उसे (कमाकर) देगा, ऐसा है ? हिम्मतभाई ! गया है न ? भेजा है न ? लड़कों को बहुत दिये। पच्चीस-तीस हजार खर्च किये। वहाँ अमेरिका गया है न ! वह आयेगा। इकट्ठा करके आवे न। इतने अधिक खर्च किसलिए किये ? पागल है न ?

कहते हैं, परन्तु तेरा स्वभाव, वह जावे और आवे, उसे जानना – ऐसा तेरा स्वभाव है। देना और लेना और मेरा गया, मुझे आया – ऐसा तेरे स्वभाव में है नहीं। आहाहा ! मगनभाई ! न्याय समझ में आता है कुछ ? न्याय में 'नि' धातु है और 'नि' अर्थात् जैसे स्वरूप है, वैसा ज्ञान को ले जाना, इसका नाम न्याय है। समझ में आया ?

कहते हैं, आहाहा ! भाषा देखो न ! चैतन्य चमत्कार ! अर्थ में ऐसा रखा है न ? **'सच्चेण'** की व्याख्या की और **'पच्चक्खं'** की व्याख्या, दो की की है। भाई ! सचेतन की व्याख्या चमत्कार किया। प्रत्यक्ष की व्याख्या अनुभव किया। भाई ! तू चैतन्य है न ? कितना ? तीन काल-तीन लोक को जाने इतना। यह सचेतन। समझ में आया ? और कितना ? पर की अपेक्षा रखे बिना तुझे तू सीधा जाने इतना और ऐसा। आहाहा ! गजब बात ! देखो न ! एक **'सच्चेण'** और **'पच्चक्खं'**, इन दो शब्दों में इतना समाहित है। यह गागर में सागर भरा है। यह कहीं कथा-वार्ता नहीं है। यह तो तत्त्व है।

कैसा है तू ? ऐसा कहा न ? **'पुरिसो वि जो ससुत्तो, ण विणासइ सो गओ वि संसारे।'** क्यों ? **'सच्चेणपच्चक्खं'।** इसलिए संसार का नाश करके। संसार की दशा में, अज्ञान में दिखता नहीं, उस चैतन्य चमत्कार की दृष्टि होने पर तुझे दिखेगा। मैं भगवान आत्मा चैतन्य चमत्कार मूर्ति हूँ। समझ में आया ? **सत्तारूप चैतन्य चमत्कारमयी स्वसंवेदन से प्रत्यक्ष अनुभव में आता है, इसलिए गत नहीं है, नष्ट नहीं हुआ है,...** ऐसा जहाँ सम्यग्ज्ञान होवे, उसे ज्ञान में तैरता रहता है कि मैं और पर दोनों भिन्न। ऐसा हेय और अहेय का ज्ञान अर्थात् आत्मा ऐसा स्वभाव, वह उपादेय है; रागादि सब, वे हेय हैं, ऐसा जिसे ज्ञान वर्तता है, वह अब संसार में नष्ट नहीं होगा, वह अब भटकेगा नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! गजब बात, भाई !

वह पर में मिठास थी न ? मानी हुई, हों ! पुण्य में मिठास है, पाप में मिठास है, उसके फल में अनुकूलता, वह ठीक है; प्रतिकूलता अठीक है, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव में ऐसी जो मानी हुई अज्ञानदशा थी। वह सम्यक् चैतन्य के स्वभाव का भान करने पर, भगवान ने ऐसा कहा था, वैसा भान करने पर, आत्मा चैतन्य-चमत्कार और प्रत्यक्ष होकर अनुभव में आवे, ऐसा वह आत्मा है। ऐसा अनुभव में-सम्यक् में है। भले गृहस्थाश्रम में हो, भले चक्रवर्ती के राज्य में पड़ा हो। परन्तु उसमें पड़ा ही नहीं; वह तो उसके चैतन्य चमत्कार में पड़ा है। समझ में आया ? गजब बातें, भाई ! इतना बड़ा आत्मा ! वह कहे, धुले हुए मूला जैसा गया कहाँ ? तुम्हारा... कहता था न ? वकील कहता था। भगवानजी वकील। अरे ! भाई ! गया कहाँ ? है, वहाँ है। परन्तु तूने नजर नहीं डाली तो गया कहाँ कहे, उसमें क्या करना हमारे ? आहाहा ! समझ में आया ?

उसे जो-जो वस्तु, नजर में-ज्ञान में जो-जो वस्तु जहाँ-जहाँ ज्ञात होती है, वहाँ-वहाँ उसका ज्ञान जानता है और वह ज्ञान जानता है, ऐसा उसका स्वभाव है। वे मेरे हैं— ऐसा मानकर जाने, ऐसा उसका स्वभाव नहीं। वे भिन्न हैं और मैं भिन्न हूँ, ऐसा जानने का उसका स्वभाव है। समझ में आया ? ऐसा चैतन्य चमत्कार ! कहते हैं कि तीन काल-तीन लोक क्या, परन्तु इससे अनन्त गुना हो न, तो भी जानने का मेरे चैतन्य का वह चमत्कार है। ऐसा चमत्कार जगत की किसी चीज़ में नहीं हो सकता। आहाहा ! समझ में आया ?

भगवान सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने ऐसा कहा, और वे परमेश्वर केवली ऐसे हुए। अपने आत्मा के सचेतन चमत्कार को प्रत्यक्ष अनुभव करके, मिथ्यात्व-अज्ञान को टालकर, स्वरूप में स्थिर होकर जिसे अपना माना, उसमें रमकर, अज्ञान और अस्थिरता को टालकर परमात्मा हुए। समझ में आया ? जिसमें अपना माना, उसमें वे स्थिर हुए। रागादि परलोक आदि मेरे नहीं। उन्हें तो जाननेवाला हूँ। अर्थात् कि फिर उनमें स्थिर होने का या उन्हें मेरेरूप मानने का रहा नहीं, फिर उनमें स्थिर होने का रहा नहीं। समझ में आया ? समझ में आता है या नहीं इसमें ? ऐई ! सब लौकिक भाषा नहीं, यह सब समझना पड़ेगा। बाकी सब धूल धाणी है। एम.ए. का पुछल्ला लगावे। उपाधि कहते है न ? डिग्री अर्थात् उपाधि कहते हैं न ? है उपाधि। इसे यह उपाधि है। बात सच्ची है। एम.ए. की उपाधि और अमुक की उपाधि और एल.एल.बी. की उपाधि। ऐई ! इन्हें एल.एल.बी. की

उपाधि है। एल.एल.बी पास होने के बाद व्यवस्थित रहे। तब तक पढ़ते थे। एल.एल.बी। यह एल.एल.बी. कहाँ से आया? एक वकालात के ज्ञान जितना है यह? और वह ज्ञान भाषा थी, इसलिए ज्ञान हुआ है? ज्ञान की सत्ता में से वह ज्ञान हुआ है।

मुमुक्षु – मास्टर ने पढ़ाया, इसलिए नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री – मास्टर क्या पढ़ावे? धूल।

मुमुक्षु – प्रोफेसर बहुत भाषण दे।

पूज्य गुरुदेवश्री – हाँ, प्रोफेसर बहुत दे। मारे गप्प एक घण्टे और वह सुने। परीक्षा में पास होना है न? परीक्षा पास होने जितना करे। फिर वह भी भूल जाए। प्रोफेसर एक घण्टे बोले ऐसा है–ऐसा है। बहुत सब होते हैं। दो–पाँच हजार लड़के बैठे हों! लड़कों को परीक्षा में पास होना हो, इसलिए उतना सीखे। फिर कहाँ याद रखना वहाँ!

मुमुक्षु – वकील को तो सब याद रखना पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री – वकील को याद रखना पड़ता है। बात सच्ची है। यह तो व्यापारी की बात की। व्यापारी को धन्धा करना हो, फिर पढ़ा हो तो क्या काम का?

मुमुक्षु – डॉक्टर को याद रखना पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री – डॉक्टर को डॉक्टरी करना है, तब तक उसे याद रखना पड़ता है, परन्तु उस याद को करनेवाला भी उसे उससे ज्ञान नहीं होता, याद का हुआ उससे, ऐसा कहते हैं। उसका भी जाननेवाला है। आहाहा! जो कुछ याद में आया, उसका भी यह जाननेवाला है और वह जानने की अपनी सत्ता से जानता है। वह जानने की सत्ता है थोड़ी, इसलिए यहाँ जानने का जानता है, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु – सबको सूक्ष्म पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री – भारी सूक्ष्म पड़ता है। क्या हो परन्तु? मार्ग तो जो हो, वह होगा न! दूसरा आवे कहाँ से? समझ में आया?

यहाँ तो कहा न?—कि कैसी सत्तामात्र आत्मा है? **अपना रूप अपने दृष्टिगोचर नहीं है तो भी वह सूत्रसहित हो (सूत्र का ज्ञाता हो) तो उसके आत्मा सत्तारूप...**

सत्तारूप—मेरा अस्तित्व। आत्मा का अस्तित्व चैतन्य चमत्कार के अस्तित्व का धारक मैं हूँ। समझ में आया? ऐसा हो, उसे प्रत्यक्ष हो जाता है – ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **चमत्कारमयी स्वसंवेदन से...** देखो! स्वसंवेदन से। स्व अर्थात् अपने से। सं अर्थात् प्रत्यक्ष अनुभव करके स्वयं आत्मा आनन्दस्वरूप है और ज्ञान में सब जानने का, तीन काल-तीन लोक को जाननेवाला है, ऐसे जहाँ अल्पज्ञ और राग से भिन्न पड़कर अधिकपने अखण्ड पूर्ण है, ऐसा जहाँ गया, वहाँ उसे प्रत्यक्ष हुए बिना नहीं रहता।

ऐसे **स्वसंवेदन से प्रत्यक्ष अनुभव में आता है, इसलिए गत नहीं है,...** ऐसा होने के पश्चात् वह संसार की दशा में नहीं रहता। जो अज्ञान में वह नाश होता था, वह फिर अब नाश नहीं होता। **वह जिस संसार में गत है, उस संसार का नाश करता है।** लो! यह राग और द्वेष, पुण्य और पाप, वे मेरे हैं—ऐसा जो अज्ञानभाव था; वह मेरा स्वभाव नहीं। मैं तो जानने-देखनेवाला हूँ। ऐसे अपने जानने-देखने के स्वभाव का जहाँ चमत्कारी भाव वेदन में-अनुभव में प्रत्यक्षरूप से राग और मन की अपेक्षा किये बिना भान हुआ, उसे आत्मज्ञान कहते हैं। उसे शास्त्र कहना चाहते हैं, उसे वे ज्ञान कहना चाहते हैं। यह शास्त्र का ज्ञान इसे कहते हैं। समझ में आया? बड़ी जवाबदारी रखी है। ऐसा होवे तो ऐसा होवे। इसकी शर्तें बहुत।

भाई! तू बड़ा प्रभु है न, भाई! आहाहा! तेरा चैतन्य चमत्कार, वह चमत्कार की बेलड़ी है। आहाहा! वह चमत्कार का सागर है। चाहे जितना ज्ञान निकाल (प्रगट कर) और चाहे जितनी ज्ञेय चीज़ हो, तो भी वह ज्ञान कम हो, ऐसा नहीं है। वह ऐसा ज्ञान है। ऐसे ज्ञान को अन्तर में एकाग्र होकर पकड़ने जाए, वहाँ रागरहित चीज़ का अनुभव होता है, उसे यहाँ भगवान सम्यग्दर्शनसहित सम्यग्ज्ञान कहते हैं। यहाँ ज्ञान लेना है न? दर्शनसहित का ज्ञान। समझ में आया?

भावार्थ – यद्यपि आत्मा इन्द्रियगोचर नहीं है... 'अदिस्समाणो' है न? **तो भी सूत्र के ज्ञाता के स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से अनुभवगोचर है,...** परन्तु जिसने सूत्र में भगवान ने आत्मा कहा, ऐसा यदि जाने तो स्वसंवेदन प्रत्यक्ष करके अनुभवगोचर गम्य है। **वह सूत्र का ज्ञाता संसार का नाश करता है,...** वास्तविक भगवान ने कहा हुआ आत्मा शास्त्र में जो कहा है, ऐसा जो ज्ञान करे, उसे फिर संसार में भटकना नहीं रहता।

आप प्रकट होता है, इसलिए सूई का दृष्टान्त युक्त है। आप प्रगट होता है। जो अज्ञान और राग-द्वेष है, वे प्रगटरूप से मेरे हैं – ऐसा जो माना था, उसने चैतन्य चमत्कारमय आत्मा हूँ – ऐसा माना तो आत्मा प्रगट हुआ। है, ऐसा प्रत्यक्ष में आया। उसे आत्मज्ञान अथवा शास्त्र का ज्ञान (कहते हैं) और इस संसार के नाश का वह उपाय है। दूसरा कोई दुःख के नाश करने का उपाय नहीं है। चौथी गाथा (पूरी) हुई।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-२४, गाथा-४-५-६, गुरुवार, ज्येष्ठ कृष्ण १४, दिनांक ०२-०७-१९७०

भावार्थ – यद्यपि... यद्यपि **आत्मा इन्द्रियगोचर नहीं है...** हिन्दी है न, इसमें हिन्दी ? यह आत्मा जो वस्तु है, वह कहीं यह इन्द्रिय जड़ है, उसे गम्य नहीं है। उससे ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। वह तो जड़ है और स्वयं तो चैतन्य, अरूपी ज्ञान और आनन्द का पिण्ड चैतन्य अरूपी घन है, वह कहीं इन्द्रिय से ज्ञात नहीं होता। **तो भी सूत्र के ज्ञाता के...** भगवान ने शास्त्र कहे, उसका जो स्वरूप आत्मा का कहा, ऐसा यदि यह सुने, जाने तो उसे आत्मा प्रत्यक्ष ज्ञान में ज्ञात हो।

सूत्र के ज्ञाता के स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से अनुभवगोचर है,... अन्तर ज्ञान जो पर को जानता है, ज्ञान की अवस्था—वर्तमान प्रगट दशा जो पर को जानती है, वही ज्ञान की दशा स्व को जाने तो अनुभव में आवे। समझ में आया ? तो उसे धर्म होता है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : धर्म का कारण है या सुख का कारण है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुख कहो या धर्म कहो, यह तो सब एक ही चीज़ है। धर्म कहो या सुख कहो।

आत्मा अतीन्द्रिय, इन्द्रिय से ज्ञात न हो, ऐसा आनन्दमूर्ति है। वह तो अतीन्द्रिय स्वरूप है। उसमें अतीन्द्रिय आनन्द का ऐसा पूरा अरूपी रूप है। वह अतीन्द्रिय आनन्द इन्द्रिय से ज्ञात हो या अनुभव में आये, ऐसा नहीं है। तथापि भगवान ने कहे हुए शास्त्रों से

उसके ख्याल में—अनुभव में आये, ऐसा यह आत्मा है। यह कहा न? **स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से...** ज्ञान। जो ज्ञान की प्रगट अवस्था, जिसे पर्याय कहते हैं, ज्ञान की वर्तमान दशा ऐसा जानती है, वह ज्ञान, ऐसा जाने इसलिए इन्द्रियगम्य नहीं होता। परन्तु उस ज्ञान की पर्याय अन्तरस्वभाव जो पूर्ण त्रिकाल है, उस पर यदि वर्तमान अवस्था को अन्दर ले जाए तो प्रत्यक्ष हो सके, अनुभव में आ सके, ऐसा यह आत्मा है। समझ में आया?

वह सूत्र का ज्ञाता संसार का नाश करता है,... अधर्म, जो अज्ञान, राग और द्वेष, पुण्य और पाप के भाव वे मेरे; वे इसके नहीं होने पर भी, वे मेरे ऐसा जो मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष का भाव, वह दुःख है, संसार है। उसका सूत्र का ज्ञाता अपने स्वभावसन्मुख होकर अपने ज्ञान के आनन्द को स्वयं अपने से प्रत्यक्ष करके वेदे और अनुभव करे, उसे संसार का दुःख नहीं रहता।

संसार का दुःख अर्थात्? वह आधि, व्याधि और उपाधि यह नहीं। शरीर में रोग हो, प्रतिकूलता की उपाधि हो, वह नहीं। परन्तु आधि—अन्दर संकल्प-विकल्प जो पुण्य-पाप के भाव (होते हैं) और राग-द्वेष, शुभ-अशुभभाव वह विभाव है, दुःख है, विकार है; तथापि वे स्वभाव में नहीं, वस्तु की मूल स्थिति में वे नहीं, तथापि उन्हें अपना मानना और अपना आनन्दस्वभाव है, उसे भूलना, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेषभाव, वह दुःखरूप दशा है। वह संसारदशा दुःखरूप है। सेठी!

दुःख, वह कहीं संयोग में नहीं है तथा दुःख, वह कहीं स्वरूप में नहीं है। स्वरूप तो आनन्द का धाम चैतन्यस्वभाव है। उसकी स्थिति की सत्ता के स्वीकार बिना राग और द्वेष कृत्रिम क्षणिक उपाधि, मैल, जिस निर्मलानन्द भगवान में वह मैल नहीं है, तथापि वह मैल मेरा और मैं इतना, ऐसा जो भाव, वह मिथ्याश्रद्धा और राग-द्वेष के भाव हैं, वह दुःख है। अरे! ऐसी सूक्ष्म बातें। डॉक्टर! ऐसा तत्त्व है। वीतराग का तत्त्व केवली का कहा हुआ न्याय से बैठ सकता है, यदि ख्याल रखे तो। यह कहीं ऐसी बात नहीं कि न समझ में आये। क्या कहते हैं, यह तो ख्याल में आता है न! समझ में आया?

धर्म करना है, इसका अर्थ यह हुआ कि इसकी दशा में, वर्तमान हालत में धर्म नहीं है अर्थात् कि अधर्म है। अधर्म अर्थात् कि राग और द्वेष तथा मिथ्याभ्रान्ति ऐसी उसकी

दशा में दु:खदशा है। वह अधर्म है। उस अधर्म का जिसे नाश होता है। किस प्रकार से? समझ में आया? जो आनन्दस्वरूप भगवान के शास्त्र में कहा, केवलज्ञानी परमात्मा तीर्थंकरदेव ने केवलज्ञान में तीन काल-तीन लोक देखे-जाने, उनकी वाणी में आया कि भाई! तेरा स्वरूप तो अतीन्द्रिय आनन्द का तत्त्व है। तेरे सत् का सत्त्व, तेरे अस्तित्त्व का भाव, तू एक अस्तिवाला पदार्थ है, सत्तावाला सत्, उसका भाव आनन्द और ज्ञान उसका भाव है। यह पुण्य-पाप के विकल्प, वृत्ति उठे, वह उसका स्वभावभाव नहीं है। यह तो विभाव है। कहो, समझ में आया? यह विभाव, स्वभाव से विरुद्ध भाव है। यह दु:ख है, यह संसार है, यह परिभ्रमणरूप भाव है। मगनभाई!

इसकी वर्तमान पर्याय अर्थात् अवस्था, अल्पज्ञ और अल्पवीर्य, अल्पदर्शी और राग, इतने में इसकी दृष्टि अनादि की होने से महाचैतन्य का द्रव्यस्वभाव, वस्तुस्वभाव इसने दृष्टि में नहीं लिया और दृष्टि में मात्र यह पुण्य और पाप, राग और द्वेष का अस्तित्व, वह मैं हूँ, ऐसा स्वीकार करके मिथ्याभ्रान्ति में दु:ख में पड़ा है। कहो, मलूकचन्दभाई! यह सब पैसेवाले सुखी होंगे या नहीं? लोग कहते हैं न? बड़े वकीलों को पाँच-पाँच हजार का मासिक वेतन मिलता है या कमाते हैं।

मुमुक्षु : वह कर्मी कहलाते हैं, धर्मी नहीं कहलाते।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे कर्मी कहलाते हैं। हमारे परिवार में कर्मी पका है, ऐसा कहते हैं न वे? ऐई... चिमनभाई! क्या कहे तुमको? कि हमारे चिमनभाई भी कर्मी पके हैं। कर्म के करनेवाले। अधर्म ऐसे विकारी भाव, उसके करनेवाले को यहाँ कर्मी कहा गया है। अब उसे धर्मी होना हो तो क्या हो? अर्थात् कि उसे सुखी होना हो तो क्या हो?

कहते हैं कि भगवान ने जो शास्त्र में आत्मा कहा... परवस्तु है, यह कहेंगे अभी बाद में। वह सब हेय है, इसमें उसका आश्रय करनेयोग्य नहीं है, पुण्य-पाप के विकल्प से लेकर शरीर, वाणी, मन सब। उसका आत्मा अन्दर पूर्ण वस्तु अनादि अविनाशी स्वभाववाला तत्त्व है, उसका अन्दर ज्ञान करके, उसके वेदन में (आवे)। जो राग-द्वेष का वेदन है, वह दु:ख है, वही वेदन गुलाँट खाकर चैतन्यमूर्ति यह आनन्दस्वरूप है, ऐसा अन्तर का ज्ञान, अन्तर की दशा, अन्तर के स्वभाव को वेदे, जाने, अनुभव करे, तब वह भाव दु:ख की दशा

के भाव का नाश करता है, भाई! यह सब बाहर का कुछ करना हो या यात्रा कर डालना या यह (करना हो तो) खबर भी पड़े। ऐई! मगनभाई! ऐसा मार्ग होगा? आहाहा!

भगवान! तू तो पूर्ण प्रभु है न, भाई! तुझे खबर नहीं। तेरी महत्ता की, तेरी महिमा की तुझे खबर नहीं और जो महिमा रहित चीज़ राग और द्वेष, पुण्य और पाप (भाव है), उनकी तुझे अनादि से महिमा हुई है। समझ में आया? उस महिमा में तेरी महिमा लुट जाती है। ऐसा भगवान ने जो शास्त्र में कहा, उसका अन्तर (में) पहले ज्ञान करे, शास्त्र ऐसा कहते हैं; तत्पश्चात् शास्त्र में ऐसा कहते हैं कि तेरा चैतन्य प्रभु महा अस्तिवाला तत्त्व अनादि-अविनाशी है, उसकी अन्तर्दृष्टि कर और है उसे लक्ष्य में लेकर आनन्द का वेदन कर। उसमें से तुझे आत्मा प्रत्यक्ष होगा और राग-द्वेष और अज्ञान संसार का भाव है, उसका नाश होगा। चाहे जहाँ ऐसा ज्ञानी जाए, नरक में (जाए), परन्तु वह निकलकर प्रसिद्ध होकर परमात्मा होगा, ऐसा कहते हैं। वह कहीं गोते नहीं खायेगा। समझ में आया? गजब परन्तु। इसकी शर्तें भारी कठिन। कुछ करना हो या पाँच-पच्चीस हजार देने हों तो हमेशा बारह महीने दो-पाँच शत्रुंजय की यात्रा करना। क्या कहलाता है? सम्मेदशिखर। भगवान मोक्ष पधारे, इसलिए वहाँ यात्रा (करना)। परन्तु यात्रा तो शुभभाव है, वह कहीं धर्म नहीं। वह तो पुण्यभाव है। पाप से बचने के लिये उस प्रकार के विकल्प की जाति होती है। वह कहीं धर्म का रूप नहीं। समझ में आया? यह कठिन काम। दुनिया उसे धर्म मानती है। रमणीकभाई! आहाहा!

सूत्र का ज्ञाता संसार का नाश करता है, आप प्रकट होता है,... वह चाहे जहाँ हो परन्तु वह स्वयं प्रसिद्धि को पाता है। मैं आत्मा हूँ। जैसा स्वभाव शुद्ध आनन्द है, उसकी सत्ता का अन्तर महिमा से स्वीकार में जहाँ दृष्टि में आया तो उसके ज्ञान में उसका ज्ञान हुआ, श्रद्धा में उसकी प्रतीति हुई, चारित्र में उसके आनन्द का वेदन हुआ। भारी बात। ऐसा धर्म! धर्म ऐसा होगा? इससे दूसरे प्रकार से लोगों ने घर का कल्पित किया है, वे सब हार जाने के रास्ते हैं। समझ में आया? आहाहा!

इसलिए सूई का दृष्टान्त युक्त है। जो सुई, डोरासहित हो, वह खोती नहीं है। इसी प्रकार जिसे आत्मा का अन्तर ज्ञान हो, वह चौरासी में कहीं डूबता नहीं है। वह तैरता और तैरता हुआ सब स्थानों में रहता है। ऐसा कहते हैं। अब पाँचवीं (गाथा)।

गाथा-५

आगे सूत्र में अर्थ क्या है, वह कहते हैं –

सुत्तत्थं जिणभणियं जीवाजीवादिबहुविहं अत्थं।
हेयाहेयं च तहा जो जाणइ सो हु सद्दिट्ठी।।५।।

सूत्रार्थं जिनभणितं जीवाजीवादिबहुविधमर्थम्।
हेयाहेयं च तथा यो जानाति स हि सद्दृष्टिः।।५।।

बहु विविध जीवाजीव आदि जिन-कथित सूत्रार्थ को।
जो हेय आदेय युक्त जाने वही सम्यग्दृष्टि हो।।५।।

अर्थ – सूत्र का अर्थ जिन सर्वज्ञदेव ने कहा है और सूत्र का अर्थ जीव-अजीव आदि बहुत प्रकार है तथा हेय अर्थात् त्यागने योग्य पुद्गलादिक और अहेय अर्थात् त्यागने योग्य नहीं, इस प्रकार आत्मा को जो जानता है, वह प्रगट सम्यग्दृष्टि है।

भावार्थ – सर्वज्ञभाषित सूत्र में जीवादिक नवपदार्थ और इनमें हेय-उपादेय इस प्रकार बहुत प्रकार से व्याख्यान है, उसको जानता है, वह श्रद्धावान सम्यग्दृष्टि होता है।।५।।

गाथा-५ पर प्रवचन

आगे सूत्र में अर्थ क्या है, वह कहते हैं – शास्त्र में क्या पदार्थ कहे हैं, ऐसा कहते हैं। शास्त्र में-भगवान के शास्त्र में परमेश्वर तीर्थंकरदेव के सिद्धान्त में क्या पदार्थ कहे हैं, कितनी प्रकार के कैसे क्या हैं, इसकी बात करते हैं।

सुत्तत्थं जिणभणियं जीवाजीवादिबहुविहं अत्थं।
हेयाहेयं च तहा जो जाणइ सो हु सद्दिट्ठी।।५।।

अर्थ – सूत्र का अर्थ जिन सर्वज्ञदेव ने कहा है... सूत्र में अर्थ अर्थात् पदार्थ

का स्वरूप है, वह भगवान ने कहा है। तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी ने तीन काल का ज्ञान किया। और, बहुरि अर्थात् और। वहाँ वळी है। गुजराती में वळी है न? या अथवा? बहुरि नहीं। यह तो सूत्र में अर्थ कहते हैं। सूत्र के विषय में जो पदार्थ है, भगवान ने कहे जो पदार्थ हैं, उनमें एक **जीव–अजीव आदि बहुत प्रकार का है...** भगवान ने नव तत्त्व कहे। समझ में आया? जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। यह भगवान केवली ने नौ पदार्थ कहे। उनमें जीव और अजीव दो द्रव्य—वस्तु है और वे सात उनकी पर्याय अर्थात् दशा और हालत है। समझ में आया? जीव और अजीव दो सामान्यरूप से द्रव्य–वस्तु है और उसमें पुण्य–पाप, आस्रव बन्ध की विकारीदशा है और संवर, निर्जरा तथा मोक्ष, वह निर्विकारीदशा है। ऐसे नौ पदार्थ भगवान ने कहे हैं।

तथा हेय अर्थात् त्यागने योग्य पुद्गलादिक... लो। यह शरीर, वाणी, मन वे लक्ष्य में से छोड़नेयोग्य हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह शरीर, वाणी, मन, कर्म यह पुद्गल जड़–मिट्टी है। यह मकान, पैसा, इज्जत, कीर्ति के शब्द सब जड़–मिट्टी पुद्गल है। उन्हें त्यागनेयोग्य है। अर्थात् कि वे आत्मा में नहीं हैं, इसलिए छोड़नेयोग्य है। और उनके निमित्त से आत्मा में होनेवाले पुण्य–पाप के भाव... समझ में आया? वे भी त्यागनेयोग्य हैं। शुभ–अशुभभाव, वे दुःखरूप भाव छोड़ने योग्य है।

और **और अहेय अर्थात् त्यागने योग्य नहीं...** ऐसा आत्मा। एक भगवान पूर्णानन्द प्रभु शुद्ध आनन्द का धाम, वह एक अहेय—छोड़नेयोग्य नहीं। वह आदरणीय है, ऐसा। यह क्या कहा? यह आत्मा वस्तु है। पूर्ण ज्ञान, आनन्द आदि का धाम द्रव्य–वस्तु। उसकी पर्याय अर्थात् हालत अर्थात् दशा में जो शुभ–अशुभ विकल्प दया, दान, व्रत, भक्ति के हों या काम–क्रोध के विकल्प हों, वे सब छोड़नेयोग्य है। क्योंकि आत्मा का स्वरूप और स्वभाव उनमें नहीं है। वे छोड़नेयोग्य है तो जिसके लक्ष्य से होते हैं, वह भी छोड़नेयोग्य है। आहाहा! कहते हैं कि दृष्टि में से स्त्री, पुत्र, परिवार, पैसा, हजीरा... हजीरा अर्थात् मकान। दो, पाँच, दस लाख का बड़ा मकान होता है न? उन सबका लक्ष्य छोड़नेयोग्य है। क्योंकि वे तुझमें नहीं, तू उनका नहीं। गजब बात, भाई! समझ में आया?

इसी प्रकार आत्मा की दशा में जो कुछ हिंसा, झूठ, चोरी, विषय–भोग, वासना,

काम-क्रोध के भाव होते हैं, वह पाप है। वह भी छोड़नेयोग्य है अर्थात् उनकी दृष्टि करनेयोग्य नहीं। तथा आत्मा में दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा का शुभ विकल्प होता है, वह भी दृष्टि करनेयोग्य नहीं। क्योंकि वह छोड़नेयोग्य है। आहाहा! मलूकचन्दभाई! समझ में आता है यह? अरे...! यह भारी परन्तु। बाहर में पैसे ने मार डाला लगता है। नहीं? पैसा मारता होगा? पैसे के प्रति मोह करता है न, वह मोह जीव को मार डालता है। वह तो चीज़ है, चीज़ कहाँ बेचारी यहाँ आ जाती है? आहाहा!

ऐसा जीवन चैतन्य का...! कहते हैं कि वह तो भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध ज्ञान का भण्डार, ज्ञान का समुद्र, आनन्द का सरोवर प्रभु है, वह उपादेय है। उपादेय अर्थात् उसका आश्रय करनेयोग्य है। आहाहा! वस्तु है आत्मा सत्ता और उसके भाव में —स्वभाव में ज्ञान, आनन्द आदि अनन्त शक्तिरूप सत्त्व स्वभाव है। ऐसे अनन्त स्वभाव का एकरूप ऐसा जो आत्मा, वही आश्रय करनेयोग्य है। वहाँ दृष्टि देनेयोग्य, उसे ध्येय बनानेयोग्य, वह अहेय है, वह छोड़नेयोग्य नहीं है। अहेय अर्थात् छोड़नेयोग्य नहीं। अरे! गजब बात, भाई! छोड़ने का अर्थ? ऐसे छोड़ना, ऐसा नहीं। परन्तु उसमें लक्ष्य करनेयोग्य नहीं, उसे हेय कहते हैं और जहाँ लक्ष्य करनेयोग्य, ऐसा द्रव्य है, उसे उपादेय-अहेय कहा। समझ में आया?

परमेश्वर तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ केवलज्ञानी परमात्मा ने सभा में ऐसा उपदेश किया था। उस उपदेश को शास्त्र कहने में आता है। उस शास्त्र में आत्मा आदरणीय है और दूसरा हेय है, ऐसा कहने में आया है। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं कि सुखी होना हो और दु:खरूप विकारी संसारदशा का नाश करना हो और उस दु:खरूप दशा के नाश में नाश-व्यय होने पर आनन्द की उत्पत्ति और सुख की दशा प्रगट करनी हो अर्थात् कि सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो, उसे स्वद्रव्य त्रिकाली ज्ञायक है, उसका आश्रय करना चाहिए। आहाहा! समझ में आया?

अहेय अर्थात् त्यागने योग्य नहीं इस प्रकार आत्मा को जो जानता है... भगवान चैतन्यबिम्ब ज्ञान का सूर्य है। जैसे यह सूर्य रजकण का पिण्ड है। बाहर का सूर्य। भगवान आत्मा चैतन्य का सूर्य है। समझ में आया? ऐसा परिपूर्ण ज्ञान और आनन्द (स्वरूप है)। मुख्य दो वस्तु, बाकी उसके साथ दूसरी अनन्त हो भले। ज्ञान और आनन्द

में यह वीतरागता की शान्ति इकट्ठी आ जाती है। वह ज्ञानस्वरूप है, शान्तस्वरूप वीतरागस्वरूप है। आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द का रस वस्तु का स्वरूप है। ऐसा जो पूर्ण स्वभाव है, वह आदरणीय है। धर्म करनेवाले को उसका आश्रय करनेयोग्य है। समझ में आया? भारी ऐसा धर्म, भाई! ऐसा कहाँ से निकाला? वीतराग का ऐसा धर्म होगा?

भक्ति करना, सूर्यास्तपूर्व भोजन करना, रात्रि में खाना नहीं, कन्दमूल खाना नहीं, यह तो सब बाहर की बातें हैं, सुन न! कौन खाये? और कौन छोड़े? परद्रव्य है, उसे छोड़े कौन और खाये कौन? वह तो पर है। समझ में आया? उसे खाने का जो विकल्प आदि था, उसे छोड़ना—ऐसा जब निश्चित हो, तब वह क्रिया भी मेरी नहीं, ऐसा निश्चित होकर उसका निर्विकल्प चैतन्यस्वभाव है, वह आदरणीय है, उपासनीय है, सेवनयोग्य है, आश्रय करनेयोग्य है। उसे अहेय जान और रागादि को हेय जान। ऐसा अन्तर में विवेक प्रगट हो, तब उसे आत्मा का सम्यग्दर्शन होता है। सम्यक् अर्थात् आत्मा जैसा है वैसा, सम्यक् अर्थात् सच्ची प्रतीति और दर्शन होता है। भारी बातें! समझ में आया? जैन में जन्में हों, उन्होंने सुना न हो। सुना हो तो यह (सुना हो कि) भक्ति करो, शान्ति स्तोत्र करो,... करो। यह कहे, सामायिक करो। परन्तु किसकी सामायिक? किसमें जाना? समझ में आया?

आत्मा अपना अस्तित्व-मौजूदगी में, आत्मा की अस्ति में—उसकी सत्ता में तो ज्ञान, शान्ति और आनन्दादि स्वभाव भरे हैं। उसमें कुछ यह शरीर, वाणी, मन, देश, कुटुम्ब, स्त्री, पुत्र, परिवार और पुण्य-पाप भाव वे कहीं इसमें पड़े नहीं हैं। अरे! गजब। इसे सच्ची दृष्टि करनी है अर्थात् की वस्तु जैसी है, वैसी सत्य दृष्टि करनी है, तो उसे पूर्णानन्द के नाथ का आश्रय करके, उपादेय करके अनुभव करनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया या नहीं इसमें?

मुमुक्षु : समझ में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में आता है? ठीक। यह तो सादी भाषा से बात करते हैं। यह कहीं बहुत सूक्ष्म नहीं। लॉजिक से, न्याय से संक्षिप्त भाषा में कहा जाता है। कहीं लम्बा संस्कृत व्याकरण पढ़ा हो, उसे समझ में आये, ऐसा कुछ नहीं है। यह तो सादी में सादी (भाषा है)।

मुमुक्षु : छोटा बालक भी समझ सकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : छोटा बालक समझता है। चार पुस्तक पढ़ा हुआ। हमारे धर्मचन्दभाई कहते हैं या नहीं? मास्टर कहते हैं, चार पुस्तक पढ़ा हुआ हो, वह भी समझे। आहाहा! उसे पढ़ने की बाहर की कहाँ आवश्यकता है, कहते हैं।

उसके सामने इसने कभी देखा नहीं और जिसके सामने देखा, वह चीज़ इसकी नहीं। शरीर, वाणी, मन, जड़। स्त्री, पुत्र, परिवार, देश और यह पुण्य-पाप के भाव जो राग, विकार है, उसके सामने देखा है। जो इसका नहीं, उसके सामने देखा है और इससे रहित जो है, उसके सन्मुख देखा नहीं। सुखी होना हो तो उसके सामने देखकर उसका आश्रय कर, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह तो गजब। कहो, समझ में आया या नहीं? ऐई! कमलेश! ऐई! लड़के तो आत्मा हैं या नहीं? भगवान तो कहते हैं, आठ-आठ वर्ष के लड़के केवलज्ञान पाते हैं। आहाहा!

आठ-आठ वर्ष के राजकुमार, हों! चक्रवर्ती के कुँवर जहाँ सुनते हैं... आहाहा! यह संसार दाह राग-द्वेष और अज्ञान में जल रहे हैं, ऐसा भगवान कहते हैं। इसलिए जिसे दाह से छूटना हो तो अन्तर के आनन्द में जा। ऐसा भगवान ने कहा, सुना और एकदम आत्मा का भान करके एकदम त्यागी हो गये। आहाहा! माता! हमें हमारा अनुभूति का आनन्द जो अन्तर में है, उसे हमने जाना है, उसे अनुभव किया है। माता! अब विशेष अनुभव करने के लिये राग की उपेक्षा तो की है, परन्तु अभी राग की अस्थिरता वर्तती है, उसका स्वरूप में स्थिरता से नाश होने पर मुझे मोक्ष होगा। अर्थात् कि अनन्त आनन्द प्रगट होगा। माता! आज्ञा दे। हम वन में चले जायेंगे। आहाहा! धन्य अवतार! छोटा कण्मडल हो, एक मोरपिच्छी हो, मुनि को शरीर की नग्नदशा होती है, हों! मार्ग ऐसा है। जरा सूक्ष्म है परन्तु सुनना। समझ में आया? ऐई! चल निकले ऐसे वन में, हों! अकेले वन में सिंह की भाँति (चल निकलते हैं)। हमारे स्वभाव को खोजने... खोजकर निर्णय यह तो किया है परन्तु अधिक शोधकर स्थिर होकर केवलज्ञान लेने चले जाना है। आहाहा!

ज्ञानी संसार में होने पर भी गृहस्थाश्रम की दशा में (होने) पर भी कहीं रुचि और प्रेम नहीं है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को राग में रुचि और प्रेम नहीं तो पुण्य के फल

के संयोग मिले, धूल-धाणी और दो-पाँच करोड़, दस करोड़, धूल करोड़ (हो), उसका प्रेम धर्मी को नहीं होता, भाई! वह तो अजीवतत्त्व है। आहाहा! ऐई! मलूकचन्दभाई! तुम्हारे जाना है न सब वैभव देखने? वह आवे तो (कहे), यहाँ आना। इनका पुत्र कहे, अमेरिका आवे वह मूर्ख है। क्या कहा? मूर्ख कहा?

मुमुक्षु : अमेरिका जाए वह मूर्ख... स्विटजरलैण्ड जाए उसमें...

पूज्य गुरुदेवश्री : स्विटजरलैण्ड तो इसका पिता है। वहाँ उपाधि का पार नहीं होता। मूर्ख या क्या? इनका पुत्र गया है न अमेरिका। बापूजी! यहाँ अमेरिका में आवे, वह मूर्ख हो वह आवे। उपाधि का पार नहीं होता। राग-द्वेष... राग-द्वेष... राग-द्वेष... पूरे दिन। और कुत्ते की भाँति दौड़े और भौंके।... वहाँ तो रिवाज ऐसा है कि मोटर को ७० मील से कम चला नहीं सकते। ऐसा वहाँ बड़े शहर में रिवाज है। क्योंकि पीछे की मोटर को एकदम जाना हो, (आगेवाला) धीरे-धीरे चलावे तो उसे विलम्ब हो, काल जाए। और कुत्ते जैसा काल हो। भूं... भूं... करे। एकदम दौड़कर पूरा करे, ऐसा तो काम होता है। ऐ... चिमनभाई!

मुमुक्षु : ऐसा तो मुम्बई में भी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुम्बई में भी है परन्तु ऐसा नहीं।... बाजार में आते हैं। उन्हें ७० मील से नीचे चलाना, वह दण्डपात्र होता है। क्योंकि पीछे कितने लोगों को कहाँ जाना हो और तू धीरे-धीरे चलावे तो पिछले वाले का समय जाता है, बेचारे का समय जाता है। ऐई! आहाहा! यह तो कहीं हड़के कुत्ते जैसा जीवन है न। हाऊ... हाऊ.. हाऊ... करके यह करूँ, यह करूँ, यह करूँ। अरे! सुन न युवक! राग को करना, वह जहाँ तेरा स्वरूप नहीं, जड़ के काम तो तेरे कैसे हो सकते हैं। आहाहा! समझ में आया? तू तो जहाँ हो, वहाँ रागादि सब चीज़ को उसे स्पर्श किये बिना ज्ञान (करे) और जाननेवाला तू है। ऐसी तेरी सत्ता के स्वभाव का स्वरूप है। आहाहा! क्या हो?

कहते हैं, एक आत्मा अहेय है। ऐसा कहते हैं न? यहाँ तो दो भाग करते हैं न? हेय और अहेय। समझ में आया? आहाहा! परन्तु ऐसा गजब! हमारे विवाह करना, धन्धा करना या यह करना। करना क्या? माता-पिता विवाह किये बिना अलग नहीं करेंगे। तुझे

बड़ा किया, कितने खर्च किये। अब दे वापस इतने। तुझे अमेरिका भेजा, वे चालीस हजार खर्च किये, पचास हजार खर्च किये। ऐई! तुमने तो कहाँ खर्च किये हैं? तुम्हारे तो... वहाँ। आहाहा! वापस सिर पर बोझा डाले। तीस हजार खर्च किये, तुझे खबर नहीं? वहाँ नौकरी करना... वापस पढ़ना। ऐसा चलता है या नहीं वहाँ? सुना हुआ है। आहाहा! अरे! यह तो कहीं जीवन? हड़के कुत्ते जैसा जीवन है, फिर भले दो-पाँच-दस करोड़ पूँजी-धूल हो। परन्तु हड़के कुत्ते जैसा सब हड़कापन है। ऐई! चिमनभाई! यह भेजते हैं न! इनके लड़के का लड़का गया है... वहाँ हड़कवा है। लाओ इतना माल, पचास हजार, लाख का, दो लाख का धूल। आहाहा! अरे! भगवान! तेरे लक्ष्य बिना लखपति कभी नहीं हुआ जाता, हों! तेरे लक्ष्य बिना लखपति नहीं हुआ जाता। पर के लक्ष्य से तो हार है, भाई! आहाहा! यह यहाँ कहते हैं।

यहाँ भगवान ने ऐसा कहा, भगवान! जहाँ तू खड़ा हो, किसी भी गति में तू जाएगा तो वह गति तेरी नहीं। जिस गति में खड़ा हो, वहाँ गति तेरी नहीं। आहाहा! तेरा तो अन्दर आनन्द और ज्ञान चैतन्यबिम्ब स्वभाव है। उसका आश्रय कर। वह छोड़नेयोग्य नहीं है। उसका लक्ष्य करने जाता है। उसके लक्ष्य छोड़नेयोग्य नहीं है। राग और पुण्य-पाप के विकल्प तथा बाह्य चीज़ों का लक्ष्य छोड़नेयोग्य है। लक्ष्य छोड़नेयोग्य है, इतनी बात। इसलिए वह छोड़नेयोग्य कहा, ऐसा। समझ में आया? गजब परन्तु। शर्तें भारी कठिन। धन्धे से कुछ होता होगा या नहीं? हमने यह कमाये हैं दस लाख, इसमें से दो लाख खर्च कर डालो, चलो। धर्म होगा या नहीं? धूल में भी नहीं होगा। सुन न! तेरे दस लाख कैसे? वह तो जड़ है, मिट्टी है।

मुमुक्षु : तो फिर गरीब मनुष्य को क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : तो गरीब मनुष्य को क्या करना? पैसे से धर्म होता हो तो रंक को रोना पड़े। धर्म, वह चीज़ ऐसी नहीं है। बाहर में तो पैसा खर्च करे, उसे पहली कुर्सी देते हैं, लो। आओ... आओ, सेठ, आओ। भटकने की कुर्सी दे, बैठने की। आओ सेठ साहेब! कल इन्होंने दो लाख दिये थे। अरे! धूल भी नहीं, सुन न! ऐसा तो अजीव धूल है। वह चीज़ तेरी थी? उसे मैंने दिया? मैंने दिया, वह तो जड़ का स्वामी हुआ, वह तो मिथ्यादृष्टि

हुआ। उसने तो मिथ्यात्व का पाप बाँधा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐई! एक लाख निकाले हैं। क्या करेगा... वह कहे, स्कूल में दो, वह कहे यहाँ दो, पिता को कहे यहाँ देना नहीं होता। ऐसा कुछ होगा। ऐसा थोड़ा बहुत होगा। ऐसी बातें लोग करते हैं, वे सुनते हैं। वह तो जहाँ पैसा जाना होगा, वहाँ जायेगा, परन्तु बात यह है कि उसे वह विकल्प आवे न कि ऐसा करूँ, ऐसा करूँ, ऐसा करूँ। क्या है परन्तु? पर का कुछ कर नहीं सकता, बापू! उस चीज़ को रख नहीं सकता और उस चीज़ को दे नहीं सकता। समझ में आया?

कहते हैं, अहो...! भगवान ने नौ तत्त्व कहे हैं, उसमें तो वास्तव में एक भगवान आत्मा ही आदरणीय है, अहेय है—ऐसा कहते हैं, हों! **इस प्रकार आत्मा को जो जानता है, वह प्रगट सम्यग्दृष्टि है।** वह धर्मी है, भले गृहस्थाश्रम में दिखाई दे। अरे! छह खण्ड के राज में दिखता हो। चक्रवर्ती, भरत चक्रवर्ती, ऋषभदेव भगवान के पुत्र। छियानवें हजार तो जिनकी घर में रानियाँ। छियानवें करोड़ तो सैनिक। परन्तु जहाँ आत्मा का अन्तरभाव हुआ, वहाँ किसी का मैं नहीं और कोई मेरे नहीं, मेरा स्वभाव कहीं है नहीं। राग में भी नहीं और पर में नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ – सर्वज्ञभाषित सूत्र में.... इसका भावार्थ। सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ परमेश्वर के कहे हुए शास्त्र में, जिन्होंने तीन काल-तीन लोक जाने हैं, ऐसे भगवान ने कहे हुए शास्त्रों में; उसके अतिरिक्त दूसरे ने कहे हुए नहीं। यह लेना, ऐसा कहते हैं। **जीवादिक नवपदार्थ और इनमें हेय-उपादेय इस प्रकार बहुत प्रकार से व्याख्यान है,...** भगवान के शास्त्र में छोड़नेयोग्य, आदरणीय, भेदरूप क्या, अभेदरूप क्या, ऐसे बहुत प्रकार के व्याख्यान भगवान की वाणी में आते हैं। **उसको जानता है, वह श्रद्धावान सम्यग्दृष्टि होता है।** लो। उसे आत्मा अखण्डानन्द प्रभु शुद्ध चैतन्य हूँ, मुझमें राग और पुण्य-पाप के विकल्प की वृत्तियाँ भी नहीं हैं। वह तो सब पर में है, पर की अस्ति में है, मेरी अस्ति में नहीं। ऐसा जिसे आत्मा का ऐसा ही स्वरूप है, ऐसा जिसे अन्तर में स्वीकार करके एकाग्र हुआ, उस जीव को यहाँ सम्यग्दृष्टि—सच्ची दृष्टि, सच्चा था वैसा सच्चा हुआ, (कहा जाता है)। समझ में आया? अरे! भारी बातें, भाई! इसे समझने के लिये प्रयत्न तो करना पड़े या नहीं? यह डॉक्टर का, वकालत का पढ़ने दो-पाँच-दस वर्ष निकालने पड़ते

होंगे या नहीं बेगारी में ? वह तो धूल-धाणी का पठन है। जाधवजीभाई ! कहाँ गये ? तुम्हारा लड़का है न वह ? उसके लड़के का लड़का। दिलीप। ग्यारह वर्ष का, बारहवाँ चलता है। यह सब तुझे पढ़ने ले जाते हैं। चल पढ़ने। वह कहे, अब पढ़े। ऐसा पठन तो अनन्त बार पढ़ा है। वह लड़का कहता है। जिसे पढ़कर भूला, वह पठन कहलाये ? ऐसा बोलता है। बारह वर्ष का है। अभी गया न कलकत्ता ! कहा था या नहीं ? जाधवजीभाई ! उसका पिता कहे, चल पढ़ने। यह पठन कहलाये ? जो पठन अनन्त बार किया और वह पठन विस्मृत हो गया। ऐ... चिमनभाई ! यह तुम्हारे इंजीनियर की पढ़ाई और वकालत की पढ़ाई और डॉक्टर की पढ़ाई और यह... समझ में आया ? क्या कहा जाता है ? इंजीनियर की पढ़ाई।

मुमुक्षु : तो कौन सी पढ़ाई पढ़ना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पढ़ाई कर, कहते हैं। जिसे पढ़ने से तिरे, वह पढ़ाई। जिसे पढ़ने से डूबे, वह पढ़ाई होगी ? सेठी ! आहाहा ! यह हीरा-माणेक के धन्धे की पढ़ाई सब डूबने की पढ़ाई है। आहा ! यह रामजीभाई के वकालत की पढ़ाई, लो। दो सौ रुपये (लेते थे)। सब डूबने की पढ़ाई थी। बराबर होगा ? इनके दादा को ऐसा कहा जाए ? आहाहा ! मार्ग तो ऐसा है, भगवान ! भाई ! आहाहा !

पहली चोट में पहले धड़ाके इसे धर्म करना हो और सुखी होना हो तो यह पुण्य-पाप के विकल्प से लेकर सभी चीज़ों पर लक्ष्य करनेयोग्य नहीं है। आश्रय लेनेयोग्य नहीं है। आधार वे नहीं। आधार भगवान अन्दर आनन्द की मूर्ति प्रभु है, उसका आश्रय ले और वह अहेय अर्थात् छोड़नेयोग्य नहीं है अर्थात् आदरणीय है। ऐसा अन्तर में अनुभव होने पर, उसे सम्यग्दर्शन होता है और वह सच्चा हुआ, वह सच्चे मार्ग में चला। वह साहेब के रास्ते चला अब। सिद्ध के—साहेब के रास्ते वह चला। आहाहा ! बड़े साहेब सिद्ध हैं।

मुमुक्षु : एकदम ऊँचे।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऊँचे। 'सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु' आता है न ? लोगस्स में आता है। लोगस्स किया होगा। डॉक्टर ने नहीं किया होगा। किया है ? अन्तिम शब्द आता है, अन्तिम। 'सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु'। हे भगवान ! हे सिद्ध परमात्मा ! आपकी सिद्धदशा मुझे दो। सन्त दिखाओ। उसका अर्थ कि मैं केवलज्ञान प्राप्त करूँ, ऐसा। इसके अर्थ की

कहाँ खबर। पहाड़े बोल जाते हों। डॉक्टर! बराबर है? 'एवं मए अभिथुआ, विहुयरयमला पहीणजरमरणा, चऊवीसं पि जिणवरा...' अर्थ की कुछ खबर नहीं होती। आहाहा!

कहते हैं, अहो! जो भगवान के कहे हुए, परमेश्वर के कहे हुए तत्त्व, उनमें परमेश्वर ने तो ऐसा आत्मा कहा है कि जिस आत्मा में अनन्त ज्ञान और आनन्द है, जिस आत्मा में पुण्य-पाप के विकल्प और शरीर, वाणी सब चीज़ है नहीं। ऐसी चीज़ का अन्दर आदर कर और दूसरी चीज़ को छोड़ दे तो ऐसा जो ज्ञान होता है, वह स्व अनुभवसहित की प्रतीति हो, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

गाथा-६

आगे कहते हैं कि जिनभाषित सूत्र व्यवहार परमार्थरूप दो प्रकार है, उसको जानकर योगीश्वर शुद्धभाव करके सुख को पीते हैं –

जं सुत्तं जिणउत्तं ववहारो तह य जाण परमत्थो।
तं जाणिऊण जोई लहइ सुहं खवइ मलपुंजं।।६।।

यत्सूत्रं जिनोक्तं व्यवहारं तथा च ज्ञानीहि परमार्थम्।
तं ज्ञात्वा योगी लभते सुखं क्षिपते मलपुंजं।।६।।

जिनवर-कथित व्यवहारमय परमार्थयुत सूत्रार्थ को।
नित जान योगी सुख लहें क्षय करें सब मल पुंज को।।६।।

***अर्थ* – जो जिनभाषित सूत्र है, वह व्यवहाररूप तथा परमार्थरूप है, उसको योगीश्वर जानकर सुख पाते हैं और मलपुंज अर्थात् द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म का क्षेपण करते हैं।**

***भावार्थ* – जिनसूत्र को व्यवहार-परमार्थरूप यथार्थ जानकर योगीश्वर (मुनि) कर्मों का नाश करके अविनाशी सुखरूप मोक्ष को पाते हैं। परमार्थ (निश्चय) और**

व्यवहार इनका संक्षेप स्वरूप इस प्रकार है कि जिन आगम की व्याख्या चार अनुयोगरूप शास्त्रों में दो प्रकार से सिद्ध है, एक आगमरूप दूसरी अध्यात्मरूप।

वहाँ सामान्य-विशेषरूप से सब पदार्थों का प्ररूपण करते हैं, सो आगमरूप है, परन्तु जहाँ एक आत्मा ही के आश्रय निरूपण करते हैं, सो अध्यात्म है। अहेतुमत् और हेतुमत्—ऐसे भी दो प्रकार हैं, वहाँ सर्वज्ञ की आज्ञा से ही केवल प्रमाणता मानना अहेतुमत् है और प्रमाण-नय के द्वारा वस्तु की निर्बाध सिद्धि करके मानना, सो हेतुमत् है। इस प्रकार दो प्रकार से आगम में निश्चय-व्यवहार से व्याख्यान है, वह कुछ लिखने में आ रहा है।

जब आगमरूप सब पदार्थों के व्याख्यान पर लगाते हैं, तब तो वस्तु का स्वरूप सामान्य-विशेषरूप अनन्त धर्मस्वरूप है, वह ज्ञानगम्य है, इनमें सामान्यरूप तो निश्चयनय का विषय है और विशेषरूप जितने हैं, उनको भेदरूप करके भिन्न-भिन्न कहे वह व्यवहारनय का विषय है, उसको द्रव्य-पर्यायस्वरूप भी कहते हैं। जिस वस्तु को विवक्षित करके सिद्ध करना हो, उसके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से जो कुछ सामान्य-विशेषरूप वस्तु का सर्वस्व हो, वह तो निश्चय-व्यवहार से कहा है, वैसे सिद्ध होता है और उस वस्तु के कुछ अन्य वस्तु के संयोगरूप अवस्था हो, उसको उस वस्तुरूप कहना भी व्यवहार है, इसको उपचार भी कहते हैं।

इसका उदाहरण ऐसे है—जैसे एक विवक्षित घट नामक वस्तु पर लगावें, तब जिस घट का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप सामान्य-विशेषरूप जितना सर्वस्व है, उतना कहा, वैसे निश्चय-व्यवहार से कहना, वह तो निश्चय-व्यवहार है और घट के कुछ अन्य वस्तु का लेप करके उस घट को उस नाम से कहना तथा अन्य पटादि में घट का आरोहण करके घट कहना भी व्यवहार है।

व्यवहार के दो आश्रय हैं, एक प्रयोजन, दूसरा निमित्त। प्रयोजन साधने को किसी वस्तु को घट कहना, वह तो प्रयोजनाश्रित है और किसी अन्य वस्तु के निमित्त से घट में अवस्था हुई, उसको घटरूप कहना, वह निमित्ताश्रित है। इस प्रकार विवक्षित सर्व जीव-अजीव वस्तुओं पर लगाना। एक आत्मा ही को प्रधान करके लगाना अध्यात्म है। जीव सामान्य को भी आत्मा कहते हैं। जो जीव अपने को सब जीवों से भिन्न अनुभव करे, उसको भी आत्मा कहते हैं, जब अपने को सबसे भिन्न अनुभव करके, अपने पर निश्चय लगावे, तब इस प्रकार जो आप अनादि-अनन्त अविनाशी

सब अन्य द्रव्यों से भिन्न एक सामान्य विशेषरूप अनन्तधर्मात्मक द्रव्य–पर्यायात्मक जीव नामक शुद्ध वस्तु है, वह कैसा है –

शुद्ध दर्शन–ज्ञानमयी चेतनास्वरूप असाधारण धर्म को लिए हुए अनन्त शक्ति का धारक है, उसमें सामान्य भेद चेतना अनन्त शक्ति का समूह द्रव्य है। अनन्त ज्ञान –दर्शन–सुख–वीर्य ये चेतना के विशेष हैं, वह तो गुण हैं और अगुरुलघुगुण के द्वारा षट्स्थान पतित हानि–वृद्धिरूप परिणमन करते हुए जीव के त्रिकालात्मक अनन्त पर्यायें हैं। इस प्रकार शुद्ध जीव नामक वस्तु को सर्वज्ञ ने देखा जैसा आगम में प्रसिद्ध है, वह तो एक अभेदरूप शुद्ध निश्चयनय का विषयभूत जीव है, इस दृष्टि से अनुभव करे, तब तो ऐसा है और अनन्त धर्मों में भेदरूप किसी एक धर्म को लेकर कहना व्यवहार है।

आत्मवस्तु के अनादि ही से पुद्गल कर्म का संयोग है, इसके निमित्त से राग–द्वेषरूप विकार की उत्पत्ति होती है, उसको विभाव परिणति कहते हैं और इससे फिर आगामी कर्म का बंध होता है। इस प्रकार अनादि निमित्त–नैमित्तिक भाव के द्वारा चतुर्गतिरूप संसारभ्रमण की प्रवृत्ति होती है। जिस गति को प्राप्त हो, वैसे ही नाम का जीव कहलाता है तथा जैसा रागादिक भाव हो, वैसा नाम कहलाता है।

जब द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव की बाह्य अंतरंग सामग्री के निमित्त से अपने शुद्धस्वरूप शुद्धनिश्चयनय के विषयस्वरूप अपने को जानकर श्रद्धान करे और कर्म संयोग को तथा उसके निमित्त से अपने भाव होते हैं, उनका यथार्थ स्वरूप जाने, तब भेदज्ञान होता है, तब ही परभावों से विरक्ति होती है। फिर उनको दूर करने का उपाय सर्वज्ञ के आगम से यथार्थ समझकर उसको अंगीकार करे, तब अपने स्वभाव में स्थिर होकर अनन्त चतुष्टय प्रगट होते हैं, सब कर्मों का क्षय करके लोकशिखर पर जाकर विराजमान हो जाता है, तब मुक्त या सिद्ध कहलाता है।

इस प्रकार जितनी संसार की अवस्था और यह मुक्त अवस्था, इस प्रकार भेदरूप आत्मा का निरूपण है, वह भी व्यवहारनय का विषय है, इसको अध्यात्म शास्त्र में अभूतार्थ असत्यार्थ नाम से कहकर वर्णन किया है, क्योंकि शुद्ध आत्मा में संयोगजनित अवस्था हो, सो तो असत्यार्थ ही है, कुछ शुद्ध वस्तु का तो यह स्वभाव नहीं है; इसलिए असत्य ही है। जो निमित्त से अवस्था हुई, वह भी आत्मा ही का परिणाम है, जो आत्मा का परिणाम है, वह आत्मा ही में है, इसलिए कथंचित् इसको सत्य भी कहते हैं, परन्तु

जबतक भेदज्ञान नहीं होता, तबतक ही यह दृष्टि है, भेदज्ञान होने पर जैसे है; वैसे ही जानता है।

जो द्रव्यरूप पुद्गलकर्म हैं, वे आत्मा से भिन्न ही हैं, उनसे शरीरादिक का संयोग है, वह आत्मा से प्रगट ही भिन्न है, इनको आत्मा के कहते हैं, सो यह व्यवहार प्रसिद्ध है ही, इसको असत्यार्थ या उपचार कहते हैं। यहाँ कर्म के संयोगजनित भाव हैं, वे सब निमित्ताश्रित व्यवहार के विषय हैं और उपदेश अपेक्षा इसको प्रयोजनाश्रित भी कहते हैं, इस प्रकार निश्चय-व्यवहार का संक्षेप है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को मोक्षमार्ग कहा, यहाँ ऐसे समझना कि ये तीनों एक आत्मा ही के भाव हैं, इस प्रकार इनरूप आत्मा ही का अनुभव हो, सो निश्चयमोक्षमार्ग है, इसमें भी जबतक अनुभव की साक्षात् पूर्णता नहीं हो, तबतक एकदेशरूप होता है, उसको कथंचित् सर्वदेशरूप कहकर कहना व्यवहार है और एकदेश नाम से कहना निश्चय है।

दर्शन, ज्ञान, चारित्र को भेदरूप कहकर मोक्षमार्ग कहे तथा इनके बाह्य परद्रव्य स्वरूप द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव निमित्त हैं, उनको दर्शन-ज्ञान-चारित्र के नाम से कहे, वह व्यवहार है। देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहते हैं, जीवादिक तत्त्वों की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहते हैं। शास्त्र के ज्ञान अर्थात् जीवादिक पदार्थों के ज्ञान को ज्ञान कहते हैं इत्यादि।

पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्तिरूप प्रवृत्ति को चारित्र कहते हैं। बारह प्रकार के तप को तप कहते हैं। ऐसे भेदरूप तथा परद्रव्य के आलम्बनरूप प्रवृत्तियाँ सब अध्यात्म की अपेक्षा व्यवहार के नाम से कही जाती हैं, क्योंकि वस्तु के एकदेश को वस्तु कहना भी व्यवहार है और परद्रव्य की आलम्बनरूप प्रवृत्ति को उस वस्तु के नाम से कहना, वह भी व्यवहार है।

अध्यात्म शास्त्र में इस प्रकार भी वर्णन है कि वस्तु अनन्त धर्मरूप है, इसलिए सामान्य-विशेषरूप से तथा द्रव्य-पर्याय से वर्णन करते हैं। द्रव्यमात्र कहना तथा पर्यायमात्र कहना व्यवहार का विषय है। द्रव्य का भी तथा पर्याय का भी निषेध करके वचन अगोचर कहना निश्चयनय का विषय है। द्रव्यरूप है, वही पर्यायरूप है; इस प्रकार दोनों को ही प्रधान करके कहना प्रमाण का विषय है, इसका उदाहरण इस प्रकार है - जैसे जीव को चैतन्यरूप, नित्य, एक, अस्तिरूप इत्यादि अभेदमात्र कहना, वह

तो द्रव्यार्थिकनय का विषय है और ज्ञान–दर्शनरूप, अनित्य, अनेक, नास्तित्वरूप इत्यादि भेदरूप कहना पर्यायार्थिकनय का विषय है। दोनों ही प्रकार की प्रधानता का निषेधमात्र वचन अगोचर कहना निश्चयनय का विषय है। दोनों ही प्रकार को प्रधान करके कहना प्रमाण का विषय है इत्यादि।

इस प्रकार निश्चय–व्यवहार का सामान्य अर्थात् संक्षेप स्वरूप है, उसको जानकर जैसे आगम–अध्यात्म शास्त्रों में विशेषरूप से वर्णन हो, उसको सूक्ष्मदृष्टि से जानना, जिनमत अनेकांतस्वरूप स्याद्वाद है और नयों के आश्रित कथन है। नयों के परस्पर विरोध को स्याद्वाद दूर करता है, इसके विरोध का तथा अविरोध का स्वरूप अच्छी तरह जानना। यथार्थ तो गुरु आम्नाय ही से होता है, परन्तु गुरु का निमित्त इस काल में विरल हो गया, इसलिए अपने ज्ञान का बल चले, तबतक विशेषरूप से समझते ही रहना, कुछ ज्ञान का लेश पाकर उद्धत नहीं होना। वर्तमान काल में अल्पज्ञानी बहुत है, इसलिए उनसे कुछ अभ्यास करके उनमें महन्त बनकर उद्धत होने पर मद आ जाता है, तब ज्ञान थकित हो जाता है और विशेष समझने की अभिलाषा नहीं रहती है, तब विपरीत होकर यद्वा–तद्वा मनमाना कहने लग जाता है, उससे अन्य जीवों का श्रद्धान विपरीत हो जाता है, तब अपने अपराध का प्रसंग आता है; इसलिए शास्त्र को समुद्र जानकर अल्पज्ञरूप ही अपना भाव रखना, जिससे विशेष समझने की अभिलाषा बनी रहे, इससे ज्ञान की वृद्धि होती है।

अल्पज्ञानियों में बैठकर महन्तबुद्धि रखे, तब अपना प्राप्त ज्ञान भी नष्ट हो जाता है, इस प्रकार जानकर निश्चय–व्यवहाररूप आगम की कथन पद्धति को समझकर उसका श्रद्धान करके यथाशक्ति आचरण करना। इस काल में गुरु संप्रदाय के बिना महन्त नहीं बनना, जिन–आज्ञा का लोप नहीं करना।

कोई कहते हैं – हम तो परीक्षा करके जिनमत को मानेंगे, वे वृथा बकते हैं– स्वल्पबुद्धि का ज्ञान परीक्षा करने के योग्य नहीं हैं। आज्ञा को प्रधान रख करके बने जितनी परीक्षा करने में दोष नहीं है, केवल परीक्षा ही को प्रधान रखने में जिनमत से च्युत हो जाय तो बड़ा दोष आवे, इसलिए जिनकी अपने हित–अहित पर दृष्टि है, वे तो इस प्रकार जानो और जिनको अल्पज्ञानियों में महंत बनकर अपने मान, लोभ, बड़ाई, विषय–कषाय पुष्ट करने हों, उनकी बात नहीं है, वे तो जैसे अपने विषय–कषाय पुष्ट होंगे, वैसे ही करेंगे, उनको मोक्षमार्ग का उपदेश नहीं लगता है, विपरीत को किसका उपदेश ? इस प्रकार जानना चाहिए।

गाथा-६ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि... अब कहते हैं कि **जिनभाषित सूत्र...** है। देखो! सर्वत्र यह डाला है, हों! **'जिणउत्तं'** है न इसमें? वीतराग जिनेश्वर परमेश्वर, जिन्हें वीतरागता प्रगट हुई और केवलज्ञान प्रगट हुआ है। जहाँ हो, वहाँ सूत्र में यह डालते हैं। देखो! अज्ञानी ने अपनी कल्पना से शास्त्र किये हों, वह शास्त्र नहीं। **'जिणउत्तं'** वीतराग परमात्मा के मुख से निकली हुई वाणी को सूत्र कहा जाता है। **जिनभाषित सूत्र व्यवहार-परमार्थरूप दो प्रकार है,...** भेद को, रागादि को भी समझावे और अभेद को और त्रिकाली ज्ञायकभाव को भी समझावे। व्यवहार-परमार्थ दोनों को समझाता है। समझावे तो सही न? समझ में आया?

व्यवहार परमार्थरूप दो प्रकार है, उसको जानकर... व्यवहार को व्यवहाररूप से जानकर, इसकी व्याख्या लम्बी आयेगी। और निश्चय को, परमार्थ को परमार्थरूप से जानकर। **योगीश्वर शुद्धभाव करके सुख को पाते हैं।** योगी अर्थात् आत्मा के आनन्दस्वरूप में योग अर्थात् जोड़नेवाला ऐसा योगी। जो पुण्य-पाप में जुड़ान है, वह अयोगी है। अयोग और अयोगी। आहाहा! चैतन्यसाहिबो भगवान अनन्त आनन्द का नाथ, उसमें जुड़ान करे। योगधातु अन्दर युज है न? युज। युजधातु है, जुड़ान करना। आनन्दकन्द ध्रुव में जुड़ान करना, इसे यहाँ योगी कहा जाता है। उन बाबा योगी की यहाँ बात नहीं है, हों!

भगवान ने परमेश्वर ने केवलज्ञानी ने कहा, ऐसा जो आत्मा वस्तु जो अनन्त आनन्द और ज्ञान का धाम, उसमें जो वर्तमान पर्याय को जोड़े। जो ऐसे राग और पुण्य में जोड़ता है, वह अयोगी, अलायक, अपात्र है और जो वर्तमान दशा को त्रिकाल में जोड़े, वह योगी, धर्मी, लायकात, योग, योग्यतावाला, सिद्धपद को लेने के योग्य है। समझ में आया? नया व्यक्ति हो तो ऐसा लगे क्या कहते हैं? ऐसा धर्म? ऐसा तो वीतराग का मार्ग होगा यह? जैन में तो हमने अभी तक ऐसा कुछ सुना नहीं था। शत्रुंजय जाना, ऐसा करना, रात्रि में नहीं खाना, कन्दमूल नहीं खाना... समझ में आया? ब्रह्मचर्य पालना, किसी की दया पालना,

दान देना। दान, शील, तप भावना, ऐसा सुना था। यह तो सब विकल्प की बाहर की बातें हैं। वह परमार्थ से कोई धर्म–बर्म है नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह सब बात व्यवहार में जायेगी। हेय में जायेगी। आहाहा! परमार्थ में तो भगवान आत्मा अकेला त्रिकाली अभेद चैतन्य की दृष्टि करना। वही परम पदार्थ है। विश्वास–भरोसे में भगवान आना चाहिए, ऐसा कहते हैं। भरोसे में पामरता पर्याय और राग को भरोसे में नहीं आना चाहिए।

अनादि से भगवान भिखारी होकर राग के भरोसे भटकता है। समझ में आया? आहाहा! कुछ न कुछ दो–पाँच–पचास लाख वाली रूपवान चीज़ देखे न तो (इसे ऐसा लगता है) कि ऐसा मुझे होवे तो ठीक। ऐसी धूल होवे तो ठीक। आहाहा! अरे! भिखारी रंक! भिखारी है, रंक! कुछ शरीर सुन्दर दिखाई दे, कुछ पैसा–बैसा, अच्छे मखमल के वस्त्र पहने हो, ऐसे लटकती वह हो... क्या कहलाता है वह? (कान की) बाली। (कान की) बाली कहलाता है? क्या कहलाता है? ऐसे डालते हैं। आहाहा! और लाख लोग एकत्रित होते हों और भाषण करता हो, लोग सुनते हों (तो...) आहाहा! अपने ऐसा होवे तो अच्छा। परन्तु वह तो भाषा जड़ है, उसका तुझे क्या काम है? समझ में आया? आहाहा! अन्दर में आत्मा जो आनन्दकन्द ज्ञायकमूर्ति है, वह मुझे चाहिए है, ऐसा तो कर। समझ में आया?

योगीश्वर शुद्धभाव करके सुख को पाते हैं– देखा? शुद्धभाव। समझ में आया? **'लहइ सुहं'** है न? देखो! **'जं सुत्तं जिणउत्तं'** देखो! यह भाषा देखो। मेल है। **'जं सुत्तं जिणउत्तं'** भगवान के शास्त्र कैसे हैं? **'जिणउत्तं'** जिन ने कहे हुए। **'उत्तं'** अर्थात् कहे हुए। है, संस्कृत है। **'यत्सूत्रं जिनोक्तं' 'ववहारो तह य जाण परमत्थो '** व्यवहार से उसका स्वरूप क्या है, उसे भी जानना और परमार्थ से उसका स्वभाव क्या है, उसे भी जान। जानना तो दोनों चाहिए या नहीं? व्यवहार भी जानना तो चाहिए या नहीं? रागादि, पुण्य आदि परिणाम होते हैं, उन्हें जानना चाहिए। आदरणीय नहीं है। समझ में आया? **'तं जाणिऊण जोई'** उन्हें जानकर योगी **'लहइ सुहं'**। आत्मा के आनन्द को प्राप्त करे। सुख अर्थात् आत्मा का आनन्द। और **'खवइ मलपुंजं'** और राग–द्वेष के मैल जो विकारी भाव, वह जो मल का पुंज है, कहते हैं। आहाहा! भगवान आनन्द का पुंज प्रभु है, उसका आश्रय करके सुख पाये और मल पुंज को नष्ट करे। निर्मल पुंज को आदर करने से निर्मल पुंज

की पर्याय प्रगट होने पर मल / मैल, राग–द्वेष, अज्ञान, पुण्य में सुख है और पाप में मजा है और पुण्यपरिणाम अच्छा है और यह करते–करते धर्म होगा, यह सब मिथ्यात्व मलपुंज है। समझ में आया? देव दिखाई दे तो ऐसा कहे, आहा! देव तो अनन्त बार हुआ। सुन न! रूपवान शरीर हो, जरी के वस्त्र हों... भोगीभाई नहीं कहते थे? भोगीभाई कहे मैं ध्यान में बैठा था तो एक देव–देवी आये। कल्पना हो गयी। कौन है? देवी। चली जा। भोगीभाई (वढवा)। वे वढवा में बैठे थे। ऐसे जरी के वस्त्र ऊँचे। चलो श्रीमद् के पास ले जाऊँ। चली जा। ऐसा कहा वहाँ देवी अदृश्य हो गयी। भोगीभाई कहते थे। भले कल्पना (हुई हो)। परन्तु इस प्रकार... खम्भात के बाहर जंगल में उतरे थे न! जाये कहाँ और आये कहाँ? स्त्री का शरीर देखकर भड़कने का कहाँ? वह तो एक मिट्टी का पिण्ड है। अन्दर आत्मा तो भिन्न चीज़ है। समझ में आया? आहाहा! और वह चेष्टा करे राग की, वह तो आस्रव और दुःख का कारण वह स्वयं करता है। ऐसे तत्त्वों का विचार करके हेय तत्त्व को हेयरूप से जानकर, उपादेयरूप से आत्मा को जानकर सुख को प्राप्त करे और दुःख के पुंज को नष्ट करे। उत्पाद–व्यय हुए। लो।

अर्थ – जो जिनभाषित सूत्र है,... भगवान ने कहे हुए जो शास्त्र है, **वह व्यवहाररूप तथा परमार्थरूप है,...** शास्त्र में दोनों बात है। व्यवहार की बात तो आवे या नहीं? छोड़नेयोग्य चीज़ क्या है, उसका ज्ञान नहीं आवे? पुण्य और पाप के विकल्प राग, वह व्यवहार है, परन्तु छोड़नेयोग्य है। भगवान आत्मा आनन्द का नाथ है, वह आदरणीय है। दोनों बात शास्त्र में आती है। वहाँ उस व्यवहार की बात आवे, वहाँ कहे, देखो! है या नहीं? परन्तु है, इससे किसने इनकार किया? हेय है या आदरणीय है या अनादरणीय है? समझ में आया?

व्यवहाररूप तथा परमार्थरूप है, उसको योगीश्वर जानकर... धर्मी। योगीश्वर अर्थात् धर्मी। स्वरूप में योग करनेवाले–जुड़ान करनेवाले। जो अनादि का विकार में जुड़ानवाला, वह अधर्मी है और अपने शुद्धस्वरूप में जुड़ान करनेवाला, वह धर्मी योगीश्वर है। **सुख पाते हैं और मलपुंज अर्थात् द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म का क्षेपण करते हैं।** लो। द्रव्यकर्म अर्थात् आठ कर्म जड़। उनका नाश होता है। अपने आत्मा के आनन्दस्वरूप का आश्रय करके आनन्द की प्राप्ति दशा में होने पर आठ जड़कर्म का नाश (होता है)।

भावकर्म—पुण्य-पाप के विकल्प, वह भावकर्म है। द्रव्यकर्म जड़ है न? ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय (आदि) आठ कर्म है। आत्मा का आश्रय करने से आठों कर्म खिर जाते हैं। सम्यक् दृष्टि से आगे बढ़ाकर (बात की)। पाँचवें में सम्यग्दृष्टि की बात की थी न? यहाँ पूरा आगे बढ़ा। पूर्ण स्वरूप का आश्रय करके स्थिर होता है, वह पूर्ण सुख को पाता है और **परमार्थरूप है, उसको योगीश्वर जानकर सुख पाते हैं और मलपुंज अर्थात् द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म (तीनों) का क्षेपण करते हैं।** अर्थात् क्या? कि आठ कर्म जो जड़ है, उनका नाश हो जाए। आत्मा के आनन्द की प्राप्ति होने पर और आनन्द का आश्रय लेने से। भावकर्म अर्थात् पुण्य और पाप के विकल्प विकारी भाव कर्म मैल है, उनका नाश होता है। नोकर्म अर्थात् यह शरीर, इसका भी नाश होता है। और अशरीरी आत्मा जैसा है, वैसा प्राप्त होता है। समझ में आया?

भावार्थ – जिनसूत्र को व्यवहार-परमार्थरूप यथार्थ जानकर... वीतराग के सिद्धान्तों को व्यवहाररूप से व्यवहार जानकर और परमार्थरूप से परमार्थ जानकर धर्मी **योगीश्वर (मुनि) कर्मों का नाश करके अविनाशी सुखरूप मोक्ष को पाते हैं।** लो। पाँचवीं में सम्यग्दर्शन लिया था न? आगे बढ़कर मुनि होता है। आनन्दकन्द में झूलते हुए, बाह्य नग्नदशा। मुनि वनवास में रहते हैं। ऐसे वनवासी बाह्य में मनुष्य के पगरव में भी जो नहीं रहते। एकान्त... एकान्त... आत्मा के आनन्द में झूलते ऐसे मुनि आनन्द को पाते हैं। **अविनाशी सुखरूप मोक्ष को पाते हैं।**

परमार्थ (निश्चय) और व्यवहार इनका संक्षेप स्वरूप... परमार्थ (निश्चय) और व्यवहार इनका संक्षेप स्वरूप... इतना कहा है। व्यवहार की व्याख्या नहीं की। परमार्थपना वह निश्चय। सच्चा स्वरूप क्या? व्यवहार, उसका भेदरूप और रागादि। **इनका संक्षेप स्वरूप इस प्रकार है...** अब इनका संक्षेप / संक्षिप्त में स्वरूप ऐसा है कि **जिन आगम की व्याख्या चार अनुयोगरूप शास्त्रों में दो प्रकार से सिद्ध है,...** भगवान की वाणी में चार अनुयोग आये। चार अनुयोग के नाम नहीं। द्रव्यानुयोग। वस्तु के स्वरूप का, द्रव्य है उसका कथन जिसमें हो वह द्रव्यानुयोग। द्रव्य अर्थात् वस्तु। जिसमें उसका कथन हो, वह द्रव्यानुयोग। चरणानुयोग—पुण्य-पाप के परिणाम की व्याख्या हो, उसका नाम चरणानुयोग। करणानुयोग—अकेले परिणाम की, सूक्ष्म परिणाम की व्याख्या

हो, उसका नाम करण अनुयोग और धर्मकथानुयोग—जिसमें धर्मात्मा कौन हो गये उनका कथन जिसमें हो, वह धर्मकथानुयोग। इसे चार अनुयोग कहे। इन सबका इसमें लम्बा कथन है।

चार अनुयोगरूप शास्त्रों में दो प्रकार से सिद्ध है, एक आगमरूप दूसरी अध्यात्मरूप। शास्त्र में एक आगम की कथनी है और एक अध्यात्म की कथनी है। अब यह आगम की, अध्यात्म की कथनी क्या है, विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-२५, गाथा-६, शुक्रवार, ज्येष्ठ कृष्ण अमावस्या, दिनांक ०३-०७-१९७०

यह अष्टपाहुड़, इसके सूत्रपाहुड़ की ६वीं गाथा। सूत्र शब्द तो बहुत जगह आता है। प्रत्येक शास्त्र शुरु करते हुए, सूत्र देने से पहली गाथा में। सूत्र अवतार। **पंचास्तिकायसंग्रह सूत्र कहा।** अन्तिम गाथा। वहाँ कहते हैं कि सूत्र अर्थात् भगवान की वाणी। उसमें व्यवहार और परमार्थरूप जानकर आत्मा कर्म का नाश करके अविनाशी सुखरूप मोक्ष को पाता है। यह मात्र शब्द का अर्थ हुआ।

जो कोई धर्मात्मा, यहाँ मुनि की मुख्य बात ली है न? कि सिद्धान्त शास्त्र में व्यवहार को व्यवहाररूप से कहा, निश्चय को परमार्थ कहा, परमार्थ शब्द प्रयोग करते हैं। इसलिए परमार्थ को परमार्थ जानकर और व्यवहार को व्यवहार जानकर, व्यवहार है, उसे हेय जानकर और अपना परमार्थस्वरूप है, उसे उपादेय जानकर, अन्तर में एकाग्र होकर आठ कर्म का नाश करके मोक्ष को पाते हैं। कहो, समझ में आया?

परमार्थ (निश्चय) और व्यवहार... मूल शब्द परमार्थ है परन्तु वापस इसका अर्थ किया। **परमार्थ (निश्चय) और व्यवहार इनका संक्षेप स्वरूप इस प्रकार है कि जिन आगम की व्याख्या चार अनुयोगरूप शास्त्रों में दो प्रकार से सिद्ध है, एक आगमरूप दूसरी अध्यात्मरूप।** एक आगमरूप कथनी और एक अध्यात्म का कथन।

वहाँ सामान्य-विशेषरूप से सब पदार्थों का प्ररूपण करते हैं, सो आगमरूप

है,... छहों द्रव्य का सामान्य और विशेष से जो इनका स्वरूप है, उस प्रकार से कहना, इसका नाम आगमपद्धति का सामान्य-विशेष निश्चय-व्यवहार कहा जाता है। आगमपद्धति में छहों द्रव्य का कथन आता है। **परन्तु जहाँ एक आत्मा ही के आश्रय निरूपण करते हैं, सो अध्यात्म है।** एक आत्मा के आश्रित जहाँ कथन आवे, उसका नाम अध्यात्म है।

पहले दो भेद किये, दूसरे दो भेद (कहते हैं)। **अहेतुमत् और हेतुमत् ऐसे भी दो प्रकार हैं,...** आगम के-सिद्धान्त के दो प्रकार हैं। एक अहेतुमत। भगवान ने कहा, उसे जानना। **वहाँ सर्वज्ञ की आज्ञा से ही केवल प्रमाणता मानना अहेतुमत् है...** भगवान ऐसा कहते हैं। अनन्त निगोद के जीव, अनन्त परमाणु। एक-एक ऐसे अनन्त परमाणु, उसमें एक-एक में अनन्त गुण। वह सब (बात) भगवान की आज्ञा से हेतु बिना, युक्ति, नय को स्थापित किये बिना भगवान ने ऐसा कहा है, वैसा मानना, इसका नाम अहेतुमत कहा जाता है। **और प्रमाण नय के द्वारा वस्तु की निर्बाध सिद्धि करके मानना सो हेतुमत् है।** यह समयसार आदि। युक्ति से, न्याय से, हेतु से वस्तु को सिद्ध करते हैं, साबित करते हैं। पहले आगम और अध्यात्म के भेद किये। उसमें हेतुमत और अहेतुमत ऐसे दो भेद किये। **इस प्रकार दो प्रकार से आगम में निश्चय-व्यवहार से व्याख्यान है,...** निश्चय और व्यवहार का व्याख्यान ऐसा है। **वह कुछ लिखने में आ रहा है।**

जब आगमरूप सब पदार्थों के व्याख्यान पर लगाते हैं,... छहों द्रव्य, **तब तो वस्तु का स्वरूप सामान्य-विशेषरूप अनन्त धर्मस्वरूप है, वह ज्ञानगम्य है,...** वस्तु का स्वभाव सामान्य-विशेष (स्वरूप है)। अभेद और पर्याय आदि भेद, उसका कथन। **अनन्त धर्मस्वरूप है, वह ज्ञानगम्य है,...** ज्ञान में जाना जा सके, ऐसी वह चीज़ है। वाणी में वह पूरा नहीं आ सकता। **इनमें सामान्यरूप तो निश्चयनय का विषय है...** आगम में भी, हों! प्रत्येक द्रव्य को सामान्यरूप—ध्रुवरूप, यह तो निश्चय का विषय (हुआ)। **और विशेषरूप जितने हैं उनको भेदरूप करके भिन्न-भिन्न कहे वह व्यवहारनय का विषय है,...** गुणभेद करके कहना, पर्यायभेद करके कहना, वह सब व्यवहारनय का विषय है। परन्तु है दोनों विषय, वस्तु है। समझ में आया? ऐसा इसे बराबर जानना चाहिए।

उसको द्रव्य पर्याय स्वरूप भी कहते हैं। पहले सामान्य कहा था न? और भेद

पाड़कर विशेष कहा था। तो कहते हैं कि उसे द्रव्य और पर्यायरूप भी (कहते हैं) । द्रव्य, वह सामान्य है और भेद से, पर्याय से और गुणभेद से कहना, वह सब पर्याय है। समझ में आया ? बहुत सरस लिखा है, यह तुम्हारे पण्डित जयचन्दजी ने।

मुमुक्षु : स्पष्ट आपने किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। इसमें लिखा है न बराबर! यह तो लोगों को सीधी रीति से सादी रीति से समझ में आये, सादा और सीधा कैसे समझ में आये, वैसी भाषा की है न!

कहते हैं, **जिस वस्तु को विवक्षित करके सिद्ध करना हो...** जो कहना चाहते हैं, उसे सिद्ध करते हैं, **उसके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से जो कुछ सामान्य-विशेषरूप वस्तु का सर्वस्व हो, वह तो निश्चय-व्यवहार से कहा है, वैसे सिद्ध होता है...** द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव। अखण्ड और अभेद कहना, वह सामान्य। तथा भेद पाड़कर कहना, वह विशेष। विशेष वस्तु का ऐसा पूरा स्वरूप है, ऐसा जानने का नाम, **निश्चय-व्यवहार से कहा है, वैसे सिद्ध होता है...**

और उस वस्तु के कुछ अन्य वस्तु के संयोगरूप... देखो! पहले यह सिद्धान्त सिद्ध किया। समझ में आया ? और उस वस्तु को अन्य वस्तु के संयोग से अवस्था हो **उसको उस वस्तुरूप कहना भी व्यवहार है, इसको उपचार भी कहते हैं।** वस्तु आगम की अपेक्षा से, हों! उसके पर्यायभेद और सामान्य, वह तो वस्तु में गये। परन्तु तदुपरान्त कोई जैसे घड़े में लाख चिपकी हो और उसे घड़ा कहना। शरीर आत्मा का है नहीं, शरीर जीव का कहना—यह सब व्यवहार के—उपचार के कथन हैं। समझ में आया ? वस्तु तो सामान्य-विशेष दो रूप है। उसे निश्चय और व्यवहार से जानना। आहाहा!

इसका उदाहरण ऐसे है - जैसे एक विवक्षित घट नामक वस्तु... लो, दृष्टान्त देते हैं। घड़ा, घड़ा। उस पर लगाते हैं। **तब जिस घट का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप सामान्य-विशेषरूप जितना सर्वस्व है,...** द्रव्य (अर्थात्) वस्तु, क्षेत्र—चौड़ाई, काल—अवस्था, और भाव—गुण, यह सब पूरा वस्तु का स्वरूप है। सामान्य और विशेषरूप। सामान्य अर्थात् कि द्रव्यरूप, ध्रुवरूप, अभेदरूप। और विशेष अर्थात् उसकी पर्यायरूप

गुणभेदरूप वह विशेष। यह सब सर्वस्व घड़े का पूरा स्वरूप है। मगनभाई! बहुत सादी भाषा की बात है। न समझ में आये, ऐसा कुछ नहीं।

मुमुक्षु : यह तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो इन्हें हिन्दी भाषा नहीं आती थी। हिन्दी पढ़ना नहीं आता था। ढुंढारी भाषा। यह तो और सरल भाषा है। इसे न आता हो। समझ में आया?

वैसे निश्चय-व्यवहार से कहना वह तो निश्चय-व्यवहार है और घट के कुछ अन्य वस्तु का लेप करके उस घट को उस नाम से कहना तथा अन्य पटादि में घट का आरोहण करके घट कहना... पट का ऐसा आकार किया हो न वस्त्र का। यह तो घड़ा है, (ऐसा कहे)। समझ में आया? पट का ऐसा घड़े जैसा आकार किया हो न, तो कहे—यह घड़ा है। ऐसे घड़े का दूसरे में आरोपण करना, उसे भी एक व्यवहार से घड़ा कहा जाता है।

व्यवहार के दो आश्रय हैं, एक प्रयोजन, दूसरा निमित्त। प्रयोजन के आश्रय से व्यवहार, एक निमित्त के आश्रय से व्यवहार। **प्रयोजन साधने को किसी वस्तु को घट कहना, वह तो प्रयोजनाश्रित है...** यह घड़े जैसा इसका सिर है, ऐसा कहा जाता है न? इसका घड़े जैसा सिर है, अमुक जैसा है। ऐसा कहकर उसे (ऐसा कहे), यह रहा घड़ा। लो। सिर को घड़ा कहना। यह प्रयोजन सिद्ध करने, वह वस्तु कैसे आकारवाली है, ऐसा सिद्ध करने के लिये भी व्यवहार आता है। **अन्य वस्तु के निमित्त से घट में अवस्था हुई, उसको घटरूप कहना, वह निमित्ताश्रित है।** नगीना लगाया हो, लाख चुपड़ी हो। पानी का घड़ा कहना, मोम का घड़ा कहना, दूसरे के कारण कहना न? घी का घड़ा कहना। यह सब उपचार से है। घड़ा घी का नहीं है। घड़ा तो सामान्य विशेषरूप है। निश्चय-व्यवहार है, वह है। समझ में आया? देखो! किस प्रकार से शास्त्र को पढ़ना, इसकी एक कला रखते हैं। **इस प्रकार विवक्षित...** जो कहना चाहते हैं, उस चीज़ को, ऐसा कहते हैं। **सर्व जीव अजीव वस्तुओं पर लगाना।** यह आगम की बात की।

एक आत्मा ही को प्रधान करके लगाना अध्यात्म है। एक आत्मा पर जब बात हो, तब अध्यात्म कहा जाता है। **जीव सामान्य को भी आत्मा कहते हैं।** द्रव्य

जीव का, उसके गुण, उसकी पर्याय सबको आत्मा भी कहा जाता है। समझ में आया? अध्यात्म में तीनों को आत्मा कहा जाता है। सामान्य सब एक हो गया न। **जो जीव अपने को सब जीवों से भिन्न अनुभव करे, उसको भी आत्मा कहते हैं,...** भगवान आत्मा राग से-विकल्प से भिन्न और एक समय की पर्याय जितना वह नहीं, पूर्ण ध्रुव स्वरूप, उसका जो अनुभव करने पर वह अनुभव करता है, वह आत्मा का अनुभव कहा जाता है। समझ में आया? यह मुद्दे की रकम आयी।

जो जीव अपने को सब जीवों से भिन्न अनुभव करे... देखो! सर्व जीवों से भिन्न **अनुभव करे, उसको भी आत्मा कहते हैं। जब अपने को सबसे भिन्न अनुभव करके, अपने पर निश्चय लगावे तब इस प्रकार जो आप अनादि-अनन्त...** भगवान आत्मा अनादि-अनन्त है, **अविनाशी सब अन्य द्रव्यों से भिन्न...** है। सब अन्य पदार्थों से भगवान आत्मा अत्यन्त भिन्न है। **एक सामान्य विशेषरूप अनन्तधर्मात्मक द्रव्य पर्यायात्मक जीव नामक शुद्ध वस्तु है,...** दोनों इकट्ठा होकर, हों! एक सामान्य-विशेषरूप सब इकट्ठा होकर। **अनन्तधर्मात्मक द्रव्य-पर्यायात्मक जीव नामक शुद्ध वस्तु है,...** इसे भी निश्चय कहा जाता है। पर्यायसहित सामान्य सर्वत्र इसे निश्चय कहा जाता है। स्व आश्रित है न वह? स्व आश्रित द्रव्य और पर्याय, उसे भी निश्चय कहा जाता है। यह तो किस प्रकार पढ़ना, इसकी शैली रखी दी है। समझ में आया?

वह कैसा है? शुद्ध दर्शन-ज्ञानमयी चेतनास्वरूप असाधारण धर्म को लिए हुए अनन्त शक्ति का धारक है,... भगवान आत्मा अनन्त चेतनाशक्ति (धारक है)। समझ में आया? जिसकी एक समय की पर्याय में चेतनाशक्ति और चेतना का धारक चेतन का ज्ञान आ जाए, ऐसे अनन्त तीन काल के द्रव्यों का ज्ञान आवे, तथापि उस चैतन्यशक्ति से पर्याय तो भिन्न और एक समय की अवस्था है। समझ में आया? चैतन्यशक्ति का पिण्ड वह तो अकेला है। आहाहा! समझ में आया? वस्तु है न? अस्ति है न? उसका स्वभाव है न? और स्वभाव है, वह एकरूप चैतन्य की गाँठ, वह आत्मा का स्वभाव है। उसमें राग भी नहीं आता, एक समय की पर्याय भी नहीं आती। त्रिकाल चैतन्य की गाँठ। समझ में आया?

शक्ति का समूह द्रव्य है। द्रव्य की बात करना है न यहाँ? आहाहा! एक समय की ज्ञान की पर्याय, उसमें क्या जानने में न आवे? वास्तव में तो एक समय की पर्याय में द्रव्य जानने में आवे, गुण जानने में आवे, स्वयं पर्याय पर्याय को जाने और लोकालोक भी एक समय की पर्याय में ज्ञात हो जाए। ऐसा परिपूर्ण एक समय का अंश है, वह सामान्य नहीं। समझ में आया? ऐसी अनन्त पर्याय सामान्यरूप से, उनके गुणरूप जो वस्तु है और अनन्त गुण का एकरूप वस्तु है, उसे यहाँ द्रव्य कहा जाता है। समझ में आया?

यह वस्तु... वस्तु द्रव्य, भगवान आत्मा, कहते हैं कि सामान्य उसे कहते हैं। ऐसा कहते हैं न यहाँ? शक्ति के समूहरूप द्रव्य, ऐसा कहा न? विशेष की बात बाद में करेंगे। आहाहा! अरे! कहते हैं, यह भगवान कितना है? कि जिसकी एक समय की पर्याय है, उसमें परिपूर्णता सब आ जाती है, कोई बाकी नहीं रहता। मानों एक समय की पर्याय ही पूरी वस्तु हो जगत की! तथापि कहते हैं कि इतना द्रव्य नहीं। समझ में आया? द्रव्य तो चैतन्य की गाँठ पूरा कहा न? अनन्त ज्ञान-दर्शन चेतना अनन्त शक्ति का समूह, ऐसा लेना है न यहाँ? वह गुण जो है शक्ति, ऐसी अनन्त शक्ति का समूह, वह द्रव्य है। आहाहा!

उसका कितना सामर्थ्य है! जिसकी एक पर्याय में अनन्त केवली ज्ञात हों तो भी वह चैतन्यशक्ति का समूह वह चीज़ नहीं। समझ में आया? उस एक समय की पर्याय को गौण करके पूरा भगवान ऐसी अनन्त पर्याय के सामर्थ्यवाला एक गुण, श्रद्धा की एक समय की पर्याय जो पूर्ण की श्रद्धा करती है। द्रव्य को, गुण को सबको श्रद्धती है। परन्तु वह श्रद्धा करती है, ऐसी जो एक समय की पर्याय, वह भी द्रव्य नहीं। आहाहा! देखो! यह आत्मा का दहेज! यह देखो! इसके घर का भाव। कहते हैं कि ऐसी-ऐसी अनन्त पर्यायें परिपूर्ण, परिपूर्ण, श्रद्धा परिपूर्ण, ज्ञान परिपूर्ण, स्थिरता परिपूर्ण, आनन्द इत्यादि-इत्यादि। परन्तु वह सब पर्याय, वह द्रव्य नहीं। समझ में आया?

द्रव्य तो अनन्त चैतन्यशक्ति का समूह, उसे द्रव्य कहते हैं। परिपूर्ण एक-एक पर्याय सम्यक्त्व की, ज्ञान की, आनन्द की, वीर्य की, स्वच्छता की, प्रभुता की इत्यादि अनन्त गुण की एक-एक समय की परिपूर्णता, वह भी द्रव्य नहीं। ऐसी अनन्त पर्याय की शक्ति और ऐसी अनन्त शक्ति का समूह, उसे द्रव्य कहते हैं। मगनभाई! कहो, कहीं होगी ऐसी बात?

मुमुक्षु : हाँ, सोनगढ़ में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो दूसरे कहें, विश्वधर्म। अब सुन न! विश्वधर्म यह है। सबका समन्वय करें... भाई! ऐसी वस्तु नहीं है। भाई! यह तो स्वभावधर्म है। द्रव्यरूप स्वभावधर्म। आहाहा! एक-एक स्वभावशक्ति बड़ी सागर शक्ति पड़ी है। जिसमें परिपूर्ण एक-एक पर्याय तो अनन्त जिसमें प्रविष्ट है। आहाहा! ऐसी अनन्त शक्ति का समूह, ऐसी चेतना की अनन्त शक्ति का समूह, वह द्रव्य है। समझ में आया?

शुद्ध दर्शन ज्ञानमयी चेतनास्वरूप असाधारण धर्म को लिए हुए... असाधारण ऐसे स्वभाव को लिए हुए **अनन्त शक्ति का धारक है, उसमें सामान्य...** समझ में आया? **अनन्त शक्ति का धारक है, उसमें सामान्य भेद चेतना अनन्त शक्ति का समूह द्रव्य है।** आहाहा! एकरूप सामान्य अंश भाग। **उसमें सामान्य भेद चेतना अनन्त शक्ति का समूह...** दो में पर्याय में यह एक सामान्य भाग पूरा रह गया। **सामान्य भेद चेतना अनन्त शक्ति का समूह द्रव्य है।** चेतना का सामान्यपना एकरूप त्रिकाल। ओहोहो! महा पदार्थ बड़ा! कहो, प्रकाशदासजी! है इसमें कहीं अन्यत्र? सुना था वहाँ कबीर में? तेरा साहेब ऐसा है, कहते हैं। आहाहा!

एक-एक समय की पर्याय को सिद्धसाहेब कहो तो ऐसी तो अनन्त पर्यायों का सागर भगवान महा सिद्ध का सिद्धसाहेब है। आहाहा! एक तो वह गति का शब्द मस्तिष्क में उठा था, भाई! गति प्राप्त, कहा न? पहली गाथा में **'गदिं पत्ते'** (कहा)। **'धुवमचल-मणोवमं गदिं पत्ते।'** उसमें से... **'गदिं'** अर्थात् अस्तिरूप, विद्यमानरूप भाव, ऐसा कहना है। और किसी ने कहा। पहली गाथा है न?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह तो अपने.. **'गदिं'** है न? अस्ति की स्थिति। **'धुवमचल-मणोवमं गदिं पत्ते।'** गति प्राप्त अर्थात् एक अस्ति की स्थिति को प्राप्त। समझ में आया? ऐसा इसका अर्थ दूसरा आया था, आज सवेरे। ध्रुव वस्तु जो त्रिकाल, यह सामान्य जो कहते हैं वह, वह अचल है, अनुपम है और अस्ति की स्थिति को बताती है। उसकी अस्ति इतनी है। यहाँ तो पर्याय से बात चलती है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं न ? अनन्त ज्ञान, दर्शन... **उसमें सामान्य भेद चेतना अनन्त शक्ति का समूह द्रव्य है।** भेद में क्या आया ? यह द्रव्य जो है, ध्रुव... ध्रुव, वह ध्रुव है, अचल है, अनुपम है और अस्ति की... क्या कहा ? स्थिति, उसकी त्रिकाल अस्ति की स्थिति बताते हैं। यहाँ पर्याय की बात है परन्तु वस्तु ध्रुव सामान्य जो वस्तु है, उसके अस्तित्व की मर्यादा बताते हैं, इतनी उसकी मर्यादा है। समझ में आया ? जब पर्याय में इतना आया, भाई ! पर्याय की व्याख्या है न यह तो ? पर्याय इतनी आयी तो फिर ऐसी-ऐसी अनन्त पर्याय अन्दर है। ध्रुव, अचल, अनुपम की अस्तिवाला सत्ता तत्त्व है। समझ में आया ? पहली गाथा में बहुत डाला है। ओहोहो ! ऐसी वस्तु की पर्याय और उन सर्व सिद्धों को नमस्कार (किया)। समझ में आया ?

ऐसे जो द्रव्य हैं, अनन्त आत्मायें सिद्धरूप सर्व हैं। क्योंकि ऐसी जो ध्रुव, अचल, अनुपम पर्याय को प्राप्त हुए और प्राप्त होने के योग्य, ऐसे जो ध्रुव भगवान आत्मा... समझ में आया ? अपनी अस्ति की स्थिति को प्राप्त हैं, वे सब सिद्ध हैं। वे सब सिद्ध हैं। अर्थात् अस्तिवाला तत्त्व है। अनन्त सिद्धों को जिसने ज्ञान की पर्याय में लिया और ऐसी अनन्त पर्याय संग्रह कर अन्दर घर में बैठा है, वह अनन्त सिद्ध स्वयं है। समझ में आया ? वहाँ सर्व सिद्ध अंक लिया है। संख्या का, पर्याय का। यहाँ तो द्रव्य में डाला। अपने में अनन्त सिद्ध स्वरूप है, अनन्त सिद्धस्वरूप स्वयं है। मगनभाई ! समझ में आया ? ऐई ! चिमनभाई ! समझ में आया इसमें ? यह सब समझना पड़ेगा। इस सब थोथा में कुछ नहीं मिलेगा, मर गया हैरान होकर। रखड़पट्टी कर-करके। आहाहा ! यह भटकना और भटकने का भाव इसकी चीज़ में नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! परन्तु है कितना ? यह नहीं, तो कैसा इतना है ?

जो सिद्धदशा को परमात्मा प्राप्त हुए, ऐसे-ऐसे अनन्त सिद्ध द्रव्यरूप से है। वस्तु में अनन्त सिद्ध है, ऐसे अनन्त सिद्धस्वरूप द्रव्य जो है, उसे आदर करता हूँ। समझ में आया ? महाराज ! व्यवहार कहा है न अनन्त सिद्धों को नमस्कार (किया है)। अब सुन न ! वहाँ व्यवहार सिद्ध को ज्ञान की पर्याय में समाहित कर दिया है। अनन्त सिद्धों को ज्ञान की पर्याय में समाहित किया है। एक पर्याय में अनन्त सिद्ध ज्ञान में आ गये हैं। और ऐसी अनन्त पर्यायें अन्दर में पेट में—द्रव्य में पड़ी है। अनन्त सिद्धों को मैं आदर करता

हूँ। मेरा द्रव्य जो अनन्त सिद्धस्वरूप है, उसे मैं आदर करता हूँ। निश्चय तो यह है। मगनभाई! आहाहा!

विकल्प बिना की चीज़ तो है परन्तु पर्याय की परिपूर्णतावाली पर्याय, उससे रहित की चीज़ है। आहाहा! समझ में आया? संसार का उदयभाव तो जिसमें नहीं परन्तु जिसमें.... क्योंकि पूरी पर्याय है, इसलिए अपूर्णता भी उसमें नहीं। पर्याय में, हों! विकार तो नहीं परन्तु पर्याय में भी अपूर्ण नहीं। ऐसी जो पर्याय, ऐसी जो ध्रुव, अचल, अनुपम पर्याय, ऐसी अनन्त पर्यायों का चैतन्यपिण्ड भगवान आत्मा, उस चैतन्य साहेब की क्या बात करना! कहते हैं, यह बात, उसे चैतन्य ऐसा है, ऐसा अन्दर दृष्टि में इसने कभी लिया नहीं। और उसे दृष्टि में लिये बिना ऐसा वह स्वरूप है, ऐसा दृष्टि में लिये बिना सम्यक्ता, सत्यता, वह सत्य होगा नहीं। समझ में आया? सम्यक् अर्थात् सच्चा, सच्चा। सच्चा कब होगा? सच्ची श्रद्धा—ज्ञान पर्याय में तब होते हैं कि इतना चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा एक-एक पूरा ऐसा, हों! एक-एक ऐसे आत्मा हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसे चैतन्य को अनन्त शक्ति का समूह, ऐसा लिया है न? आहाहा! 'सामान्य धर्म को लिये (हुए)', ऐसा है न?

शुद्ध दर्शन-ज्ञानमयी चेतनास्वरूप असाधारण धर्म को लिए हुए अनन्त शक्ति का धारक है,... धारक है। अस्तिरूप से है, सत्ता है, अस्तिरूप स्थिति उसकी है। समझ में आया? आहाहा! **उसमें सामान्य भेद चेतना अनन्त शक्ति का समूह द्रव्य है।** लो। समझ में आया? उसमें सामान्य का एक भाग। पहले समुच्चय लिया, फिर उसमें **सामान्य भेद चेतना अनन्त शक्ति का समूह द्रव्य है। अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य ये चेतना के विशेष हैं...** भेद पड़ा, वह तो। आहाहा! समझ में आया? भगवान अनन्त आनन्द की पर्याय से परिपूर्ण प्रगट होकर बाहर आया, कहते हैं कि उस परिपूर्ण आनन्द में भी परिपूर्णता आयी परन्तु उतना वह द्रव्य (जितना) परिपूर्ण नहीं है। समझ में आया? ऐसी तो अनन्त आनन्द की पर्यायें आनन्दगुण में (पड़ी है), ऐसी-ऐसी चेतना की अनन्त शक्तियों का समूह, ऐसा जो भगवान आत्मा, वह निश्चय द्रव्य है। समझ में आया?

उसमें **अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य ये चेतना के विशेष हैं...** चेतना जो सामान्यरूप थी, उसमें ऐसे भेद डालना कि यह ज्ञान है, यह दर्शन है, यह आनन्द है, (वह

विशेष है)। आहाहा! समझ में आया? यह तो व्यवहार का विषय आया न? सातवीं गाथा। **अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य...** अनन्त सबको ले लेना। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य। ये सब चेतना के सामान्य के ये भेद, वह विशेष है। आहाहा! कहो, समझ में आया? अब यहाँ कहते हैं कि मैं महाव्रत पालूँ और यह करूँ... अरे! धूल में भी नहीं, सुन न! महाव्रत का विकल्प जिसमें नहीं, उसकी पर्याय में नहीं। आहाहा! उस विकल्प का ज्ञान, ज्ञान का ज्ञान और द्रव्य-गुण का ज्ञान, जिसकी एक समय की पर्याय में पूर्ण है। ऐसी पूर्णता पर्याय की, वह भी पूरा द्रव्य नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा भगवान इसने कभी गुण में गाया नहीं। इसे अन्दर में गुण के गीत आये नहीं, कहते हैं। ऐसा भगवान आत्मा, उसे द्रव्य कहते हैं और उसी और उसी के एकरूप के गुणों के भेद से कहना, उसे व्यवहार कहते हैं। समझ में आया? वह गुण। पहले द्रव्य लिया, यह गुण (लिये)। अब पर्याय (लेंगे)। समझ में आया?

और अगुरुलघुगुण के द्वारा षट्स्थान पतित... छह प्रकार के आश्रित। पतित अर्थात् आश्रय होना। **हानि वृद्धिरूप परिणमन करते हुए जीव के त्रिकालात्मक अनन्त पर्यायें हैं।** तीनों काल की अनन्त पर्यायें। एक समय की पर्याय ऐसी तीनों काल होती है न? वह पर्याय है। अनन्त शक्ति का भगवान भण्डार जो वस्तु, उसे द्रव्य कहते हैं। और उसके गुणभेद को ज्ञान, दर्शन ऐसे भेद को गुण कहते हैं और त्रिकाल अबाधित अगुरुलघु की पर्याय, षट्गुणहानिवृद्धि का परिणमन, उसे पर्याय कहते हैं। यह द्रव्य, गुण और पर्याय का वस्तु का स्वरूप है।

वस्तु ही इस प्रकार से है। क्यों? कोई ऐसा कहना चाहे कि मुझे हित करना है। तो इसका अर्थ यह हुआ कि उसकी दशा में—पर्याय में अहित है। तब पर्याय का अहित मिटाकर उसे हित (करना) है। तो वह उसकी पर्याय है। अब पर्याय है, उस जाति के गुण की जो पर्याय है, उस पर्याय का यदि गुण हो तो वह पर्याय हो। और वह गुण भी एकरूप त्रिकाल द्रव्य हो तो वह द्रव्य परिणमे तो वह पर्याय परिणमे। समझ में आया?

मुमुक्षु : सूक्ष्म बहुत।

पूज्य गुरुदेवश्री : सूक्ष्म थोड़ा है परन्तु सुनना तो सही। सुने तो सही। ऐई! सेठी! आहाहा!

कहते हैं कि यह आत्मा अगुरुलघु की पर्यायरूप परिणमन (करे)। परिणमन अर्थात् कि जिसे कुछ अच्छा करना है, ऐसा जो कहना चाहता है, इसका अर्थ हुआ कि उस पर्याय में अच्छा होता है। अवस्था क्षण-क्षण में होती है, उसमें अच्छा होता है। शाश्वत् हो, उसमें अच्छा होगा? अच्छा तत्त्व तो है ही। चिमनभाई! यह सब अभ्यास करना पड़े, हों! अन्दर में। अन्दर में, हों! आहाहा!

कहते हैं कि जब एक आनन्द की पर्याय आयी, पर्याय अगुरुलघुरूप से, समझ में आया? वह एक समय की एक पर्याय हुई। तो उस पर्याय का पूरा एक भाग हो, जो अंश है, उसका पूरा भाग (होना चाहिए)। तब आनन्द का अंश आया तो पूरा भाग तो आनन्दगुण है। चैतन्य की एक समय पर्याय ऐसी तो उस पर्याय का पूरा भाग तो चेतनगुण है। श्रद्धा की एक समय की पर्याय ऐसी, वह तो पर्याय हुई। उसका पूरा भाग तो श्रद्धा नाम की शक्ति है। समझ में आया? ऐसी अनन्त शक्तियाँ जो हैं, उनकी जो पर्याय हुई, वह पर्याय ऐसा सिद्ध करती है कि यह पर्याय एक-एक भिन्न-भिन्न प्रकार की है तो इनका भिन्न-भिन्न त्रिकाली टिकता गुण है। और वह गुण ऐसा सिद्ध करता है कि ऐसे अनन्त गुण का एकरूप वह द्रव्य है। जादवजीभाई! व्यापारी को सूक्ष्म पड़े परन्तु मार्ग तो यह है, बापू! अन्तर के व्यापार में चढ़ा हुआ व्यापारी यह व्यापार करे। आहाहा! समझ में आया? पहले तीन रखे। द्रव्य, गुण और पर्याय। इसके बिना वस्तु की स्थिति, जैसी है, वह सिद्ध नहीं होती। समझ में आया?

मुमुक्षु : समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं समझ में आया?

ऐसा कहा न? कि मुझे सुखी होना है, लो। धर्म करना अर्थात् सुखी होना, ऐसा अर्थ हुआ न? तो इसका अर्थ हुआ कि वर्तमान में वह सुख की दशा नहीं और दु:ख की दशा है। तो उसे दु:ख टालकर सुखी होना है। तो वह तो टालना और होना, यह तो पर्याय हो गयी, त्रिकाली चीज़ नहीं हुई। इसलिए पर्याय का यदि ऐसा धर्म न हो तो किसी प्रकार से टालना और होना, यह रहता नहीं। समझ में आया? अब टालना और होना, यह तो वर्तमान अंश आया। यह तो वापस पलटता आया। पलटती पर्याय है न? तो उसका कोई पूरा गुण

चाहिए कि जिसमें से एक सुख आया, तो पूरा आनन्दगुण (होना चाहिए), शान्ति आयी तो पूरा चारित्र गुण; श्रद्धा पर्याय आयी तो पूरा श्रद्धागुण, वीतरागता... समझे न ? वस्तुता, इत्यादि-इत्यादि। कर्ता, कर्ता की पर्याय कर्मरूप परिणमी, अन्दर कर्तारूप (परिणमी) तो उसका कर्तागुण त्रिकाल (होना चाहिए)। वह पर्याय का अंश इस प्रकार सिद्ध करते हैं कि उसका एक पूरा गुण है। वह भेदरूप गुण है। और वह गुण ऐसा सिद्ध करता है कि सब गुणों का एकरूप, वह द्रव्य है। मगनभाई ! आहाहा ! समझ में आया ?

यह तो सादी भाषा में आता है, कुछ बहुत कड़क नहीं है। परन्तु यह दरकार करे ही नहीं कि मुझे समझ में नहीं आता, हमें समझ में नहीं आता। न समझ में आये ऐसी बात जगत में नहीं है। केवलज्ञान पाया है, वह आत्मा पाया है। तू आत्मा है या नहीं ? समझ में आया ? जो आत्मा पावे, वह तू पा सकता है। जड़ पावे, उसे तू नहीं पा सकता। जड़ पावे वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श की अवस्था को। वह तुझमें कहाँ है ? आहाहा ! समझ में आया ?

कहते हैं, कि चेतना शुद्ध दर्शन-ज्ञानमय चेतना। ऐसा पहले द्रव्य में लिया था न ? **चेतनास्वरूप असाधारण धर्म को लिए हुए अनन्त शक्ति का धारक है, उसमें सामान्य भेद चेतना अनन्त शक्ति का समूह द्रव्य है।** चेतना को यहाँ मुख्य बताया। उसके साथ सब गुण ले लेना। व्यापक है न। वह गुण है और अगुरुलघु। वह परिणमता है न ? बदलता है न ? इसे कुछ अच्छा करना है, बुरा टालना है तो इस बदलने में ऐसा हो सकता है। ध्रुव में कैसे होगा ? ध्रुव तो एकरूप त्रिकाल है। यह द्रव्य, गुण और पर्याय द्रव्य-वस्तु का स्वरूप है। इस प्रकार जो नहीं जाने और दूसरे प्रकार से कहना चाहे तो वह द्रव्यस्वरूप को पकड़ नहीं सकेगा। क्योंकि उसका स्वरूप ही इस प्रकार से सत् है। सेठी !

क्योंकि जहाँ नजर डालना है, वह एकरूप वस्तु ध्रुव न हो तो नजर वहाँ टिके किस प्रकार ? और नजर है, वह तो वर्तमान की पर्याय है। समझ में आया ? अवस्था है। यदि अवस्थारूप न हो तो इसे द्रव्य में नजर डालूँ, ऐसा भी नहीं रहता; और द्रव्य ध्रुव न हो तो अवस्था कहाँ डालनी नजर में, यह नहीं रहता। और गुण न हो तो एक ही द्रव्य और एक ही गुण होवे तो आनन्द, ज्ञान, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता इत्यादि पर्याय में भिन्न-भिन्नता दिखती है, तो भिन्न-भिन्न पर्यायें हैं तो उनके भिन्न-भिन्न गुण भी हैं और भिन्न-भिन्न गुणों का एकरूप, वह अभेद द्रव्य है। आहाहा ! समझ में आया ?

जरा इसे विचार करने की मेहनत लेना चाहिए। संसार के काम में गहरे... गहरे... गहरे... विचार करे। यह इंजीनियर हो तो वह और अमुक हो तो वह। जिसके नींव में ईंटें डाली, वह आगे नहीं टिके। देखने गये थे न ? ईंट डाली थी। ... में कहीं डाली थी। बात की थी। नीचे ईंट का भाग और ऊपर भर दिया। निकली पोलमपोल। जिसमें... क्या कहलाता है वह मूल ? नींव। जिसकी नींव खोटी... अर्थात् नींव अर्थात यह। उसकी नींव या उसकी नींव, लो न। पाट की नींव खोटी उसके मकान के पाये खोटे, वह मकान और पाट रह नहीं सकेगा।

इसी प्रकार जिसकी दीवार ध्रुव अन्दर है, जिसका पाया पूरा खड़ा हो जिसमें से, सिद्धपद की पर्याय का विशाल महल खड़ा हो, केवलज्ञान की पर्याय (खड़ी हो), उसकी नींव बड़ी मजबूत ध्रुव है। आहाहा! शीशा का पाया डालते हैं, हों! नींव में शीशा डालते हैं। वहाँ डाला है, राणपुर। है न वह ४५० वर्ष का कोट (परकोट) ? पानी बहुत आवे। पानी का बहुत धक्का लगे। नींव में डाला है शीशा दिखाव रखने के लिये। यह तो शीशा नहीं, वह ध्रुव शीशा तो अनन्त परमाणु का पिण्ड। आहाहा! यह तो महा मूल ध्रुव हिलाये हिले नहीं, अचल है। हिलाये हिले वह तो पर्याय। समझ में आया ? समझ में आया या नहीं इसमें ? अरे... अरे..! वह तो बाहर की अज्ञानी की बातें। व्रत पालो और अपवास करो, भक्ति करो और पूरा करो (तो) धर्म होगा। सुन न! वह तो राग और विकल्प हुआ। वह विकल्प तो तेरी पर्याय में नहीं, तो गुण-द्रव्य में तो नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

कहते हैं, उसका जो भेद पाड़कर पहला सामान्य भेद, वह तो द्रव्य (कहा)। उसका विशेष भेद, वह गुण और उसका परिणमन, वह अगुरुलघु की पर्याय। कहो, बराबर है ? यह तो सादी भाषा में आता है। लोगों को ऐसा हो जाता है कि यह सब ऐसा ? सूक्ष्म नहीं। इसका है, वह सूक्ष्म नहीं होता। समझ में आया ? इसकी जाति को देखने के लिये कभी प्रयत्न किया नहीं। स्वजात क्या है ? रागादि और वह सब तो कुजात है। विकल्प जो दया, दान, व्रत, भक्ति आदि तो कुजात है। उसमें तेरा आता आ गया ? आहाहा! उसके कारण लाभ हो, इसका अर्थ कि आत्मा उसमें आया। अथवा वह रागवाला आत्मा अर्थात् रागसहित आत्मा, उसे आत्मा कहते हैं। ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

इस प्रकार शुद्ध जीव नामक वस्तु को सर्वज्ञ ने देखा... आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा सर्वज्ञ ने तो प्रसिद्ध देखा। **जैसा आगम में प्रसिद्ध है, वह तो एक अभेदरूप शुद्ध निश्चयनय का विषयभूत जीव है,...** लो। समझ में आया? **इस प्रकार शुद्ध जीव नामक वस्तु को सर्वज्ञ ने देखा जैसा आगम में प्रसिद्ध है,...** आगम में वह प्रसिद्ध है। सिद्धान्त वीतराग के शास्त्र में भगवान ने देखा, वैसा शास्त्र में सब प्रसिद्ध है। देखो! आगम इसे कहते हैं, जिसमें तीन काल-तीन लोक के पदार्थ को शास्त्र में सिद्ध किया हो। और जिसमें द्रव्य, गुण और पर्याय को साबित (किया हो)। क्योंकि वस्तु की स्थिति ही इस प्रकार है। इस पद्धति की खबर न हो, इसलिए बिना भान के करो धर्म। धर्म होगा। क्या करो? ध्यान करो। परन्तु किसका ध्यान? ध्यान करो इसका अर्थ यह हुआ कि कुछ बदलना है। और बदलना है, इसका अर्थ यह हुआ कि वह बदलता किसी में से आता है, वह कायम की शक्ति है, उसमें से आता है। इसका अर्थ हुआ कि अनन्त शक्ति का द्रव्य है; शक्ति, वह गुण है और यह पर्याय, वह परिणमन है। आहाहा! समझ में आया?

सर्वज्ञ ने देखा जैसा आगम में प्रसिद्ध है,... ऐसा यहाँ तो कहते हैं। सिद्धान्त में यह प्रसिद्ध बात है। सिद्धान्त में नहीं, ऐसा नहीं है। सर्वज्ञ के आगम के अतिरिक्त दूसरे आगम में यह बात नहीं हो सकती। समझ में आया? यह सूत्र, भगवान के आगम उसे कहते हैं, ऐसा कहते हैं। बीच में आया था न? परम्परा भगवान से कहे हुए हैं। आचार्यों— कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य जो परम्परा आये, उनकी वाणी को आगम (कहा जाता है)। बीच में यह श्वेताम्बर निकले, उन्होंने सब कल्पना से कहा है। शास्त्र जोड़े हैं। आ गया था। नहीं बोले थे। भोगीभाई थे न? समझ में आया या नहीं? दो दिन से डॉक्टर थे। आज डॉक्टर भावनगर गये हैं। आया था, नहीं? कितने में? ४६ पृष्ठ पर है, देखो! **ऐसी दिगम्बरों के सम्प्रदाय में प्ररूपणा यथार्थ है।** वीतराग दिगम्बर मार्ग जो अनादि का सनातन है, उसमें सत् शास्त्र और सत्य प्ररूपणा रही है। इसके अतिरिक्त अन्यत्र सत् शास्त्र नहीं और सत्य प्ररूपणा भी नहीं। आहाहा! क्या हो? लोगों को ऐसे समन्वय करना है। यह भी सच्चे और यह भी सच्चे। धूल भी नहीं होगा, मर जायेगा। आहाहा! सभी धर्म समान हैं, समन्वय करो। किसका समन्वय करे? सुन न!

यहाँ तो परम्परा वीतराग त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ ने देखा, ऐसा आया न उसमें? उस

आगम में आया है। दिगम्बरों के जो आगम है, वे परम्परा आगम हैं। और श्वेताम्बर... लिखा है न अन्दर? देखो! **अन्य श्वेताम्बरादिक वर्धमानस्वामी से परम्परा मिलाते हैं, वह कल्पित है क्योंकि भद्रबाहुस्वामी के पीछे कई मुनि अवस्था से भ्रष्ट हुए, ये अर्धफालक कहलाये। इनकी सम्प्रदाय में श्वेताम्बर हुए, इनमें देवर्द्धिगणी नामक साधु...** यह देवर्द्धिगणी, वल्लभीपुर में मन्दिर है न? **इनकी सम्प्रदाय में हुआ, इसने सूत्र बनाये हैं, सो इनमें शिथिलाचार को पुष्ट करने के लिये कल्पित कथा तथा कल्पित आचरण का कथन किया है, वह प्रमाणभूत नहीं है। पंचम काल में जैनाभासों के शिथिलाचार की अधिकता है सो युक्त है,...** यह बराबर है। इस काल में ऐसा होता है। ऐई! समझ में आया? अर्धफालक टुकड़ा पहले लिया। हम मुनि हैं, वहाँ से भ्रष्ट हो गये। वस्त्र का टुकड़ा रखकर मुनिपना माने, वह दृष्टि मिथ्या रह गयी। उसे वीतरागता होवे तो उसे वस्त्र लेने के वृत्ति भी नहीं होती। उसे अन्तर भाव की वीतरागता प्रगटी हो, हों! अकेला भावलिंग ऐसा। बीच में से यह फांटा निकला, अब इसके साथ मेल करना? बहुत कठिन। व्यक्ति के प्रति विरोध नहीं, वैर नहीं। परन्तु वस्तु की स्थिति है यह तो... 'आत्मज्ञान समदर्शिता' श्रीमद् में नहीं आया?

आत्मज्ञान समदर्शिता, विचरे उदयप्रयोग
अपूर्व वाणी परमश्रुत, सद्गुरु लक्षण योग्य॥१०॥

'आत्मज्ञान समदर्शिता...' समदर्शिता की व्याख्या की। ऐसा नहीं कि समदर्शी अर्थात् सबको समान माने। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को उत्थापे कि यह नहीं। है? श्रीमद् की पुस्तक है उसमें? ऐई! बड़ी में है, हों! बड़ी में है, हों! छोटी में नहीं। बड़ी मोटी है न? समदर्शिता की व्याख्या यह की है। सच्चे और झूठे सबको समान (माने) तो मूर्ख है, वह तो गधे जैसा है, कहते हैं। समझ में आया?

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो द्रव्य, गुण, पर्याय, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र कहे, वैसी बात दूसरे किसी सम्प्रदाय में नहीं हो सकती। समझ में आया? क्योंकि कल्पित शास्त्र बनाये। उसमें उनका रहस्य खोलने जाए तो यह सत्य नहीं निकलता, ऐसा कहते हैं। वहाँ कहाँ था, वह निकले? समझ में आया? ऐ... चिमनभाई! ऐसा है, भाई! है उसमें? देखो! (पत्र-८३७)।

'सद्गुरुयोग्य लक्षणरूप समदर्शिता, मुख्यतया सर्व विरति गुणस्थान में होती है, बाद के गुणस्थानों में वह उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होती जाती है, विशेष प्रगट होती जाती है, क्षीणमोह गुणस्थान में उसकी पराकाष्ठा और पश्चात सम्पूर्ण वीतरागता होती है।'

'समदर्शीपना अर्थात् लौकिक भाव का समान भाव, अभेदभाव, एक समान बुद्धि। निर्विशेषता नहीं अर्थात् काँच और हीरा दोनों को समान गिनना अथवा सत्श्रुत और असत्श्रुत में समत्व समझना, अथवा सद्धर्म और असद्धर्म में अभेद मानना, अथवा सद्गुरु और असद्गुरु में एक समान बुद्धि रखना, अथवा सद्देव और असद्देव में निर्विशेषपना दिखाना अर्थात् दोनों को एक समान गिनना, इत्यादि समान वृत्ति, वह समदर्शिता नहीं, वह तो आत्मा की मूढ़ता, विवेक शून्यता, विवेकविकलता है।' ऐ.... मोहनभाई ! क्या लिखा है ? अपूर्ण की व्याख्या किस प्रकार है खबर है ? दूसरे धर्म अपूर्ण है। मोक्षमाला में आता है न ? यह बात अपने हो गयी है। यह खबर है ? मोक्षमाला में । ऐ ! वजुभाई ! यह तो बहुत वर्ष पहले की बात है, हों ! इसकी साथ में बात हुई थी। वह बात... होय तो जाए ?

वह समदर्शिता नहीं, वह तो आत्मा की मूढ़ता,... समदर्शी सत् को सत् जाने, बोधे, असत् को असत् जाने, निषेध करे, सत्श्रुत को सत्श्रुत जाने, बोधे, कुश्रुत को कुश्रुत जाने, निषेध करे... देखो ! आया या नहीं ? जैसा हो वैसा... खिचड़ा करना... विष्टा और हलुवा दोनों समान, ऐसा होगा ? असत् को असत् जाने, निषेध करे। है न ? **कुश्रुत को कुश्रुत जाने, निषेध करे, सद्धर्म को सद्धर्म जाने, बोधे, असद्धर्म को असद्धर्म जाने, निषेध करे, सद्गुरु को सद्गुरु जाने, बोधे; असद्गुरु को असद्गुरु जाने, निषेध करे; सद्देव को सद्देव जाने, बोधे; असद्देव को असद्देव जाने, निषेध करे, इत्यादि जो जैसा हो, उसे वैसा देखे, जाने, प्ररूपित करे, उसमें राग-द्वेष, इष्ट-अनिष्टबुद्धि न करे, इस प्रकार समदर्शीपना समझना।** यह गाथा है। समदर्शिता की गाथा है न ?

'आत्मज्ञान समदर्शिता विचरे उदय प्रयोग' लो, इसमें अंक नहीं लिखा। इस

गाथा का अर्थ किया है। समझ में आया? वस्तु की स्थिति ही ऐसी हो, वहाँ दूसरा क्या हो? फिर कहे, नहीं। अपना ही रखोगे तो द्वेष होगा। परन्तु द्वेष की व्याख्या यह नहीं है। समझ में आया? यही एक महा सत्य है, दूसरे सबमें सत्य है नहीं। इसका नाम समदर्शिता और विवेक तथा अमूढ़ता है। नहीं तो मूढ़ है। आहाहा! वीतराग मार्ग ऐसा है, बापू! सत्य को सत्य ही समझे, असत्य को असत्य समझे और निषेध करे। निषेध करे, इसलिए वहाँ द्वेष है, ऐसा नहीं है। वस्तु का स्वरूप है।

सर्वज्ञ ने देखा, जैसा आगम में प्रसिद्ध है,...' यहाँ तो यह आया था न? वीतराग आगम दिगम्बर आगम में यह प्रसिद्ध बात है। समझ में आया? आहाहा! दिगम्बर आम्नायवाले को ... अभी खबर नहीं। बिना भान के यह क्रिया करना और देह की क्रिया तथा दया, दान, व्रत की क्रिया (करना) वह धर्म, जाओ! वह व्यवहार है और व्यवहार करने से निश्चय होगा। (ऐसा) माने, सब मूढ़ता है, अज्ञानता है। आगम में ऐसा नहीं कहा है। आगम में तो व्यवहार को व्यवहार जानना और आत्मा का निश्चय है, उसका आश्रय लेना, तब धर्म होगा, ऐसा आगम में कहा है। समझ में आया? आहाहा!

शुद्ध जीव नामक वस्तु को सर्वज्ञ ने देखा, जैसा आगम में प्रसिद्ध है, वह तो एक अभेदरूप... एक अभेदरूप शुद्ध निश्चयनय का विषयभूत जीव है, इस दृष्टि से अनुभव करे, तब तो ऐसा है... अब जब भेद से करें तो क्या होगा, उसकी व्याख्या, विशेष आयेगी.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-२६, गाथा-६, शनिवार, आषाढ़ शुक्ल १, दिनांक ०४-०७-१९७०

यह अष्टपाहुड़। सूत्रपाहुड़ चलता है, इसकी छठी गाथा का अर्थ चलता है। भावार्थ में यहाँ आया है। द्रव्य, गुण और पर्याय तीन बात कल आयी थी। **शुद्ध जीव नामक वस्तु...** ५७ पृष्ठ पर है। ऊपर से आठवीं लाईन। कहते हैं कि भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने तीर्थंकरदेव ने सर्वज्ञस्वभाव में इस आत्मा को ऐसा कहा और देखा है, उसका इसे आत्मा का ज्ञान करना और आत्मा का अनुभव करना, इसका नाम धर्म है। ऐसा कहा, देखो!

अनादि-अनन्त अविनाशी सब अन्य द्रव्यों से भिन्न... भगवान आत्मा सब अनन्त पदार्थ—परमाणु, शरीर, कर्म और अनन्त आत्माएँ, इनसे यह भिन्न अर्थात् पृथक् आत्मा है। **एक सामान्य-विशेषरूप, अनन्त धर्मात्मक, द्रव्य-पर्यायात्मक जीव नामक शुद्ध वस्तु है,...** यह दोनों होकर यहाँ शुद्ध वस्तु कही गयी है। **वह कैसा है?**

शुद्ध दर्शन ज्ञानमयी चेतनास्वरूप असाधारण धर्म को लिए हुए अनन्त शक्ति का धारक है, उसमें सामान्य भेद चेतना अनन्त शक्ति का समूह द्रव्य है। यह कल आ गया है। द्रव्य अर्थात् वस्तु-आत्मा, उसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द ऐसी शक्तियाँ अनन्त हैं। उन शक्ति का समूह, उसे यहाँ द्रव्य कहा गया है। ऐसा भगवान के ज्ञान में आया है, ऐसा इसे द्रव्य को इस प्रकार से जानना चाहिए। समझ में आया?

अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य ये चेतना के विशेष हैं, वह तो गुण हैं... वस्तु आत्मा चैतन्य का गुण जो ज्ञान, दर्शन और आनन्द, वह गुण है। अनन्त शक्ति का समूह, वह वस्तु है और यह ज्ञान, दर्शन, आनन्द अन्दर आत्मा में है, वह गुण है। **और अगुरुलघुगुण के द्वारा षट्स्थानपतित हानिवृद्धिरूप परिणमन करते हुए जीव के त्रिकालात्मक अनन्त पर्यायें हैं।** कैसी पर्याय ली? देखो! कायम हो वह। आत्मा की एक-एक गुण की एक-एक पर्याय में—अवस्था में षट्गुण हानि-वृद्धिरूप जो परिणमन पर्याय होती है, उसे यहाँ पर्याय सूक्ष्म है और सदा रहती है, इससे उसे यहाँ पर्याय कहा गया है। आहाहा! यह आत्मा इस देह में भिन्न है, उसे इस प्रकार से भगवान ने देखा है। ऐसा जो अन्दर में जाने और माने, उसे धर्म होता है। ....भाई!

कहते हैं, प्रभु! तेरा धर्म तुझे कैसे हो? यहाँ तो तीनों होकर निश्चय का विषय लेना है। ऐसा है, वैसा ज्ञान करे, उसे द्रव्य पर दृष्टि जाने से पर्याय का लक्ष्य (ख्याल) ज्ञान में है कि पर्याय है, गुण है, परन्तु वह द्रव्य पर दृष्टि जाने से उसे सम्यग्दर्शन होगा, उसे धर्म होगा और वह जन्म-मरण की गाँठ से छूटेगा।... तो इसने कभी किया नहीं और बाहर की बातों में फँस गया। एक तो मानो यह संसार के यह स्त्री, पुत्र, परिवार, कमाना, इसमें मरकर पाप करके मर जाना। समझ में आया? जिसमें जन्मा और जिसका सम्बन्ध (हुआ), उनका रखवाला होकर उन्हें रखूँ और उसे यह ओहदा / प्रतिष्ठा रखूँ और यह करूँ... (ऐसे) मिथ्यात्वभाव में इस प्रकार जीव मर जाता है। अब धर्म के बहाने आवे तो उसे धर्म क्या है, इसकी खबर नहीं होती, इसलिए उसे वर्तमान में कोई दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हों, उन्हें वह धर्म मान बैठता है। परन्तु वह तो पर्याय का धर्म है, स्वभाव है। इसका वास्तविक धर्म यह नहीं। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि भगवान ने ऐसा कहा न? देखो! **इस प्रकार शुद्ध जीव नामक वस्तु को सर्वज्ञ ने देखा, जैसा आगम में प्रसिद्ध है,...** सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी परमात्मा केवलज्ञानी प्रभु ने इस आत्मा को ऐसा कहा, वैसा शास्त्र में है। उस शास्त्र से इसका ज्ञान करके स्वसंवेदन से आत्मा का ज्ञान करे तो इसे धर्म और आत्मा जाना कहलाये। समझ में आया?

कहते हैं, द्रव्य अर्थात् अनन्त-अनन्त चैतन्यशक्ति का भण्डार और गुण अर्थात् ज्ञान, दर्शन और आनन्द, वह गुण और एक समय की पर्याय में सूक्ष्म षट्गुण हानि-वृद्धि, अनन्त गुण की वृद्धि और उसी समय में अनन्त गुण की हानि, ऐसा जो भगवान ने पर्याय का धर्म देखा है। ऐसा द्रव्य, गुण, पर्यायवाला पूरा तत्त्व, उसे जीव कहा जाता है। समझ में आया? ऐसा जीव है, उसे अन्दर में ज्ञान करके देखे, श्रद्धा करके श्रद्धा करे और उसमें स्थिर हो तो उसे धर्म होकर जन्म-मरण मिटे। आहाहा! समझ में आया?

पहले तो भगवान ने कही हुई वस्तु क्या है, यह अभी इसके ख्याल में नहीं आती। 'शरीर, वह मैं; वाणी वह मैं; मन वह मैं; राग वह मैं; पुण्य वह मैं' ऐसा इतना आत्मा इसने माना। आत्मा इतना नहीं है। आहाहा! आत्मा तो अन्दर भगवान परिपूर्ण अनन्त गुण का समूह कहा न? द्रव्य कहा न? **चेतना अनन्त शक्ति का समूह द्रव्य है।**

द्रव्य अर्थात् यह पैसा नहीं, हों! आहाहा! पैसा तो धूल जड़ है। वह कहाँ आत्मा है? समझ में आया?

आत्मा वह वस्तु जो है, वह तो अनन्त बेहद ज्ञान, दर्शन, जिसकी एक समय की पर्याय में भी जो परिपूर्ण जाने, उतनी शक्ति उसकी नहीं, शक्ति तो उससे अनन्त गुनी एक-एक गुण की है। ऐसे शक्ति सम्पन्न-गुण सम्पन्न ऐसा जो आत्मा द्रव्य, उसे भगवान ने जाना है, कहा है और शास्त्र में वह प्रसिद्ध है। निवृत्त भी कहाँ यह सब जानने के लिये? समझ में आया? कहते हैं, ऐसा द्रव्य और ज्ञान, दर्शन आदि गुण और एक समय में षट्गुणहानिवृद्धि को यहाँ पर्याय कहा। समझे न? क्योंकि जो त्रिकाल रहता है... ऐसा कहा न इसमें? त्रिकाल में अनन्त पर्याय, ऐसा कहा। रागादि पर्याय तो अमुक (काल) तक रहे। सिद्ध की पर्याय भी अमुक काल में हो। यह पर्याय तो तीनों काल होती है, इसलिए इसे पर्याय गिनने में आया है। अब वह क्या होगी, यह गुरुगम से समझ में आता है।

ऐसी पर्याय अर्थात् अवस्था, इसकी हालत, इसकी दशा। यह शरीर और कर्म की दशा अलग, आत्मा की दशा अलग। ऐसी दशा, ऐसा गुण और ऐसा द्रव्य। उसे भगवान ने **शुद्ध जीव नामक वस्तु को सर्वज्ञ ने देखा, जैसा आगम में प्रसिद्ध है, वह तो एक अभेदरूप शुद्ध निश्चयनय का विषयभूत जीव है,...** पर से भिन्न (और) अपने द्रव्य, गुण, पर्याय पूरे। वजुभाई! निश्चय यह लिया अभी। स्वपने जितना है, वह निश्चय—ऐसा कहना है। सेठी! जितना स्वपना है न? द्रव्य स्वपने, गुण स्वपने और पर्याय स्वपने। यह तीनों स्वपने है, उसे यहाँ निश्चय कहा गया है और पर शरीर, वाणी, मन, जड़ यह सब है, वह तो पर है, वह कहीं आत्मा के नहीं हैं, आत्मा में नहीं हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

अखबार में आया है, कहते हैं। भाई! कोई कहता था। करुण, वह जो अपने गुजर गये न? बहुत पीड़ा थी। करुण... आहाहा! देह की पीड़ा। देह की अवस्था की पीड़ा उसे नहीं परन्तु उसकी दृष्टि में स्वद्रव्य, स्वगुण और स्वपर्याय का अस्तित्व इतना है, वह दृष्टि में नहीं, इसलिए शरीर में कुछ होने पर 'मुझे होता है'—ऐसा अज्ञानी मानता है। आहाहा! समझ में आया? इसलिए कि मानो 'मुझे इस शरीर में रोग हुआ'। यह तो मिट्टी है, जड़ है, यह तो अजीव पुद्गल है। इसमें कुछ रोग हो, वह तो जड़ की दशा है। वह जड़ का

अस्तित्व आत्मा की पर्याय में नहीं है, समझ में आया? इसी प्रकार यह स्त्री, पुत्र, परिवार, मकान और पैसा का अस्तित्व आत्मा की पर्याय में नहीं है। वह तो उसकी अवस्था में उनमें रहे हुए हैं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान स्वयं आत्मा द्रव्य, गुण और पर्याय के अस्तिवाला अस्तित्व तत्त्व है। ऐसा जिसने दृष्टि में लेकर उसका ज्ञान करके अनुभव करे, उसे भगवान ने शुद्ध जीव इस अपेक्षा से कहा गया है। उसमें पर की अपेक्षा नहीं, इसलिए उसे द्रव्य, गुण और पर्याय अभेद को शुद्ध कहा है। समझ में आया?

इस दृष्टि से अनुभव करे, तब तो ऐसा है और अनन्त धर्मों में... भगवान आत्मा वस्तु है, उसमें अनन्त धर्म है। धर्म अर्थात् स्वभाव। जानना, देखना, आनन्द, अस्तित्व ऐसे-ऐसे अनन्त स्वभावरूप भाव है। उन भाववाला, ऐसे स्वभाववाला आत्मा है। उस **अनन्त धर्मों में भेदरूप किसी एक धर्म को लेकर कहना...** पृथक् पाड़कर कहना। उसमें पृथक् नहीं है। यह ज्ञान है, यह दर्शन है, यह आनन्द है—ऐसा भेद पाड़कर कहना, वह **व्यवहार है।** समझ में आया? मगनभाई! वह तीन होकर निश्चय कहा और उसमें भेद डालना। है तीन ऐसे इकट्ठे। ज्ञान है, दर्शन है; वहा पृथक् तो नहीं और विकल्प उठाकर यह ज्ञान है, दर्शन है, (ऐसा भेद करना), इसका नाम व्यवहार है।

और **आत्मवस्तु के...** दो बात। निश्चय और व्यवहार इतना यहाँ सिद्ध किया। आहाहा! अब दूसरा प्रकार (कहते हैं)। और **आत्मवस्तु के...** यह भगवान आत्मा अन्दर चीज़ चैतन्य वस्तु, जिसे सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी ने देखा, ऐसा जो अन्दर आत्मा; यह (शरीर) तो मिट्टी, जड़ है, शरीर, वाणी, मन तो जड़ है, वह कहीं आत्मा नहीं। उसमें से पृथक् जो आत्मा, वह वस्तु अनादि से पुद्गल कर्म के संयोग में है। उसे संयोग में कर्म का संयोग इसे अनादि का है। ऐसा भगवान अपने अस्तित्व में—सत्ता में—विद्यमानता में रहा हुआ होने पर भी, उसका कर्म का संयोग अनादि का है।

इसके निमित्त से राग-द्वेषरूप विकार की उत्पत्ति होती है... आहाहा! भ्रमणा और राग-द्वेष के भाव, वह कर्म के सम्बन्ध में आया हुआ, उसके निमित्त से और नैमित्तिक अपनी पर्याय से विकार मिथ्यात्व का, मिथ्यात्वरूपी अधर्म भाव (उत्पन्न होता

है)। शरीर है, वाणी है, कर्म है, यह स्त्री, पुत्र, परिवार है, वे मेरे हैं और मैं उनका हूँ—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, वह कर्म के निमित्त की उपाधि का भाव, इसमें—इसकी पर्याय में है। समझ में आया? ऐसा तो बाबा हो तब समझ में आये, ऐसा कहता था। नहीं? हिम्मतलाल जरियावाला। परन्तु बाबा ही है, सुन न? यहाँ यह तो बात करते हैं। तुझमें शरीर, वाणी, मन यह कुछ है नहीं, वे तो पर हैं। स्त्री, पुत्र, वह तो पर उनके होकर रहे हैं। तेरे होकर वे रहे हैं? तेरे होकर रहे तब तो वे अरूपी हो जायें। तेरे घर में—आत्मा में आ जायें। वे तो बाहर होकर रहे हैं। देवशीभाई! बराबर होगा? परन्तु पति-पत्नी दो व्यक्ति हों, उसमें तो स्त्री इसकी होकर रहती है या नहीं? कोई न हो, तब क्या करे? भगवान! यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! वह स्त्री का आत्मा उसका आत्मा होकर रहा हुआ है। कहीं तेरी दशा में आ नहीं गया है। आहाहा! यह शरीर जड़ है, वह जड़ होकर रहा हुआ है। जड़रूप होकर रहा है, तुझरूप होकर शरीर नहीं रहा है। आहाहा! ऐसी बात! पैसा है, वह पैसा होकर अजीवरूप रहे हैं। वे कहीं तेरे होकर नहीं रहे—ऐसा है कभी?

मुमुक्षु : होवे तो प्रयोग कर सके।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में प्रयोग किसका? इसके थे कहाँ (कि) यह प्रयोग करे? ऐई! सेठी! आहाहा! इस पैसे का अस्तित्व अजीवरूप होकर वे रहे हैं। जीवरूप होकर रहे हों, तब तो वे रूपी, अरूपी हो जाये, वे रूपी हैं। वे तो रूपी पदार्थ है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, कि इसमें उसे कर्म का निमितत संयोगी दूसरी चीज़ है, उसके कारण स्वयं उसका लक्ष्य करता है, इसलिए उसमें विकार उत्पन्न होता है। मिथ्यात्व का और राग-द्वेष का। वह दुःखरूप दशा उत्पन्न होती है। वह इसकी दशा में है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? **उसको विभाव परिणति कहते हैं,...** है न? **इसके निमित्त से राग-द्वेषरूप विकार की उत्पत्ति होती है...** इस राग-द्वेष में मिथ्यात्व साथ डाल दिया। आहाहा! कहते हैं, भगवान आत्मा अपने शक्तिवान द्रव्य में है, शक्ति वह गुण में है और अगुरुलघु पर्याय में है। उसे कर्म का संयोग है, इसलिए अनादि से इस पर इसकी दृष्टि और लक्ष्य है, इसलिए वह मिथ्यात्व और राग-द्वेष के भाव में, विभावभावरूप होता है।

कहते हैं वह कुरूपपने होता है। उसका रूप नहीं उसरूप होता है। परन्तु होता है वह, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **राग-द्वेषरूप विकार की उत्पत्ति होती है, उसको विभाव परिणति कहते हैं,...** चाहे तो हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना ऐसा विकल्प (आवे), वह भी विभाव दशा है। चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प (आवे), वह भी विभाव दशा है, विकारी दशा है। आत्मा की वह दशा नहीं। यह पठन अलग प्रकार का है, भाई! डॉक्टर! कभी पढ़ा है? यह वीतराग की कॉलेज है। समझ में आया? आहाहा!

आत्मा भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो देखा, वह ऐसा है, द्रव्य-गुण-पर्यायवाला, ऐसा कहा। अब, इसे उस कर्म का संयोग (होता है)। उसमें तो पर्याय अगुरुलघु की कही थी। भाई! ऐसी कही थी। अब यहाँ विकार बताना है न! इसमें होता है न। आहाहा! वह अपना भगवान आत्मा आनन्द की खान प्रभु आत्मा है। अतीन्द्रिय आनन्द की खान है। उस पर दृष्टि न देकर, इसकी दृष्टि संयोग, कर्म जो है, वहाँ दृष्टि अनादि से जाती है और उनके लक्ष्य से, उनके निमित्त से, उनके आश्रय से, जीव में अपने स्वभाव से विपरीत ऐसा विभाव, विकारी भाव की अवस्था उत्पन्न होती है। वह दुःख का कारण और चार गति में भटकने का कारण वह है। आहाहा! समझ में आया?

इससे फिर आगामी कर्म का बन्ध होता है। देखो! ज्ञायक चैतन्यप्रभु अपनी निज सम्पदा, उसे न मानकर, उसे न देखकर, उसका आश्रय न करके जो कर्म का निमित्त, जो विपदा का निमित्त है, उसके निमित्त से उसे विपदा-विकार-विभाव उत्पन्न होता है। आहाहा! **फिर आगामी कर्म का बन्ध होता है।** उस विकार के कारण से और नया बन्धन हो, उसमें यह विकार निमित्त कहा जाता है। कर्म का निमित्त, उसके लक्ष्य से विकार होता है और विकार के निमित्त से वहाँ सामने कर्म, कर्म के कारण से बँधते हैं। उसमें विकार उसे निमित्त कहलाता है। समझ में आया?

इस प्रकार अनादि निमित्त-नैमित्तिक भाव के द्वारा... अनादि से यह निगोद में, आलू में, शक्करकन्द में था, तब से एक शरीर में अनन्त आत्माएँ वहाँ हैं। काई में, आलू में, शक्करकन्द में, गाजर में, मूली में... क्या कहलाता है वह? सूरण गाँठ में। उसका एक

टुकड़ा इतना राई जितना लो, उसमें असंख्य तो औदारिकशरीर है। भगवान ने ऐसा देखा है। एक शरीर में अनन्त जीव है। आहाहा! वह जीव वहाँ है तो अपने द्रव्य, गुण, पर्याय में हैं परन्तु उस संयोग के लक्ष्य से उसे विभाव की परिणति अनादि से खड़ी हुई है। समझ में आया? वह मिथ्या भ्रम और राग-द्वेष, वह दुःखदायक दशा है। चाहे तो बाहर चक्रवर्ती की सम्पत्ति में दिखायी दे परन्तु अन्दर पर्याय में उसे मेरा मानने का भाव और राग-द्वेष भाव, वह बड़ी विपदा उसने खड़ी की है। आहाहा! समझ में आया? यह विपदा ऐसा विभावभाव, विकारीभाव, वह निमित्त के लक्ष्य से हुआ भाव और उस विभाव का निमित्त से नये कर्म बाँधे। उसमें वह विभाव निमित्त (होता है)। अनादि से ऐसा निमित्त-नैमित्तिक भाव करके **चतुर्गतिरूप संसारभ्रमण की प्रवृत्ति होती है।**

चौरासी के अवतार में कहाँ का कहाँ भटकता है। चींटी, कौआ, कुत्ता, निगोद एकेन्द्रिय, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, कन्दमूल, आहाहा! नरक में ऐसे (भव किये)। भगवान ऐसा द्रव्य, गुण, पर्याय से होने पर भी... पहले कहा न कि द्रव्य तो ऐसा शक्तिमान है। ज्ञान, दर्शन, आनन्दगुण ऐसे हैं, पर्याय त्रिकाली ऐसी त्रिकाली अगुरुलघु है। परन्तु संयोग के कारण, संयोग पर दृष्टि होने से और स्वभाव का अनादि से निगोद से लेकर भान नहीं। जहाँ चतुर्गति संसार में भ्रमण की प्रवृत्ति होती है। आहा! एक शरीर छोड़कर दूसरा शरीर (धारण करे)। ऐसे अनन्त... अनन्त... अनन्त शरीर संयोग में आये और काल में चले गये। समझ में आया? और जो शरीर मिले, उसकी सम्हाल करने में रुक गया। जो झोंपड़ा मिला, उसे सम्हालने, सुधारने, गारा करने (में रुक गया)। नीचे गारा, ऊपर बाँस पक्के डालना, लकड़ियाँ पक्की डालना, नीचे टाइल डालना, ऐसा जो झोंपड़ा मिला, उसे पाँच-दस वर्ष रहे, तब तक सम्हाले और वहाँ से निकले तो दूसरे झोंपड़े में जाए।

हमारे हीराजी महाराज दृष्टान्त देते थे। वे चोर होते हैं न? चोर। बहुत हेडडी चोर, वह जब कैद में जाए, पाँच-दस वर्ष की कैद हो, तो उसे जो ओरडी मिली हो उस ओरडी में छिद्र हो, उसे बढ़िया किया हो और इसे पानी चाहिए हो तो कुम्हारे के यहाँ से घड़ा ले आवे। वह जेलर जाये घड़ा ले आवे और यह पानी पीवे। यह जब पाँच वर्ष पूरे हों, तब यह कहता जाता है कि यह मेरा घड़ा किसी से छुआना नहीं। मैं वापस पाँच-सात दिन में आनेवाला हूँ। वह तो पाँच-सात दिन में (आवे)। यह तो समय-समय में, अन्तर्मुहूर्त

अन्तर्मुहूर्त में निगोद में भव बदलता है और बाहर निकले तो फिर यह पाँच-पच्चीस-साठ वर्ष इस शरीर में रहे। वहाँ से (निकलकर) जाए निगोद में। वहाँ से जाए चींटी में, वहाँ से कौवे में, वहाँ से लट में... आहाहा! अरे! भगवान! जहाँ-जहाँ गया, वहाँ-वहाँ तूने झोंपड़े को सम्हालने और यह झोंपड़ा मेरा, इसकी व्यवस्था करने में रुक गया। अच्छा करूँ, नहलाकर-धुलाकर, ऐसा करूँ। जगत को अच्छा शरीर दिखाऊँ। देखो! मेरा शरीर कैसा! आहाहा!

तेरा शरीर तो अन्दर चैतन्य है। यह शरीर तेरा नहीं, प्रभु! आहाहा! इस शरीर से अधिकाई बताकर रुक गया है, वह मिथ्यात्वभाव है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! देखो! मेरे शरीर के अवयव, देखो! मेरे शरीर में बल, देखो! मेरी आँख में तेज, कान में सरवाई। सरवाई अर्थात् समझ में आया? यह काठियावाड़ी भाषा प्रयोग की। धीरे बोले तो भी समझ जाए। ऐसे मेरे कान। ऐसा मेरा नाक। अरे! मेरे कब थे? यह तो जड़ के हैं। आहाहा! समझ में आया?

चतुर्गतिरूप संसारभ्रमण की प्रवृत्ति होती है। मिथ्यात्व और राग-द्वेष के कारण। यह रागभाव और शरीरभाव मेरे, उसमें मेरापना चैतन्य का, आनन्द का है, उसे भूल गया। आहाहा! ऐसी चार गति में प्रवृत्ति होती है। **जिस गति को प्राप्त हो, वैसा ही नाम का जीव कहलाता है...** नरक में जाए तो नरक का जीव, मनुष्य में जाए तो मनुष्य का जीव। यह मनुष्य है। पशु में जाए तो हाथी, चींटी, कौआ... आहाहा! अरे! इसने वेश यह किये परन्तु... जो इसके नहीं, उन्हें मेरा मानकर ऐसे वेश हुए, कहते हैं। भगवान अन्दर में... यहाँ तो मोक्ष का भी वेश है, कहते हैं। आहाहा! ऐसी पर्याय का धारक द्रव्य है, उसकी कभी इसने दृष्टि नहीं की। आहाहा! यह और यह सिरपच्ची (की)।

मोहजाल की आँधी। यह आँधी नहीं आती? बहुत हवा हो और धूल उड़े... क्या कहते हैं? आँधी... आँधी। साथ में मनुष्य खड़ा हो और मोटर खड़ी हो तो आँधी में सूझ नहीं पड़ती। ऐसी आँधी आती है न? वर्षा भी इतनी हो। साथ में वृक्ष हो तो दिखाई न दे। इतनी आँधी। सवेरे वह आता है न? क्या कहलाता है? कोहरा, धुँध। ऐसी धुँध, कोहरा पड़े। साथ में मनुष्य जाता हो, वह दूर न दिखायी दे। वैसे ही मिथ्यात्व की धुँध उसे ऐसी

लगी है कि साथ में भगवान आनन्दकन्द है, परन्तु इसे सूझ नहीं पड़ती। आहाहा! समझ में आया?

जिस गति में जाए **वैसा ही नाम का जीव कहलाता है तथा जैसा रागादिक भाव हो, वैसा नाम कहलाता है।** यह पैसा कमावे तो 'यह कर्मी है' ऐसा कहलाये। पाँच-पच्चीस लाख अधिक कमाता हो तो कर्मी कहलाये। ऐ... जादवजीभाई! क्या होगा? यह तुम्हारा पूनमचन्द कर्मी कहलाता होगा या धर्मी? कर्मी? आहाहा! कहते हैं कि जहाँ-जहाँ गया, वहाँ राग किया तो रागी कहलाया, द्वेष किया तो द्वेषी कहलाया, क्रोध किया तो क्रोधी कहलाया। **वैसा नाम कहलाता है।** एक तो गति का नाम (कहलाये) और यह रागादि के नाम से (कहलाया)। आहाहा! मेरा नाम लेना नहीं, हों! ... डालूँगा। अरे! भगवान! तू कौन है? आहाहा! क्रोध में—आवेश में आवे, तब क्रोधी कहलाये; मान में आवे, तब मानी कहलाये; कपट में आवे, तब कपटी कहलाये; लोभ में आवे तो लोभी कहलाये; राग में आवे तो रागी कहलाये; शोक में आवे तो शोकी कहलावे; भोग में आवे तो भोगी कहलाये। आहाहा! पैसेवाले के मान में आवे तो पैसावाला (कहलावे)। अब परन्तु धूल कहाँ तेरी थी, वह पैसावाला हो। हम पैसेवाले गर्भश्रीमन्त हैं। गर्भश्रीमन्त कब? तेरा पिता है, वह अलग, तू अलग। कहाँ से आया तू गर्भश्रीमन्त?

मुमुक्षु : ...तक में गर्भश्रीमन्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बहुत कहते हैं। ... तक के गर्भश्रीमन्त हैं। मेरी माँ कौन है? मेरा पिता कौन है? परन्तु माता-पिता भी आत्मा ही नहीं, वह तो अलग चीज़ है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **जैसा रागादिक भाव हो, वैसा नाम कहलाता है।** इस प्रकार अज्ञानी अनादि से कर्म के संयोग के लक्ष्य से विकार मिथ्यात्वभाव का करके, राग-द्वेष करके और उससे नया कर्म बँधता है। ऐसा परिभ्रमण चार गति और विकार में कर रहा है। अब, **जब द्रव्य-गुण-क्षेत्र-काल-भाव की बाह्य अन्तरंग सामग्री के निमित्त से...** मनुष्य देह, क्षेत्र-भगवान का योग आदि, साधु-सन्त का योग हो, ऐसा क्षेत्र। धर्मात्मा आनन्द के साधनेवाले सन्तों का योग जिस क्षेत्र में हो, वह क्षेत्र मिला हो, वह क्षेत्र मिले... काल मिले

ऐसा। वर्तमान समझने की योग्यता का काल। समझ में आया? भाव—उस जाति का इसे समझने का भाव। **द्रव्य-गुण-क्षेत्र-काल-भाव की बाह्य अन्तरंग सामग्री...** दोनों। अन्तरंग में भी उपादान की समझने का यह द्रव्य, उसका क्षेत्र, उसकी अवस्था और उसका भाव समझने का काल। और बाहर निमित्त की सामग्री, उसे ऐसी होती है। अन्तरंग बाह्य सामग्री का निमित्त। देखो! अन्तर में भी ऐसा ही कहा। भाई! अन्तर में भाव है न?

मुमुक्षु : निमित्त...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, निमित्त है, इसलिए पूरे त्रिकाल में वह निमित्त है। मोक्षमार्ग की पर्याय है न? वह भी अभ्यन्तर निमित्त है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्ध उपादान तो आनन्द का धाम, चैतन्यधाम है वह तो। उसकी पर्याय में भाव आवे, निर्मल निर्विकारी मोक्षमार्ग की पर्याय (प्रगट हो)। समझ में आया? उसे अभ्यन्तर निमित्त कहा। शरीर और मनुष्यदेह आदि, देव-गुरु का योग और ऐसा क्षेत्र (मिले), उसे बाह्य निमित्त कहा।आहाहा! समझ में आया?

अपने शुद्धस्वरूप शुद्धनिश्चयनय के विषयस्वरूप... देखो! **शुद्धस्वरूप शुद्धनिश्चयनय के विषयस्वरूप अपने को जानकर श्रद्धान करे...** समझ में आया? **और कर्म संयोग को तथा उसके निमित्त से अपने भाव होते हैं, उनका यथार्थ स्वरूप जाने...** विकारी परिणाम हों, उसे जाने। **यथार्थ स्वरूप जाने, तब भेदज्ञान होता है...** पर से तो भिन्न परन्तु राग से भी भिन्न ऐसा भेदज्ञान होता है, ऐसा कहते हैं। तब उसे अन्तर में सम्यग्दर्शन और धर्म होता है। आहाहा! समझ में आया? **तब ही परभावों से विरक्ति होती है।** लो। आत्मा ज्ञानानन्द शक्ति सम्पन्न, ज्ञानगुण, आनन्द आदि उसके गुण और उसकी पर्याय में जो यह विकारीभाव हो, शुभ और अशुभ, वह विभाव परिणाम, अधर्म परिणति से भिन्न पड़कर। आहाहा! भारी काम परन्तु कठिन।

आत्मा अन्तर में अखण्डानन्द प्रभु का आश्रय करके... ऐई! लड़का वहाँ क्यों सो रहा है? देखो! वह आड़ा करके। उस दीवार से हट जाओ, उस लकड़ी से हट जाओ। लड़कों को (सहारा) नहीं होता। वृद्ध टेके में बैठें। न समझ में आये परन्तु ख्याल में रखना कि कुछ है, ऐसा तो सुनो! कुछ बात दूसरी करते हैं, ऐसा तो ख्याल में नया आवे। आहाहा!

कभी इसे अनन्त काल में दरकार नहीं। ऐसा का ऐसा बाह्य से माना, कोई दया, दान, व्रत के परिणाम किये, वह तो विकार है, वह तो विभाव है। उससे भिन्न आत्मा को जानकर श्रद्धा और अनुभव करे तो धर्म हो, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यथार्थ स्वरूप बराबर जाने, कहते हैं। जैसा विकार हो, पुण्य और पाप का, राग और द्वेष का, उसे जाने कि यह विकार है। परन्तु उस विकार से भी भेदज्ञान करके। यह महाव्रत के विकल्प भी राग है, इनसे पृथक् पड़े, तब धर्म हो—ऐसा कहते हैं। ऐई! प्रकाशदासजी! ऐसा है। वे तो चिल्लाहट मचाये। आहाहा! महाव्रत तो चारित्र है। परन्तु अभी तुझे चारित्र की खबर नहीं, चारित्र किसे कहना। आत्मा राग से रहित स्वरूप की दृष्टि होकर उसमें रमे और आननद की दशा प्रगट हो, उसे भगवान चारित्र कहते हैं। चारित्र अर्थात् चरना; चरना अर्थात् रमना। आनन्द का धाम भगवान आत्मा, उसमें रमणता (करना)। राग में रमणता, वह तो राग विभाव है, विकार है। आहाहा! समझ में आया?

भेदज्ञान होता है, तब ही परभावों से विरक्ति होती है। फिर उनको दूर करने का उपाय सर्वज्ञ के आगम से यथार्थ समझकर... भगवान ने कहे हुए शास्त्रों से समझे। अन्य में तो यह बात कहीं हो नहीं सकती। आहाहा! जिसके मत में सर्वज्ञ नहीं, एक समय में तीन काल-तीन लोक जाने ऐसा आत्मा, एक समय में तीन काल-तीन लोक प्रत्यक्ष जाने ऐसा आत्मा, जिसके सम्प्रदाय में, जिसके वाड़ा में यह वस्तु नहीं, उसे तो उसके आगम भी सच्चे नहीं होते, ऐसा कहते हैं। **सर्वज्ञ के आगम से...** भगवान ने तीन काल-तीन लोक देखे, उसमें उन्होंने मोक्ष का उपाय क्या है, वह बताया और बन्ध का उपाय अनादि से पर में जुड़कर मिथ्यात्व, राग द्वेष करता है, यह बताया।

सर्वज्ञ के आगम से यथार्थ समझकर उसको अंगीकार करे... भगवान के आगम में तो यह कहा कि ज्ञान और आनन्दस्वरूपी आत्मा है। उसमें श्रद्धा कर, उसके सन्मुख देख। राग और निमित्त की विमुखता कर और स्वभाव में सन्मुख हो—ऐसा भगवान के आगम में कहा है। उसे समझकर अंगीकार करे। शुद्ध चैतन्य ज्ञायकमूर्ति आनन्द को समझकर अन्दर दृष्टि में आदर करे। राग और पुण्य से भिन्न करके जैसा चैतन्यस्वभाव है, उसे अन्तर्दृष्टि में आदरे। अंगीकार करे या आदर करे, (दोनों एकार्थ

हैं)। **तब अपने स्वभाव में स्थिर होकर...** अंगीकार करे अर्थात् पहला श्रद्धा-ज्ञान करे—ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....अनुभव लिया?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पहली श्रद्धा की बात आयी, श्रद्धा की। श्रद्धा, ज्ञान, अनुभव। अनुभव, ज्ञान और श्रद्धा, दोनों।

अंगीकार करे, तब अपने स्वभाव में स्थिर होकर... यह तो चैतन्य ज्ञान का भण्डार है। उसमें चैतन्य केवलज्ञान की कला प्रगटे, ऐसी वह चीज़ है। राग उत्पन्न हो, ऐसी वह चीज़ नहीं। भारी महँगा काम। महँगा लगे, इसीलिए उसने यह रास्ता छोड़ दिया और दूसरे रास्ते निकल गया कहीं का कहीं। कहते हैं, अपना स्वभाव सर्वज्ञ के आगम में... बहुत वजन दिया, देखो! उसमें भी सर्वज्ञ कहा, ऊपर कहा सर्वज्ञ (ने) देखा ऐसा।

सर्वज्ञ, जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान है। ऐसी प्रगट दशा जिन्हें हुई है, ऐसे सर्वज्ञ ने कहे हुए शास्त्रों, में सत्य बात होती है। समझ में आया? यह तो कहे, नहीं। सर्वज्ञ हो नहीं सकता। यह प्राणी तो अल्पज्ञ ही रहता है। परमेश्वर जो दूसरा है जगत का, वह सर्वज्ञ है और आत्मा तो सदा अल्पज्ञ ही रह सकता है, सर्वज्ञ नहीं होता। समझ में आया? वे वस्तु को समझते नहीं। उन्हें आत्मा की शक्ति और आत्मा का शक्तिवान स्वभाव, उसकी उन्हें खबर नहीं। समझ में आया? ऐसी बातें धर्म की, लो। हरितकाय खाना नहीं, अमुक खाना नहीं, कन्दमूल खाना नहीं, रात्रिभोजन नहीं करना, यह (सब) झट समझ में आता है। पर की क्रिया करूँ और पर को छोड़ूँ, इसके ख्याल में आता है। समझ में आया?

अपने स्वभाव में स्थिर होकर... देखो! पहले स्वभाव का निर्णय किया है कि पुण्य और पाप के भाव, वह मेरा स्वभाव नहीं, वह मुझमें नहीं। आहाहा! दया, दान, व्रत, तप का विकल्प उठे, वह तो राग है। वह वस्तु नहीं। उससे मेरी चीज़ ज्ञान और आनन्द के स्वभाववाली भिन्न है, ऐसी श्रद्धा करके ज्ञान अर्थात् वस्तु को इस प्रकार आदर किया, **तब अपने स्वभाव में स्थिर होकर...** तब ज्ञानानन्द भगवान आत्मा में स्थिर हो, वह चारित्र। समझ में आया? **अनन्त चतुष्टय प्रगट होते हैं,...** तब शक्ति में जो अनन्त ज्ञान,

दर्शन, आनन्द और वीर्य स्वभाव था, वह पर्याय में प्रगट होता है अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य।

तब (सर्व) कर्मों का क्षय करके... तब इसे सब कर्मों का नाश होकर **लोकशिखर पर जाकर विराजमान हो जाता है...** लो। लोक के अन्त में ऊपर सिद्ध विराजते हैं। **तब मुक्त या सिद्ध कहलाता है।** तब इसकी सिद्धदशा को मुक्ति कहा जाता है। **या सिद्ध कहलाता है।** लो। मुक्त हुआ कहा जाता है, उसे सिद्ध भी कहते हैं। सिद्ध परमात्मा। णमो सिद्धाणं आता है न ? ऐसी सिद्ध की दशा... पहले संसारदशा वर्णन की, बतलायी। कर्म के निमित्त में हर्ष, शोक और मिथ्यात्वभाव (हो), वह संसार। उसके कारण चार गति में शुभाशुभभाव से भटकता है। उससे भिन्न आत्मा को जाने और ऐसे आत्मस्वभाव को ज्ञान में ज्ञेय करके आदर करे, तब उसे सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन होता है, तब उसमें वह स्थिरता की क्रियारूप चारित्र करे, उससे चतुष्टय प्रगट होता है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन आदि प्रगट हो, वह आठ कर्म का नाश करके मुक्ति में जाए। इसे सिद्ध कहो या मुक्ति कहो, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? छठवीं गाथा में विस्तार बहुत किया है।

इस प्रकार जितनी संसार की अवस्था... लो। जितनी चार गति में भटकने की संसारदशा **और यह मुक्त अवस्था...** और सिद्धदशा, **इस प्रकार भेदरूप आत्मा का निरूपण है, वह भी व्यवहारनय का विषय है,...**

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं न। यह कहीं जाने नहीं देते।

आत्मा त्रिकाली द्रव्य शुद्ध चैतन्यमूर्ति। उसकी हालत-दशा, वह संसार की दशा, मिथ्यात्व, राग-द्वेष, अज्ञान, वह संसारदशा-हालत-अवस्था। उसका अभाव होकर मुक्त अवस्था (होती है)। दोनों पर्याय है, इसलिए व्यवहार का विषय है। भेदरूप हुआ न ? यह निश्चय नहीं। पहले निश्चय कहा था, वह दूसरा और यह अब व्यवहार और निश्चय (कहते हैं), वह दूसरा। भारी बात।

फिर से, **जितनी संसार की अवस्था और यह मुक्त अवस्था इस प्रकार भेदरूप**

आत्मा का निरूपण है, वह भी व्यवहारनय का विषय है। आहाहा! निश्चय तो ज्ञायकमूर्ति चिदानन्द भगवान पूर्ण स्वरूप द्रव्य, वह निश्चय का विषय है, वह सम्यग्दर्शन का विषय है, वह सम्यग्दर्शन का ध्येय है, वह धर्म का ध्येय है। अरे...! यह जीवद्रव्य जो है, उसकी संसार की विकारी अवस्था और निर्विकारी पूर्ण मुक्ति की अवस्था, उस अवस्था के भेद से उसे कहना, यह व्यवहार हो गया। समझ में आया? गजब। यह पुण्य-पाप का विकल्प भी व्यवहार, यह भी संसार अवस्था है, इसलिए व्यवहार। और वीतराग दशा हुई, सिद्धदशा हुई, वह भी अंश-पर्याय है न? वह कहीं त्रिकाली स्वरूप नहीं है। इसलिए वह पर्याय है, वह कहीं त्रिकाली स्वरूप नहीं है। भेदरूप अवस्था को व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

इसको अध्यात्मशास्त्र में अभूतार्थ-असत्यार्थ नाम से कहकर वर्णन किया है,... संसारदशा और मुक्तदशा को सिद्धान्त में, शास्त्र में—अध्यात्मशास्त्र में उसे अभूतार्थ—असत्यार्थ व्यवहारनय का विषय (कहा है)। **इसको अध्यात्मशास्त्र में अभूतार्थ-असत्यार्थ नाम से कहकर वर्णन किया है,...** आहाहा! क्योंकि वह चीज़ त्रिकाल नहीं। त्रिकाल तो भगवान द्रव्यस्वभाव आत्मा का अनादि अनन्त वस्तु है, वह निश्चय है और उसके पर्याय के भेद पड़े, देवगति का और मनुष्यगति का और फिर सिद्धगति का (भेद पड़े), वह सब अवस्था है। एक समय की दशा है, इसलिए त्रिकाली के अभेद में यह भेद हुआ; इसलिए इसे व्यवहार कहा जाता है। इसलिए निश्चय की अपेक्षा से उसे अभूतार्थ अर्थात् झूठा है, उसका स्वरूप। त्रिकाली नहीं, इस अपेक्षा से असत्यार्थ कहा। अरे! समझ में आया? यह जरा सूक्ष्म आया। वस्तु स्वरूप भगवान ने ऐसा कहा है, उसकी इसे खबर नहीं होती। अब इसमें व्यवहार मोक्षमार्ग, वह तो कहीं गया, निश्चय मोक्षमार्ग वह भी कहीं गया। वह व्यवहार में गया और मोक्ष अवस्था भी व्यवहार में गयी।

फिर से, आत्मा ध्रुव अविनाशी अनादि-अनन्त चैतन्य सत्त्व, वह तो निश्चय है। अर्थात् सत्यार्थ अर्थात् त्रिकाल रहनेवाला, वह भूतार्थ, विद्यमान पदार्थ त्रिकाली रहनेवाला वह। उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। अब वह सम्यग्दर्शन आदि दशा (हुई), पहले जो विकारी मिथ्यात्व आदि दशा थी, वह भी एक अवस्था थी, विकार का वेश था और फिर मोक्षमार्ग प्रगट हुआ—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वह भी एक समय की पर्याय

है। इसलिए उसे त्रिकाल की अपेक्षा से व्यवहार कहा। निश्चय मोक्षमार्ग की पर्याय को भी व्यवहार कहा; और उसकी परिपूर्ण सिद्धदशा हो, वह भी एक समय की अवस्था है, इसलिए उसे व्यवहार कहा। व्यवहार कहकर वह त्रिकाली में नहीं, तो त्रिकाली को जब सत्य कहा, तब अवस्था को असत्य कहा। आहाहा! समझ में आया? ऐसा वीतराग का मार्ग इसे जानना चाहिए, भाई! जाने बिना श्रद्धा नहीं होगी और श्रद्धा के बिना स्वरूप में स्थिरता नहीं होगी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं न, देखो न! **अध्यात्मशास्त्रों में अभूतार्थ-असत्यार्थ नाम से कहकर वर्णन किया है, क्योंकि शुद्ध आत्मा में संयोगजनित अवस्था हो सो तो असत्यार्थ ही है, कुछ शुद्ध वस्तु का स्वभाव नहीं है, इसलिए असत्य ही है।** कहते हैं कि विकार है, दया, दान, व्रत, तप आदि का विकल्प उठे, विकार, वह तो झूठा है क्योंकि वह त्रिकाली स्वभाव में नहीं। अरे! समझ में आया? **जो निमित्त से अवस्था हुई वह भी आत्मा ही का परिणाम है, जो आत्मा का परिणाम है, वह आत्मा ही में है, इसलिए कथंचित् इसको सत्य भी कहते हैं,...** समझ में आया? उस विकारी परिणाम को क्षणिक की अपेक्षा से उसमें है तो सत्य कहते हैं। **परन्तु जब तक भेदज्ञान नहीं होता है, तब तक ही यह दृष्टि है, भेदज्ञान होने पर जैसे है, वैसे ही जानता है।** राग मुझमें है, ऐसा भेदज्ञान जानता नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि वस्तु भगवान आत्मा अनादि-अनन्त नित्य ध्रुव प्रभु अविनाशी जिसका सत् और सत्त्व है। सत् अर्थात् द्रव्य और सत्त्व अर्थात् उसके गुण। यह सब अविनाशी उसका तत्त्व है। उस अविनाशी तत्त्व को सत्य कहते हैं। भूत—अर्थ। विद्यमान पदार्थ, सच्चा साहेब वह है। आहाहा! परन्तु कर्म के संग से उत्पन्न हुआ विकारी भाव, वह भी व्यवहार हुआ। उसका अभाव होकर (जो दशा) होती है, वह भी व्यवहार हुआ। राग-द्वेष का अभाव होकर वीतराग हो, अल्पज्ञता का अभाव करके सर्वज्ञ हो, अल्पज्ञ का अभाव करके सर्वज्ञ हो तो इतनी अपेक्षा आयी न? व्यवहार भेद पड़ गया और भेद, वह व्यवहार है। आहाहा!

मोक्ष और संसार दो दशाएँ हैं। एक विकारी वेश है, एक निर्विकारी वेश है। वेश का धरनेवाला उस वेश में पूरा आता नहीं। वेश पलटा करता है तो वह पूरा उसमें आ जाए? घड़ीक में नट का वेश और घड़ीक में स्त्री का वेश और घड़ीक में राजा का, रानी का... आहाहा! समझ में आया? इसी प्रकार चैतन्य ब्रह्म आत्मा, आनन्द का धाम भगवान वह संसार के वेश में भी पूरा नहीं आता, तथा मोक्ष की दशारूप वेश में वह पूरा सम्पूर्ण नहीं आता। भगवानजीभाई! यह ऐसी बातें हैं। पर्याय है न। इस त्रिकाली की अपेक्षा से उसे असत्यार्थ कहा, हों! उसकी अपेक्षा से सत्य है। समझ में आया? वह है। परन्तु वह त्रिकाल है, उसकी अपेक्षा से 'नहीं' ऐसा कहा गया है। नहीं कहो, या असत्यार्थ कहो। समझना पड़े, भाई! भगवान ने कहे हुए मार्ग की पद्धति है, उसके ज्ञान, श्रद्धा सच्चा नहीं करे और अकेला रुक जाए कि यह व्रत किये, तप किये, भक्ति की और पूजा की, पैसे खर्च किये और मन्दिर बनाये... धूल में भी वहाँ धर्म नहीं। सुन न! वह तो सब विकल्प है। वह विकल्प की अवस्था उसमें है, परन्तु वह सब व्यवहार है। वह आश्रय करनेयोग्य नहीं है। तथा विकल्प टलकर निर्विकल्प पूर्ण आनन्ददशा सिद्ध की हो, वह तो पर्याय है और नीचे तो वह है नहीं; इसलिए उसका आश्रय करनेयोग्य नहीं। इसलिए जब त्रिकाली को सत्यार्थ कहा, तब अवस्था को, इसकी अपेक्षा से असत्यार्थ कहा। उसकी अपेक्षा से, परन्तु त्रिकाली की अपेक्षा उसे (अवस्था को) असत्यार्थ कहा गया है। आहाहा!

कहते हैं, निमित्त से परिणाम हुए, उसे अपनी अपेक्षा से सत्य भी कहा जाता है। परन्तु स्वभाव की दृष्टि जहाँ हो, वहाँ तो राग से भिन्न पड़े, तब सम्यग्दर्शन होता है। तब तो वह राग है, उसे जाननेवाला रहे परन्तु मेरा है, ऐसा वह नहीं जानता। आहाहा! ऐसा कहते हैं। **भेदज्ञान होने पर जैसे हैं, वैसे ही जानता है।** लो। राग के विकल्प से ज्ञानानन्द स्वरूप का भिन्न भान सम्यक् हुआ, सम्यग्ज्ञान (हुआ), तब फिर कथंचित् मुझमें है, ऐसा नहीं रहता, ऐसा कहते हैं। भेदज्ञान न हो, तब तक पर्याय मुझमें है, ऐसा होता है, परन्तु भेदज्ञान होने के पश्चात् मुझमें कथंचित् है और कथंचित् नहीं, ऐसा नहीं रहता। समझ में आया? उसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। यह भी एक पर्याय है, इसलिए व्यवहार है, इसलिए आश्रयकरनेयोग्य नहीं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-२७, गाथा-६, रविवार, आषाढ़ शुक्ल २, दिनांक ०५-०७-१९७०

इस प्रकार जितनी संसार की अवस्था और यह मुक्त अवस्था इस प्रकार भेदरूप आत्मा का निरूपण है, वह भी व्यवहारनय का विषय है, इसको अध्यात्म शास्त्र में अभूतार्थ-असत्यार्थ नाम से कहकर वर्णन किया है, क्योंकि शुद्ध आत्मा में संयोगजनित अवस्था हो, सो तो असत्यार्थ ही है,... अब क्या कहते हैं, देखो! यह आत्मा है न? तीर्थंकर भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने तीन काल देखे, तीन काल का ज्ञान हुआ, उसमें यह प्रत्येक देह में रहा हुआ आत्मा देह से भिन्न है। यह (देह) तो जड़ है, मिट्टी है। ऐसा जो अन्दर आत्मा, वह त्रिकाल जो उसकी वस्तु अविनाशी ध्रुवता, वह तो निश्चय का विषय और निश्चय वस्तु है। त्रिकाल अविनाशी आनन्द, ज्ञान, शान्ति आदि अनन्त गुणरूप ध्रुव, उसमें मोक्ष और संसार, दो अवस्थायें भी जिसमें नहीं।

आत्मा वस्तु है न? परमेश्वर हुए, वह तो पर्याय हुई। सर्वज्ञ हुए, वह सर्वज्ञ अर्थात् तीन काल का ज्ञान हुआ, वह तो नया हुआ। और संसार जो विकारी दशा थी, उसका नाश हुआ। परन्तु वह तो क्षणिक अवस्था थी, उसका नाश हुआ और क्षणिक अवस्था नयी प्रगट हुई। केवलज्ञान भी एक समय की अवस्थावाला तत्त्व है। इन दो रहित अकेली चीज़ ध्रुवस्वरूप है, उसे अध्यात्मशास्त्र सत्यार्थ कहकर, पर्याय को असत्यार्थ अर्थात् व्यवहार का विषय, वह असत्यार्थ है। त्रिकाली में नहीं, वह आश्रय करनेयोग्य नहीं; इसलिए उसे झूठा कहा है। पर्याय भाग को। समझ में आया?

आत्मा ही आत्मा में दो भाग। पर की अपेक्षा से नहीं। यह शरीर, वाणी, मन तो अजीव जड़ मिट्टी है। यह तो आत्मा में है नहीं। आत्मा में दो अंश है। एक त्रिकाली और एक वर्तमान अवस्था-दशा-हालत-पर्याय। यह सब एकार्थ शब्द है। वर्तमान हालत। जैसे कि सोना है, सोना। वह त्रिकाली सोना, पीलापन, चिकनापन ध्रुवतावाला तत्त्व पूरा, वह सोना है। अब उसमें कड़ा, कुण्डल, अँगूठी आदि दशायें हों, वह तो अवस्था है। अवस्था तो एक समय रहे। वस्तु है, वह तो त्रिकाल रहती है।

यहाँ कहते हैं कि त्रिकाल वस्तु जो रहती है, वही वास्तविक भाव और वही सच्चा भाव है। ऐसी दृष्टि कराने को (ऐसा कहा है)। क्योंकि त्रिकाली ज्ञायक भगवान शुद्ध

चिदानन्दमूर्ति है। ऐसी दृष्टि में वह वर्तमान पर्याय संसार या मोक्ष, दोनों उसमें नहीं। अवस्था तो नयी होती है। मोक्ष की तो नयी अवस्था (होती है)। सिद्ध हो, सिद्ध हो, वह तो नयी अवस्था होती है। सिद्ध अवस्था अनादि की थी? इसी प्रकार संसार अवस्था जो अनादि की है, विकार, विकार, वह भी अनादि की होने पर भी क्षण-क्षण की नयी-नयी थी और उस अवस्था का नाश होता है, मोक्ष का उत्पाद (होता है), इसलिए उत्पाद-व्यय की अवस्था को व्यवहार कहा। भाई! आहाहा!

भगवान का मार्ग केवलज्ञानी तीर्थंकरदेव, परमेश्वर जिन्हें वीतरागता(प्रगट हुई) वे तीर्थंकर ऐसा कहे, उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्तं सत्। यह तो तत्त्वार्थसूत्र का सूत्र है। कहते हैं, आत्मा में अनन्त काल से जो शुद्धता, सत्ता, आनन्द और ध्रुवता भरी है, वह वस्तु है, वह सही और यथार्थ है। अब उसकी दशा में—हालत में—यह दुःख की दशा संसार की है। राग और द्वेष, पुण्य और पाप वह मैं—ऐसा भाव, वह संसार है। उसकी दशा में उसका —आत्मा का एक वेश है। उस संसार का नाश होता है और आत्मा के अवलम्बन से मोक्ष की निर्मल दशा प्रगट होती है। नहीं थी, वह हुई; थी, वह गयी। सूक्ष्म लॉजिक है। तुम्हारे डॉक्टर-बॉक्टर की अपेक्षा तो। वीतराग का है। आहाहा! समझ में आया? यह ... कहीं समझ में नहीं आवे। अपन व्यापारी हैं, लो। अपना अभी काम नहीं। तो कब काम है? सच्चा समझने का काम अभी नहीं तो कब? अभी नहीं? समझ में आया?

परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने कहा कि वस्तु जो त्रिकाल है, है... है... है... है अनादि की है और अनन्त काल रहेगी। यह वस्तु का भाव, सत्यार्थ, भूतार्थ, सत्य साहेब, सत्य स्वरूप इसे कहा है और इसकी दशा में विकार है, वह क्षणिक अवस्था है। उसका स्वभाव का आश्रय लेकर, वह दशा-अवस्था है, वह नष्ट हो जाती है और स्वभाव के आश्रय से उसे नयी साधकदशा और साध्य केवलज्ञान दशा प्रगट होती है। इसलिए वह साधकदशा-धर्म की, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसे भी यहाँ त्रिकाल की अपेक्षा से व्यवहार कहा जाता है। समझ में आया?

वास्तव में व्यवहार तो पर को कहा जाता है। स्व को व्यवहार नहीं कहा जाता। स्व, वह निश्चय और पर, वह व्यवहार है। यहाँ प्रयोजन सिद्ध करने के लिये त्रिकाली ज्ञायकभाव ही वह सत् है, उसका आश्रय करे तो उसे सच्ची दृष्टि हुई और सच्ची मोक्षदशा प्रगट होती

है। इस कारण से त्रिकाली द्रव्य को सच्चा है, ऐसा कहा और यह पर्याय है, वह झूठी है, वह त्रिकाल में नहीं और उसका आश्रय करनेयोग्य नहीं। ऐसा सब समझना पड़ता होगा यह ? कहो, समझ में आया इसमें ?

कहते हैं, उस भेदरूप आत्मा को कहे, वह तो व्यवहारनय का विषय है। उसे अध्यात्मशास्त्र में झूठा है, ऐसा कहकर वर्णन किया है। मोक्ष की दशा भी झूठी है। किस अपेक्षा से ? द्रव्यदृष्टि, वस्तु में नहीं, इस अपेक्षा से। वर्तमान अवस्था की पर्यायदृष्टि से तो है। आहाहा ! समझ में आया ? गजब बात। ऐसा सूक्ष्म। भगवान का मार्ग ही सूक्ष्म है। लोग बाहर से मानकर बैठे हैं। पता नहीं खाता। चैतन्य के गहरे पाताल कुएँ में उसमें क्या है ? और उसकी बाहर की प्रगट दशा में क्या है ? समझ में आया ?

भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसे निश्चय कहते हैं, कहते हैं। तब यह मोक्ष और संसार की दशाएँ हैं, अवस्थायें हैं, पर्याय है, भेदरूप है; इसलिए त्रिकाल की अपेक्षा से उसे व्यवहार कहकर, उसमें नहीं, पर है, झूठ है—ऐसा कहा गया है। गजब। **क्योंकि शुद्ध आत्मा में संयोगजनित अवस्था हो सो तो असत्यार्थ ही है,...** वह चाहे तो विकारी भाव हो या विकार का अभाव होकर होओ। ऐई.. !

आनन्दमूर्ति द्रव्यस्वभाव वस्तु है, वह तो शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम है। आत्मसिद्धि में आया है। तुम्हें दी है न आत्मसिद्धि ? उसमें श्लोक आयेगा। श्रीमद् राजचन्द्र। बहुत सरस। समझ में आया ? अन्दर आत्मा शुद्ध-पवित्र, बुद्ध-ज्ञान की मूर्ति। शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन—असंख्य प्रदेश का पिण्ड आत्मा है। स्वयं ज्योति—पोते/स्वयं ज्योति है। अपने प्रकाश के लिये पर की आवश्यकता नहीं। आप स्वयं ज्योतिस्वरूप है और आनन्द का धाम—सुखधाम है। ऐसा जो त्रिकाली स्वभाव, वह तो वास्तविक सत्य त्रिकाली रहनेवाला है, इसलिए उसे सत्य कहा गया है। और उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन और धर्म होता है। इसलिए प्रयोजन सिद्ध होने के लिये द्रव्य, वह सत्य और पर्याय, वह खोटी (असत्य), ऐसा कहा गया है।

कुछ शुद्ध वस्तु का तो यह स्वभाव नहीं है, इसलिए असत्य ही है। त्रिकाली वस्तु का वह स्वभाव नहीं। ध्रुवस्वरूप है, वह तो मोक्ष की अवस्था और संसार अवस्था उसका स्वभाव नहीं। भारी सूक्ष्म इसमें। कहो, समझ में आया ? अन्दर वस्तु है, कहते हैं।

प्रभु बड़ा भगवान पूर्णानन्द का नाथ ध्रुव, उसे सत्य कहा। तब पर्यायों को—मोक्ष की पर्याय को भी सद्भूत व्यवहारनय का भेद अंश है, भेद का अंश है, वह त्रिकाल की अपेक्षा से असत्यार्थ है। पर्याय की अपेक्षा से सत्य है। समझ में आया ? **जो निमित्त से अवस्था हुई वह भी आत्मा ही का परिणाम है,...** वे संसार को परिणाम और सिद्ध की पर्याय, पर्याय कहो या परिणाम कहो, उस अवस्था से देखो तो जीव के परिणाम हैं, वे कहीं पर के नहीं। व्यवहार कहा, इसलिए वह पर है, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

आत्मा का परिणाम है, वह आत्मा ही में है,... भगवान आत्मा नित्य प्रभु अविनाशी वस्तु है। उसमें ऐसी नाशवान पर्याय भी उसके परिणाम, उसकी पर्याय है, कहते हैं। भले संसारदशा नाश हो और मोक्षदशा उत्पन्न हो, ऐसा होने पर भी, त्रिकाली की अपेक्षा से सत्य नहीं है परन्तु पर्याय की अपेक्षा से सत्य है। परिणाम उसके हैं। समझ में आया ? देवजीभाई ! ऐसा सूक्ष्म है। अष्टपाहुड़ है तुम्हारे यहाँ ? पुस्तक नहीं ? अब कहीं भेंट नहीं मिलते। छपाई है न भाई की ओर से ? पाटनी की ओर से। अष्टपाहुड़, पाटनी की ओर से है। कितने समय पहले ? यह यह है न ? तुम्हारे पास कहाँ से आया ?

मुमुक्षु : १९५० का है। बीस वर्ष हो गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : ओहो ! यह पाटनी का है। भाई के पास, अशोकभाई के पास। यह अक्षर अक्षर है। पाटनी का जो है, वह अक्षर अक्षर है।

कहते हैं, यह तो शान्ति से समझने की बात है। यह कोई वार्ता, कथा नहीं कि झट-झट (पूरी हो जाए) । परमेश्वर केवलज्ञानी परमात्मा... समझ में आया ? उन्होंने यह एक आत्मा में दो अंश देखे। एक त्रिकाली अंश और एक वर्तमान क्षणिक अवस्था का-दशा का अंश। उसमें दशा के अंश को असत्य क्यों कहा ? कि त्रिकाली में नहीं है इसलिए (कहा) । उसकी अवस्थादृष्टि से अवस्था से तो अवस्था है। **इसलिए कथंचित् इसको सत्य भी कहते हैं,...** क्योंकि परिणाम उसके हैं। सिद्ध भी परिणाम हैं। सिद्ध कहीं परिणामी-त्रिकाली चीज़ नहीं है। आहाहा !

मुमुक्षु : त्रिकाली...

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणाम नहीं होते ? परिणाम न हो तो पर्याय नहीं, पर्याय नहीं तो

यह सामान्य है – ऐसा जाननेवाला कौन? कहीं सामान्य नहीं जानता। जाननेवाली तो पर्याय है।

मुमुक्षु : त्रिकाली तो अपरिणामी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपरिणामी है। अपरिणामी का अर्थ इस पर्यायरूप वह हुआ नहीं। त्रिकाली ध्रुव है, वह पर्याय में आया नहीं, इसलिए अपरिणामी है। सोना है। पीलापन, वजन और चिकनाई का सत्त्व। पूरा तत्त्व है वह... अँगूठी हुई, अँगूठी। उस अँगूठी की दशा में पूरा सोना आ गया है? पूरा सोना आ जाए तो अँगूठी की अवस्था बदले तो पूरे सोने का नाश हो जाए। समझ में आया? इसी प्रकार भगवान आत्मा अविनाशी अनादि-अनन्त नित्यानन्द प्रभु, एक समय की मोक्ष की दशा में भी नहीं आता। वास्तव में तो वह ध्रुव है, वह परिणमता नहीं। पर्याय परिणमती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : वापस बदल गया। ध्रुव परिणामी कहा था वापस पर्याय परिणामी...

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणामी है उसका अर्थ क्या हुआ? परिणामी-परिणाम स्वभाव है उसका। परिणमता है, ऐसा नहीं। परिणाम, उसका परिणाम अर्थात् सहज स्वभाव उसका है, ऐसा यहाँ कहना है। परिणमता है, ऐसा नहीं। पारिणामिकभाव है अर्थात् वस्तु पारिणामिकभाव है। पाँच भाव है—उदय, उपशम, क्षयोपशम (क्षायिक), वह पर्याय है। यह पारिणामिकभाव से है अर्थात्? सहज भाव से है, इसलिए पारिणामिकभाव से कहा। परन्तु परिणमता नहीं, इसलिए उसे अपरिणामी कहा जाता है। ऐई! सेठी! आहाहा! समझ में आया? पारिणामिकभाव अलग वस्तु है और परिणमना, वह अलग वस्तु है। परमपारिणामिक, वस्तु जो है, वह तो परमपारिणामिक सहज वस्तु आनन्दकन्द है। वह परिणमती नहीं, बदलती नहीं। बदलती है, वह पर्याय में बदलना होता है। परन्तु व्यवहार से ऐसा कहा जाता है कि वह स्वयं परिणमती है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? समझ में आया या नहीं इसमें? मोहनभाई! बफम जैसा वह छह काय की दया पालना, भगवान की भक्ति करना, यह समझ में आता है। चला जाता है जिन्दगी पूरी होकर। भव चला जाएगा, बापू!

चैतन्यतत्त्व कौन है? उसकी दशा क्या है? उसकी दशा की स्थिति कितनी और

त्रिकाली की स्थिति कितनी ? दो की स्थिति का माप लिये बिना, उस त्रिकाली द्रव्य का आश्रय नहीं कर सकता। समझ में आया ? आश्रय तो निमित्त का भी नहीं करना, राग का भी नहीं करना। यह तो केवलज्ञान तो नहीं परन्तु किसी के केवलज्ञान के लिये आश्रय करना, ऐसा भी नहीं। समझ में आया ? जिसे सम्यग्दर्शन—धर्म की पहली सोपान की श्रेणी (कहते हैं), वह तो ध्रुव... ध्रुव है। वह स्वयं करता है निर्णय ध्रुव का, ध्रुव का... परन्तु वह ध्रुव नहीं। निर्णय करती है पर्याय, परन्तु निर्णय करती है ध्रुव का। अरे ! गजब बात। ...भाई ! ऐसा तो पण्डित जयचन्द्रजी ने लिखा है। तुम्हारे गाँव के गृहस्थ पण्डित ने।

यह परिणाम तो आत्मा के हैं। कौन ? सिद्ध के परिणाम। सिद्ध भी पर्याय है। पर्याय अर्थात् परिणाम है। ध्रुव है, वह परिणाम नहीं। ध्रुव तो त्रिकाली वस्तु है। आहाहा ! समझ में आया ? उसे सत्य भी कहते हैं। किसे ? संसारपर्याय पर्यायदृष्टि से है। मोक्षपर्याय पर्यायदृष्टि से है। इस अपेक्षा से सत्य है। है, ऐसा उसे सत्य भी इस अपेक्षा से कहा जाता है। **परन्तु जब तक भेदज्ञान नहीं होता है, तब तक ही यह दृष्टि है,...** अभेद दृष्टि हुई नहीं, तब तक उसे जाने कि यह है... है। अभेद दृष्टि होने के बाद मेरे द्रव्य में वह पर्याय नहीं, पर्याय में पर्याय है – ऐसा जाने। समझ में आया ? '... ' ऐसा वस्तु का स्वरूप लोगों को (खबर नहीं)। आहाहा ! स्वयं अन्दर ऐसा है। आहाहा ! खबर नहीं होती। यह तो सब हड्डियाँ, चमड़ी तो जड़ मिट्टी है। यह तो बारदान है। माल है, वह तो अन्दर दूसरा है।

यह चैतन्य माल अन्दर है, भगवान ! वह भगवानस्वरूप ही है। जब सिद्धपद होता है, परमात्मा हो, वह परमात्मा की दशा आयी कहाँ से ? वह वस्तु में है, उसमें से आती है। कहीं बाहर से नहीं आती। परन्तु वह सब शक्ति का पूरा समूह जो पिण्ड है, वह पारिणामिकभाव से अर्थात् सहज स्वभाव से वस्तु है। कोई उसका कर्ता नहीं; वस्तु है, उसमें न्यूनता नहीं आती, उसमें घट-बढ़ नहीं होती, घट-बढ़ नहीं होती। उसकी दशा है। हालत में विकार घटे-बढ़े—ऐसा विकार पर्याय में होता है। और निर्मल पर्याय अल्प हो, बढ़े या पूर्ण हो, यह सब पर्याय / अवस्था में होता है। वस्तु में घट-बढ़ नहीं। आहाहा ! तत्त्व की खबर नहीं होती लोगों को (कि) परमेश्वर ने क्या कहा है ? समझ में आया ? परमेश्वर ने कहा है, वह तो वस्तु का स्वरूप है, ऐसा जानकर कहा है। वह कहीं किया है भगवान ने ? भगवान कहीं जीव के कर्ता हैं ? किसी तत्त्व के ? समझ में आया ?

कहते हैं, **भेदज्ञान होने पर जैसे हैं वैसे ही...** अर्थात्? कि जहाँ भेदज्ञान राग से और पर्याय से भी भिन्न जहाँ वस्तु को जाना, तब वस्तु में पर्याय नहीं परन्तु पर्याय में 'है', ऐसा जाने। बस! समझ में आया? नहीं समझ में आया? यह द्रव्यदृष्टि हो, तब (ऐसा ज्ञात होता है)। भेदज्ञान को अर्थ ऐसा कहा है। पर्याय से भिन्न जहाँ द्रव्य का निर्णय किया, तब द्रव्य में पर्याय नहीं, पर्याय में पर्याय है—ऐसा जाना। पर्यायदृष्टि से पर्याय पर्याय में है; द्रव्यदृष्टि से द्रव्य में पर्याय नहीं। बस! समझ में आया? सत्यार्थ कहा न? पहले कहा न? परिणाम सत्य कहे। कहाँ तक? कि राग भी सत्य है। कहाँ तक? राग से भिन्न पड़कर भेदज्ञान किया नहीं, वहाँ तक। फिर तो राग भी असत्य है और पर्याय भी त्रिकाली के लिये असत्य है। परन्तु निर्मल हुई, इस अपेक्षा से पर्याय में सत्य है। और विकार तो सत्य था नहीं, ऐसा जाने, उसका नाम भेदज्ञान जानने के बाद जैसा है, वैसा जाना कहा जाता है। समझ में आया? विषय ऐसा आया। वस्तु ऐसी है। परन्तु क्या हो? लोगों का अभ्यास ही पूरा (रहा नहीं)।

ऐसे द्रव्य और पर्याय। द्रव्य में गुण आ गये। गुण का भेद करना, वह कहते हैं कि वहाँ कहाँ गुण पृथक् पड़ता है? भेद पड़ना तो विकल्प है, राग है; इसलिए व्यवहार है। भगवान आत्मा, वह तो अनन्त गुण का पिण्ड है। ऐसी चीज़ को दृष्टि में लेने से सम्यग्दर्शन होता है। उस दृष्टि के विषय में संसारपर्याय या मोक्षपर्याय गयी नहीं। परन्तु संसारपर्याय कथंचित् पर्यायदृष्टि से सत्य है, ऐसा भेदज्ञान न हो, तब तक जानना। भेदज्ञान होने के पश्चात् वह राग की पर्याय भी असत्य है, वस्तु में नहीं। सिद्ध की पर्याय पर्यायदृष्टि से है। इतना इसे जानना। ऐई! वजुभाई!

ऐसा कहते हैं, संसारदशा-विकारीदशा और निर्विकारीदशा वह वस्तु की अपेक्षा से नहीं है परन्तु पर्याय की अपेक्षा से कथंचित् पर्यायदृष्टि से सत्य है। कथंचित् पर्यायदृष्टि से सत्य। परन्तु वह संसार की पर्याय है, ऐसा जो कहा और सत्य है, उसे कब तक है, ऐसा माना? कि भेदज्ञान नहीं तब तक। राग से जहाँ भिन्न पड़ा और जहाँ सम्यक् चैतन्य का भान हुआ तो राग सत्य नहीं। परन्तु परिणाम सिद्ध के और केवलज्ञान के, वह सत्य है। पर्यायदृष्टि से वह सत्य है। पर्यायदृष्टि से वह था, वह भी वास्तव में द्रव्य के स्वभाव में नहीं। मेरे स्वभाव में नहीं, ऐसा भेदज्ञानी जानता है। भिन्न है, ऐसा जानता है। और अभेद

पर्याय को मेरी पर्याय निर्मल है, ऐसा वह जानता है। समझ में आया ? अरे ! भारी भाई !

मुमुक्षु : क्षायिक सम्यग्दर्शन हो, उसे सत्य जानना या असत्य जानना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षायिक कहो या समकित चाहे जो हो न, क्षायिक समकित वह पर्याय है, वह पर्यायदृष्टि से सत्य है। पर्यायदृष्टि से। द्रव्यदृष्टि से सत्य नहीं। परन्तु विकार तो पर्यायदृष्टि से सत्य है। वह कब तक ? इसके परिणाम हैं इसलिए। कब तक ? कि भेदज्ञान हुआ नहीं तब तक। गजब विषय आया, भाई ! ऐ... दास ! समझ में आया या नहीं ? ऐई ! जयन्तीभाई ! रविवार को ऐसा आता है। आहाहा ! थोड़ा अभ्यास करना पड़ेगा, भाई !

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : भेदज्ञान के काल में जो कथंचित् विकार के परिणाम पर्यायदृष्टि से सत्य कहे थे, वे अब मुझमें तो नहीं। समझ में आया ? भिन्न है, ऐसा उन्हें जाने। और निर्मल पर्याय है, वह मुझमें है, ऐसा पर्यायदृष्टि से जाने। ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? गजब बातें, भाई ! कहो। भगवान आत्मा ऐसा है, भाई ! क्योंकि भेदज्ञान होने के पश्चात् राग है, वह मेरी पर्याय में है – ऐसा नहीं, वह तो भिन्न जानता है, उसे भिन्न जानता है।

मुमुक्षु : आगम में तो उसकी अपनी पर्याय (कही है)।

पूज्य गुरुदेवश्री : आगम में भले (कहा हो)। यहाँ अध्यात्म की बात ली है। अध्यात्म की बात चलती है न अभी ? अध्यात्म शास्त्र की शैली चलती है। आगम की अपेक्षा से पर्याय इसमें है, ऐसा निश्चय से है। यह तो सच्चा नय। इस न्याय से द्रव्य भी निश्चय है और पर्याय भी निश्चय है, यह अलग बात है। यह तो आगमदृष्टि हुई। आगमप्रमाण से, अध्यात्म प्रमाण से जाने तो वह सच्चा कहलाये। यह आया है न ? आगमप्रमाण से जीवादि जाने परन्तु अध्यात्म प्रमाण से जिसमें वीतरागता होनी है, उस शास्त्र को न जाने, उस भाव को न जाने तो सब उसका आगमज्ञान भी मिथ्या है। थोड़ा-थोड़ा समझना। ख्याल में रखना (कि) कुछ है, इसमें कुछ है। इसे क्या खबर है ?

जिसे धर्म को समझना हो तो समझने के ऐसे प्रकार हैं। वीतरागमार्ग के हैं, वे अन्यत्र हो नहीं सकते। सर्वज्ञ वीतराग तीर्थंकर के अतिरिक्त ऐसी बात, ऐसा स्वरूप, व्यवहार और कथंचित् सत्य और असत्य और... अलौकिक वस्तु है। समझ में आया ?

अरे! आठ-आठ वर्ष के लड़के केवलज्ञान पाते हैं। लड़कों ने लिखा था न? लिखते हैं न? छगनभाई बैठे, वहाँ नीचे लिखा है। नीचे अक्षर लिखे हुए हैं। कितने ही लड़कों के नाम। खड़ी-बड़ी लाये होंगे। यहाँ खड़ी का हमें क्या करना? यहाँ खड़ी से नहीं लिखा जाता। यहाँ तो ज्ञान के अंक से लिखा जाता है। समझ में आया? प्रभु का मार्ग ऐसा है। वीर का-परमात्मा का रास्ता ऐसा है। यही तेरा रास्ता है। वीर ने कहा है, वह तेरा रास्ता कहा है।

भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु, वही वास्तव में सत्य के संग्रह में वह सत् आता है। उस सत्य के संग्रह में पर्याय का सत्य, वह संग्रह में नहीं आता। आहाहा! परन्तु वह परिणाम तो उसके हैं, कहते हैं। परिणाम, हों! उस सामान्य के वे परिणाम हैं। वे किसी के परिणाम हैं और किसी की वस्तु है, ऐसा नहीं है। इसलिए उसे कथंचित् पर्याय विकारी और निर्विकारी, दोनों को पर्यायदृष्टि से सत्य कहना। परन्तु जब भेदज्ञान होने के बाद राग है, उसका परिणमन है, ऐसा जानना, बस इतना। समझ में आया? और निर्मल पर्याय तो मेरी पर्यायदृष्टि से बराबर है, ऐसा जाने। त्रिकाली में नहीं। समझ में आया? आहाहा! पर्याय, वह सत् है न! वह सत् है, वह कहाँ जाये? सदा खड़ी रहती है, पहली तो चली गयी। दृष्टि में रही नहीं, दृष्टि के विषय में रही नहीं। वास्तव में तो पर्याय में परिणमन है परन्तु वह परिणमन दृष्टि की अपेक्षा से तो भिन्न परिणमन हो गया। ज्ञान की अपेक्षा से, ज्ञान स्व-पर दोनों को जानता है न, तो इतना परिणमन जाने, बस। समझ में आया? परन्तु निर्मल परिणमन है, वह तो बराबर है, ऐसा कहते हैं। पर्याय लक्ष्य में ज्ञान करके निर्मल जो मोक्ष का मार्ग है, वह व्यवहार है। समझ में आया?

भेदज्ञान होने पर जैसे हैं, वैसे ही जानता है। लो। यहाँ तक आया। यह हमारे पण्डितजी ने कहा। यहाँ तक आया। वापस वह का वह चला। पैंतीस मिनिट तो यह चला। चला था, वह चला।

मुमुक्षु : चला था चला नहीं, अधूरा चला।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई कहते हैं ठीक है। यह बात सत्य। अधूरा रहा है वह चला। ऐ! बात तो सत्य थी, हों! क्योंकि बराबर स्पष्ट नहीं हुआ था। इसके जैसे पहलू हैं, वे पहलू स्पष्ट नहीं हुए थे। सामान्यरूप से चला था। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं, भाई! तू त्रिकाली चीज़ है या नहीं? या क्षणिक वस्तु

है तू ? त्रिकाली जो अनादि तेरी वस्तु के स्वभाव की आदि नहीं, अन्त नहीं। इतना काल वह काल... आहाहा! है... है... है और है। ऐसा जो त्रिकाली सत् है, वह आश्रय करनेयोग्य है। उसे परम सत्य साहेब कहते हैं। प्रकाशदासजी! यह साहेब आया अन्दर। और एक समय की पर्याय है। ऐसी बात है कहीं वहाँ ? अभी तो जड़-चैतन्य भिन्न क्या है, उसकी खबर नहीं होती। यहाँ तो पर्याय और द्रव्य भिन्न की यह तो बातें चलती हैं। आहाहा! भगवानजीभाई! यह तो मूल की बात है, भगवान! आहाहा! क्या हो ?

मुमुक्षु : भगवान की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान की बात है। तो भगवान तो नाम है इनका। यह भगवान भाव... आहाहा! अरे! तू भगवान है, उसमें विशेषता क्या ? उसमें विशेषता भी क्या ? उसमें आश्चर्यता भी क्या ? ऐसा यहाँ तो कहते हैं। ऐसा है न। फिर आश्चर्य और विस्मयता क्या ? आहाहा! सत् का पिण्ड, अकेला स्वभाव का पिण्ड। ध्रुव पिण्ड। उसमें पर्याय का अभाव है। इस अपेक्षा से उसमें नहीं है, ऐसा कहा। परन्तु पर्यायदृष्टि से राग भी है और निर्मलदशा भी है। उसके परिणाम में है। परन्तु अब राग है, उसमें वह कब तक ? कि भेदज्ञान नहीं हुआ तब तक। ऐसा कहते हैं। परन्तु जब राग से भिन्न पड़ा, तब राग इसका है, ऐसा नहीं रहा। भले परिणमन है परन्तु इसका नहीं रहा। और सिद्धपद हुआ, वह तो इसके परिणाम हैं, हैं, उसे तो बराबर पर्यायदृष्टि से कथंचित् है, ऐसा भेदज्ञान होने के बाद भी वह जानता है। समझ में आया ? अब इसमें लिखने से कुछ पार आवे ऐसा है ? आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्य बात। किस अपेक्षा से है और किस अपेक्षा से नहीं, ऐसा जानना चाहिए न। अब कहते हैं तीसरी बात।

जो द्रव्यरूप पुद्‌गलकर्म हैं... अब तीसरी बात ली। यह तो इसके दो भाग की बात की। अब यह कर्म जो जड़ अन्दर है, जैसे यह शरीर है, वह जड़ है-अजीव, पुद्‌गल है। भगवान इसे पुद्‌गलद्रव्य कहते हैं। इसे कहीं आत्मद्रव्य नहीं कहते। यह तो अजीव द्रव्य है, परमाणु है। ऐसा एक कर्म अन्दर है। आठ कर्म ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय (इत्यादि)। यह कहते हैं कि **द्रव्यरूप पुद्‌गलकर्म हैं, वे आत्मा से भिन्न ही हैं,...**

वे तो आत्मा से, जहाँ एक समय की पर्याय भी जब द्रव्य में नहीं, ऐसा कहा, तब यह पुद्गलद्रव्य तो अत्यन्त भिन्न ही है। **द्रव्यरूप पुद्गलकर्म हैं,...** ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय **वे आत्मा से भिन्न ही हैं,...** आत्मा से भिन्न ही है।

उनसे शरीरादि का संयोग है... लो। इन कर्म के निमित्त से यह शरीर का संयोग, वाणी का संयोग है। समझ में आया? **वह आत्मा से प्रगट ही भिन्न है,...** यह शरीर भी प्रगट भिन्न है, ऐसा कहते हैं। यह तो प्रगट जड़ भिन्न आत्मा से अत्यन्त-अत्यन्त भिन्न है। यह वाणी बोली जाती है, वह भी आत्मा से अत्यन्त भिन्न चीज़ है। आहाहा! समझ में आया? अब उपचारिक व्यवहार कहते हैं। वह व्यवहार तो इसमें परिणाम था, उसे व्यवहार कहा था। समझ में आया?

मुमुक्षु : कितने प्रकार के व्यवहार हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अभी दो प्रकार का कहा। एक इसकी पर्याय का व्यवहार और अब पर का व्यवहार उपचारिक। यह तो पर है, इसलिए वास्तव में व्यवहार है, वह तो आत्मा में नहीं, ऐसा कहते हैं। पहले जो पर्याय को व्यवहार कहा था, वह पर्यायदृष्टि से इसमें है। विकार भी है और निर्विकार भी है, ऐसा कहा था। यह तो है ही नहीं। व्यवहार, शरीर, कर्म वह तो अजीवतत्त्व है, पुद्गलतत्त्व है। भगवान ने जीवतत्त्व, अजीवतत्त्व या नवतत्त्व कहे न? जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। तब नवतत्त्व में कहते हैं, आस्रव, पुण्य-पाप के परिणाम, संवर, निर्जरा, मोक्ष के परिणाम, वे परिणाम त्रिकाली द्रव्य में तो नहीं। इसलिए उन्हें झूठा कहा। परन्तु उन परिणाम की अपेक्षा से परिणाम इसके हैं, यह ध्रुव की विशेषता इसकी है, ऐसा गिनकर वे परिणाम कथंचित् पर्यायदृष्टि से इसके हैं। परन्तु वे दो विकारी और अविकारी कहे, परन्तु भेदज्ञान होने के पश्चात् विकारी परिणाम मेरे हैं - ऐसा नहीं रहता। परिणमन है भले वहाँ परिणमन में पर्यायदृष्टि से। समझ में आया? मेरी चीज़ में नहीं। परिणमन शुद्ध होता है, वह तो मेरी पर्याय में है। समझ में आया? कहो, रविन्द्र! समझ में आया या नहीं?

मुमुक्षु : पर्याय में है...

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में है यह सिद्धपद।

मुमुक्षु : सिद्ध में ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सिद्ध में भी पर्याय में है।

मुमुक्षु : मेरी चीज़ में नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : चीज़ में नहीं, यह तो पहले कहा। चीज़ में तो है ही नहीं। ध्रुव में तो यह पर्याय भी नहीं और वह भी नहीं। अब यहाँ पर्याय में है और भेदज्ञान नहीं, तब तक यह विकारी पर्याय गिनी।

मुमुक्षु : सिद्धपना पर्याय में है या सिद्धपना स्वयं ही पर्याय है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में अर्थात् वह पर्याय स्वयं ही है, फिर पर्याय में अर्थात् ? ध्रुव में नहीं, इसलिए पर्याय में। इसलिए पर्याय। ऐई ! पर्याय में अर्थात् वह पर्यायरूप ही स्वयं है। इसलिए पर्याय में है, ध्रुव में नहीं, ऐसा। सिद्धपद ध्रुव में नहीं।

मुमुक्षु : ध्रुव में नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुवरूप है ही नहीं वह पर्याय, वह पर्याय क्षणिकरूप है। आहाहा ! कहा न ? वह सिद्धपद की पर्याय है, वह ध्रुव में नहीं। उसका ध्रुवरूप नहीं, उसका तो क्षणिकरूप है। समझ में आया ? आहाहा ! धर्म को समझने के लिये इतने पहलू इसके हैं, ऐसा इसे जानना पड़ेगा। ऐसे अध्धर से धर्म हो जाए, ऐसी चीज़ नहीं है। अनन्त काल गया।

यहाँ तो कहते हैं, जब हमने मोक्ष की पर्याय को व्यवहार कहा। वह व्यवहार इसमें- द्रव्य में नहीं इसलिए (व्यवहार) कहा। नहीं तो व्यवहार तो उसे कहते हैं कि जो इसकी पर्याय में भी न हो। समझ में आया ? उसे व्यवहार कहा जाता है। परन्तु यहाँ पर्याय को व्यवहार कहा, वह द्रव्य में नहीं, इस अपेक्षा से व्यवहार कहा। ऐसा। यह तो सातवीं गाथा में प्रश्न नहीं उठा ? कि यह पर्याय है, वह कहीं अवस्तु तो नहीं है। शिष्य ने प्रश्न किया है। सातवीं गाथा, समयसार। तुम कहते हो कि ज्ञान, दर्शन, चारित्र आत्मा के नहीं। वह पर्याय नहीं। वह पर्याय इसकी नहीं तो वह अवस्तु तो नहीं, कहीं दूसरी चीज़ तो नहीं। है तो इसके परिणाम, तथापि तुमने उसे अवस्तु कहकर, व्यवहार कहकर अवस्तु कहना चाहते हो। तो वह अवस्तु नहीं है। अवस्तु अर्थात् आत्मा से भिन्न वस्तु नहीं है, ऐसा।

आत्मा में आयी नहीं। परन्तु उसे अवस्तु कैसे कहा? अभेद की दृष्टि कराने के लिये वस्तु त्रिकाली में से निर्मल धर्म की दशा प्रगट होगी, ऐसे अभेद की दृष्टि कराने के लिये भेद को गौण करके; अभाव करके व्यवहार कहा है, ऐसा नहीं। उसे गौण करके अवस्तु अर्थात् व्यवहार कहा है। समझ में आया? दिगम्बर सन्तों ने तो वस्तु के स्वभाव को बहुत ही स्पष्ट कर दिया है, बहुत स्पष्ट कर दिया है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पर्याय का आश्रय करनेयोग्य नहीं है। द्रव्य का आश्रय (करनेयोग्य है)। क्योंकि वह त्रिकाली सत् है। भले पर्याय है, वह आश्रय करे परन्तु पर्याय आश्रय करती है ध्रुव का। पर्याय आश्रय पर्याय का नहीं करती। प्रवीणभाई! ऐसा प्रवीण होना पड़ेगा, कहते हैं। अरे... अरे...! गजब बात! वह तो कुछ समझे बिना (हाँक रखते हैं)। 'विहुयरयमला' नहीं कहा था? आता है? भाई! डॉक्टर! लोगस्स... लोगस्स। लोगस्स में आता है, विहुयरयमला। यह अर्थ न आते हों। अंग्रेजी पढ़े हों उन्हें... विहुयरयमला आता है। कहा न?

लींबडी में दशा, वीसा का विवाद था। दसा, वीसा है न? दो समाज हैं न अपने दशा, वीसा? ... स्वयं वीसाश्रीमाली है, इसे खबर है न? दशाश्रीमाली और वीसाश्रीमाली दो है न? अपने इस ओर दो जातियाँ हैं। उसमें दशाश्रीमाली की महिला थी। वह यह लोगस्स बोली—विहारोईमल्या। अर्थ की खबर नहीं होती। अपने विवाद की बात लोगस्स में कहाँ से आयी? दशा, वीसा को अपने कहीं बनता नहीं। वहाँ लींबडी में। इसमें कहाँ से आया? विहुयरयमला। उसके बदले (बोली) विसारोईमल्या। बहुत ऐसे ही भान बिना... क्या कहलाता है? घड़ी। रेती पूरी हो गयी तो हो गयी सामायिक। कहाँ से धूल में सामायिक? अभी सामायिक कहना किसे? कहाँ से प्रगट होती है। यह सामायिक वीतरागदशा है। वह वीतरागपना किसमें भरा है कि जिसके आश्रय से हो? और राग उसमें भरा नहीं, इसलिए राग अध्धर से आकर उत्पन्न हुआ, टल जाता है। यह क्या है? कुछ ज्ञान नहीं होता और यह कहता है कि हो गयी हमारे सामायिक और प्रौषध। धूल में भी नहीं। फिर उसने देखा कि अर्थ क्या है देखो तो सही। अर्थ तो इसमें विहारोईमला नहीं। तब? विहूयरयमला है। वि—विशेष। हू। हू का भू होता है। विशेष टाले हैं। रयमला—रय अर्थात्

कर्म की रज और मल अर्थात् दया, दान, व्रत के जो शुभभाव हैं न ? वह मल-मैल है। रजकण और मैल को जिसने टाला और अशरीरी तथा पूर्णानन्द की पर्याय प्राप्त हुई, उसे सिद्ध भगवान और अरिहन्त परमेश्वर कहा जाता है। अर्थ की तो खबर नहीं होती। पहाड़े बोलते जाते हैं। सुजानमलजी !

मुमुक्षु : बात तो बराबर है। ऐसा ही चला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही चला है ? आहाहा ! भाव में कुछ ख्याल आना चाहिए न ? कि यह है, यह है, यह है। परन्तु क्या है, इसके ख्याल में भरोसे में चढ़ना चाहिए न बात ? ऐसे का ऐसा भरोसे में चढ़े बिना सीधे अध्धर ऐसा आत्मा है और ऐसा है और ऐसे धर्म होता है। इसका अर्थ क्या ? यह तो अज्ञान अन्धकार की बातें हैं।

कहते हैं, यह द्रव्यरूप जो पुद्‌गल है। आठ कर्म अन्दर, नहीं ? रयमला, कहा न ? रज-रय है। 'य' का 'ज' होता है। भगवान ने टाले हैं। क्या ? रज। आठ कर्म की रज। यह रज है, वह तो द्रव्यकर्म जड़ पुद्‌गल है। वह तो आत्मा से अत्यन्त भिन्न है। वह मल जो है, वह तो पहले में कहा। संसारदशा, विकारीदशा। इसकी पर्याय में वह विकारी मैल है। मिथ्यात्व, राग-द्वेष मैल है। परन्तु यह कर्म है, यह तो इससे अत्यन्त भिन्न चीज़ है। रज भिन्न चीज़ है और मैल इसके परिणाम में है, तथापि उसकी वस्तु में वह है नहीं। आहाहा ! वस्तु में नहीं, ऐसा जो कहा न उसमें ? भेदज्ञान होने से पहले तो तू मानना कि तुझमें है। भाई ! आता है न ? सर्वविशुद्ध में। सर्वविशुद्ध में बराबर कहा है। बराबर। आहाहा ! जहाँ है वहाँ तत्प्रमाण वस्तु रची है। आहाहा ! जब तक राग, द्वेष और मिथ्यात्व का परिणमन तुझमें है, तू परिणमता है, वहाँ तक वह तुझमें है। परन्तु भेदज्ञान होने के पश्चात् राग मैल (किसका) ? मैं तो निर्मलानन्द हूँ, ऐसी दृष्टि होने के पश्चात्, भेदज्ञान होने के पश्चात् वे मुझमें नहीं हैं। परिणमन है, उसे जाने। समझ में आया ?

कहते हैं कि कर्म तो परद्रव्य है। वे आत्मा से न्यारे-भिन्न हैं। उनसे मिला यह शरीर, निमित्त, उससे मिली यह वाणी, यह कर्म से वाणी है। उससे मिली यह पैसे की धूल। कहो, समझ में आया ? कहते हैं, **संयोग है, वह आत्मा से प्रगट ही भिन्न है,...** शरीर, वाणी तो प्रगट आत्मा से भिन्न चीज़ है। उसके एक समय के अंश में भी वह आयी नहीं। वह मैल और निर्मल (भाव) तो उसके परिणाम में थे, कहते हैं। समझ में आया ? धीरे-

धीरे कहा जाता है परन्तु विचारना तो इसे पड़ेगा न ? कोई दे-देवे ऐसा है ? किसी के पास से दिया जा सके ऐसा है ? भगवान देते हैं किसी को कुछ ? तिन्नाणं, तारियाणं तो कहा जाता है, हों ! नमोत्थुणं में। नहीं ? नमोत्थुणं में आता है या नहीं। देव दे, ऐसा शास्त्र में आता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। देव अर्थात् यह आत्मा है, वह देव, ऐसा कहते हैं। वह भगवान दे, ऐसा फिर व्यवहार कहा जाता है।

मुमुक्षु : इसमें तो तीर्थंकरदेव...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तीर्थंकर स्वयं आत्मा। परन्तु वहाँ निमित्त से कथन किया। भगवान ने ऐसा समझाया न, इसलिए भगवान ने जो पुण्य का भाव समझाया, विषय का भाव समझाया, दृष्टि का समझाया और मोक्ष का समझाया। इसलिए उन्होंने समझाया तो उन्होंने दिया – ऐसा कहा जाता है। श्रीमद् में भी आता है न ? 'वह तो प्रभु ने ही दिया' दे क्या ? आत्मा देते होंगे कोई ? मुझे जानने में ऐसा आत्मा नहीं था, वह आपका निमित्त और मैंने जाना, इसलिए आपने दिया, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। बात तो ऐसी है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु समझाया नहीं था। समझाया है, फिर नहीं था, ऐसा कहाँ से लेना ? ऐसा कहते हैं। चिमनभाई ! दिव्यध्वनि से आया है, दिव्यध्वनि कही जाती है, उपदेश कहा जाता है। यह न होता तो होता, यह प्रश्न कहाँ है ? समझ में आया ? आहाहा ! अस्ति ले न, अस्ति ले न। यह उपदेश भगवान की वाणी में आया और समझनेवाले अपने स्वलक्ष्य से समझे, तब भगवान ने आत्मा दिया। अर्थात् ? हमें आत्मा ख्याल में नहीं था, वह आपने ख्याल कराया, इसलिए दिया। ऐसा।

मुमुक्षु : ख्याल में लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : लिया अर्थात् कहा न ? ख्याल में निमित्त कराया न ? निमित्त हुआ न ? कि ऐसा आत्मा कहलाता है। राग, वह आत्मा नहीं; शरीर, वह आत्मा नहीं। एकरूप गुण का भेद, वह भी आत्मा नहीं। ऐसा जब भगवान ने कहा, तब इसके ख्याल में आया, तब इसने निमित्त से ऐसा कहा, प्रभु ! हमें तो आत्मा कौन है, यह ख्याल में ही नहीं था, इसलिए हमारे तो दृष्टि में आत्मा का अभाव था। यह आपने कहा, तब हमने हमारे

से जाना, तब आपने दिया ऐसा कहा जाता है। ऐसा है। यह तो आत्मसिद्धि का है। यह पहले दिया था न? 'आत्मसिद्धि प्रवचन'। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **इनको आत्मा के कहते हैं, सो यह व्यवहार प्रसिद्ध है ही,...** आत्मा का शरीर, आत्मा के कर्म, आत्मा के आठ कर्म, आत्मा को पाँच शरीर, आत्मा को दो शरीर, आत्मा को तैजस, कार्माणशरीर, आत्मा को ऐसी व्यवहार भाषा, ऐसी निश्चय भाषा, ऐसी सत्य भाषा, ऐसी जो भाषा और शरीर तथा कर्म अत्यन्त भिन्न चीज़ होने पर भी उनके निमित्त के सम्बन्ध से उसे ऐसा कहना, वह तो व्यवहार और उपचार है। **इसको असत्यार्थ या उपचार कहते हैं।** यह झूठ बात है, कहते हैं। लो। आहाहा! कहो, गोम्मटसार में आता है। नारकी को तीन शरीर होते हैं—तैजस, कार्माण और वैक्रियक। देव को तीन शरीर होते हैं। मनुष्य को तीन होते हैं—औदारिक, तैजस और कार्माण। कहते हैं कि वह सब भिन्न चीज़ होने पर भी व्यवहार से-उपचार से ऐसा कहा जाता है। यह कहना वह झूठा है, उसकी वस्तु भी झूठी है। वह इसकी वस्तु है नहीं। जहाँ पर्याय को द्रव्य की अपेक्षा से झूठी कहा कि जो इसके परिणाम में है। यह (शरीर) तो है नहीं। समझ में आया? आहाहा!

शरीर, कर्म, वाणी, यह सब; भगवान आत्मा तो अरूपी है, उसमें यह कहाँ आया? यह तो न्यारे-भिन्न ही हैं। अभी भी भिन्न हैं, ऐसा कहते हैं, हों! वे भिन्न पड़े तब नहीं, पड़े तब तो और क्षेत्र से भिन्न पड़ेंगे। यहाँ एक क्षेत्र में दिखते हैं, वे भिन्न ही हैं। उन भिन्न को इसके कहना, वह उपचार का व्यवहार है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : भिन्न क्षेत्र...

पूज्य गुरुदेवश्री : सबका सार यह है। आहाहा! साथ में रहनेवाला मुसलमान हो, उसे मामा कहा जाता है। वह मोसाला (भात) देगा? इसे कुछ नहीं देगा। नारियल दे या आठ आना रुपिया...

मुमुक्षु : ...दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह तो जरा सोहबत के कारण। मामा है, इसलिए नहीं। यह तो वह सम्बन्ध हुआ न दो का, इसकी अपेक्षा से। मामा है इसलिए देता है, ऐसा नहीं। हमारे साथ (पड़ोस में) एक था। गीगा मामा और उसकी बहू को मौसी कहते। गाँव के थे न, मेरी माँ। गीगामामा और सतबाई मौसी। ऐसा कहते। पड़ोसी में। कहने मात्र है। उसे

कहीं रोटियाँ देना यह ? आहाहा ! ... वह खोटा मामा है। पर को अपना कहना, वह खोटा है, ऐसा कहते हैं। वह कहीं तुझे दे ऐसा, तेरे परिणाम में आवे ऐसा नहीं है, यह कहते हैं। **इसको असत्यार्थ या उपचार कहते हैं।**

यहाँ कर्म के संयोगजनित भाव हैं, वे सब निमित्ताश्रित व्यवहार के विषय हैं... अब दूसरी बात की। यह कर्म के निमित्त से जो भाव है, वह सर्व **निमित्ताश्रित व्यवहार के विषय हैं और उपदेश अपेक्षा इसको प्रयोजनाश्रित भी कहते हैं...** उपदेश में तो ऐसा आवे न ? यह राग तूने किया, यह शरीर तेरा, ऐसा व्यवहार में उपदेश आवे न ? उपदेश अपेक्षा से प्रयोजनआश्रित कहते हैं। **इस प्रकार निश्चय-व्यवहार का संक्षेप है।**

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार की बात की। निश्चय की तो पहले आ गयी। व्यवहार ऐसा समझाया, इसके अतिरिक्त का निश्चय। ऐसा समझना।

मुमुक्षु : यह आगम का निश्चय आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह आया था। खबर है। परन्तु यह व्यवहार आया, उसमें निश्चय आ गया। यह सब व्यवहार, तब अकेला ध्रुव वह निश्चय। यह सब व्यवहार तो इसके अतिरिक्त की वस्तु वह निश्चय। इसमें से छाँट लेना। समझ में आया ? आहाहा ! वह तेरे नहीं, वह तेरे नहीं, वह तू नहीं। तो तू कौन ? इसमें समझ लेना। दूसरा एकरूप वह तू। समझ में आया ?

अब कहते हैं, मोक्षमार्ग। अब मोक्षमार्ग की बात चलती है। **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को मोक्षमार्ग कहा, यहाँ ऐसे समझना कि ये तीनों एक आत्मा ही के भाव हैं,...** लो ! क्या कहते हैं ? सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र भगवान ने मोक्ष का मार्ग कहा, तो वह तीन क्या है ? सम्यग्दर्शन, वह आत्मा के शुद्ध परिणाम हैं। आत्मा जो शुद्ध चैतन्यद्रव्य वस्तु है, उसकी जो श्रद्धा अन्तर में हुई, वह शुद्ध परिणाम है। मोक्षमार्ग कोई गुण नहीं, मोक्षमार्ग कोई द्रव्य नहीं। उसके परिणाम हैं। वे परिणाम के प्रकार किस प्रकार हैं, इसका विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन-२८, गाथा-६, सोमवार, आषाढ़ शुक्ल ३, दिनांक ०६-०७-१९७०

... उसका विषय, वह निश्चय है और बन्ध तथा मोक्ष की पर्याय भेद है, वह सब व्यवहार है। उसकी पर्याय होने पर भी अंश है, भेद है, वह व्यवहार है। ऐसे द्रव्य और पर्याय का निश्चय और व्यवहार का स्वरूप सूक्ष्म है, यह सब। एकदम इन्होंने निश्चय परमार्थ और व्यवहार इकट्ठा उतारा है न? अब यहाँ मोक्षमार्ग में निश्चय और व्यवहार उतारते हैं।

सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र। आत्मा शुद्ध निर्मल वीतरागी स्वरूप की निर्विकल्प प्रतीति, उसका ज्ञान और उसकी रमणता, उसे **मोक्षमार्ग कहा।** उसे भगवान ने मोक्षमार्ग कहा है। **यहाँ ऐसे समझना कि ये तीनों एक आत्मा ही के भाव हैं,...** दर्शन, ज्ञान, चारित्र, यह आत्मा का अभेद भाव है। इससे **इस प्रकार इनरूप आत्मा ही का अनुभव हो, सो निश्चय मोक्षमार्ग है,...** आत्मा का अभेद दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनपना भेद नहीं रहकर, तीनों का एकपना करके आत्मा का अनुभव हो, उसे निश्चयमोक्षमार्ग कहते हैं। समझ में आया? यह थोड़ा सूक्ष्म है, भाई! एकसाथ परमार्थ और व्यवहार यहाँ रखा है न। तीनों एक आत्मा के भाव हैं, आत्मा की पर्याय है। इससे तीन स्वरूप **आत्मा ही का अनुभव हो...** अभेद, **सो तो निश्चयमोक्षमार्ग है,...** सच्चा मोक्षमार्ग है। आत्मा पूर्ण आनन्द, चैतन्यपिण्ड, उसका विषय बनाकर और सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र हो, वह आत्मा में एकरूप अनुभव तीन का (होता है), उस एकरूप अनुभव को निश्चयमोक्षमार्ग कहते हैं। समझ में आया? वह सच्चा मोक्षमार्ग है।

इसमें भी जब तक अनुभव की साक्षात् पूर्णता नहीं हो... उसमें भी जब तक शुद्धि की पूर्ण प्राप्ति न हो, अनुभव की पूर्ण प्राप्ति न हो, शुद्धि की पूर्ण प्राप्ति न हो, **तब तक एकदेशरूप होता है...** एक अंश शुद्धि हो। छठवें में एक अंश शुद्धि है, अभी पूर्ण शुद्धि नहीं। **एकदेशरूप होता है, उसको कथंचित् सर्व देशरूप कहकर कहना...** उसे पूरा मोक्षमार्ग कहते हैं, वह व्यवहार है। चौथे गुणस्थान में सम्यग्दर्शन, ज्ञान और स्वरूप का आचरण आंशिक हुआ, वह एकदेश है। अंश हुआ है, मोक्षमार्ग पूरा हुआ नहीं। उसे पूरा कहना, इसका नाम व्यवहार। गजब निश्चय-व्यवहार का (स्वरूप)। समझ में आया?

जब तक अनुभव की अर्थात् शुद्धि की साक्षात् पूर्णता-पूर्ण शुद्धि न हो, इसलिए उसे एकदेश शुद्धि हुई है। चौथे, पाँचवें, छठवें इत्यादि। उसे सर्वदेश कहते हैं, पूरा मोक्षमार्ग है, ऐसा कहना, इसका नाम व्यवहार है। यह सब अभ्यास चाहिए, सेठी! यह अध्धर से कुछ समझ में आये, ऐसा नहीं है। सब एकसाथ इसमें डाला है, इसलिए जरा (समझना कठिन पड़े)। समझ में आया?

एकदेश नाम से कहना... जितना प्रगट हुआ है, उतना उसे जानना, इसका नाम निश्चय। उसे पूरा पूर्ण कहना, इसका नाम व्यवहार है। ऐसा। भगवानजीभाई! है इसमें? है न इसमें कथन है या नहीं? परन्तु अपने आप कुछ सूझ (पड़े), ऐसा नहीं है अन्दर में। है इसमें पुस्तक। तुझे चाहिए है ले, कल जानेवाला है न? कहो, समझ में आया इसमें? आज जानेवाला है। क्या कहा?

पहली बात द्रव्य और पर्याय के बीच निश्चय और व्यवहार उतारे हैं। अध्यात्मदृष्टि से। इसमें ऐसा कहा, आया न ऊपर? देखो न ऊपर। अपना शुद्धस्वरूप शुद्ध निश्चयनय का विषय है, उसे जानकर श्रद्धान करे। वह शुद्धस्वरूप जो त्रिकाली विषय है, वह निश्चय। उसकी श्रद्धा, ज्ञान करके कर्म का क्षय करके मोक्ष होता है। वह मोक्ष की पर्याय जो प्रगट हुई, वह भी त्रिकाली द्रव्य का एक अंश है। इसलिए उसे व्यवहार कहा। पूरी चीज़ को जब निश्चय कहा, तब उसके अंश की दशा को व्यवहार कहा और बन्ध को भी व्यवहार कहा। इसलिए दोनों भेदरूप हैं, आश्रय करनेयोग्य नहीं। त्रिकाल चैतन्यमूर्ति ज्ञायकभाव, वही विषय करके अनुभव करनेयोग्य है। ऐसा सिद्ध किया।

अब जब मोक्षमार्ग पर्याय है, उसके निश्चय-व्यवहार क्या? वह तो द्रव्य-पर्याय के उतारे। समझ में आया? कहते हैं कि मोक्षमार्ग में भी दो प्रकार। निश्चय और व्यवहार। अब निश्चय, व्यवहार का स्वरूप क्या? कि आत्मा में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का अभेदपना आत्मा का पूरा अनुभव होना, उसमें दर्शन, ज्ञान और चारित्र ऐसे तीन रूप नहीं हैं। समझ में आया? भले तीनरूप परिणमन है, परन्तु परिणमन में अभेद दृष्टि के ध्येय के कारण तीनों का एकरूप अनुभव होना, इसका नाम सच्चा निश्चयमोक्षमार्ग कहा जाता है। उसके भी दो भेद हैं। उसमें भी जब तक पूर्ण शुद्धि न हो, पूर्ण मोक्षमार्ग तो चौदहवें (गुणस्थान में) होता है। ऐसे मोक्षमार्ग की पूर्णता वहाँ (होती है) वह तो निश्चय हुआ और

यहाँ नीचे मोक्षमार्ग की अपूर्णता है, उसे पूर्ण कहना, यह भी व्यवहार (हुआ)।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार हुआ न ? है नहीं, तथापि विशेष कहना, उपचार से उसे पूर्ण कहना, (यह व्यवहार हुआ)। यह अभ्यास चाहिए, भाई ! यह मार्ग वीतराग का अभी निश्चय-व्यवहार के नाम से बिखर गया है। बहुत झगड़े उठे हैं, वास्तविक पकड़ में नहीं आता इसलिए। समझ में आया ?

एकदेश नाम से कहना निश्चय है। जितनी शुद्धता प्रगटी है, उतना जानना, वह निश्चय। परन्तु जितनी प्रगटी है, उसे पूर्ण शुद्धता कहना, इसका नाम व्यवहार। समझ में आया इसमें ?

और, **दर्शन, ज्ञान, चारित्र को भेदरूप कहना...** मोक्षमार्ग में यह दर्शन है, यह ज्ञान है, यह चारित्र है, निर्विकल्प, हों ! उसे भेदरूप (कहना कि) यह दर्शन, यह ज्ञान, इस चारित्र को मोक्षमार्ग कहे, वह भी व्यवहार है। सातवीं गाथा में आया न ? वह। धर्मी को दर्शन है, ज्ञान है, चारित्र है, यह तो व्यवहार हो गया। पर्याय, भेद पड़ गया। समझ में आया ? यह भेदरूप व्यवहार। और एक तीसरा, परद्रव्य के अवलम्बन के निमित्तरूप, व्यवहार, यह कहते हैं। बाह्य परद्रव्यस्वरूप—आत्मा के अतिरिक्त परद्रव्य देव-गुरु-शास्त्र आदि। वह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव निमित्त जो बाहर की चीज़ है, बाहर की चीज़, हों ! **उनको दर्शन, ज्ञान, चारित्र के नाम से कहे, वह व्यवहार है।** नव तत्त्व को समकित कहना यह व्यवहार; छह काय को चारित्र कहना, यह व्यवहार। आया था न यह ? समझ में आया ? **परद्रव्यस्वरूप द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव निमित्त हैं...** कहा था न वहाँ ? बन्ध अधिकार में। शास्त्र शब्द, वह ज्ञान। शब्दश्रुत, वह ज्ञान। यह निमित्त का कथन है, व्यवहार है। शब्दश्रुत, वह ज्ञान; नवतत्त्व, वह समकित; छह काय के जीव, वह चारित्र। छह काय के जीव चारित्र। वह तो परद्रव्य है। समझ में आया ?

बाह्य परद्रव्यस्वरूप द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव निमित्त हैं... उसमें तो ये निमित्त हैं। **उनको दर्शन, ज्ञान, चारित्र के नाम से कहे, वह व्यवहार है।** दो प्रकार का व्यवहार कहा। एक भेदरूप व्यवहार और एक निमित्त का जितना अवलम्बन आता है, उस निमित्त को कहना, इसका नाम व्यवहार। निमित्त को दर्शन, ज्ञान, चारित्र कहना, वह

व्यवहार। एक त्रिकाली अभेद का अनुभव होना, उसमें भेद डालकर कहना, वह व्यवहार। और शुद्धि की अनुभूति थोड़ी हुई, उसे पूर्ण कहना, वह व्यवहार है। समझ में आया? व्यवहार का अर्थ (यह कि) वह आश्रय करनेयोग्य नहीं, ऐसा संक्षिप्त (समझना)। समझ में आया? अरे!

मुमुक्षु : आंशिक शुद्धि हुई...

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्धि हुई, उसे उतनी जानना, इसका नाम निश्चय। उसे पूरी शुद्धि हुई, मोक्षमार्ग पूरा प्रगट हुआ, ऐसा कहना वह व्यवहार।

मुमुक्षु : ... चलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार चलता है कहाँ? यह तो कहना, जानना, ऐसा। अधूरे में पूरा मोक्षमार्ग छठवें (गुणस्थान में) कहना। छठवें में पूरा मोक्षमार्ग नहीं, तथापि पूरा कहना, जानना, इसका नाम व्यवहार। बारहवें तक पूर्ण नहीं, लो! चौदहवें के अन्तिम तक पूरा नहीं। यह कहते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, बापू! यह तो भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान, आनन्द का कन्द प्रभु वस्तु, वह वस्तु है, वही वास्तविक निश्चय का विषय है। द्रव्य की अपेक्षा से। सम्यग्दर्शन की वस्तु। वह साहेब पूर्णानन्द प्रभु, वह मोक्ष के मार्ग का आधार-आश्रय है और मोक्ष की पर्याय प्रगट हुई, वह भी व्यवहार। क्योंकि अंश रहा, वह एक समय की दशा है। उस त्रिकाल की अपेक्षा से उसे व्यवहार कहा है। और अंश की अपेक्षा से त्रिकाल को निश्चय कहा है।

अब यहाँ तो मोक्षमार्ग में दो उतारना है। है मोक्षमार्ग पर्याय। उस पर्याय के दो प्रकार। तीनों का अभेद अनुभव होना, वह निश्चय और उसमें भी अधूरे को पूरा कहना, थोड़ी शुद्धि को पूरी शुद्धि कहना, शुद्धि प्रगट हुई है उसे पूर्ण शुद्धि—पूरा मोक्षमार्ग कहना, वह व्यवहार है। धीरे-धीरे समझो, भाई! धीरे-धीरे। समझ में आया? और दर्शन, ज्ञान, चारित्र के भेद तीन से बात करना, वह व्यवहार, भेदरूप व्यवहार हुआ।

अब परद्रव्य के अवलम्बन का व्यवहार। **इनके बाह्य परद्रव्यस्वरूप द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव निमित्त हैं, उनको दर्शन, ज्ञान, चारित्र के नाम से कहे, वह व्यवहार है।** यह आया है न उसमें? .... बन्ध अधिकार में आया है न? छह काय, वह चारित्र; शब्दश्रुत,

वह ज्ञान; नवतत्त्व, वह समकित। यह है नहीं, परन्तु बाह्य द्रव्य निमित्तरूप हैं, इसलिए उसे इस प्रकार कहा जाता है। श्यामदासजी! बहुत सूक्ष्म वस्तु, भगवान! यह ऐसी बात है। इसका ऐसा मार्ग है। यह सर्वज्ञ वीतराग के अतिरिक्त कहीं ऐसी स्पष्टता, छनावट (है नहीं)। एक पर्याय पर्याय की छनावट! देखो, तो सही! यह तो बिना भान के मानता है कि यह सम्यग्दर्शन और ज्ञान। ऐसा नहीं होता भाई! उसका पूरा रूप क्या? भेदरूप क्या? एकरूप क्या? अनेकरूप क्या? उसका इसे बराबर ज्ञान होना चाहिए। यह अधिकार सूक्ष्म आ गया, देवजीभाई! एक बात (हुई)।

और **देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहते हैं...** यह भी अवलम्बन है। यह भी परद्रव्य का अवलम्बन है। देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन (कहना), यह भी व्यवहार। यह सत्य नहीं। यह सत्य समकित नहीं। आहाहा! सर्वज्ञदेव, गुरु निर्ग्रन्थ, शास्त्र। भगवान ने कहे हुए शास्त्र। समझ में आया? सर्वज्ञ ने कहे हुए शास्त्र। उनकी श्रद्धा भी (व्यवहार है)। वह तो परद्रव्य है न? उसकी श्रद्धा भी व्यवहार, राग है। उसे समकित कहना, वह व्यवहार है। अर्थात् वह वास्तविक वस्तु नहीं है। आहाहा!

जीवादिक तत्त्वों की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहते हैं। उसमें परद्रव्य लिया था और इसमें परद्रव्य की श्रद्धा का राग, विकल्प लिया है। **जीवादिक तत्त्वों की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहते हैं।** यह भी व्यवहार है। नव तत्त्व की श्रद्धा, यह भी व्यवहार है। वास्तविक वस्तु यह नहीं। आहाहा! यह तो कहे, देव-गुरु-शास्त्र सच्चे मानो, तुम्हें सम्यग्दर्शन है। नवतत्त्व को सच्चे माने, वह सम्यग्दर्शन। वह खोटा सम्यग्दर्शन है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन की सोपान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सोपान-बोपान नहीं। यह ठीक हल्का करके बात डालते हैं।

इस निमित्त में उससे छूटकर अभेद का अनुभव करे तो उसको व्यवहार कहा जाता है। उसके द्वारा होता है, ऐसा नहीं। समझ में आया? मार्ग ऐसा है, बापू! निरालम्बी आत्मा। वास्तव में तो व्यवहार की अपेक्षा ही जिसे निश्चय में नहीं है।

मुमुक्षु : परम पुरुषार्थ की तरकीब है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परम पुरुषार्थ। वस्तु ही यह है। ऐसा पुरुषार्थ हुए बिना अन्तर गति की प्राप्ति हो, ऐसा नहीं। और अन्तर गति की प्राप्ति हुए बिना उसे मोक्षमार्ग भी नहीं कहा जाता। यह व्यवहार है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह व्यवहार अर्थात् सच्ची श्रद्धा नहीं। सच्ची श्रद्धा तो आत्मा का सम्यग्दर्शन, वह सच्चा सम्यग्दर्शन है। स्व की सम्यक् श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन। पर की श्रद्धा, वह राग, व्यवहार है। ऐसे अभेद भगवान आत्मा का सम्यग्दर्शन, वह सच्ची श्रद्धा है। नवतत्त्व की श्रद्धा, वह व्यवहारश्रद्धा है। शास्त्र को ज्ञान कहते हैं। ठीक! शास्त्र के ज्ञान को ज्ञान कहते हैं, वह व्यवहार। समझ में आया? वह भी सच्चा ज्ञान नहीं। आत्मा अन्दर ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसका अवलम्बन लेकर ज्ञान का स्वसंवेदनज्ञान प्रगट हो, वह सच्चा ज्ञान और वह मोक्ष का वास्तविक मार्ग गिना जाता है। शास्त्र का ज्ञान उसे ज्ञान कहना, वह सब उपचार-व्यवहार है। आहाहा! यहाँ तो अभी शास्त्र के ज्ञान का भी ठीक से ठिकाना नहीं होता और ज्ञान मानकर बैठे। समझ में आया?

शास्त्र के ज्ञान अर्थात् जीवादिक पदार्थों के ज्ञान को ज्ञान कहते हैं इत्यादि। जीवादिक पदार्थ के ज्ञान को ज्ञान कहते हैं, ऐसा। नवतत्त्व का ज्ञान, उसे ज्ञान कहते हैं, वह व्यवहार है। पहले नवतत्त्व की श्रद्धा को समकित कहना, वह व्यवहार है, (ऐसा आया)। यह नवतत्त्व के ज्ञान को ज्ञान कहना, यह भी व्यवहार है। यह सच्चा ज्ञान नहीं। अकेला आत्मा चिदानन्द भगवान पूर्णानन्द का आश्रय लेकर जो ज्ञान अन्तर में से आता है, उसे ज्ञान कहा जाता है। उसे मोक्ष के मार्ग का अवयव कहा जाता है। समझ में आया? **इत्यादि।**

तथा पंच महाव्रत... के परिणाम। ऐई! देवानुप्रिया! पंच महाव्रत के परिणाम, वह चारित्र नहीं—ऐसा कहते हैं। पंच महाव्रत के परिणाम, वह व्यवहारचारित्र। अर्थात् वह तो राग है। आहाहा! ...भाई! मैं तो प्रकाशदास को कहता था वहाँ... वहाँ सब इसे चलता है न? पंच महाव्रत वह चारित्र। यह पंच महाव्रत लेनेवाला था। तुलसी के पास और उन हस्तिमलजी के पास पंच महाव्रत के अज्ञान लेनेवाला था। महाव्रत लेकर फिर अणुव्रत का... महाव्रत का राग लेकर मिथ्यात्व का और फिर अणुव्रत के राग का प्रचार करूँगा।

मुमुक्षु : अणुव्रत आन्दोलन।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका आन्दोलन। आन्दोलन अर्थात् प्रचार करना। यह भाई! मार्ग अलग है, भगवान! कहते हैं, जैसे देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा व्यवहार; जीवादि की श्रद्धा वह व्यवहारय शास्त्र का ज्ञान, वह व्यवहार; नव पदार्थ का ज्ञान, वह व्यवहार; यह पंच महाव्रत के परिणाम, यह व्यवहारचारित्र वह राग है, वह चारित्र नहीं। आहाहा! लोगों ने तो पंच महाव्रत अंगीकार किये, इसलिए मानो चारित्र अंगीकार किया। दीक्षा देने वाले भी ऐसा मानते हैं कि मैंने उसे चारित्र अंगीकार कराया। दोनों मिथ्यात्व के पोषक हैं। समझ में आया?

यह निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र स्व के आश्रय से हो तो उस नवतत्त्व की श्रद्धा को व्यवहारश्रद्धा कहा जाता है। अकेला नहीं, उसे तो व्यवहार भी नहीं कहा जाता, ऐसा कहते हैं। इसी प्रकार जिसे आत्मा का निश्चय सम्यग्ज्ञान है, उसके शास्त्र के ज्ञान को, नवतत्त्व के ज्ञान को व्यवहार से ज्ञान कहा जाता है। वह भी व्यवहार से। इसी तरह जिसे निश्चय स्वरूप में आत्मदर्शन, ज्ञानसहित स्वरूप में रमणता के आनन्द की वीतरागतारूप चारित्र है, उसे इस पंच महाव्रत के विकल्प को व्यवहारचारित्र का आरोप दिया जाता है। समझ में आया?

पंच महाव्रत, पाँच समिति,... देखकर चलना, देखभाल करके चलना, कहते हैं न लोग? देख-देखकर। तथा किसी जीव को दुःख न हो। ईर्यासमिति। कहो, पंच महाव्रत में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। ये पाँचों विकल्प, राग है; यह चारित्र नहीं है। नहीं, उसे कहना, इसका नाम व्यवहार है। है, उसे जानना, इसका नाम निश्चय। नहीं, उसे जानना, इसका नाम व्यवहार। ऐसे पाँच अहिंसा, सत्य, अचौर्य आ गये, फिर पाँच समिति। देखकर चलना। विचारकर बराबर बोलना। उसका भाव, हों! भाषा जड़ की नहीं। और चोरी का बिल्कुल भाव नहीं। ऐषणा। निर्दोष आहार-पानी लेना। उसके लिये बना हुआ नहीं, ऐसी ऐषणासमिति का जो विकल्प—राग, उसे चारित्र कहना वह व्यवहार है। वह वास्तविक चारित्र है नहीं। समझ में आया? देखकर वस्तु लेना-रखना या छोड़ना, ऐसा जो विकल्प है, वह समिति।

तीन गुप्ति... मन, वचन के अशुभभाव को गोपना और शुभभाव होना, वह

व्यवहारचारित्र कहा जाता है। अर्थात् चारित्र नहीं, उसे चारित्र कहना, ऐसा व्यवहार है। गजब बात। समझ में आया? **बारह प्रकार के तप को तप कहते हैं।** यह व्यवहार है, यह तप नहीं। तप तो आत्मा के अनुभव में आनन्द की उग्रता आवे और इच्छा की उत्पत्ति न हो, ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द के आह्लाद की दशा को तप कहा जाता है। वह यह बारह प्रकार का तप यह व्यवहार तप है, कहते हैं। समझ में आया? याद रहना मुश्किल। इसमें कितना याद रखना?

ऐसे भेदरूप... दो बातें ली न? पहली भेदरूप थी, देखो! मोक्षमार्ग की। समझ में आया? **दर्शन, ज्ञान, चारित्र के नाम से कहे, वह व्यवहार है।** था न? चौथी लाईन। यह भेदरूप और इसके **आलम्बनरूप...** दो। **भेदरूप तथा परद्रव्य के आलम्बनरूप प्रवृत्तियाँ सब अध्यात्मशास्त्र की अपेक्षा व्यवहार के नाम से कही जाती है...** लो। **क्योंकि वस्तु के एकदेश को वस्तु कहना भी व्यवहार है...** भेद आया न, भेद? भेद किया न? त्रिकाली द्रव्य के एक अंश को वस्तु कहना, वह व्यवहार है। ऐसा भेद किया न? भेद। इस प्रकार यहाँ मोक्षमार्ग में तीन को भेदरूप है, उसे कहना। अभेद में से भेद को कहना, वह व्यवहार। और परद्रव्य के आलम्बनरूप प्रवृत्ति है। वहाँ से लिया न? देखो! **भेदरूप कहकर मोक्षमार्ग कहे तथा इनके बाह्य परद्रव्यस्वरूप द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव निमित्त हैं...** यह वहाँ डाला।

मुमुक्षु : ...बाधक?

पूज्य गुरुदेवश्री : सभी विकल्प अन्तर स्वरूप में बाधक हैं। बाधक को साधक कहना, उसका नाम व्यवहार है। साधक को साधक समझना, उसका नाम वास्तविक निश्चय है। आहाहा! समझ में आया?

अध्यात्म शास्त्र में इस प्रकार भी वर्णन है... लो। **आलम्बनरूप प्रवृत्ति को उस वस्तु के नाम से कहना...** हों! एकदेश को व्यवहार कहना और परद्रव्य के आलम्बनरूप प्रवृत्ति को उस वस्तु का नाम करके (कहना)। छह काय, वह चारित्र है; नवतत्त्व, वह श्रद्धा है। समझे न? पंच महाव्रत का विकल्प है, वह देह की क्रिया है न ऐसी? उसे चारित्र कहना। **परद्रव्य की आलम्बनरूप प्रवृत्ति को उस वस्तु के नाम से कहना वह भी व्यवहार है।** अरे! व्यवहार और निश्चय में जगत भरमाया है। वस्तु

की समझ नहीं, क्या हो ? वस्तु तो ऐसी है और वह स्पष्ट इसके ख्याल में आ सके, इस प्रकार से है, परन्तु इसकी दरकार नहीं होती, फिर ऐसा का ऐसा बिना भान के कूटे। बिना भान के कूटे उसमें माल कहाँ से निकले ? छिलके कूटे, उसमें से निकले कुछ ?

आत्मा अन्दर वस्तु और उसका मोक्ष का अभेद मार्ग, बस ! यह वस्तु है। बाकी फिर वह पर्याय के भेद, वह व्यवहार और मोक्षमार्ग में भेदरूप करना, वह व्यवहार और उसका आलम्बन जो निमित्त हो, उसे उपचार से कहना, वह भी व्यवहार है। वह सब हेय है। समझ में आया ?

और, **अध्यात्म शास्त्र में इस प्रकार भी वर्णन है...** और अध्यात्म शास्त्र में भगवान के मार्ग का ऐसा भी वर्णन है, **वस्तु अनन्त धर्मरूप है, इसलिए सामान्य-विशेषरूप से तथा द्रव्य-पर्याय से वर्णन करते हैं। द्रव्यमात्र कहना तथा पर्यायमात्र कहना व्यवहार...** हो गया। भेद पड़ गया न ? पूरी चीज़ में से एक द्रव्य को कहना या एक पर्याय को कहना, यह भी व्यवहार हो गया, ऐसा कहते हैं। ऐसा भी एक वर्णन अध्यात्म शास्त्र में है, ऐई ! यह पंचाध्यायी की शैली ली। वस्तु आत्मा पूरा है, ऐसा कहना, यह भी व्यवहार है। क्योंकि कथन है न, यह द्रव्य और यह पर्याय। एक के दो भाग किये न ? यह व्यवहार हुआ।

द्रव्यमात्र कहना तथा पर्यायमात्र कहना व्यवहार का विषय है। देखो ! व्यवहार का विषय (कहा)। द्रव्य भी व्यवहार का विषय हो गया। भाग पड़ गया न ? **द्रव्य का भी तथा पर्याय का भी निषेध करके वचन अगोचर कहना निश्चयनय का विषय है।** पंचाध्यायी की शैली ली है। द्रव्य ? नहीं। पर्याय ? नहीं। जो वस्तु है निर्विकल्प अनुभव में, वह वस्तु है। समझ में आया ? यह पंचाध्यायी की शैली का वर्णन है। (इन्हें) पंचाध्यायी मिला है। उस समय कहीं से मिला लगता है।

अनन्त धर्मस्वरूप सामान्य-विशेष। सामान्य अर्थात् द्रव्य, विशेष अर्थात् पर्याय कहकर **वर्णन करते हैं।** उसमें पूरे में से द्रव्य का एक भाग कहना तो कहते हैं कि वह व्यवहार। पर्यायमात्र कहना, वह व्यवहार। दोनों का निषेध करना, **वचन अगोचर कहना,...** कि वचन से अगम्य है, इसका नाम निश्चय। समझ में आया ? **निश्चयनय का विषय है।**

और, **जो द्रव्यरूप है, वही पर्यायरूप है...** जो द्रव्य है, वही पर्यायरूप है। **इस प्रकार दोनों को ही प्रधान करके कहना प्रमाण का विषय है...** यह सूक्ष्म। व्यवहार का विषय, निश्चय का विषय और प्रमाण का विषय—यह तीन हुए। तीन की व्याख्या में क्या आया? कि आत्मा वस्तु द्रव्य है। वह भी एक भाग हुआ। है, ऐसा हुआ न? उसमें विकल्प है। द्रव्य है, वह व्यवहार। पर्याय है, वह व्यवहार। दोनों का निषेध करके (कहना कि) वचन अगोचर वस्तु है, यह निश्चय। तथा द्रव्य और पर्याय दोनों को प्रधान करके जानना, इसका नाम प्रमाण। व्यवहार का अर्थ अभूतार्थ कहा था। वह व्यवहार का अर्थ नहीं इसमें। देखो न! कहा न? परमार्थ, वह निश्चय। परमार्थ, वह निश्चय अर्थात् यथार्थ, ऐसा (अर्थ) किया है। और व्यवहार, वह अभूतार्थ, ऐसा लिखा है। इसमें वह शब्द आया नहीं। कुछ देखे तो सही न! व्यवहार या उपचार, यह इसमें नहीं आया। प्रकाशित नहीं हुआ। समझ में आया?

इसका उदाहरण इस प्रकार है... अब तीन का उदाहरण देते हैं। **जैसे जीव को चैतन्यरूप, नित्य, एक, अस्तिरूप इत्यादि अभेदमात्र कहना, वह तो द्रव्यार्थिकनय का विषय है...** जीव को चैतन्यरूप त्रिकाल, नित्य, एक, अस्ति। समझ में आया? देखो! यहाँ द्रव्यार्थिक के विषय को भी व्यवहार कहा, भाई! अपने ... कहते हैं न, फिर से कहते हैं। झट पूरा नहीं होगा। धीरे-धीरे (लेते हैं।)

कहते हैं, **जीव को चैतन्यरूप, नित्य, एक अस्ति...** अस्ति है, ऐसा **अभेदमात्र कहना वह तो द्रव्यार्थिकनय का विषय (हुआ)...** परन्तु नय का विषय है, वह यह भेदरूप हुआ; इसलिए इसे व्यवहार कहा। **और ज्ञान-दर्शनरूप अनित्य,...** ज्ञान, दर्शनरूप। उसमें था न? चैतन्यरूप। तो यहाँ ज्ञान-दर्शनरूप (कहा)। उसमें नित्य था, तब यहाँ अनित्य है। उसमें चैतन्य अभेद था। (यहाँ) ज्ञान, दर्शन भेद किया। नित्य के सामने अनित्य हो गया। एक के सामने अनेक, अस्ति के सामने नास्ति। **इत्यादि भेदरूप कहना पर्यायार्थिकनय का विषय है।** यह अवस्था से देखना, इसके भेद का यह विषय है। सूक्ष्म है, भाई! इसलिए आज सवेरे यह बदल डाला। हिम्मतभाई कहे, बदलो। उस डॉक्टर को दोपहर को समझ में नहीं आयेगा। नया व्यक्ति... दोपहर में अब समयसार चलेगा, सवेरे यह (अष्टपाहुड़)। समझ में आया? क्या कहा?

जब एक बार शुद्ध ध्रुव चैतन्य द्रव्यस्वभाव को निश्चय कहा था, उसे यहाँ द्रव्यार्थिकनय से ऐसा कहना हुआ, इसलिए उसे व्यवहार कहा। (क्योंकि) भेद पड़ गया। वचन के अगम्य वस्तु जो है, उसे निश्चय कहा जाता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : तब क्या कहना? कहना, इतना भेद पड़ जाता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा वीतरागमार्ग लोगों को सुनने को भी नहीं मिला, सुना भी नहीं। सुना था कभी अभी तक? प्रकाशदासजी! कितने वर्ष वहाँ मुँडाया? मुँडाया अर्थात् रहे। वहाँ रहे। यह है नहीं, हमें खबर है न। यह वस्तु ही नहीं है। वह तो यह करो और यह पालन करो और व्रत करो, तपस्या करो और अपवास करो। इसमें होवे तो (कहे), भक्ति करो और यात्रा करो। आहाहा!

भगवान अन्दर ऐसा आनन्दकन्द प्रभु निर्विकल्प, राग और विकल्प बिना की चीज़ (मौजूद है)। उसे पर्याय की अपेक्षा से निश्चय कहा था। उसे यहाँ कहने में आया कि वह द्रव्यार्थिक है, इसलिए उसे व्यवहार कहने में आया। कहने में न आवे—वचनातीत है, उसे यहाँ निश्चय कहा जाता है। है तो वह निश्चय वह विषय वह का वह। परन्तु कहने में आया, वहाँ इतना विकल्प उठा है न कि यह द्रव्य है, यह द्रव्यार्थिक है। समझ में आया? अरे.. अरे...!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ जो कहा है, वह तो निश्चय कहा है। परन्तु भेद पाड़कर कहना कि द्रव्य है यह, द्रव्य है यह।

मुमुक्षु : परमग्राहक...

पूज्य गुरुदेवश्री : परमग्राहकवाला है परन्तु कहना कि ऐसा है, ऐसा है, यह विकल्प उठा, ऐसा कहते हैं। विकल्प हुआ न उसका? यह विकल्प हुआ। यह विकल्प हुआ। और यहाँ निश्चय परिणमन की बात की है। उस निश्चय परिणमन का जो स्वभाव है, निश्चय का द्रव्यरूप, अकेला द्रव्य जो पर्यायरूप नहीं होता, वह निश्चय है। परन्तु यहाँ कथन आया न? यहाँ तो विकल्प से कथन आया न?

भाई ने तो ऐसा ही लिखा है न? राजमलजी ने। नहीं? कथनमात्र, वह सब व्यवहार। कथन व्यवहार, ऐसा आया है न! भाषा ही ऐसी ली है।... व्यवहार है न पहला? पाँचवाँ श्लोक? कितने में है वह? देखो! व्यवहारनय अर्थात् जितना कथन। उन्होंने ऐसा ही अर्थ किया है। कहने में आता है न? कहने में आता है, इसलिए वहाँ विकल्प है। ऐसा कहना है।

मुमुक्षु : 'न' है, ऐसा कहना।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह 'न' है, वह है तो विकल्प, परन्तु यह विकल्प निषेधरूप विकल्प है। इसलिए १४३ के साथ मिलाया है न सवेरे पण्डितजी ने। जहाँ निश्चयनयाश्रित मुनिवरो कहा, वहाँ तो अकेली वस्तु ही ली है। विकल्प नहीं। **'भूदत्थमस्सिदो खलु'।** यह शुद्धनय, वहाँ विकल्प नहीं, परन्तु नय अर्थात् ज्ञान का एक अंश भी नहीं। शुद्धनय अर्थात् त्रिकाली द्रव्य, वह शुद्धनय। समझ में आया? त्रिकाल ज्ञायकभाव ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... वही निश्चय और वह शुद्धनय। उसे ही नय कहा है। नय और नय के विषय का भेद करना नहीं। यहाँ तो अभी कहने में विकल्प उठता है न, कहने की वाणी जड़ है। यह द्रव्य है, यह द्रव्य है। समझ में आया?

मुमुक्षु : पंचाध्यायी की कौन सी गाथा नम्बर है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नम्बर-बम्बर कुछ नहीं। पंचाध्यायी बड़ा है। एक गाथा नहीं। वह तो विशाल कथन है। समझ में आया? पहले भाग में है। पीछे में, हों! पीछे के भाग में। नय और प्रमाण का विषय पीछे है न? पाँच सौ गाथा के बाद होगा। घर में पंचाध्यायी है या नहीं? ठीक।

द्रव्य का भी तथा पर्याय का भी निषेध करके वचन अगोचर कहना निश्चयनय का विषय है। विकल्प से परिणमन होता नहीं, परन्तु विकल्प के पार का परिणमन, उसे निश्चय कहा जाता है। आहाहा! **जो द्रव्यरूप है, वही पर्यायरूप है, इस प्रकार दोनों को ही प्रधान करके कहना प्रमाण का विषय है...** यह तो आ गया है। यहाँ आया। चैतन्य, अभेद आदि द्रव्यार्थिकनय का विषय है। **और ज्ञान-दर्शनरूप, अनित्य, अनेक नास्तित्वरूप इत्यादि भेदरूप कहना पर्यायार्थिकनय का विषय है।** पर्याय अंश का

विषय, भेद का विषय है। **दोनों ही प्रकार की प्रधानता निषेधमात्र वचन अगोचर कहना निश्चयनय का विषय है।** यह भी वापस कहना तो आवे ही न। **दोनों ही प्रकार को प्रधान करके कहना प्रमाण का विषय है इत्यादि।** लो।

इस प्रकार... अधिकार बहुत सूक्ष्म आया, भाई! कल भी आया था, परसों आया था, आज यह (आया)। समझ में आया? थोड़ा-थोड़ा विचारना। ऐसा होवे तो रात्रि में व्यर्थ बैठते हैं, उसकी अपेक्षा पूछना। निर्णय न हो। जो पक्ष जिस प्रकार से कहते हैं, उस प्रकार से उसके ख्याल में आना चाहिए।

मुमुक्षु : वस्तु का स्वरूप तो वचनातीत है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वचनातीत है परन्तु वचन द्वारा कथंचित् कहने में भी आता है न? नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव निक्षेप में आता है।

इस प्रकार निश्चय-व्यवहार का सामान्य अर्थात् संक्षेप स्वरूप है, उसको जानकर जैसे आगम-अध्यात्म शास्त्रों में विशेषरूप से वर्णन हो, उसको सूक्ष्मदृष्टि से जानना। देखो! द्रव्य त्रिकाली ज्ञायक भगवान शुद्ध अभेद, उसे निश्चय कहा और यहाँ उसे फिर व्यवहार कहा। क्योंकि कथन (करने से) अन्दर विकल्प आता है न? कि ऐसा आत्मा, ऐसा आत्मा। ऐसा वह नय यहाँ लिया है। उसमें विकल्पनय (लिया है)। अकेला शुद्ध चैतन्यमूर्ति अभेद, उसे विषय करके परिणमन हुआ, उसको निश्चय कहा जाता है। घण्टे भर की बात ऐसी पड़े कि घर जाकर कहना क्या इसमें? क्या सुनकर आये तुम? कुछ कहते थे। एक निश्चयनय, एक व्यवहारनय। ऐसा और वैसा। अपने को कुछ पकड़ में नहीं आया। अभ्यास नहीं और सब उल्टा अभ्यास जगत में चला है। उसमें से यह निकालकर सुलटा होना भारी कठिन।

कहते हैं, **इस प्रकार निश्चय-व्यवहार का...** इस प्रकार अर्थात् आगम का निश्चय-व्यवहार, अध्यात्म का निश्चय-व्यवहार, अध्यात्म में भी निश्चय-व्यवहार की विकल्पवाला निश्चय और व्यवहार। समझ में आया? आहाहा! भगवान ऐसा केवलज्ञान ले, ऐसी ताकत है तो इतना न समझे, उसे कैसे मानना? ऐसा कैसे उसे मानना? समझ में आया? और स्वयं तो ज्ञानस्वरूप है। उसे समझना यह चीज़ है। राग का करना, वह कोई

वस्तु की चीज़ नहीं। समझ में आया? बहुत पहलुओं से इसकी जाति है, उसे जानना। जानना... जानना... जानना... जानना... जानना... यह इसकी क्रिया और यह इसका स्वरूप है।

इस प्रकार... ऐसे, अेम हिन्दी भाषा आती है। नहीं? ऐसे ही, ऐसा ही है न? ऐई! देवानुप्रिया! ऐसा कैसे है यह? पुरानी भाषा, ऐसा न? ठीक। ढुंढ़ारी भाषा इसलिए ऐसा आता होगा। ठीक। ऐसे ही। ऐसे, अेम। **इस प्रकार निश्चय–व्यवहार का...** ऐसे अर्थात् ऊपर कहा तद्नुसार। **निश्चय–व्यवहार का सामान्य अर्थात् संक्षेप स्वरूप...** लो! **सामान्य अर्थात् संक्षेप स्वरूप है, उसको जानकर...** यह तो संक्षिप्त कहा है न, विस्तार से तो शास्त्र में बहुत है। यह तो पाठ आया। परमार्थ और व्यवहार शास्त्र में कहा है, ऐसा जानना। यह आया न? कुन्दकुन्दाचार्य का है, देखो! **'सुत्तं जिणउत्तं'** भगवान ने कहे उन शास्त्रों को व्यवहार और परमार्थ से **'जाणिऊणं'** उसे जानकर **'लहइ सुहं खवइ मलपुंजं'** इसके कारण सच्चा ज्ञान आत्मा से हो, वह कर्म के मूल पुंज को खिपाता है। लो, यह छठी गाथा का इतना अर्थ तो स्वयं पण्डित है, लो। गृहस्थाश्रम में। ऐसा अर्थ भरा है।

विशेषरूप से वर्णन हो... यहाँ तो संक्षेप में कहा है। ऐसा कहा न? **सामान्य संक्षेप स्वरूप है, उसको जानकर जैसे आगम–अध्यात्म शास्त्रों में विशेषरूप से वर्णन हो उसको सूक्ष्मदृष्टि से जानना।** सूक्ष्म दृष्टि करके जिस प्रकार से वस्तु की स्थिति है, उसे वर्णन करते हैं, ऐसा उसे जानना। **जिनमत अनेकान्तस्वरूप स्याद्वाद है...** वीतराग का मार्ग तो अपेक्षित जो कुछ अन्दर धर्म है, उसे अपेक्षा से कहनेवाला है। **और नयों के आश्रित कथन है।** और कथनी तो नय के आश्रय से है, एक धर्म के आश्रय से है। **नयों के परस्पर विरोध...** है। निश्चय और व्यवहार विरोध है, सामान्य और विशेष विरोध है। उसे **स्याद्वाद दूर करता है,...** स्याद्वाद मिटाता है। पर्याय को व्यवहार कहना क्यों?—कि अंश है इसलिए। त्रिकाल को निश्चय कहा, क्यों?—कि अभेद और एक वस्तु है इसलिए। समझ में आया?

इसके विरोध का तथा अविरोध का स्वरूप अच्छी तरह जानना। विशेष अर्थात् बराबर जानना। उनका—व्यवहार-निश्चय का विरोध क्या है, कहने में आवे ऐसा? और दोनों का मिलान कैसे खाता है? उसे **अच्छी तरह जानना। यथार्थ तो गुरु–**

आम्नाय ही से होता है,... यथार्थ तो गुरुगम से यह बात समझ में आती है। **परन्तु गुरु का निमित्त इस काल में विरल हो गया,...** स्वयं लिखते हैं, देखो!

मुमुक्षु : इसमें तो विच्छेद हो गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विच्छेद हो गया है।

यहाँ तो **गुरु का निमित्त इस काल में विरल हो गया, इसलिए अपने ज्ञान का बल चले...** न्याय में जितना उसे जिस प्रकार से मस्तिष्क में समझ में आये ऐसा चले। **तब तक विशेषरूप से समझते ही रहना...** विशेष समझण किया ही करे। आग्रह रखकर एकान्त पकड़कर बैठ न जाए। वहाँ भी अर्थ अलग-अलग करते हैं। देखो! भाई! स्याद्वाद है। व्यवहार से भी होता है, निश्चय से भी होता है। यह कहाँ यहाँ बात है? व्यवहार को व्यवहाररूप से जानना, निश्चय को निश्चयरूप से जानना, ऐसा यहाँ कहना है। जानना, ऐसा पाठ में शब्द था न? जानने की बात है। व्यवहार आदर करनेयोग्य है, यह बात यहाँ कहाँ है? व्यवहार किसे कहना? व्यवहार कैसे कहा जाता है? उसे जानना। निश्चय किसे कहना? निश्चय किसे कहा जाता है? द्रव्य-पर्याय में निश्चय-व्यवहार किसे कहते हैं? मोक्षपर्याय, मोक्ष की पर्याय है, उसमें निश्चय-व्यवहार किसे कहते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

कुछ ज्ञान का लेश पाकर उद्धत नहीं होना,... स्वयं बकव्या करे। यह तो ऐसा है और वैसा है और अमुक है, ऐसा नहीं करना। वीतराग का मार्ग गम्भीर है, गहरा है। अनन्त काल से उसकी वास्तविकता दृष्टि में आयी नहीं। ग्यारह अंग पढ़ा तो भी उसकी वास्तविकता क्या है, उसका ख्याल नहीं आया। क्योंकि वह तो पर का ज्ञान है। परमात्मा को क्या कहना है और स्व का आश्रय लेकर लाभ हो, ऐसा कहना है, यह बात तो इसने जानी नहीं। **ज्ञान का लेश पाकर उद्धत नहीं होना, वर्तमान काल में अल्पज्ञानी बहुत हैं...** अभी तो जानपनेवाले थोड़े (रहे)। थोड़े जानपनेवाले हैं—अल्पज्ञानी ही बहुभाग हैं, कहते हैं। **इसलिए उनसे कुछ अभ्यास करके...** ऐसे अल्पज्ञानी में थोड़ा-बहुत अभ्यास करके **उनमें महन्त बनकर उद्दथ होने पर मद आ जाता है...** समझ में आया? **ज्ञान थकित हो जाता है...** विपरीत ज्ञान हो जाता है, ऐसा कहते हैं।

और विशेष समझने की अभिलाषा नहीं रहती है... हो गया, हमने जाना वह बराबर। परन्तु वस्तु की जो स्थिति है, वह तो इसके ज्ञान में आयी नहीं और स्वयं यह तो

ऐसा है, भगवान का मार्ग ऐसा है, भगवान का (मार्ग) स्याद्वाद है, ऐसा कहकर घोटाला करे तो वह ज्ञान थक जाता है, नया ज्ञान नहीं होता। ज्ञान थक जाता है अर्थात् उल्टा ज्ञान होता है। उल्टा ज्ञान होता है। विशेष समझने की अभिलाषा नहीं रहती। **तब विपरीत होकर यद्वातद्वा...** कहे। जैसे-तैसे कहे। वह तो व्यवहार से भी ऐसा होता है, निश्चय से ऐसा होता है, अमुक ऐसा होता है। परन्तु कहीं उसका मिलान है ? निमित्त से भी होता है, उपादान से भी होता है, स्याद्वाद भगवान का मार्ग है, ऐसा यद्वा-तद्वा कहा करता है, कहते हैं। **यद्वातद्वा-मनमाना कहने लग जाता है, उससे अन्य जीवों का श्रद्धान विपरीत हो जाता है, तब अपने अपराध का प्रसंग आता है,...** यह अपराध का निमित्त स्वयं हुआ। अपराध किया, वह इसका अपराध। दूसरे को जहाँ-तहाँ दिये रखे आड़ी-टेढ़ी बात, उसको विपरीत श्रद्धा (हो जाए)। समझ में आया ?

इसलिए शास्त्र को समुद्र जानकर,... शास्त्र को समुद्र जानकर। **अल्पज्ञरूप ही अपना भाव रखना...** थोड़ा जानता हूँ, ऐसा रखना। मैंने विशेष बहुत जाना है, इसलिए जैसा मैं कहता हूँ, वैसा है—ऐसे स्वच्छन्दी नहीं होना। क्योंकि लोक तो अल्पज्ञानी है, उसके पास जो रखे वह चले। उसे कहाँ खबर है सामनेवाले को। **अल्पज्ञरूप ही अपना भाव रखना जिससे विशेष समझने की अभिलाषा बनी रहे, इससे ज्ञान की वृद्धि होती है।**

अल्प ज्ञानियों में बैठकर महन्तबुद्धि रखे, तब अपना पाया ज्ञान भी नष्ट हो जाता है,... जानपना उल्टा किया हो (और) आड़ा-टेढ़ा करे, निश्चय में या व्यवहार में, व्यवहार को रखे निश्चय में... समझ में आया ? **तब अपना पाया ज्ञान भी नष्ट हो जाता है, इस प्रकार जानकर निश्चय-व्यवहाररूप आगम की कथन पद्धति को समझकर...** निश्चय सच्चा, व्यवहार उपचारक, भेदरूप इत्यादि। **आगम की कथन पद्धति को समझकर उसका श्रद्धान करके यथाशक्ति आचरण करना। इस काल में गुरु सम्प्रदाय के बिना महन्त नहीं बनना,...** परम्परा सद्गुरु तो है नहीं अभी, कहते हैं। और अपनी अकेली कल्पना से (कहते हैं)। कोई पूर्व के संस्कार नहीं तथा कोई गुरु सम्प्रदाय नहीं, ऐसा कहते हैं। **जिन-आज्ञा का लोप नहीं करना।** वीतराग परमात्मा की आज्ञा नहीं लोपना।

कोई कहते हैं–हम तो परीक्षा करके जिनमत को मानेंगे, वे वृथा बकते हैं... वीतराग का कहा हुआ ज्ञान, (उसकी) कितनी परीक्षा करे ? अलौकिक वस्तु है, भाई ! हम तो परीक्षा करके (मानेंगे), वह तो बकता है। **स्वल्पबुद्धि का ज्ञान परीक्षा करने के योग्य नहीं है।** वीतराग में कहे हुए भाव में हम तो हमारी परीक्षा करके मानेंगे। अकेली परीक्षा, हों ! **आज्ञा को प्रधान रख करके बने जितनी परीक्षा करने में दोष नहीं है।** भगवान वीतराग सर्वज्ञ ने–परमेश्वर ने पूर्ण ज्ञानी ने देखा, जाना है, ऐसी आज्ञा रखकर परीक्षा करना। सर्वज्ञ को माने नहीं, सर्वज्ञ तीन काल–तीन लोक को जानते हैं, उनकी आज्ञा और शास्त्र क्या कहते हैं, इसकी खबर नहीं और अकेला अपने स्वच्छन्द से माने, परीक्षा करने जाए तो उसकी परीक्षा सच्ची नहीं होती। **आज्ञा को प्रधान रख करके बने जितनी परीक्षा करने में दोष नहीं है,...**

केवल परीक्षा ही को प्रधान रखने में जिनमत से च्युत हो जाये... अकेली परीक्षा करने जाये तो वीतराग की आज्ञा से च्युत हो जाएगा। पूरा कहाँ से समझ सकेगा उसे ? **बड़ा दोष आये, इसलिए जिनकी अपने हित–अहित पर दृष्टि है, वे तो इस प्रकार जानो, और जिनको अल्पज्ञानियों में महन्त बनकर अपने मान, लोभ, बढ़ाई, विषय–कषाय पुष्ट करने हों, उनकी बात नहीं है,...** लो ! अल्पज्ञानी ने बड़े होकर मान, लोभ, बड़ाई, विषय–कषाय के पोषण करना है, (उनकी बात नहीं है)। **वे तो जैसे अपने विषय–कषाय पुष्ट होंगे, वैसे ही करेंगे, उनको मोक्षमार्ग का उपदेश नहीं लगता है। विपरीत को किसका उपदेश ?** विपरीत बुद्धिवाले को किसका उपदेश ? **इस प्रकार जानना चाहिए।** यह छठवीं गाथा का भावार्थ पूरा हो गया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन-२९, गाथा-७ से ९, मंगलवार, आषाढ़ शुक्ल ४, दिनांक ०७-०७-१९७०

अष्टपाहुड़, दूसरा भाग (अधिकार) है। उसकी छठी गाथा चली। धर्मी जीव को या मुनि को भगवान ने कहे हुए सूत्र, उसमें परमार्थ क्या है और व्यवहार क्या है, उसे जानना चाहिए। जानकर कर्म क्षेपण कर सकता है। यथार्थ जाने बिना क्षेपण नहीं कर सकता।

जो जिनभाषित सूत्र हैं, वह व्यवहाररूप तथा परमार्थरूप है, उसको योगीश्वर जानकर सुख पाते हैं और मलपुंज अर्थात् द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म का क्षेपण करते हैं। (गाथा-६ का अर्थ)। वास्तविक भगवान ने कहे हुए आगम, उनके सूत्र और उनके अर्थों को न समझे तथा वह भी परमार्थ का अधिकार क्या है, निश्चय का और व्यवहार का न समझे तो उसे कुछ ज्ञान सच्चा नहीं होता। इसलिए उसे सम्यग्दर्शन भी नहीं होता। तो कर्म खिरकर मोक्ष तो नहीं होता। सातवीं (गाथा)। शान्ति से सुनना।

गाथा-७

आगे कहते हैं कि जो सूत्र के अर्थ पद से भ्रष्ट है, उसको मिथ्यादृष्टि जानना –

सुत्तत्थपयविणट्ठो मिच्छादिट्ठी हु सो मुणेयव्वो।
खेडे वि ण कायव्वं पाणिप्पत्तं सचेलस्स।।७।।

सूत्रार्थपदविनष्टः मिथ्यादृष्टिः हि सः ज्ञातव्यः।
खेलेऽपि न कर्तव्यं पाणिपात्रं[1] सचेलस्य।।७।।

सूत्रार्थ पद से भ्रष्ट मिथ्यादृष्टि है जानो उसे।
हों वस्त्र-युत कर-पात्र भोजन खेल में भी नहिं करें।।७।।

***अर्थ* – जिसके सूत्र का अर्थ और पद विनष्ट है, वह प्रगट मिथ्यादृष्टि है;**

१. पाणिपात्रे पाठान्तर

इसीलिए जो सचेल है, वस्त्रसहित है, उसको 'खेडे वि' अर्थात् हास्य कुतूहल में भी पाणिपात्र अर्थात् हस्तरूप पात्र से आहारदान नहीं करना।

भावार्थ – **सूत्र में मुनि का रूप नग्न दिगम्बर कहा है। जिसके ऐसा सूत्र का अर्थ तथा अक्षररूप पद विनष्ट है और आप वस्त्र धारण करके मुनि कहलाता है, वह जिन आज्ञा से भ्रष्ट हुआ प्रगट मिथ्यादृष्टि है, इसलिए वस्त्रसहित को हास्य कुतूहल से भी पाणिपात्र अर्थात् आहारदान नहीं करना तथा इस प्रकार भी अर्थ होता है कि ऐसे मिथ्यादृष्टि को पाणिपात्र आहार लेना योग्य नहीं है, ऐसा भेष हास्य कुतूहल से भी धारण करना योग्य नहीं है कि वस्त्रसहित रहना और पाणिपात्र भोजन करना, इस प्रकार से तो क्रीड़ामात्र भी नहीं करना।।७।।**

गाथा-७ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो सूत्र के अर्थ पद से भ्रष्ट है, उसको मिथ्यादृष्टि जानना –

सुत्तत्थपयविणट्ठो मिच्छादिट्ठी हु सो मुणेयव्वो।
खेडे वि ण कायव्वं पाणिप्पत्तं सचेलस्स।।७।।

जो कोई भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो सूत्र, सिद्धान्त कहे थे, उनसे-सूत्र से भ्रष्ट हुए। उसके अर्थ से और उसके पद-वाक्य से भ्रष्ट हुए। **विनष्ट है, वह प्रगट मिथ्यादृष्टि है,...** समझ में आया? परमेश्वर सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ की वाणी दिव्यध्वनि में जो आयी थी, वे सूत्र और उनके अर्थ को नहीं मानकर सम्प्रदाय से पृथक् पड़े। समझ में आया? दिगम्बर सम्प्रदाय जैनदर्शन जो अनादि से चला आता है। भगवान की वाणी में यह आया था। छह सौ वर्ष तक तो यही चला। फिर बारह वर्ष के दुष्काल जो पड़ा, उसमें से भगवान की वाणी के अर्थ, सूत्र न मानकर अपनी कल्पना से पृथक् पड़े। वे सूत्र से भ्रष्ट हैं, उनके अर्थ से भ्रष्ट और पद से विनष्ट हैं। क्योंकि भगवान के शास्त्र में तो वस्त्रसहित मुनि को मुनि माना नहीं है। अनादि सनातन वीतराग वाणी, वह वस्त्र का टुकड़ा भी रखे और उसे मुनिपना माने , ऐसा सिद्धान्त में नहीं है।

मुमुक्षु : सिद्धान्त में नहीं है अर्थात ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सूत्रों में नहीं है। भगवान ने कहे हुए सूत्रों में नहीं है। कल्पित सूत्र श्वेताम्बर ने बनाये, उनमें यह सब लिखा। भगवानजीभाई ! शान्ति से सुनना, पहले कहा। पूरा फेरफार (हो गया)।

वीतरागमार्ग अनादि का महाविदेहक्षेत्र में भी यही मार्ग है। ऐसे भगवान की वाणी के सूत्र और उनका निश्चय अर्थ और उनका व्यवहार, उसे जाननेवाले–अनुभव करनेवाले और तत्प्रमाण आचरण करनेवाल, वे मुनि। वह मुनिपना पालन नहीं किया जा सका, बाहर में दुष्काल पड़ा तो सूत्र के अर्थों को नहीं माना। जो भगवान की वाणी थी, उसे नहीं माना। अपनी कल्पना से वस्त्रसहित भी मुनि होते हैं, वस्त्र–पात्र रखे तो भी मुनिपना रहता है, ऐसे शास्त्रों के उल्टे अर्थ करके नये शास्त्र बनाये। वे प्रगट मिथ्यादृष्टि हैं। प्रसिद्ध मिथ्यादृष्टि हैं, ऐसा कहते हैं। अव्यक्तरूप से मिथ्यादृष्टि जो अनन्त बार गया, नौवें ग्रैवेयक गया, तब गहराई में अन्दर राग के विकल्प का भाव वह अनुभव में रह गया और उससे भिन्न का भान नहीं रहा। वह तो गुप्त मिथ्यादृष्टि है। यह तो प्रगट मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। यह सम्प्रदाय की बात नहीं। समझ में आया ?

कहते हैं, **इसीलिए जो सचेल है, वस्त्रसहित है, उसको 'खेडे वि' अर्थात् हास्य कुतूहल में भी पाणिपात्र अर्थात् हस्तरूप पात्र से आहारदान नहीं करना।** वस्त्र रखे और हाथ में आहार–पानी ले, यह तो कहते हैं कि कौतूहल से भी ऐसा करना नहीं और ऐसे को आहार–पानी कौतुहल से भी देना नहीं। समझ में आया ? कुन्दकुन्दाचार्य से पहले—सौ वर्ष पहले श्वेताम्बर पन्थ निकल चुका था। अनादि सनातन वीतरागमार्ग में से (अलग होकर निकल चुका था।) इसलिए इन्हें यह स्पष्ट (करना पड़ा)। अष्टपाहुड़ में सूत्र के अधिकार में, दर्शन के अधिकार में सबमें स्पष्ट बात रखी है। जगत को सत्य बतलाने के लिये (रखी है)। समझ में आया ?

***भावार्थ* – सूत्र में मुनि का रूप नग्न दिगम्बर कहा है।** जिनवर आता है न ? प्रवचनसार में। भगवान ने तो (ऐसा कहा), मुनि नग्न होते हैं, वस्त्र रहित होते हैं, पात्र नहीं होता। पाणिपात्र—हाथ का पात्र (होता है)। ऐसी दशा अन्तरंग वीतराग सहित की ऐसी

दशा भगवान के, अनादि जिनेश्वर वीतरागी केवलज्ञानी के मार्ग में तो ऐसा कहा था। **जिसके ऐसा सूत्र का अर्थ तथा अक्षररूप पद विनष्ट है...** परन्तु इस सूत्र को नहीं माना, भगवान की वाणी को स्वीकार नहीं किया और नये शास्त्र कल्पित बनाये। जिसमें मुनि को वस्त्र, तीन पछेड़ी चलती है और एक चलोटा चलता है और अमुक यह चलता है, (ऐसा लिखा)। भगवतीसूत्र में तो इतने सब चलते हैं, ऐसा शास्त्र में लिखा है। सब कल्पित बनाये हुए हैं। मिथ्यादृष्टि के बनाये हुए वे सूत्र हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें लिखा है। सुधर्मास्वामी, जम्बुस्वामी को कहते हैं, ऐसा कल्पित बनाया है। उसमें लिखा है। लिखा है। वह सब बात कल्पित है। देव के स्वरूप में, गुरु के स्वरूप में, धर्म के स्वरूप में, तत्त्व के स्वरूप में सब अन्तर है। अनादि सनातन वीतराग दिगम्बर दर्शन से श्वेताम्बर के मार्ग में हजारों बोल की विपरीतता है। यह पक्षपात से वस्तु नहीं। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य सनातन सत्य के अवतार हुए और उसमें वे भगवान के पास गये, आठ दिन रहे। और यहाँ आकर यह बनाया। भाई! मार्ग तो ऐसा है, भाई!

आप वस्त्र धारण करके मुनि कहलाता है,... सूत्र से भ्रष्ट होकर। भगवान की वाणी, यह सूत्र नहीं, हों! ३२-४५ हैं, वे सूत्र नहीं। वे अज्ञानी ने कल्पित सूत्र बनाये हैं। किसी व्यक्ति के प्रति द्वेष की आवश्यकता नहीं है। व्यक्ति की तो उसके परिणाम में जवाबदारी है। वस्तुस्थिति है, ऐसा उसे बराबर मानना और जानना चाहिए। सब आत्मा है, वह भी आत्मा है। व्यक्ति के प्रति द्वेष नहीं, विरोध नहीं परन्तु मार्ग यह है, ऐसी श्रद्धा तो उसे बराबर करनी चाहिए। समझ में आया? कहो, देवजीभाई! है? पुस्तक है? ठीक।

देखो! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य। 'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो।'ऐसे तीसरे (नम्बर) में आते हैं। 'जैन धर्मोस्तु मंगलं।' श्वेताम्बर में स्थूलीभद्र आते हैं। बनाया है। परमेश्वर जिनवर का अनादि मार्ग महाविदेह में और यहाँ अन्तर अनुभवसहित वीतरागता और बाहर में एकदम माता से जन्मा, ऐसा शरीर, ऐसे मोक्ष के मार्ग की-मुनिमार्ग की यह दशा अनादि की है। समझ में आया? परन्तु दुष्काल में उसे पालन नहीं कर सके। पहले तो अर्धफालक रखा था। इस प्रकार से था। टुकड़ा आधा

रखा। मुनि बाहर से—दक्षिण में से आये (और कहा), यह मार्ग नहीं है। अब हमारे चले ऐसा नहीं है। फिर शास्त्र रचे। दो हजार वर्ष हो गये। लोगों ने कहाँ जाँचा है कि क्या सत्य है या नहीं? जिस वाडा में जन्मा, वह सब सत्य (मान लिया)। यह तो मार्ग की कसौटी करके निर्णय करना चाहिए। समझ में आया?

कहते हैं, सूत्र के अर्थ से भ्रष्ट हो गये। सूत्र में जो कहा था, उससे उल्टी श्रद्धा करके भ्रष्ट हुए। बराबर होगा? विमलचन्दभाई! इन्हें तो जँचा है, बहिनों को अभी थोड़ी देर लगे। ऐसा मार्ग, बापू! मार्ग तो ऐसा है, भाई! हों! चारित्र अर्थात्? आहाहा! एक शरीर छूटा न जाए, इसलिए शरीर रहता है। श्रीमद् ने भी ऐसा कहा नहीं? 'देहमात्र संयम हेतु होय जब।' एक देह संयम हेतु, दूसरी कोई चीज़ होती नहीं। 'अन्य कारणे अन्य कशु कल्पे नहीं।' ऐसा सनातन अनादि वीतरागमार्ग का सनातन पन्थ था। उसमें से यह मुनि से भ्रष्ट हुए।

आप वस्त्र धारण करके मुनि कहलाता है, वह जिन आज्ञा से भ्रष्ट हुआ प्रगट मिथ्यादृष्टि है,... उसमें कोई पूछने का, देखने का नहीं, कहते हैं। वे सब प्रगट मिथ्यादृष्टि हैं। ऐई! प्रकाशदासजी! ऐसा है यह। हाय... हाय..! यह तो चौथी बार का है। (संवत्) २००२ में, २०११ में, २०१७ में। यह चौथी बार। २००२ के वर्ष, दस वर्ष पहले।

इसलिए वस्त्र सहित को हास्य कुतूहल से भी पाणिपात्र अर्थात् आहारदान नहीं करना... अर्थात् कि वर्ष रखना, हाथ में आहार लेना यह उचित नहीं। उस समय पहले शुरु हुआ होगा, ऐसा लगता है। थोड़ा वस्त्र रखे। टुकड़ा रखकर हाथ में आहार ले। यह मार्ग बिल्कुल भ्रष्ट हुए उनका है। कहते हैं कि ऐसा उन्हें नहीं करना चाहिए और देनेवाले को भी उसे मुनि मानकर आहार नहीं देना चाहिए। वे मुनि हैं ही नहीं, मिथ्यादृष्टि हैं। भारी बात।

तथा इस प्रकार भी अर्थ होता है कि ऐसे मिथ्यादृष्टि को पाणिपात्र आहार लेना योग्य नहीं है,... देनेवाले को देना योग्य नहीं, लेनेवाले को लेना योग्य नहीं। वस्त्र रखना और हाथ में आहार लेना, पहले शुरुआत में ऐसा था निकले तब। शुरुआत में दिगम्बर प्रतिमाएँ, दिगम्बर मन्दिर भी जाते थे। पहले श्वेताम्बर नहीं थे। पहले साधु वहाँ जाते थे। भिन्न पड़े थोड़े, तब वहाँ जाते थे। फिर इन लोगों ने बनाया। फिर तो बहुत सब

बनाया। वह राजा कैसा ? 'सम्प्रत'। फिर अकेला चला। जिनबिम्ब और आगम... आधार। ऐसा बनाया। फिर सम्प्रदाय चला। अब इसे विचार करने का अवसर नहीं रहता। समझ में आया ? इसमें से स्थानकवासी अभी तो निकले अभी पाँच सौ वर्ष हुए। वे तो भ्रष्ट में से भ्रष्ट होकर निकले। उनमें से तेरापन्थी भ्रष्ट होकर भ्रष्ट में से निकले। दया-दान और पर को बचाने का भाव पाप, यह सब मार्ग का फेरफार है, भाई ! यह तो वीतरागमार्ग है, भाई ! सनातन सत्य, उसका इन्द्र आदर करते हैं, गणधर आदर करते हैं, चक्रवर्ती मानते हैं, वह मार्ग तो बापू ! साधारण होगा ? समझ में आया ? यहाँ ऐरे-गैरे मुनि होकर चल निकले। वस्त्र पहने और आर्यिका, साधु... आर्यिका / साध्वी... निर्ग्रंथी कहते हैं कि यह वस्त्रसहित साधुपना मनावे, माने, माननेवाले को भला जाने, वे तीनों एक प्रगट मिथ्यादृष्टि है। उन्हें जैन की श्रद्धा में। समझ में आया ? है या नहीं उसमें ? या ऊपर से कहा जाता है ? देखो ! ऐसा है, देखो !

मिथ्यादृष्टि को पाणिपात्र आहार लेना योग्य नहीं है, ऐसा भेष हास्य कुतूहल से भी धारण करना योग्य नहीं है कि वस्त्रसहित रहना और पाणिपात्र भोजन करना, इस प्रकार से तो क्रीड़ामात्र भी नहीं करना। 'खेडे वि'। आहाहा ! मुनिमार्ग बदल डाला, देव का स्वरूप बदला, शास्त्र के अर्थ के पूरे मिथ्या अर्थ किये। आचारांग और सूयगडांग और ठाणांग, यह शास्त्र भगवान के कहे हुए नहीं। उनके आचार्य मिथ्यादृष्टि हुए, पश्चात् यह सब बनाये हुए हैं। अब यह सर्वज्ञ के कहे हुए हैं, (ऐसी प्ररूपणा की)। बेचारे लोग उलझन में आ गये। परीक्षा करने का अवसर रहा नहीं। सातवीं गाथा में ऐसा कहा, लो !

गाथा-८

आगे कहते हैं कि जिनसूत्र से भ्रष्ट हरि–हरादिक के तुल्य हो तो भी मोक्ष नहीं पाता है –

हरिहरतुल्लो वि णरो सग्गं गच्छेइ एइ भवकोडी।
तह वि ण पावइ सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो।।८।।

हरिहरतुल्योऽपि नर: स्वर्गं गच्छति एति भवकोटि:।
तथापि न प्राप्नोति सिद्धिं संसारस्थ: पुन: भणित:।।८।।

हरि–हर–समान मनुष्य जाए स्वर्ग में बहु भवों तक।
संसार में स्थित रहे नहिं मोक्ष–प्राप्ति करे वह।।८।।

अर्थ – जो मनुष्य सूत्र के अर्थ पद से भ्रष्ट है, वह हरि अर्थात् नारायण हर अर्थात् रुद्र इनके समान भी हो, अनेक ऋद्धि संयुक्त हो तो भी सिद्धि अर्थात् मोक्ष को प्राप्त नहीं होता है। यदि कदाचित् दान पूजादिक करके पुण्य उपार्जन कर स्वर्ग चला जावे तो भी वहाँ से चयकर करोड़ों भव लेकर संसार ही में रहता है, इस प्रकार जिनागम में कहा है।

भावार्थ – श्वेताम्बरादिक इस प्रकार कहते हैं कि गृहस्थ आदि वस्त्रसहित को भी मोक्ष होता है, इस प्रकार सूत्र में कहा है, उसका इस गाथा में निषेध का आशय है कि जो हरिहरादिक बड़ी सामर्थ्य के धारक भी हैं तो भी वस्त्रसहित तो मोक्ष नहीं पाते हैं। श्वेताम्बरों ने सूत्र कल्पित बनाये हैं, उनमें यह लिखा है, सो प्रमाणभूत नहीं है, वे श्वेताम्बर जिनसूत्र के अर्थ पद से च्युत हो गये हैं – ऐसा जानना चाहिए।।८।।

गाथा-८ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जिनसूत्र से भ्रष्ट हरि–हरादिक के तुल्य हो तो भी मोक्ष नहीं पाता है – लो! समझ में आया? भगवान की आज्ञा के सिद्धान्तों, जो परमेश्वर ने कहे हुए, पश्चात् कुन्दकुन्दाचार्य ने रचे हुए, ऐसे सूत्रों से भ्रष्ट हैं, वे हरिहरादिक बड़े

पुण्यवन्त प्राणी हो तो भी उन्हें धर्म नहीं होता अर्थात् मोक्ष नहीं होता। पुण्यवन्त भी हों, ऐसा कहते हैं। बड़ा पुण्य हो। ऐसे अरबों रुपये खर्च करे। यात्रा, प्रतिष्ठा... क्या कहलाता है वह ? शान्तियज्ञ और यह सब... ऐसा करावे। करोड़ों रुपये खर्च करावे। बड़ी यात्राऐं, विशाल प्रतिष्ठाऐं, बड़े दान, बड़ी दानशालायें, विशाल मन्दिर (बनावे) । ऐसे अरबों रुपये खर्च करे और खर्च करावे, तथापि सूत्र के अर्थ से भ्रष्ट हुए मिथ्यादृष्टि को कुछ भी मोक्ष है नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? शुरुआत में तो यह पढ़े तो भड़के, ऐसा है।

हरिहरतुल्लो वि णरो सग्गं गच्छेइ एइ भवकोडी।
तह वि ण पावइ सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो ।।८।।

अर्थ – जो मनुष्य सूत्र के अर्थ पद से भ्रष्ट है,... सनातन वीतरागी की वाणी से भ्रष्ट हो गये हैं और नये कल्पित सूत्र अपनी दृष्टि से बनाये हैं। **वह हरि अर्थात् नारायण...** हो। वासुदेव जैसे पुण्यवन्त तीन खण्ड के धनी, उनके जैसे पुण्यवन्त कदाचित् हो। **हर अर्थात् रुद्र (शंकर) इनके समान भी हो, अनेक ऋद्धि संयुक्त हो...** ऋद्धि भी बाहर की अनेक प्रकार की पुण्य के कारण से प्रगटे। **तो भी सिद्धि अर्थात् मोक्ष को प्राप्त नहीं होता है।** उसे धर्म नहीं अर्थात् मोक्ष नहीं होता। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं न। यह कहेंगे अभी।

तो भी सिद्धि अर्थात् मोक्ष को प्राप्त नहीं होता है। यदि कदाचित् दान पूजादिक करके... दान करे, पूजा आदि यात्रा, प्रतिष्ठा, यह पंच महाव्रत उनके माने हुए, कल्पित किये हुए में रहे। समझ में आया ? **पुण्य उपार्जन कर...** पुण्य हो। दृष्टि तो मिथ्यात्व है। ऐई ! हेमाणी ! ...भाई ! ऐसा मार्ग है। परमेश्वर वीतराग जिनवर देव ने तो यह कहा है। उसमें से ये श्वेताम्बर निकले, वे मिथ्यादृष्टि होकर बाहर आये। उसमें से स्थानकवासी मिथ्यादृष्टि होकर अलग पड़े। ... और यह तुलसी आदि तेरा पन्थ है, वह उसमें से मिथ्यादृष्टि होकर अलग पड़े। अरे ! कठिन काम लगे। देवजीभाई ! ऐसा मार्ग है, भाई ! जिनवर का कहा हुआ, परमेश्वर का कहा हुआ। सिद्धान्त ने कहा, ऐसा उन्होंने नहीं माना। नहीं, अब हमारे यह काल ऐसा हल्का है कि हमें परिवर्तन करके रहना पड़ेगा। वेश

बदले, शास्त्र बदले, देव के रूप बदले, तत्त्वों के बदले। भारी कठिन काम, भाई!

कहते हैं, दान, पूजा, प्रतिष्ठा, मन्दिर बनावे, ऐसा इत्यादि (करे)। करोड़ों, लाखों, अरबों रुपये का खर्च करे, करावे। उसमें उसे जरा शुभभाव हो तो भी मिथ्यादृष्टि है, ऐसा उसका भाव है, इसलिए कदाचित् स्वर्ग में जाए। स्वर्ग जाए, है न? पाठ में है। पहले स्वर्ग में जाए। ऐसे शुभभाव हो तो वह स्वर्ग में जाए। **करोड़ों भव लेकर...** फिर करोड़ भवों से लेकर संसार में ही भटकेगा। चार गति में भटकेगा। आहाहा! साधारण प्राणी को बेचारे को उलझन में डाला। भगवान के मार्ग में शंका नहीं करना, शंका करोगे तो मर जाओगे। भगवान के नाम से दिया कि शंका नहीं करना। ऐ! आहाहा!

कहते हैं, कदाचित् दान, पूजा, व्रत, ब्रह्मचर्य पालन करे, ऐसा हो। परन्तु है तो मिथ्यादृष्टि। चाहे तो उसके आचार्य हो, चाहे तो उसके उपाध्याय हो, चाहे तो गणी हो। इसकी विशेष बात नौवीं गाथा में लेंगे। समझ में आया? तो भी वह दृष्टि तो मिथ्यात्व है। वीतरागमार्ग से एकदम उल्टी दृष्टि है। इसलिए वह स्वर्ग में कदाचित् शुभभाव से जाए। वहाँ से करोड़ शब्द से (आशय) अनन्त भव संसार में भटकेगा। यह तो एक शब्द रखा है—करोड़। **'भवकोडी'**। अनन्त-अनन्त भव संसार के (करेगा)। मिथ्यात्व का फल ही अनन्त निगोद है। एक वस्त्र का धागा रखकर भी मुनिपना माने, मनावे, माननेवाले को भला जाने, निगोदं गच्छई, ऐसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं और यह बात बराबर है, ऐसा ही है। वस्तु के स्वरूप की दृष्टि नहीं, इसलिए मुनिपने का भान नहीं। जिनदेव की आज्ञा के शास्त्र क्या हैं, उनकी खबर नहीं। ऐसे विपरीत मिथ्यादृष्टि को एक वस्त्र का धागा रखे और मुनि माने तो निगोद (जाता है)। यहाँ तो एक भी बात का ठिकाना नहीं रहा, कहते हैं। सूत्र में तो अनेक खोटी बातें (लिखी हैं)। मुनि को इतने वस्त्र रखना, उसे ऐसे धोना, रंग करना, अमुक करना, पात्र को रंग देना... कहते हैं कि यह सब मार्ग मिथ्यादृष्टि ने किया हुआ मार्ग है।

करोड़ों भव लेकर संसार ही में रहता है,... अनन्त भव करके निगोद में भटकेगा। आहाहा! ... ककड़ी के चोर को... कहते हैं न कुछ? फाँसी की सजा, ऐसा नहीं न यह? ऐसा नहीं है। घर के मूल चोर हैं, कहते हैं। उसने पूरा मार्ग बदल डाला। मलिन कर डाला। पूरे जैनदर्शन को मलिन किया। समझ में आया? कहते हैं, वह करोड़ों भव

करके भी (संसार में भटकेगा) । **इस प्रकार जिनागम में कहा है ।** देखो ! है न ? **'भणिदो'** है न ? **'तह वि ण पावइ सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो'** आठवीं गाथा। भगवान ने शास्त्र में ऐसा कहा है, भाई ! परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतरागदेव ने (ऐसा कहा है) । जिसे यह शब्द कान में भी पड़े न हों, उसे बेचारे को शंका भी नहीं पड़ती। यह तो भगवान के शास्त्र हैं और तद्नुसार हम वस्त्र रखते हैं, भगवान की आज्ञा है इतने वस्त्र रखने की। महाव्रत पालते हैं। महाव्रत, वह चारित्र है। जाओ !

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्त्र... वेश तो है। यह तो कहते हैं, वेश भी नहीं, कुवेश है, वह कुलिंग है।

मुमुक्षु : महावीर का वेश है।

पूज्य गुरुदेवश्री : महावीर का वेश है ही नहीं। महावीर का वेश तो नग्न हो, वह महावीर का वेश है। वेश भी नहीं, कुलिंग है। अब तो पैंतीस वर्ष हो गये सुनते हुए। खबर तो नहीं होगी ? यहाँ दिगम्बर मार्ग है, यह खबर नहीं इसे ? रवाणी ! यहाँ तो अनादि का दिगम्बर मार्ग है। यहाँ कहीं श्वेताम्बर और स्थानकवासी का मार्ग है नहीं। दिगम्बर के शास्त्र पढ़े जाते हैं, दिगम्बर की प्रतिमा है। खुल्ला है।

मुमुक्षु : अब गूढ़ बहुत हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्य बात है। गूढ़ सब। ऐसा सब ? ऐसा होगा ? ऐसा।

यहाँ तो आचार्य कहते हैं, ऐसा ही है, बापू ! भाई ! जिनागम के विरुद्ध लिखा, जिनागम से विरुद्ध किया। वीतराग के मार्ग में तो वीतराग मार्ग का पोषण होता है। वीतराग जिनवाणी वीतरागभाव को पोषण करती है। उसके बदले राग को पोषण कर, वस्त्र रखने की बातें, भगवान को रोग हो, स्त्री की मुक्ति हो, स्त्री वस्त्र रखे तो भी। ऐसी जो बातें, वह तो अकेला मिथ्यात्व को पोषण किया है। समझ में आया ? देखो !

भावार्थ – श्वेताम्बरादिक... श्वेताम्बर आदि अर्थात् श्वेताम्बर, स्थानकवासी इत्यादि। मोक्षमार्गप्रकाशक के समय अभी तेरापन्थी नहीं निकले होंगे, ऐसा लगता है। उसमें बात नहीं है। अभी निकले न ? दो सौ वर्ष पहले।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। स्थानकवासी... श्वेताम्बर की बात है यहाँ। फिर यहाँ अर्थ किया उस समय निकले वे न। स्पष्टीकरण किया। उस समय श्वेताम्बर हुए न, श्वेताम्बर में से निकलकर श्वेताम्बर ही है। ऐसा।

श्वेताम्बरादिक इस प्रकार कहते हैं कि गृहस्थ... श्वेताम्बर में भी वापस पीले वस्त्र हो गये है न अब तो? साधु पीले पहनते हैं। सफेद पहने, जति भी सफेद पहनते हैं अर्थात् इसके लिये उन्होंने फिर पीले कर डाले। पीला अवतार किया। वे जति भी पीले पहनते हैं न। है तो सबका समान। पीला रखो। वस्त्र पीला से साधुपना, लो। आहा! वीतराग का मार्ग जिनागम की आज्ञा, जिनागम की आज्ञा अनादि कुन्दकुन्दाचार्य आदि मुनि कहें और उनसे विरुद्ध आचरण करके माने कि हम धर्मी-मुनि हैं, वह वीतराग का और कुन्दकुन्दाचार्य का शत्रु हुआ। आहाहा! उसने अपने स्वभाव की वस्तु से विरुद्ध किया। समझ में आया?

गृहस्थ आदि वस्त्रसहित को भी मोक्ष होता है, इस प्रकार सूत्र में कहा है,... वे लोग कहते हैं न गृहस्थ आदि। मरुदेवी को हाथी के हौदे मोक्ष (हुआ)। समझ में आया? उन्हें किसी ने पूछा अमरचन्दजी को कि तुम्हारा मोक्ष सरल बहुत है। हाथी के हौदे मोक्ष। ऐलचीकुमार को डोरी पर नाचते-नाचते केवल (ज्ञान हुआ)। और साधु आहार खाता था। आहार खाते-खाते मोक्ष (हो गया)। सरल बहुत। जवाब दिया था। भूल गये। नहीं? तब कहा था। अन्तर का मार्ग ऐसा है, कहे। खाते-खाते केवलज्ञान पाये।

यहाँ तो कहते हैं, बापू! अभी तो सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की रीति की खबर नहीं होती। देव, गुरु, शास्त्र सच्चे किसे कहना, ऐसी व्यवहार श्रद्धा का ठिकाना नहीं होता। उसे निश्चय श्रद्धा कहाँ से होगी? और मुनिपना तो कहाँ से होगा? और मोक्ष तो कहाँ से होगा? '...मार्ग वीतराग का कहा श्री भगवान।' देखो! सीमन्धर भगवान परमात्मा महाविदेह में इस प्रकार से कह रहे हैं। समझ में आया? मार्ग यह है। सच्चा निर्णय कराने के लिये मिथ्यामार्ग का निषेध करते हैं। समझ में आया? नहीं तो श्रद्धा विपरीत रहेगी। और उसे महाव्रत आदि के आचरण हों तो भी वह मरकर चार गति में भटकेगा।

गृहस्थ आदि वस्त्रसहित को भी मोक्ष होता है,... लो, स्त्री को मोक्ष, वस्त्र

पहने हो न। कथा में यहाँ तक कर डाला। स्त्री ऐसे सुलगाती थी। सुलगाती थी, उसमें उसे केवलज्ञान हो गया। उसके... क्या कहलाते हैं ? गुरुणी के पैर दबाती थी। पैर दबाते-दबाते केवलज्ञान हो गया। अन्धेरे में सर्प निकला। बाँस ऐसा लम्बा था ? ... वह सर्प निकला। क्यों हुआ ? अन्धेरा है और क्या देखा ? यह सर्प। ज्ञान हुआ है ? अप्रतिहत हुआ है ? तो कहे, हाँ। ऐसे गप्प मारे हैं। भाई ! वस्त्रसहित मुनिपना माने, उसे समकित नहीं होता और केवलज्ञान कहाँ से आया ? ओहो ! बहुत अन्तर।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ...हाँ, वे और घर में। केवल (ज्ञान) पाये और घर में रहे। सब्जी बताते हुए छुरी चाहिए थी। यह सब कथा में है। बतायी कि वह पीछे रही। ऐसी बातें। इस बात की बहुत चर्चा चली थी, हों ! एक बार। (संवत्) १९७७ या उसके बाद। एक था, खुशालदास। खुशालदास कोर्ट में ऐसा कुछ था। बेरिस्टर। भावनगर थे, वहाँ बात आयी थी कि ऐसा कहता है। वह ऐसा होगा ? गप्प मारी है। कुँवरजी ऐसा कैसे मानते हैं ? कुँवरजी आणंदजी। कुँवरजी... वाडा में पड़े, उन्हें परीक्षा करने की कुछ शक्ति रहती नहीं। वह तो जो हो वह सच्चा, जाओ ! वह अमरचन्दजी है न ? भगवान ने वस्त्र रखा। अभी बहुत सुधेरे हुए गिने जाते हैं। आधा वस्त्र उनका। क्या कहा ? उनके ब्राह्मण के मामा का मित्र। उसके साथ जोड़े। कहो, साधु होकर वस्त्र रखे और आधा दे। ... दान दे। वहाँ उसकी महिमा की है कि जैनधर्म का, उसमें महा करुणा का भाव है। गजब करते हैं न। आया तो दिया। पूरा दे देना था न। आधा किसलिए रखा ? सब गप्प ही गप्प कल्पित बातें की हैं। कुछ मिलान नहीं मिलता फिर ... दे।

यहाँ तो कहते हैं **गृहस्थ आदि वस्त्रसहित को भी मोक्ष होता है, इस प्रकार सूत्र में कहा है, उसका इस गाथा में निषेध का आशय है...** सूत्र में सिद्धान्त में उन लोगों ने कहा है न ? उसका निषेध करते हैं। तेरी सब बातें मिथ्या है। **जो हरिहरादिक बड़ी सामर्थ्य के धारक भी हैं तो भी वस्त्रसहित तो मोक्ष नहीं पाते हैं।** वस्त्रसहित का मोक्ष नहीं हो सकता। **श्वेताम्बरों ने सूत्र कल्पित बनाये हैं...** 'वळा' के अन्दर चौरासी सूत्र नये बनाये। यह 'वळा', 'वल्लभीपुर'। ४५ रखे श्वेताम्बर में, ३१ रखे स्थानकवासी में। बत्तीसवाँ आवश्यक है, वह नया बनाया। **उनमें यह लिखा है, सो**

प्रमाणभूत नहीं है,... गृहस्थ वस्त्रसहित में केवलज्ञान पावे, वह प्रमाणभूत बात नहीं है। यह निर्णय करे न ... रिकॉर्डिंग... क्या कहलाता है ? रोकेट। चन्द्रमा में चाहे जैसे गया हो, यह कर न। रोकेट। यह चन्द्रमा शीतल भगवान आत्मा, उसे पहुँचने की पद्धति पकड़ न। बाहर में चाहे जैसे हुआ, उसके घर में। भगवान ने यह कहा है, सुन न! आहाहा! समझ में आया ?

श्वेताम्बर जिनसूत्र के अर्थ पद से च्युत हो गये हैं... है अन्दर ? यह श्वेताम्बर जिनसूत्र के अर्थ से—भगवान के कहे हुए शास्त्र के अर्थ से, उसके पद से, उसके भाव से भी च्युत हुए हैं। लो। **ऐसा जानना चाहिए।** भ्रष्ट हो गये हैं। बड़ा वर्ग यह हो गया। स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी।

गाथा-९

आगे कहते हैं कि जो जिनसूत्र से च्युत हो गये हैं, वे स्वच्छंद होकर प्रवर्तते हैं, वे मिथ्यादृष्टि हैं –

उक्किट्ठसीहचरियं बहुपरियम्मो य गरुयभारो य।
जो विहरइ सच्छंदं पावं गच्छदि होदि मिच्छत्तं।।९।।

उत्कृष्ट सिंहचरित: बहुपरिकर्मां च गुरुभारश्च।
य: विहरति स्वच्छंदं पापं गच्छति भवति मिथ्यात्वम्।।९।।

हो सिंह–सम उत्कृष्ट वृत्ति बहु तपस्वी उच्च पद।
पर वर्तता स्वच्छंद तो मिथ्यात्व पाप सहित सतत।।९।।

_अर्थ_ – जो मुनि होकर उत्कृष्ट सिंह के समान निर्भय हुआ आचरण करता है और बहुत परिकर्म अर्थात् तपश्चरणादिक्रिया विशेषों से युक्त है तथा गुरु के भार अर्थात् बड़ा पदस्थरूप है, संघ नायक कहलाता है, परन्तु जिनसूत्र से च्युत होकर स्वच्छंद प्रवर्तता है तो वह पाप ही को प्राप्त होता है और मिथ्यात्व को प्राप्त होता है।

_भावार्थ_ – जो धर्म का नायकपना लेकर–गुरु बनकर निर्भय हो तपश्चरणादिक

से बड़ा कहलाकर अपना सम्प्रदाय चलाता है, जिनसूत्र से च्युत होकर स्वेच्छाचारी प्रवर्तता है तो वह पापी मिथ्यादृष्टि ही है, उसका प्रसंग भी श्रेष्ठ नहीं है।।९।।

गाथा-९ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो जिनसूत्र से च्युत हो गये हैं, वे स्वच्छंद होकर प्रवर्तते हैं, वे मिथ्यादृष्टि हैं – भगवान के जिनागम जो थे, षट्खण्डागम इत्यादि शास्त्र। पश्चात् यह समयसार आदि बाद में बने। ऐसे जिनसूत्र से च्युत हुए, वे स्वच्छन्दी होकर प्रवर्तते हुए मिथ्यादृष्टि हैं।

उक्किट्ठसीहचरियं बहुपरियम्मो य गरुयभारो य।
जो विहरइ सच्छंदं पावं गच्छदि होदि मिच्छत्तं।।९।।

अर्थ – **जो मुनि होकर उत्कृष्ट सिंह के समान निर्भय हुआ आचरण करता है...** कठिन, ऐसे आचरण करे, महीने-महीने के अपवास, रूखा आहार (ले)। निर्भय करके करे। ऐसी क्रिया करे। **और बहुत परिकर्म...** करे। तपस्या, विनय, वैयावृत्य, धर्म की प्रभावना, उसके मन्दिर, लाखों-करोड़ों लोग इकट्ठे हों, उसमें हो...हा होता है। **क्रिया विशेषों से युक्त है...** तो भी भगवान की आज्ञा से, श्रद्धा से भ्रष्ट है। वह चार गति में भटकनेवाले हैं। अरे... अरे..! गजब काम। ऐ... देवजीभाई! है या नहीं उसमें? वीतरागभाव से लिखा गया है। समझ में आया? जैसा स्वरूप है, वैसा वर्णन न करे तो लोगों को समझ में किस प्रकार आये? समझ में आया? एक व्यक्ति कहे, समान भाव रखो। समान अर्थात् क्या? यह भी सच्चा और यह भी सच्चा—ऐसा समान होगा? विरोध नहीं हो, द्वेष न हो। यह आत्मा है। उसे नहीं जँचता, उसकी दृष्टि विपरीत है।

क्रियाविशेषों से युक्त है तथा गुरु के भार अर्थात् बड़ा पदस्थरूप है,... आचार्य, उपाध्याय ऐसी बड़ी उसे पदवी दी हो। **गुरु के भार अर्थात् बड़ा पदस्थरूप है,...** बड़ा आचार्य, आचार्य का भी आचार्य। क्या कहते हैं उसे? आचार्य का अर्थ बड़े। जैनसम्राट। सूरिसम्राट। सूरिसम्राट। चाहे जैसे नाम धराओ, कहते हैं, परन्तु भगवान की आज्ञा की श्रद्धा से भ्रष्ट है, वह मिथ्यादृष्टि है। मिथ्यादृष्टि है, वहाँ दूसरे की क्या औकात?

समझ में आया ? यह तो बहुत दूर रह गये। दृष्टान्त तो यह दिया है, देखो न! **'गरुयभारो य'** एक तो कठोर आचरण हो और परिक्रम उसकी तपस्या आदि भी बहुत हो, ऐसा कहते हैं। आचरण (अर्थात्) यह क्रिया, हों! चारित्र तो कहाँ है ? कठिन आचरण की क्रिया, इस पर उसका परिक्रम अर्थात् सम्बन्ध संयोग तपस्या का भी जोरदार हो। बहुत जोरदार। और उससे पदस्थ—बड़ा पद हो। आचार्यपद, गणीपद... क्या देते हैं न ? बहुत नाम आते हैं न ? उपाध्यायपद।

मुमुक्षु : संन्यासी, प्रवर्तक।

पूज्य गुरुदेवश्री : संन्यास। प्रवर्तक... बड़े बहुत नाम आवे। बड़े चाहे जैसे नाम के पूँछड़े लगाओ, कहते हैं। वीतराग सर्वज्ञ के परम्परा के शास्त्रों का मार्ग, उससे भ्रष्ट हुए हैं, वे मिथ्यादृष्टि है। वह क्रम-क्रम से निगोदगामी होगा। बीच में स्वर्ग आदि (होंगे), शुभभाव हो (तो) स्वर्ग में जाए। शुभभाव हो कितने। ऐसा ब्रह्मचर्य हो, परन्तु दृष्टि मिथ्यात्व है। अनन्त तीर्थंकरों का, अनन्त केवलिओं का, अनन्त सन्तों का मार्ग, ऐसा जो आत्मा का मार्ग, उससे विरुद्ध श्रद्धा की। समझ में आया ? वस्त्र-पात्र रखे और मुनि मनावे, माने, आचार्यपना मनावे और माने (वह) बड़ा पदवाला हो तो भी कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि है। सब नीचे जायेंगे। अधोगति। अरे..! गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : तो क्या है ? श्रद्धान न आवे तो क्या है ? आहा! मार्ग तो ऐसा है, भाई! समझ में आया ? अनन्त केवलियों ने परम्परा से कहा हुआ मार्ग, उसमें से एक बोल बदलो तो भी भ्रष्ट है, तो यह तो कहते हैं, हजारों बोलों को बदलकर वीतराग के मार्ग का एक अंश रखा नहीं। वीतराग के मार्ग का पूरा रूप बदल डाला। आहाहा! ...

बड़ा हो, कहते हैं। देखो न! **'गरुयभारो'।** ज्ञान के जानपने में बड़ा जबरदस्त हो। लाखों लोगों को ऐसे समझा सके, उसकी बात हो वह। ज्ञान में जबरदस्त, आचरण में जबरदस्त, तपस्या में जबरदस्त, पद में जबरदस्त, लो। परन्तु है मिथ्यादृष्टि। समझ में आया ? और गृहस्थ... लिखा है न ? मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है। मुनि एक वस्त्र का धागा रखकर मुनि मनावे तो अधर्म है। गृहस्थ बहुत परिग्रह रखे, ममता भी हो, परन्तु

सम्यग्दृष्टि ज्ञानी हो तो उसे अल्प काल में मोक्ष होगा। है न भाई इसमें ? मोक्षमार्गप्रकाशक। मोक्षमार्गप्रकाशक में है। मोक्षमार्गप्रकाशक में बहुत सरस (लिखा है)।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... था। वह है कहीं। वह कहीं है अवश्य। यदि गृहस्थपने में बहुत परिग्रह रखकर किंचित् परिमाण करे, तो भी वह स्वर्ग, मोक्ष का अधिकारी होता है। छठवाँ (अधिकार)। समझ में आया ? जबकि मुनिपने में किंचित् परिग्रह अंगीकार करने से भी निगोदगामी होता है। इसलिए ऊँचा नाम धराकर नीची प्रवृत्ति करनायोग्य नहीं है। ऊँची पदवी धरावे, आचार्यपद, मुनिपद और है मिथ्यादृष्टि की... क्रिया। समझ में आया ? मुनि का तो स्वरूप ऐसा है कि बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह... ऐसा फिर विशेष (कहा है)। उसमें ही होगा या तो, नहीं ? हाँ, उसमें ही है। शास्त्र में कृत, कारित, अनुमोदना का फल एकसरीखा कहा है। उसमें ही है। इसलिए उन्हें भी वैसा ही फल लगेगा। चाहे तो मिथ्यादृष्टि वस्त्रसहित मुनिपना माने, मनवावे, मानते हुए को भला जाने, तीनों का एक ही फल है। करे, करावे, अनुमोदन करे (तीनों का) फल समान है। भगवानजीभाई ! वहाँ तो वे जति आये हों तो भी भगवानजीभाई प्रसन्न हो गये थे। वहाँ कोई न हो तो क्या करे ? चरण किये। डेढ़ सौ रुपये रखे। यह तो सर्वत्र ऐसे ही होता है। यह तो ऐसा ही होवे न। महाराज आये, महाराज आये... मन्दिर आवे, प्रतिमा को चरणवन्दन करे। कहो, समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं, **संघ नायक कहलाता है,...** लो, है न ? संघ के बड़े नायक हो। आचार्य, उपाध्याय। जैन आचार्य सम्राट। परन्तु वीतराग के मार्ग से भ्रष्ट हुए हैं। ऐई ! जादवीभाई ! पहला-पहला नया सुना हो तो महिलाओं को कठिन लगे। अब तो कोठे पड़ गया। नया तो सुनते हैं। जैनसम्राट कहलाता है न। सूरिसम्राट। उससे क्या हुआ ? अनादि वीतरागमार्ग, वीतराग का अनादि मार्ग (है), उसमें से भ्रष्ट होकर ऐसे नाम धरावे और ऐसे पद न हों, महाव्रत आदि न हों और गृहस्थ हो परन्तु सम्यग्दर्शन (हो)। परिग्रह भले बहुत हो, ममता की आसक्ति का राग भी हो, परन्तु वह अल्प काल में मोक्ष जाएगा। क्योंकि वह सत्य के पन्थ में स्थित है। समझ में आया ?

संघ नायक कहलाता है, परन्तु जिनसूत्र से च्युत होकर स्वच्छंद प्रवर्तता है... भगवान की आज्ञा का मार्ग जो था, उससे भिन्न पड़ गये, भ्रष्ट हो गये। प्रवर्तते हैं, भले

प्रवर्तो। **तो वह पाप ही को प्राप्त होता है...** तो भी वह पाप को ही प्राप्त होता है। अर्थात ? **मिथ्यात्व को प्राप्त होता है।** ऐसा कहते हैं, लो। ऐसे संघ के नायक हैं, तपस्या (करे), बारह-बारह, छह-छह महीने के अपवास (करे), ओळी करते हैं न ? अस्सी-अस्सी ओळी, छयासी ओळी, अमुक ओळी। एक समय अपवास। एक समय अपवास और एक ओळी, एक अपवास और एक ओळी। कितने वर्ष से चलता है ? ८६। ८६ कहेंगे। एक व्यक्ति... ८६ वीं ओळी का पारणा कराया।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका नाम ८६। लो। इसमें बहुत देर नहीं लगती।

यहाँ तो कहते हैं, **वह पाप ही को प्राप्त होता है...** मिथ्यात्व को (प्राप्त करता है)। **'गच्छदि होदि मिच्छत्तं'** शब्द ऐसा ही है, देखो! **'विहरइ सच्छंदं पावं गच्छदि होदि मिच्छत्तं'।** दो शब्द पड़े हैं न ? पाप को पाते हुए मिथ्यात्व को ही पाता है। आहाहा! अनन्त सर्वज्ञ, अनन्त जिनागम, अनन्त केवली, अनन्त समकिती, अनन्त मुनियों की आज्ञा से भ्रष्ट हो गये। इसलिए इनकी आत्मा से ये भ्रष्ट हैं। आहाहा! बाहर में तो भारी तूफान है। मार्ग यह है, बापू! दूसरा क्या हो ? सत्य तो सत्य रहेगा न ? किसी की कल्पना से कहीं सत्य, असत्य हो जाएगा ?

ऐसे जीव होते हैं। कहते हैं कि साधु हो, उत्कृष्ट सिंहवत् निर्भय आचरण करे, उसके आचरण की सामग्री भी बहुत कठिन हो। तपस्या, विनय। तपस्या में भी पारणे में बहुत कम खाना। लूखा आहार (करे), ऐसी जिसकी क्रिया हो और बड़ा पदस्थ हो, नायक हो तो भी वीतराग के आगम से तो वह भ्रष्ट हो गये हैं। इसलिए मिथ्यात्व को ही प्राप्त होंगे। मिथ्यात्व को ही प्राप्त है। कहो, समझ में आया ?

भावार्थ – जो धर्म का नायकपना लेकर... हिन्दी भाषा देखी ? धर्म की नायकी लेकर। धर्म का नायक होकर। बड़ा आचार्य, उपाध्याय, गणी और गणीवर (कहलाये)। **निर्भय हो तपश्चरणादिक...** की। तपस्या आदि। लूखा आहार आदि। **बड़ा कहलाकर अपना सम्प्रदाय चलाता है,...** अपना सम्प्रदाय (चलावे)। सैकड़ों साधु, आर्यिका... ओहोहो! धर्म का स्वामी गिने। बड़ा परिवार चलावे। **जिनसूत्र से च्युत होकर...** परन्तु

वीतराग की आज्ञा से तो भ्रष्ट हुए हैं। **स्वेच्छाचारी प्रवर्तता है..** अपनी इच्छा से प्रवर्ते। भगवान की आज्ञा की उसे श्रद्धा नहीं है। **तो वह पापी मिथ्यादृष्टि ही है,...** ऐसा होने पर भी पापी मिथ्यादृष्टि है। **उसका प्रसंग भी श्रेष्ठ नहीं है।** लो। उसका संग भी करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! सब ऐसा कहे, हमारा सच्चा, तुम्हारा खोटा। हमारा संग् करो, दूसरे का नहीं करो, यह थोड़ा ऐसा कहे। बापू! निर्णय करो तो। क्या हो ? सब तो ऐसा ही कहे या नहीं ? तुम्हारे जैसे का संग नहीं करना। वे कहे, हमारे अतिरिक्त दूसरे का संग नहीं करना। आहाहा! ... भाई! सत्य क्या है ? असत्य क्या है ? समझ में आया ?

तीन गाथा का यह अधिकार आया, लो! आगे कहते हैं, वीतरागी मुनि थे, हों! यह कुन्दकुन्दाचार्य। राग-द्वेष और मोह के परिणामरहित वीतरागी सन्त (थे)। हजारों बार जिन्हें छठा-सातवाँ, छठा-सातवाँ गुणस्थान में झूलते हुए ज्ञायकभाव के अनुभव की दृष्टि हुई। आहाहा! वे मुनि ऐसा कहते हैं। यह शास्त्र लिखने का विकल्प आया है। कहते हैं कि भाई! वीतराग के सनातन जिनागम थे, जिनमार्ग था, उससे पृथक् पड़े। मूलसंघ से भिन्न पड़ गये। मूल मार्ग से पृथक् पड़ गये। दूसरा मार्ग चलाया। यह चलनेवाले, चलानेवाले चाहे जैसी बड़ी पदवी के धारक हों और क्रिया कठोर सिंह जैसी (पालन करते हों), आचरण निर्भय हो, तथापि वह मिथ्यात्व को ही प्राप्त है। लोगों को मिथ्यात्व जैसा पाप नहीं और समकित जैसा धर्म नहीं, उसकी कीमत नहीं आती। आहाहा! यह तो किसी को मारे और कुछ पैसा रखे और परिग्रह रखे, अमुक रखे वह पाप। परन्तु राग को अपना माने, ऐसा धर्म मानता है, (वह मिथ्यात्व का पाप नहीं दिखता)। आहाहा! समझ में आया ?

अनन्त केवली, अनन्त तीर्थंकर, अनन्त सन्त जिस मार्ग में चले अनादि से, उनके मार्ग से हट गये। हम वीतराग के भक्त हैं, वीतराग की क्रिया करते हैं, यात्रा में करोड़ों रुपये खर्च करते हैं, अरबों खर्च करते हैं, शत्रुंजय, सम्मेदशिखर की यात्रा निकालते हैं। बीस-बीस हजार, पचीस-पचीस हजार लोग। ऐई! विशाल सैनिक लश्कर चलता हो, लो! छरीपाल, छह प्रकार का। उसमें धर्म। बापू! थोड़ी राग की मन्दता होगी तो शुभ होगा परन्तु दृष्टि तो मिथ्यात्व है। मूल आगम से हट गये हैं, इसलिए दृष्टि तो मिथ्यात्व है। आहाहा!

यह तो पाँचवें अध्याय में मोक्षमार्गप्रकाशक में जो कहा है, वह शैली है यह तो, हों!

सातवें में तो दिगम्बर में जन्मे हुए को मिथ्यात्व कैसे रहता है, उसका अधिकार वहाँ है। जन्मे उसमें परन्तु वापस राग को धर्म माने, निमित्त से लाभ होता है, ऐसा माने, कुछ शुभभाव करूँगा तो धीरे-धीरे शुद्ध होगा, ऐसा जो दिगम्बर में जन्मे परन्तु ऐसा माने तो वे भी मिथ्यादृष्टि हैं। मिथ्यात्व का छोटा-सा कण भी संसार में ले जानेवाला है। आहाहा! समझ में आया? (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-१०

आगे कहते हैं कि जिनसूत्र में ऐसा मोक्षमार्ग कहा है -

णिच्चेलपाणिपत्तं उवइट्ठं परमजिणवरिंदेहिं।
एक्को वि मोक्खमग्गो सेसा य अमग्गया सव्वे।।१०।।

निश्चेलपाणिपात्रं उपदिष्टं परमजिनवरेन्द्रैः।
एकोऽपि मोक्षमार्गः शेषाश्च अमार्गाः सर्वे।।१०।।

तीर्थंकरों ने कहा वस्त्र-विहीन पाणी-पात्र ही।
है एक मुक्तिमार्ग शेष सभी कहे उन्मार्ग ही।।१०।।

अर्थ - जो निश्चेल अर्थात् वस्त्ररहित दिगम्बर मुद्रास्वरूप और पाणिपात्र अर्थात् हाथरूपी पात्र में खड़े-खड़े आहार करना, इस प्रकार एक अद्वितीय मोक्षमार्ग तीर्थंकर परमदेव जिनेन्द्र ने उपदेश दिया है, इसके सिवाय अन्य रीति सब अमार्ग हैं।

भावार्थ - जो मृगचर्म, वृक्ष के वल्कल, कपास पट्ट, दुकूल, रोमवस्त्र, टाट के और तृण के वस्त्र इत्यादि रखकर अपने को मोक्षमार्गी मानते हैं तथा इस काल में जिनसूत्र से च्युत हो गये हैं, उन्होंने अपनी इच्छा से अनेक भेष चलाये हैं, कई श्वेत वस्त्र रखते हैं, कई रक्त वस्त्र, कई पीले वस्त्र, कई टाट के वस्त्र, कई घास के वस्त्र और कई रोम के वस्त्र आदि रखते हैं, उनके मोक्षमार्ग नहीं है, क्योंकि जिनसूत्र में तो एक नग्न दिगम्बर स्वरूप, पाणिपात्र भोजन करना, इस प्रकार मोक्षमार्ग में कहा है, अन्य सब भेष मोक्षमार्ग नहीं हैं और जो मानते हैं, वे मिथ्यादृष्टि हैं।।१०।।

प्रवचन-३०, गाथा-१० से १३, बुधवार, आषाढ़ शुक्ल ५, दिनांक ०८-०७-१९७०

आगे कहते हैं कि जिनसूत्र में ऐसा मोक्षमार्ग कहा है – परमेश्वर तीर्थंकर भगवान ने सिद्धान्त कहे, शास्त्र कहे, उसमें ऐसा मोक्षमार्ग कहा है।

णिच्चेलपाणिपत्तं उवइट्ठं परमजिणवरिंदेहिं।
एक्को वि मोक्खमग्गो सेसा य अमग्गया सव्वे।।१०।।

अर्थ – जो निश्चेल अर्थात् वस्त्ररहित दिगम्बर मुद्रास्वरूप और पाणिपात्र अर्थात् हाथरूपी पात्र में खड़े-खड़े आहार करना, इस प्रकार एक अद्वितीय मोक्षमार्ग तीर्थंकर परमदेव जिनेन्द्र ने उपदेश दिया है,... मुनिमार्ग की व्याख्या है। मुनिमार्ग, वही मोक्षमार्ग है। मूल मार्ग कैसा होता है? भगवान के शास्त्र में कहा वह। वह तो वस्त्ररहित दिगम्बर मुनि हों। भगवान की आज्ञा शास्त्रों में ऐसा कहा है। निश्चेल— वस्त्ररहित दिगम्बर मुद्रा जिसका दिखाव (होता है)। अन्तर का बाद में आयेगा। पाणि— हाथ में आहार ले। ऐसा मुनिमार्ग अनादि का वीतराग के मार्ग में परमेश्वर ने सूत्र में कहा है, वह मार्ग है।

इस प्रकार एक अद्वितीय मोक्षमार्ग... 'एक्को वि' ऐसा कहा है न? **तीर्थंकर परमदेव जिनेन्द्र ने उपदेश दिया है, इसके सिवाय अन्य रीति सब उन्मार्ग हैं।** ऐसा मोक्ष का मार्ग, अभ्यन्तर सम्यग्दर्शन, ज्ञान और वीतरागतासहित और बाह्य नग्नमुद्रा और आहार हाथ में। दोनों ले लिया। पात्र और वस्त्र। पात्र नहीं, वह हाथ। वस्त्र नहीं, (वह) दिगम्बर। ऐसा मुनि के मार्ग का सूत्र में उपदेश है। इससे विरुद्ध जितने मार्ग हैं, वे सब उन्मार्ग हैं। वीतराग का मार्ग नहीं। सेठी! दिगम्बर अकेला वस्त्ररहित और आहार हाथ में (ले वह) अकेला नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आता है। अब आता है, कहा न अन्दर।

मुमुक्षु : अकेला कहा। वहाँ तक तो यह हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : 'एक्को' अर्थात्? यह एक मार्ग है, ऐसा। मोक्ष का मार्ग आत्मा

का सम्यग्दर्शन, अनुभव, प्रतीति, चारित्र की रमणता–वीतरागता और अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प और बाह्य में नग्न दिगम्बरदशा और आहार हाथ में। ऐसा वीतराग का मार्ग अनादि का सर्वज्ञ के शास्त्र में यह कहा हुआ है। जिस शास्त्र में वस्त्र–पात्रसहित मुनिपना मनाया है, वे शास्त्र नहीं। वे सब कुशास्त्र हैं। आहाहा! कठिन काम। यह सूत्रपाहुड़ है, इसलिए भगवान ने कहे हुए वे सूत्र। समझ में आया? उनकी पहिचान तो करनी पड़ेगी या नहीं? देव कौन हों? चारित्रवन्त गुरु कैसे हों? निर्ग्रन्थ गुरु कैसे हों? समझ में आया?

नवतत्त्व में भी मोक्ष का मार्ग आ जाता है। संवर, निर्जरातत्त्व। संवर, निर्जरा मुनि के योग्य जिसे प्रगट हुई है, उसे तो शरीर नग्न और हाथ में ही आहार होता है। दूसरा हो नहीं सकता। समझ में आया? भगवानजीभाई! भारी कठिन पड़े वाडावालों को। मार्ग यह है, बापू! भगवान के सिद्धान्त परमेश्वर तीर्थंकर ने कहे। देखो न! **'जिणवरिंदेहिं' 'परमजिणवरिंदेहिं'।** ऐसा शब्द प्रयोग किया है। परमदेव जिनेन्द्रदेव के उपदेश में ऐसा मार्ग अनादि का चला आता है। समझ में आया? इसके अतिरिक्त सब उन्मार्ग है। वह जैनमार्ग नहीं। समझ में आया?

दो हजार वर्ष से मार्ग पृथक् पड़ गया। इसलिए इसे खबर नहीं कि यह मार्ग हमारा दूसरा है और (मूल) मार्ग कोई दूसरा है। स्थानकवासी तो अभी–अभी पाँच सौ वर्ष (पहले) श्वेताम्बर में से निकले। उन्हें भी खबर नहीं कि यह मार्ग क्या है और हम क्या शास्त्र को मानते हैं? शास्त्र भगवान के हैं या नहीं, इसकी बराबर नहीं है। भगवान के है, ऐसा बराबर है? समझ में आया? जिस शास्त्र में मुनि को वस्त्र, पात्र सिद्ध किया हो और मुनिपना मनवाया हो, वे शास्त्र कुशास्त्र हैं और उनके माननेवाले भी मिथ्यादृष्टि हैं। ऐसा मार्ग है, भाई!

***भावार्थ* – जो मृगचर्म,...** कोई मृग की चमड़ी रखे। बाबा की बात है। **वृक्ष के वल्कल,...** रखे। छाल। कपास रखे, कपास के कपड़े। **कपास पट्ट, दुकूल,...** यह होगा कुछ। **रोमवस्त्र,...** बाल के वस्त्र। होते हैं न? ऊन के, भेड़ के, बकरे के बाल के। **टाट के...** टाट–टाट। यह शण। **और तृण के...** तृण के। शैय्या होती है न तृण की? यह **वस्त्र इत्यादि रखकर अपने को मोक्षमार्गी मानते हैं...**

मुमुक्षु : अब इसमें के वस्त्र नहीं, दूसरे प्रकार के हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं न। यह निश्चय कहते हैं न। सभी प्रकार के वस्त्र होते हैं। कोई भी वस्त्र प्लास्टिक का हो, लो न। भगवानजीभाई! भगवानजीभाई प्लास्टिक के जूते पहनते हैं।

मुमुक्षु : वस्त्र पहनने के...

पूज्य गुरुदेवश्री : पहनने के भी प्लास्टिक के अभी हो गये हैं। थैलियाँ प्लास्टिक की हो गयीं। यों ही भटकती है (बिखरी पड़ी रहती है)। साधारण कीमत की। मुँहपत्ती प्लास्टिक की हो गयी। गजब किया है। अरे! भगवान! परमेश्वर तीर्थंकरदेव का मार्ग। उसके मुनि ऐसे एक ओर बैठे हों। उनके सामने यह मार्ग को ऐसे वस्त्र, पात्र सहित को मुनि मानना, यह तो बड़ा विरोध है। तत्त्व का विरोध है। उन्मार्ग का पोषण है। आहाहा!

तथा इस काल में जिनसूत्र से च्युत हो गये हैं,... इस काल में भगवान के आज्ञा के शास्त्र थे, उसमें से बारह (वर्ष के) दुष्काल के काल में श्वेताम्बर च्युत-भ्रष्ट हुए। दो हजार वर्ष पहले यह श्वेताम्बर पन्थ निकला है। भ्रष्ट होकर, मिथ्यादृष्टि होकर निकला है। भारी काम कठिन।

मुमुक्षु : उसमें भी....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें यह तो और दूसरे। साधुपना शिथिल करने... था कब तेरा साधुपना? आहाहा! शिथिल तो शिथिल तो विपरीत तो है सब। उसमें भी अभी शिथिल करना है। बापू! मुनिमार्ग है, वह मोक्षमार्ग है। मोक्षमार्ग की पूर्णता-भले परिपूर्णता आगे हो, परन्तु एकदेश है, उसे परिपूर्णता कही जा सकती है। ऐसी छठवें-सातवें गुणस्थान में चारित्र सम्यग्दर्शन, वीतरागता जिसे ऐसी अन्दर प्रगट होती है, उसे तो नग्नमुद्रा के अतिरिक्त कोई दूसरा निमित्त नहीं हो सकता। समझ में आया?

श्रद्धा को सुधारना पड़ेगा। श्रद्धा को सुधारना हो तो वीतराग के शास्त्र में तो ऐसे मुनि को मुनि कहा है। इसके अतिरिक्त के वस्त्र-पात्र रखे, मकान बनावे, उसमें रहे, उनके लिए बनाये हुए में रहे, वे सब जैनमार्ग के सिद्धान्त से विपरीत मार्ग है। कहो, समझ में आया?

हमने तो (संवत्) १९६८ में पहले सुना, तब भड़के थे। साधु को उसके लिये बनाया हुआ उपाश्रय नहीं चलता। उपाश्रय बनाया हो, उसे प्रयोग करे तो साधु नहीं। यह

पहले (संवत्) १९६८ में सुना। गुलाबचन्दजी को देखा था या नहीं? गुलाबचन्दजी थे। स्थानकवासी साधु, राजकोट के। (संवत्) १९६८-६८ के वर्ष। 'पाणियाद' में तीन महीने रहे। वहाँ गये तो उन्होंने ऐसा सुनाया। ओये! यह क्या? साधु के लिये उपाश्रय बनाया हो, कमरा बनाया हो, पाट-पटिया बनाया हो, उसे प्रयोग करे तो वह साधु नहीं। अपने तो ऐसा... बड़ी चर्चा चली। (संवत्) १९६८ के वर्ष। आसोज महीने में बड़ी चर्चा (चली)। दो गाड़ियाँ जोतकर वापस पाणियाद पूछने गये। फिर खीझ गये। यह तो ऐसा कहते हैं। इस बात का क्या स्पष्टीकरण है? कच्छी साथ में थे। '...' नहीं? मूळी वाले। पहले गोपाणी आये थे। मैंने कहा, गुलाबचन्दजी तो ऐसा कहते हैं। उसमें तो यह निकला वापस।

यहाँ तो कहते हैं, वस्त्र और पात्र प्रयोग करे और मुनि माने, वह जैन सिद्धान्त से विरुद्ध उन्मार्गी है। वह जैनमार्गी नहीं। आहाहा! भारी कठिन काम। बड़ा वर्ग मिथ्यादृष्टि। गृहीत मिथ्यादृष्टि, हों! वे। उन्हें अगृहीत तो है ही। 'राग, वह मैं' ऐसा मिघ्थ्यात्वभाव तो अनादि का पड़ा है। अगृहीत मिथ्यादृष्टि तो है। अनादि का निसर्ग मिथ्यात्व है, यह अधिगमज मिथ्यात्व। आहाहा! बहुत (कठिन) काम। भगवान के नाम से शास्त्र चढ़ाये और शास्त्र में फिर सब ऐसे वस्त्र चलते हैं और इतने पात्र और उन्हें रंग-रोगन और यह रजोणा और गोछो और फलाना ढीकना... एक व्यक्ति अभी कहे, १११ उपकरण हुए। अर्ध वस्त्र में से बढ़ते-बढ़ते १११ उपकरण साधु को हुए, अभी भगवान जाने क्या होगा? श्वेताम्बर साधु है, उसने लिखा है। पहले अर्धफालिका थी। आधा टुकड़ा रखा था पहले। पालन नहीं कर सके और दुष्काल था। अपने इसमें अर्धफालिका आ गया है। दो-तीन जगह (आ गया)। वस्त्र रखकर साधुपना मनवाने लगे। फिर चाहिए शास्त्र, उसके बिना लोग माने नहीं। इसलिए कल्पित शास्त्र बनाये। मिथ्यादृष्टि होने के पश्चात् शास्त्र रचे हैं। समझ में आया? जिसमें वस्त्रसहित मुनिपना स्थापित किया हो, वह मिथ्यादृष्टि के कहे हुए शास्त्र हैं। भगवान के कहे हुए नहीं, समकिती के नहीं, मुनि के कहे हुए नहीं। ऐई! हिम्मतभाई! कहाँ का कहाँ आया परन्तु यह तो।

कहते हैं, **जिनसूत्र से च्युत हो गये हैं,...** भगवान की आज्ञा के सिद्धान्त थे, उनसे तो भ्रष्ट हुए। **उन्होंने अपनी इच्छा से अनेक भेष चलाये हैं,...** अनेक वेश धारण

किये। **कई श्वेत वस्त्र रखते हैं,...** लो। सफेद। **कई रक्त वस्त्र, लाल कई पीले वस्त्र,...** लो, यह पीले हैं न मन्दिरमार्गी में पीले। **कई टाट के वस्त्र,...** अन्यमति में। **कई घास के वस्त्र और कई रोम के वस्त्र...** बाल के। **आदि रखते हैं, उनके मोक्षमार्ग नहीं है,...** उनके मोक्षमार्ग है नहीं।

क्योंकि जिनसूत्र में तो एक नग्न दिगम्बर स्वरूप पाणिपात्र भोजन करना, इस प्रकार मोक्षमार्ग में कहा है,... परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव के सिद्धान्त के शास्त्रों में तो एक नग्न दिगम्बर, पाणिपात्र-हाथपात्र में भोजन करना। **इस प्रकार मोक्षमार्ग में कहा है, अन्य सब भेष मोक्षमार्ग नहीं हैं और जो मानते हैं, वे मिथ्यादृष्टि हैं।** कहो, समझ में आया? यह पक्ष की बात नहीं, वस्तु के स्वरूप की बात है, भाई! लोगों को खबर नहीं, इसलिए क्या हो? वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है कि जहाँ छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान मुनि का प्रगट हो तो शरीर की नग्नदशा सहज जड़ की हो जाती है और उसे आहार लेने का पात्र हाथ ही होता है। ऐसी स्थिति गुणस्थान की, मोक्षमार्ग की दशा में ऐसा वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया? और वस्त्र, पात्र सहित मुनिपना माना, उसे नौ तत्त्व की ही विपरीत श्रद्धा है। समझ में आया? यह दसवीं (गाथा पूरी हुई)।

२३वीं गाथा में ऐसा आता है। यह दसवीं है न? तीर्थंकर हो परन्तु यदि वस्त्रसहित है, वहाँ तक उन्हें मुक्ति नहीं होती। **'ण वि सिज्झदि'।** इसके साथ है। देखो! २३। २३ है न? **'ण वि सिज्झदि वत्थधरो जिणसासणे जइ वि होइ तित्थयरो।'** तीर्थंकर हो परन्तु जब तक वस्त्र रखे, तब तक मुनि नहीं। २३ (गाथा)। पृष्ठ-७२। **वस्त्र धारक के मोक्ष नहीं है, मोक्षमार्ग नग्नपना ही है।** (गाथा-२३ का उपोद्‍घात)। आहाहा! **'ण वि सिज्झदि वत्थधरो जिणसासणे जइ वि होइ तित्थयरो।'** जैनशासन में तीर्थंकर साक्षात् भगवान हो, तीन ज्ञान के धनी; जब तक वस्त्र रखे, तब तक मुनिपना नहीं। **'णग्गो विमोक्खमग्गो'।** नग्नता, वह मोक्ष का मार्ग है। **'सेसा उम्मग्गया सव्वे।'** इसके अतिरिक्त सब उन्मार्ग है। मिथ्यात्व के मार्ग, मिथ्यात्व के पोषक मार्ग है। आहाहा! भारी कठिन काम। सम्प्रदाय दो-दो हजार वर्ष से निकले। पाँच सौ-पाँच सौ वर्ष से यह स्थानकवासी निकले। तेरापन्थी अभी दो सौ वर्ष पहले निकले। कहते हैं, सब वीतराग सिद्धान्त के शास्त्र से अत्यन्त विरुद्ध मार्ग है। आहा! स्पष्ट मिथ्यादृष्टि का मार्ग है। प्रगट मिथ्यादृष्टि है।

दोपहर में सूक्ष्म मिथ्यात्व की बात आती है। वह भी छोड़ा हो, गया हो, उसे सूक्ष्म मिथ्यात्व कैसे रहता है ? जैन दिगम्बर में जन्म और दिगम्बर में साधु, श्रावक नाम धरावे, तथापि उसे सूक्ष्म मिथ्यात्व कैसे रहता है, यह बात दोपहर में चलती है। राग का कण भी, अन्दर शुभराग हो, वह अपना ज्ञानानन्दस्वभाव के साथ एकत्व मानकर राग के साथ परिणमता है, वह मिथ्यादृष्टि है। वह मिथ्यादृष्टि जैन नहीं। आहाहा! अभी यह तो स्थूल की बात चलती है। यह गृहीत मिथ्यादृष्टि की बात चलती है। समझ में आया ? मार्ग यह है, बापू! वीतराग ने कहा हुआ यह है। उसे मानना पड़ेगा। दूसरी बात इसे सच्ची श्रद्धा, व्यवहार से सच्ची श्रद्धा, हों! करनी हो तो इसे दूसरी श्रद्धा छोड़नी पड़ेगी। आहाहा!

गाथा-११

आगे दिगम्बर मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति कहते हैं –

जो संजमेसु सहिओ आरंभपरिग्गहेसु विरओ वि।
सो होइ वंदणीओ ससुरासुरमाणुसे लोए।।११।।

यः संयमेषु सहितः आरंभपरिग्रहेषु विरतः अपि।
सः भवति वंदनीयः ससुरासुरमानुषे लोके।।११।।

संयम-सहित आरंभ परिग्रह-विरत जो वह ही सदा।
जग में सुरासुर मनुज से है वंदनीय प्रभू कहा।।११।।

_अर्थ_ – जो दिगम्बर मुद्रा का धारक मुनि इन्द्रिय-मन को वश में करना, छह काय के जीवों की दया करना, इस प्रकार संयमसहित हो और आरम्भ अर्थात् गृहस्थ के सब आरम्भों से तथा बाह्याभ्यन्तर परिग्रह से विरक्त हो इनमें नहीं प्रवर्ते तथा आदि शब्द से ब्रह्मचर्य आदि गुणों से युक्त हो, वह देव-दानव सहित मनुष्यलोक में वन्दनेयोग्य है, अन्य भेषी परिग्रह-आरम्भादि से युक्त पाखण्डी (ढोंगी) वन्दनेयोग्य नहीं है।।११।।

गाथा-११ पर प्रवचन

आगे दिगम्बर मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति कहते हैं। अभी अब आता है। नग्नपना हो, आहार-पानी (खड़े-खड़े ले) परन्तु उसकी अभ्यन्तर दशा कैसी होती है? वह तो बाह्य की बात की। अभ्यन्तर में...

जो संजमेसु सहिओ आरंभपरिग्गहेसु विरओ वि।
सो होइ वंदणीओ ससुरासुरमाणुसे लोए।।११।।

अर्थ – जो दिगम्बर मुद्रा का धारक मुनि... बाह्य में दिगम्बर मुद्रा हो, अन्दर में **इन्द्रिय-मन को वश में करना,...** संयम की बात करते हैं। मन और इन्द्रिय आधीन किये हों। स्वरूप-सन्मुख में उसे आनन्द का अनुभव हुआ हो। आहाहा! **छह काय के जीवों की दया करना...** एकेन्द्रिय के एक दाने को भी कुचल कर आहार लेना, ऐसा उसका भाव न हो। ऐसे नग्न दिगम्बर को ऐसा भाव हो, उसे वास्तविक मुनिपना कहते हैं। समझ में आया? मात्र नग्न हो और आहार-पानी हाथ में ले, इसलिए साधु है—ऐसा नहीं है। समझ में आया?

छह जीवनिकाय। एकेन्द्रिय—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस, यह छह काय। इन छह काय को बिल्कुल मारने का या घात करके आहार लेने का भाव उसे नहीं होता, ऐसा अन्तर में संयम, उसे (संयम होता है)। सम-यम। अनुभव सम्यग्दर्शन सहित, यम अर्थात् अन्दर में इन्द्रिय और कषाय का उस प्रकार का भाव, उससे रहित भाव हो। ऐसे संयमभाव सहित हो तो नग्नमुद्रा सहित हो, उसे मुनिपना कहा जाता है। समझ में आया?

और आरम्भ अर्थात् गृहस्थ के सब आरम्भों से... एक बात। गृहस्थ के जितने आरम्भ हों, उनसे रहित हो। गृहस्थ सेवा, कृषि, सब पाप के काम करे, व्यापार-धन्धा, वह सब भाव रहित। ऐसे भाव मुनि को नहीं होते। **बाह्याभ्यन्तर परिग्रह से विरक्त हो...** बाह्य परिग्रह और अभ्यन्तर परिग्रह मिथ्यात्व और राग-द्वेष का भाव। बाह्य परिग्रह वस्त्र आदि और अभ्यन्तर परिग्रह रागादि। उस राग को अपना माने और परिणमे तो वह

मिथ्यादृष्टि है। इसलिए राग और पुण्य-पाप के भाव से अभ्यन्तर में जो रहित हो। जिसे वीतरागी पर्याय प्रगट हुई हो, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसे श्रद्धा तो करे। मार्ग तो यह है, ऐसी पहिचान तो करे। पहिचान बिना उसका अन्त नहीं आता। दुनिया मानेगी, लाखों लोग माने, पूजे, इसलिए उसका कल्याण हो जाए, ऐसा है नहीं।

बाह्याभ्यन्तर परिग्रह... अभ्यन्तर परिग्रह मिथ्यात्व, राग-द्वेष, विषय के परिणाम यह अभ्यन्तर परिग्रह है। इससे रहित अपरिग्रही वीतरागी पर्याय जिसे प्रगटी हो, ऐसा कहते हैं। ऐसा जिसे संयम और अभ्यन्तर वीतराग पर्याय प्रगटी हो, उसे नग्न दिगम्बर और हाथ में यह क्रिया उसे बराबर उचित है। **इनमें नहीं प्रवर्ते...** अभ्यन्तर में न प्रवर्ते और बाह्य में न प्रवर्ते, ऐसा कहते हैं। अभ्यन्तर में रागादि शुभ हों परनतु मेरा करके परिणमे नहीं। आहाहा! समझ में आया? **इनमें नहीं प्रवर्ते...** इन राग और पुण्य-पाप के विकल्पों में न प्रवर्ते। अभ्यन्तर भगवान वीतरागी स्वरूप आत्मा, उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-अनुभवसहित प्रवर्ते, उसे मुनि कहा जाता है। गजब बात, भाई! समझ में आया? सूत्रपाहुड़ है न? भगवान के कहे हुए सत्शास्त्र के अतिरिक्त दूसरी बात मिथ्या कैसे है? कि भगवान ने कहे हुए शास्त्र से तो विरुद्ध है। भले सूत्र नाम दे। आचारांग, सूयगडांग और ठाणांग और भगवती... समझ में आया? परन्तु वे भगवान के कहे हुए सूत्र नहीं हैं। जिस सूत्र में वस्त्र-पात्र रखकर मुनिपना मनवाया है, वे भगवान के शास्त्र नहीं। मिथ्यादृष्टि के कहे हुए शास्त्र हैं। कठिन बात है। आहाहा! अव्वलदोम मार्ग है।

दिगम्बर होकर भी, मुनिपना दिगम्बर लेकर भी, अट्ठाईस मूलगुण पालता हो तथापि, वस्त्र न हो तो भी उन अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प में जिसका परिणमन वहाँ है, दृष्टि वहाँ है, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? उसकी नग्नमुद्रा और आहार-पानी हाथ में ले, सब व्यर्थ है। समझ में आया? उसके आत्मा को कुछ लाभ नहीं है, परन्तु नुकसान है। ऐसा है।

तथा आदि शब्द से ब्रह्मचर्य आदि गुणों से युक्त... हो। ब्रह्मानन्द भगवान आत्मा। ब्रह्म अर्थात् आनन्दस्वरूप। अतीन्द्रिय आनन्द में जिसकी रमणता, लीनता उग्र होती है। आत्मा ब्रह्मस्वरूप है, आनन्दस्वरूप है। अतीन्द्रिय आनन्द का चरना, परिणमना, ब्रह्मचर्य-आनन्द का परिणमन जिसे हुआ, अतीन्द्रिय आनन्द का परिणमन / चर्या (हो),

उसे ब्रह्मचर्य कहा जाता है। ऐसे ब्रह्मचर्यसहित / युक्त हो। **वह देव-दानव सहित मनुष्यलोक में वन्दनेयोग्य है,...** मनुष्य तो वन्दन करे परन्तु देव-दानव भी जिसे वन्दन करे। ओहो! देखो! पुष्पदन्त मुनि, भूतबलि मुनि। गिरनार में गुरु ने शास्त्र दिये और जहाँ पूरे हुए, व्यन्तरों ने पूजा की। गिरनार में आसपास व्यन्तरदेव घूमते हों। उन्हें ऐसा लगा। ओहोहो! यह सिद्धान्त वीतराग के परमेश्वर के कहे हुए, आज गुरु ने दिये। देवों ने-व्यन्तरों ने गिरनार में महोत्सव (किया)।

मुमुक्षु : महोत्सव में कौन था?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे देव। वहाँ दूसरा (कौन हो)? देवों ने आकर पुष्पवर्षा की और मुनि के दाँत समरूप किये। दूसरा क्या हो वहाँ? यह तो कुदरत के नियम में देखो न! सिद्धान्त षट्खण्डागम। भगवान की वाणी परम्परा से आयी हुई, जिसकी धवल, जयधवल टीका है। यह तो षट्खण्डागम की रचना हुई, गुरु ने शिष्य को दिया। देवों ने आकर मुनि की पूजा की। वीतरागी मुनि थे। नग्नमुनि। यह कुन्दकुन्दाचार्य के पहले की बात है। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं, ऐसे सिद्धान्त दिये, जब शिष्य को पूरा हुआ, तब देवों ने भी आकर जिनकी प्रशंसा और वन्दना की। षट्खण्डागम पुस्तक है न यहाँ? मूल सूत्र, हों! वे मूल सूत्र हैं। ठेठ भगवान ने बारह अंग कहे हैं, उनका वह भाग है। षट्खण्डागम।

ऐसे सिद्धान्त प्रमाण जिनका अभ्यन्तर और बाह्य, दोनों स्वरूप है। ऐसे जीव को **देव-दानव सहित मनुष्यलोक में वन्दने योग्य है,...** आहाहा! **अन्य भेषी परिग्रह-आरम्भादि से युक्त...** परिग्रहसहित, आरम्भसहित, वस्त्र-पात्रसहित मुनि माने, ऐसे **पाखण्डी (ढोंगी) वन्दनेयोग्य नहीं है।** यह तो ऐसा स्पष्ट है, भाई! छाछ लेने जाए और दौना छिपावे?

मुमुक्षु : प्रगट मिथ्यादृष्टि।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रगट मिथ्यादृष्टि, स्थूल मिथ्यादृष्टि। आहाहा! ऐई! भगवानजीभाई! पहले सुने, नया आवे उसे (कठिन लगे)। मार्ग तो ऐसा है, भाई! परमेश्वर वीतराग के मुख से निकली हुई वाणी है। तीर्थंकरदेव की वाणी है। उस वाणी में ऐसा आया है, कहते हैं। ऐसे मुनि होते हैं। भाव और द्रव्य से दिगम्बर, वे वन्दन योग्य है। इसके अतिरिक्त राग

में प्रवर्तकर मुनिपना माने और वस्त्र-पात्र रखकर मुनिपना माने, वे सब पाखण्ड, वेश वन्दन योग्य नहीं है। वे आदरयोग्य जैनशास्त्र में नहीं हैं। परमेश्वर के मार्ग में आदरयोग्य नहीं है।

गाथा-१२

आगे फिर उनकी प्रवृत्ति का विशेष कहते हैं –

जे बावीसपरीसह सहंति सत्तीसएहिं संजुत्ता।
ते होंति[1] वंदणीया कम्मक्खयणिज्जरासाहू।।१२।।

ये द्वाविंशतिपरीषहान् सहंते शक्तिशतैः संयुक्ताः।
ते भवंति वंदनीयाः कर्मक्षयनिर्जरासाधवः।।१२।।

बहु शक्तियों-संपन्न जो बाईस परिषह जीतते।
वे कर्म-क्षय निर्जरक साधू नित्य वंदन योग्य हैं।।१२।।

_अर्थ_ – जो साधु मुनि अपनी सैंकड़ों शक्तियों से युक्त होते हुए क्षुधा, तृषादिक बाईस परीषहों को सहते हैं और कर्मों की क्षयरूप निर्जरा करने में प्रवीण हैं, वे साधु वन्दनेयोग्य हैं।

_भावार्थ_ – जो बड़ी शक्ति के धारक साधु हैं, वे परीषहों को सहते हैं, परीषह आने पर अपने पद से च्युत नहीं होते हैं, उनके कर्मों की निर्जरा होती है, वे वन्दनेयोग्य हैं।।१२।।

गाथा-१२ पर प्रवचन

आगे फिर उनकी प्रवृत्ति का विशेष कहते हैं। और वे मुहामुनि अन्तर में

१. पाठान्तर – होंदि।

आनन्दस्वरूप में रमते, व्यवहार के राग से अन्दर में विरक्त थे। उन्हें यह नग्न दिगम्बरदशा थी। उनकी विशेष प्रवृत्ति अन्तर की कैसी थी, वह वर्णन करते हैं।

जे बावीसपरीसह सहंति सत्तीसएहिं संजुत्ता।
ते होंति वंदणीया कम्मक्खयणिज्जरासाहू।।१२।।

अर्थ – **जो साधु मुनि अपनी सैंकड़ों शक्तियों से युक्त होते हुए... 'सत्तीसएहिं'** शक्ति-सैकड़ों शक्ति। ओहोहो! अनन्त गुण जो आत्मा में हैं, प्रत्येक गुण की शक्ति की स्फुरणा से सहित होते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जीवत्वशक्ति, चिति, दृशि आदि अपने ४७ हैं न? आत्म-वैभव आ गया है। आत्म-वैभव (पुस्तक) आयी? देखा है? थोड़ा देखा है। तुम्हारे तो अब काम कुछ नहीं होता। कहो, समझ में आया? उसमें ४७ शक्तियाँ हैं। इस आत्मा में एक-एक गुण को शक्ति कही है और उस शक्ति की भी अनन्त-अनन्त शक्ति है। ऐसी अनन्त शक्तियाँ। यहाँ तो सैकड़ों शब्द लिया।

सैंकड़ों (शक्तियों) से युक्त होते हुए... अनन्त शक्तिसहित मुनि होते हैं। आहाहा! ज्ञानशक्ति, दर्शनशक्ति, आनन्दशक्ति, कर्ता, कर्म, करणशक्ति, जीवत्वशक्ति, वीर्यशक्ति इत्यादि अनन्त शक्तियों सहित-युक्त है। आहाहा! पूरा समुद्र उछला है, कहते हैं। भगवान अनन्त गुण का पिण्ड जो है, उस प्रत्येक शक्ति को उछाला है—पर्याय में परिणमाया है। भाई! मुनिपना अर्थात् क्या? अब तो परमेश्वरपद हुआ। उस परमेश्वर पद में आये। णमो लोए सव्वसाहूणं। वह पद कहीं साधारण नहीं है। आहाहा!

अभी तो घोटाले इतने चले हैं। महिलायें बालब्रह्मचारी दीक्षा ले, (इसलिए मानो)... आहाहा! तिर गये। भारी काम किया। अब जगत को तिराने का रहा। डूब गये हैं। मिथ्यात्व में डूबे हैं और मिथ्यात्व की बातें जगत को करते हैं। ऐसा मार्ग है, भाई! समझ में आया? वस्त्र-पात्रसहित मुनिपना माने और मनवाने का कथन करे कि ऐसा करो, ऐसा करो। वह सब मिथ्यात्व के वृद्धि के पोषक हैं। यह बात कैसे जँचे? बड़े पण्डित होकर घूमते हों। वीतराग के पन्थ में तो यह पद्धति है, भाई! फिर माननेवाले थोड़े हो या बहुत हों, उनके साथ सम्बन्ध नहीं है। संख्या के साथ सम्बन्ध नहीं है।

मुनि साधु अपनी अनन्त शक्ति से युक्त है। **क्षुधा, तृषादिक बाईस परीषहों को**

सहते हैं... ज्ञाता-दृष्टारूप से... प्रतिकूलता (हो)। आहार न हो, पानी न हो, तृषा (लगी हो), ताप हो, जंगल में हवा ठण्डी (हो), ऐसी ठण्डी बहे कि मानो छरा पड़ते हों। उघाड़ा नग्न शरीर हो। हिम... हिम। हिम की हिलोरें आती हों शरीर को। आनन्द की शक्ति से पूर्णमान है। मुनि आनन्द में है। समझ में आया? ऐसे कोट-बोट पहने हुए हों, वे भी ध्रूजे। हिम... हिम। वृक्ष के तले मुनि बैठे हों। आनन्द में उछलते हों। जिन्हें समुद्र के किनारे पानी की जैसे बाढ़ आवे, वैसे पर्याय के किनारे आनन्द की, अनन्त शक्ति की बाढ़ अन्दर आती है। मध्यबिन्दु पर दृष्टि का जोर मारा है। उसके कारण अनन्त पर्यायें किनारे अर्थात् अवस्था से उछल निकली हैं। आहाहा! इसने मुनिपना सुना नहीं कि मुनिपना कैसा होता है। प्रकाशदासजी! ले लो पंच महाव्रत। पढ़े थोड़ा, हो गया। महाव्रत ले लो अब। फिर अणुव्रत का आन्दोलन करना। मिथ्यात्व लो और मिथ्यात्व का आन्दोलन करना। आहाहा!

मार्ग भगवान! पहले ऐसी श्रद्धा करो, कहते हैं। समझ में आया? मुनिपना ऐसा होता है। गुरु ऐसे चारित्रवन्त होते हैं। देव अरिहन्त ऐसे होते हैं, उनके कहे हुए शास्त्र ऐसे होते हैं, ऐसी उनकी श्रद्धा करो। इस श्रद्धा के बिना तेरा निस्तारा आयेगा नहीं। समझ में आया? दुनिया माने, न माने, संख्या हो, न हो, लोगों को ठीक पड़े या न ठीक पड़े, समाज समतौल रहे या विषमता हो जाए, इसकी उन्हें दरकार नहीं होती। मार्ग यह है, भाई! आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : वस्तु प्रगट है...

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर आयी है परन्तु कहाँ देखो न...! आहाहा!

क्षुधा, तृषादिक... सर्दी, धूप। आहाहा! क्षुधा आदि रोग। रोग आवे, लो न। उल्टी का रोग, वायु का रोग। आहाहा! सनतकुमार चक्रवर्ती। छियानवें हजार स्त्रियाँ छोड़कर मुनि हुए। भावलिंगी, हों! यह कहते हैं ऐसे। शरीर में गलित कोढ़ हो। अँगुलियाँ गले, उससे क्या है? अनन्त आनन्द। समुद्र उछला है अनन्त आनन्द की शक्तिसहित का। वह तो ज्ञातारूप से उसे जानते हैं। मुझे होता है या मुझमें है, (ऐसा) विकल्प भी नहीं। आहाहा! वे चलते सिद्ध हैं! और सम्यग्दर्शन के बिना चलते मुर्दे हैं। आगे आयेगा, मोक्षपाहुड़ में।

जिसे आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव और देव-गुरु-शास्त्र ऐसे होते हैं, ऐसी जिसे श्रद्धा

नहीं, वे सब चलते मुर्दा हैं, कहते हैं। भले बड़े विद्वान हो, लाखों लोगों को रीझाना जानते हों। बड़े मंच पर बैठकर (बोले), ऐसा मार्ग है। दुनिया भी तू ही... तू ही... सामने होती हो। उससे क्या ? उससे क्या ? ऐसा कहा है न ? १४३ (गाथा, समयसार)। आत्मा अबद्ध है, पूर्णानन्द है, ऐसा विकल्प उठा, उससे क्या ? कहते हैं। आहाहा ! आत्मा शुद्ध है, निरालम्ब, निरावरणी निजानन्द की मूर्ति है। कहते हैं कि ऐसा विकल्प उठा है, उससे क्या ? उससे आत्मा को क्या लाभ ? आहाहा ! समझ में आया ? आता है न उसमें, उससे क्या ?

उस विकल्परहित निर्विकल्प जिसका स्वभाव और स्वरूप है, ऐसे भगवान में शक्तियाँ अनन्त पड़ी हैं। उन अनन्त शक्ति का एक द्रव्य, उस पर दृष्टि के जोर से अनन्त शक्तियाँ पर्याय में आनन्द से उछलती है। वह बाईस परीषह को सहन करता है। सहन करने का अर्थ, यह मुझे परीषह आया, ठीक नहीं—ऐसा नहीं। उसे सहन करना नहीं कहा जाता। समझ में आया ? आनन्द की लहर में उछलता आत्मा, आनन्द की लहरों के हिलोरों में चढ़ता आत्मा, उसे इस शरीर में रोग है या नहीं, उसे ज्ञानरूप से जानता है। आहाहा ! धर्मदासजी ! ऐसा मार्ग है। आहाहा !

मुनिमार्ग... आहाहा ! परमेश्वर होने का मार्ग ! यह परमेश्वर के घर में प्रविष्ट हुआ है। आहाहा ! पूरा रूप-केवलज्ञान प्रगट होने का प्रयत्न करता है। ऐसा मार्ग है—ऐसी पहले पहिचान तो करे। श्रद्धा में तो यह बात ले और विवेक तो करे कि इससे उल्टा, वह मार्ग सच्चा नहीं। यह विवेक पर से स्व का भेद तो करे। ऐसे साधु... आहाहा ! कड़कती धूप हो, लू चलती हो, पर्वत पर मुनि बैठे हों। वहाँ छाया नहीं, वहाँ दीवार के सहारे नहीं बैठना। जिन्हें खुल्ले गुण की शक्तियाँ खुल्ली कर डाली है। वे खुले मैदान बैठे, परन्तु आनन्द में होते हैं। यह परीषह सहन करते हैं, इसका अर्थ कि जानते और देखते हैं। आनन्द है। ऐसी दशा में परीषह सहन किया, ऐसा कहा जाता है। उसका उपचार न करे और अन्दर में अरुचि लगे, वह तो आर्तध्यान है, वह तो पापध्यान है। आहाहा !

कैसे हैं वे ? **कर्मों की क्षयरूप निर्जरा करने में प्रवीण हैं,...** मुनि तो कर्म का क्षय करने में प्रवीण है। आहाहा ! क्षण-क्षण में कर्म की निर्जरा होती है। अशुद्धता टली जाती है, कर्म खिरते जाते हैं, शुद्धि बढ़ती जाती है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा मार्ग अंगीकार करेगा, तब मुक्ति होगी। यहाँ ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? अकेले सम्यग्दर्शन

और ज्ञान से कहीं मुक्ति नहीं है। ऐसा चारित्रभाव वीतराग उज्ज्वल भाव प्रगट करेगा, तब उसे मुक्ति और केवलज्ञान के पन्थ में पड़ा, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? आहाहा!

बीस-बीस वर्ष का लड़का हो और गोटला चढ़े... क्या कहलाता है? कोलेरा। आहाहा! यह तुम्हारे हुआ था न? मांडलगाँव छह-छह कोस चलना। खाने-पीने के साधन थोड़े हों। चावल और ज्वार। उसमें दो लड़कों को कोलेरा निकला। उसके माँ-बाप साथ में। रास्ते में जंगल। छह-छह कोस में पड़ाव डाले। कितने लोग? पचास-सौ लोग। ...तुम थे या नहीं? ऐसे दो जवान लड़के, हों! माँ-बाप चल निकले। क्या करना? वहाँ तो मर जाने का है। कहीं जंगल, कहीं गाँव नहीं। छह-छह कोस चलकर पड़े रहे और... एक-एक पानी का कलश रखकर रोते-बिलखते, जंगल में जवान दो भाई, हों! माँ-बाप छोड़कर चले गये। यहाँ रहे तो वे स्वयं मर जाए। जंगल साथ में जाना पड़े परन्तु जवान को जीवित छोड़कर (चले गये)। नम्बर से फिर मर गये होंगे। आहाहा! देखो न यह संसार! माता-पिता साथ में, हों! क्या करे? भाई! उठाकर कहाँ ले जाना? हम अकेले कहाँ रहेंगे? भाई! आहाहा! हम भी यहाँ तो मर जायेंगे नहीं तो। यह जाये और रास्ता हमें खबर पड़े नहीं कहाँ जाना! आहाहा! देखो न!

शरण अन्दर भगवान आत्मा का है। यह विद्यमान प्रजा और विद्यमान माता-पिता यह छोड़कर चले गये। फिर रोवे, हों! यह माँ-बाप... ऐ... हमको यह दुःख होता है, हमको यह होता है। भाई! परन्तु क्या करे? हम क्या करें? यह लोग जाते हैं, इनके साथ न जायें तो हमें कहाँ रहना? वे बेचारे रोते, बिलखते गये। रोते, बिलखते सामने देखकर यह पड़े रहे। मर गये होंगे। ऐसा इस जंगल में निराश्रय है। कोई उसे शरण है नहीं। एक शरण भगवान आत्मा अन्दर है।

आनन्द की खोज करके जिसने आनन्द को लिया और राग की एकता तोड़ी, उसे आत्मा का शरण मिला। और तदुपरान्त जब उसकी सभी शक्तियाँ खिल निकलती हैं, साधुपद क योग्य, वह तो मोक्ष के किनारे-नजदीक आ गया अब। आहाहा! समझ में आया? यह मार्ग लेना पड़ेगा। जिसे सुखी होना हो, उसे यह मार्ग है, दूसरा कोई मार्ग नहीं। जादवजीभाई! कैसा हुआ होगा? कहो, माँ-बाप ऐसे चले गये। लड़के वे दो व्यक्ति। दो

भाई थे न ? दो भाई थे न ? बाईस, चौबीस वर्ष। अकेले। नीचे वहाँ कहाँ गद्दे–गोदड़े थे ? और जंगल में बाघ तथा भालू। ऐसा जंगल। आहाहा! पाल–पोसकर बढ़े किये, उन्हें अकेले छोड़कर चल निकले। परन्तु क्या करे दूसरा ? अकेला ही था। आहाहा! यहाँ होवे तो भी क्या करे ? हड़किया हुआ हो, कुत्ते ने (काट खाया हो)। वह पीड़ा उसकी। कहीं पानी देखा जाए नहीं, पानी पीया तो कैसा जाए ? हवा ठीक लगे नहीं। साथ में सूखे।

कहते हैं, भाई! ऐसे संसार में भटकते प्राणी को रागरहित, भगवान वह उसे शरण है। समझ में आया ? और उसे मुनिपना ऐसा आवे, तब उसे साक्षात् केवलज्ञान का उपाय हाथ आया, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन तो अभी परम्परा से मोक्षमार्ग है। समझ में आया ?

कहते हैं, **कर्मों की क्षयरूप निर्जरा करने में प्रवीण हैं,...** ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! आनन्द का प्रवाह उछला है और कर्म का प्रवाह वहाँ जलता है, उसे मुनिपना कहते हैं। आनन्द के पिण्ड उछलते हैं अन्दर से तो। लोढ आता है आनन्द का। इसलिए उसे कर्म के ओघ के ओघ खिर जाते हैं। आहाहा! उसे जैनशासन में तीर्थंकर के सूत्र में मुनिपना कहा जाता है। समझ में आया ?

भावार्थ – जो बड़ी शक्ति के धारक साधु हैं,... शक्ति बहुत। बड़ी अर्थात् इसका अर्थ यह। सैकड़ों शक्तियाँ। **वे परीषहों को सहते हैं, परीषह आने पर अपने पद से च्युत नहीं होते हैं,...** परीषह आने पर आनन्द के धाम में स्थित है, वहाँ से च्युत नहीं होता। **उनके कर्मों की निर्जरा होती है, वे वन्दनेयोग्य हैं।** आहाहा! वे पंच परमेष्ठी में सम्मिलित हैं। उन सन्तों को भी वन्दन करनेयोग्य है। छोटे हों वे सीधे वन्दन करे, बड़े हों वे णमोकार गिने, उसमें वन्दन करे।

गाथा-१३

आगे कहते हैं कि जो दिगम्बरमुद्रा सिवाय कोई वस्त्र धारण करे, सम्यग्दर्शन ज्ञान से युक्त हों, वे इच्छाकार करने योग्य हैं –

अवसेसा जे लिंगी दंसणणाणेण सम्म संजुत्ता।
चेलेण य परिगहिया ते भणिया इच्छणिज्जा य।।१३।।

अवशेषा ये लिंगिन: दर्शनज्ञानेन सम्यक् संयुक्ता:।
चेलेन च परिगृहीता: ते भणिता इच्छाकारयोग्या:।।१३।।

इनके विना अवशेष साधक ज्ञान दृग समकित सहित।
वे वस्त्र-धारक कहे इच्छाकार युत अनुमत सतत।।१३।।

अर्थ – दिगम्बरमुद्रा सिवाय जो अवशेष लिंगी भेष संयुक्त और सम्यक्त्वसहित दर्शन-ज्ञान संयुक्त हैं तथा वस्त्र से परिगृहीत हैं, वस्त्र धारण करते हैं, वे इच्छाकार करनेयोग्य हैं।

भावार्थ – जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान संयुक्त हैं और उत्कृष्ट श्रावक का भेष धारण करते हैं, एक वस्त्र मात्र परिग्रह रखते हैं, वे इच्छाकार करनेयोग्य हैं, इसलिए 'इच्छामि' इस प्रकार कहते हैं। इसका अर्थ है कि मैं आपको इच्छू हूँ, चाहता हूँ, ऐसा 'इच्छामि' शब्द का अर्थ है। इस प्रकार से इच्छाकार करना जिनसूत्र में कहा है।।१३।।

गाथा-१३ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो दिगम्बरमुद्रा सिवाय कोई वस्त्र धारण करे, सम्यग्दर्शन ज्ञान से युक्त हों, वे इच्छाकार करने योग्य हैं। क्षुल्लक। ... वस्त्र होता है। **'अवसेसा जे लिंगी'** वेश की बात है, हों! क्षुल्लक आदि जो वेश धरनेवाले हों वे। क्षुल्लिका, क्षुल्लक इत्यादि।

अवसेसा जे लिंगी दंसणणाणेण सम्म संजुत्ता।
चेलेण य परिगहिया ते भणिया इच्छणिज्जा य।।१३।।

अर्थ – दिगम्बरमुद्रा सिवाय जो अवशेष लिंगी... है। जो सम्यग्दृष्टि है। बाहर वेशसहित है। क्षुल्लक, क्षुल्लिका इत्यादि। **सम्यक्त्वसहित (सम्यग)दर्शन–ज्ञान संयुक्त हैं...** जिसे आत्म अनुभव, बारह व्रत के विकल्प से रहित जिसकी अन्तर दशा अनुभव की हुई है। क्षुल्लक हो तो। समझ में आया? क्षुल्लिका को भी पंचम गुणस्थान होता है। स्त्री क्षुल्लिका हो, आर्यिका हो, उसे पंचम गुणस्थान होता है। स्त्री का शरीर जिसे हो, उसे छठवाँ गुणस्थान नहीं आता। उसे मुनिपना नहीं हो सकता। समझ में आया?

सम्यक्त्व सहित दर्शन ज्ञान संयुक्त हैं तथा वस्त्र से परिगृहीत हैं,... अभी वस्त्र है। उसके योग्य है, क्षुल्लक को क्षुल्लक के योग्य, क्षुल्लिका को उसके योग्य वस्त्र सहित होते हैं। वस्त्र से परिगृहीत है। परिगृहीत समझ में आया? ओढ़ा हुआ होता है ऐसा। वस्त्र धारते हैं। **इच्छाकार करनेयोग्य हैं।** अहो! तुम्हारा स्वभाव आत्मा का, उसे मैं इच्छता हूँ। ऐसा आनन्द भगवान, उसे तुम अनुभव करते हो, इसलिए मैं ऐसे आनन्द के आत्मस्वभाव को इच्छता हूँ। देखो! यह भाषा–इच्छा। समझ में आया? क्षुल्लक श्रावक हो, वेश हो एक लंगोटी और एक ओढ़ने का छोटा टुकड़ा (हो)। पैर ढके तो सिर ढके नहीं और सिर ढके तो पैर ढके नहीं, ऐसा छोटा टुकड़ा। परन्तु है अन्दर अनुभवी। सम्यग्दर्शन, ज्ञान सहित। भले मुनि नहीं। वस्त्र का अमुक भाग रखते हैं। परन्तु सम्यक्त्व है। है न पाठ? देखो न!

'दंसणणाणेण सम्म संजुत्ता' निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञानसहित है। समझ में आया? भले पंचम गुणस्थान में हो, मुनि न हो। दिगम्बरदशा धारण न की हो। ऐसी दशावन्त वेशी को अन्तर सम्यग्दर्शन, ज्ञानसहित हो तो वह लिंगी अर्थात् वेशी **वस्त्र धारण करते हैं, वे इच्छाकार करनेयोग्य हैं।** इच्छता हूँ। इच्छता हूँ, इसमें महा अर्थ है, हों! अहो! मुझे तुम्हारा आत्मा आनन्दस्वभाव की मुझे इच्छा है। देखो! मुझे राग की इच्छा नहीं। यह वन्दन करनेवाला ऐसा बोलता है। समझ में आया? पुण्य की इच्छा नहीं, राग की इच्छा नहीं। तुम्हारे पद में आने से विकल्प हो, उसकी भी इच्छा नहीं। तुम्हारा जो पद निर्विकारी आनन्द है, ऐसा आत्मस्वभाव, उसे मैं इच्छता हूँ। समझ में आया?

भावार्थ – जो सम्यग्दर्शन–ज्ञान संयुक्त हैं और उत्कृष्ट श्रावक का भेष धारण करते हैं, एक वस्त्र मात्र परिग्रह रखते हैं, वे इच्छाकार करनेयोग्य हैं,... लो।

एक वस्त्र, एक वस्त्रमात्र। एक का अर्थ लंगोटी और एक वस्त्र, थोड़ा। पाठ तो इतना लिया है। एक वस्त्र परिग्रह रखे। **इच्छाकार करनेयोग्य हैं, इसलिए 'इच्छामि' इस प्रकार कहते हैं। इसका अर्थ है कि मैं आपको इच्छू हूँ, चाहता हूँ...** अहो! समझ में आया? ऐसी भगवान के सूत्र में यह विधि आयी है। **मैं आपको इच्छू हूँ, चाहता हूँ ऐसा 'इच्छामि' शब्द का अर्थ है। इस प्रकार से इच्छाकार करना जिनसूत्र में कहा है।** समझ में आया? अब कहते हैं...

आगे इच्छाकार योग्य श्रावक का स्वरूप कहते हैं।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दूसरी बात... हाँ, यह तो घर का डाला है, दूसरे का डाला है। समझ में आया? यह कहाँ से आया? इसमें गरज बहुत है। **इच्छाकार करना जिनसूत्र में कहा है।** लो। अब इच्छाकार योग्य श्रावक का स्वरूप कहा जाएगा। लो।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-१४

आगे इच्छाकार योग्य श्रावक का स्वरूप कहते हैं -

इच्छायारमहत्थं सुत्तठिओ जो हु छंडए कम्मं।
ठाणे ट्ठियसम्मत्तं परलोयसुहंकरो होदि।।१४।।

इच्छाकारमहार्थं सूत्रस्थित: य: स्फुटं त्यजति कर्मं।
स्थाने स्थितसम्यक्त्व: परलोकसुखंकर: भवति।।१४।।

महार्थ इच्छाकार का सूत्रस्थ जो जानें करम।
तज समकिती भेदस्थ हो पर-लोक में वह सुखंकर।।१४।।

अर्थ - **जो पुरुष जिनसूत्र में तिष्ठता हुआ इच्छाकार शब्द के महान प्रधान अर्थ को जानता है और स्थान जो श्रावक के भेदरूप प्रतिमाओं में तिष्ठता हुआ सम्यक्त्व**

–सहित वर्तता है, आरम्भ आदि कर्मों को छोड़ता है, वह परलोक में सुख प्रदान करनेवाला होता है।

भावार्थ – **उत्कृष्ट श्रावक को इच्छाकार करते हैं, सो जो इच्छाकार के प्रधान अर्थ को जानता है और सूत्र अनुसार सम्यक्त्वसहित आरम्भादिक छोड़कर उत्कृष्ट श्रावक होता है, वह परलोक में स्वर्ग का सुख पाता है।।१४।।**

प्रवचन-३१, गाथा-१४ से १७, गुरुवार, आषाढ़ शुक्ल ६, दिनांक ०९-०७-१९७०

अष्टपाहुड़, सूत्रपाहुड़ की चौदहवीं गाथा। **इच्छाकार योग्य श्रावक का स्वरूप कहते हैं।** इच्छा का अर्थ, आत्मा आत्मा के अनुभव को मैं इच्छता हूँ। आत्मा रागरहित निर्विकल्प स्वरूप जो शुद्ध आत्मा का अनुभव है, ऐसे श्रावक को **'इच्छामि'** कहने से, वह तुम्हारे आत्मा के स्वभाव को मैं इच्छता हूँ। ऐसा उसका इच्छाकार का अर्थ है। इच्छता हूँ अर्थात् कि उस प्रकार से इच्छकर मैं आपको नमस्कार करता हूँ। ऐसा है मूल तो।

इच्छायारमहत्थं सुत्तठिओ जो हु छंडए कम्मं।
ठाणे ट्ठियसम्मत्तं परलोयसुहंकरो होदि।।१४।।

अर्थ – **जो पुरुष जिनसूत्र में तिष्ठता हुआ...** भगवान ने आत्मा का जो मार्ग कहा, आनन्दस्वरूप आत्मा है, ऐसी दृष्टि करके जो आत्मा में स्थित है, यह जिनसूत्र में कहा है वह। **इच्छाकार शब्द के महान प्रधान अर्थ को जानता है...** इच्छा(कार) का क्या अर्थ है, यह वह जाने। ऐसा जो मेरा आनन्दस्वरूप निर्विकल्प प्रतीति में आया है, उसे यह इच्छाकार करते हैं कि यह इच्छता हूँ, उसमें कुछ कहना चाहते हैं। **और स्थान जो श्रावक के भेदरूप प्रतिमाओं में...** यह ग्यारह प्रतिमा में सम्यग्दर्शन और आत्मा का अनुभव होता है। समझ में आया? आत्मा आनन्दस्वरूप का अनुभव तो ग्यारह ही प्रतिमाओं में पहले से उस ग्यारह तक में होता है। उसे—ग्यारह प्रतिमावाला श्रावक है, उसे दूसरे अधिक श्रावकादि को नमस्कार करता हूँ। आपका आनन्द स्वभाव है, उसकी मैं इच्छा करता हूँ, भावना करता हूँ—वह मुझे होओ।

उसमें **तिष्ठता हुआ सम्यक्त्व सहित वर्तता है,...** जो श्रावक हो, वह पहली

प्रतिमा से लेकर आत्मा के अनुभव में वह स्थिर होता है। इसके बिना प्रतिमा-ब्रतिमा होती नहीं, ऐसा कहते हैं। है न? **'ठाणे ट्ठियसम्मत्तं'** प्रतिमा के ग्यारह ही पद है, ग्यारह प्रतिमा है न, उन ग्यारह प्रतिमा के स्थान में प्रत्येक में समकितसहित होता है। आत्मा रागरहित, विकल्परहित पूर्ण वीतरागमूर्ति चैतन्य आनन्द का धाम है, उसका उसे अनुभव और समकित होता है। तो उसे प्रतिमा कहा जाता है। यह न हो तो उसे प्रतिमा-ब्रतिमा कहा नहीं जाता। समझ में आया? श्रावक के भेदरूप प्रतिमा में रहकर **सम्यक्त्व सहित वर्तता है, आरम्भ आदि कर्मों को छोड़ता है,...** आरम्भरूपी कर्तव्य को छोड़ता है। **वह परलोक में सुख प्रदान करनेवाला होता है।** यहाँ तो देव में जाए और फिर मनुष्य होकर मुक्ति पाये।

भावार्थ – उत्कृष्ट श्रावक को इच्छाकार करते हैं, सो जो इच्छाकार के प्रधान अर्थ को जानता है और सूत्र अनुसार सम्यक्त्वसहित आरंभादिक छोड़कर... भगवान की आज्ञा प्रमाण समकितसहित हिंसा, आरम्भ आदि श्रावक के योग्य न हो, उन्हें छोड़ता है। ग्यारहवीं प्रतिमा में तो उसके लिये बनाया हुआ आहार भी नहीं लेता। उसके लिये बनाया हुआ ऐसा आरम्भ आदि छोड़ता है। **वह परलोक में स्वर्ग का सुख पाता है।** फिर क्रम से मनुष्यपना पाकर, मुनि होकर, चारित्र अंगीकार करके, नग्नपना अंगीकार करके केवलज्ञान को पाता है।

गाथा-१५

आगे कहते हैं कि जो इच्छाकार के प्रधान अर्थ को नहीं जानता है और अन्य धर्म का आचरण करता है, वह सिद्धि को नहीं पाता है –

अह पुण अप्पा णिच्छदि धम्माइं करेइ णिरवसेसाइं।
तह वि ण पावदि सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो।।१५।।

अथ पुनः आत्मानं नेच्छति धर्मान् करोति निरवशेषान्।
तथापि न प्राप्नोति सिद्धिं संसारस्थः पुनः भणितः।।१५।।

जो आतमा नहिं चाहता वह सकल धर्म करे भले।
पर नहीं पाता मुक्ति को संसार–स्थित जिन कहें।।१५।।

अर्थ **– 'अथ पुन:' शब्द का ऐसा अर्थ है कि पहिली गाथा में कहा था कि जो इच्छाकार के प्रधान अर्थ को जानता है, वह आचरण करके स्वर्गसुख पाता है, वही अब फिर कहते हैं कि इच्छाकार का प्रधान अर्थ आत्मा को चाहना है, अपने स्वरूप में रुचि करना है, वह इसको जो इष्ट नहीं करता है और अन्य धर्म के समस्त आचरण करता है तो भी सिद्धि अर्थात् मोक्ष को नहीं पाता है और उसको संसार में ही रहनेवाला कहा है।**

भावार्थ **– इच्छाकार का प्रधान अर्थ आपको चाहना है सो जिसके अपने स्वरूप की रुचिरूप सम्यक्त्व नहीं है, उसके सब मुनि श्रावक की आचरणरूप प्रवृत्ति मोक्ष का कारण नहीं है।।१५।।**

गाथा-१५ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो इच्छाकार के प्रधान अर्थ को नहीं जानता है और अन्य धर्म का आचरण करता है, वह सिद्धि को नहीं पाता है – अब वापस बात लेते हैं।

अह पुण अप्पा णिच्छदि धम्माइं करेइ णिरवसेसाइं।
तह वि ण पावदि सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो।।१५।।

अर्थ – 'अथ पुन:' शब्द का ऐसा अर्थ है कि पहिली गाथा में कहा था कि जो इच्छाकार के प्रधान अर्थ को जानता है, वह आचरण करके स्वर्गसुख पाता है, वही अब फिर कहते हैं कि इच्छाकार का प्रधान अर्थ आत्मा को चाहना है, अपने स्वरूप में रुचि करना है, वह इसको जो इष्ट नहीं करता है... आत्मा राग की रुचि छोड़कर, पुण्य के शुभभाव... आहाहा! समझ में आया? शुभभाव जो उपयोग है, उसकी भी रुचि छोड़कर आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसकी रुचि करे, उसकी श्रद्धा करे, उसका अनुभव करे, वह इच्छाकार का अर्थ है। समझ में आया?

आत्मा को चाहना है,... आत्मा की भावना। उसे पुण्य की भी भावना, शुभभाव

की भी भावना नहीं है। होवे भले, ग्यारह प्रतिमा में हो, परन्तु उसकी भावना नहीं। भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द के अस्तिवाला स्वभाव, उसका अनुभव है; इसलिए वह आत्मा को ही इच्छता है। **वह इसको इष्ट नहीं करता है...** जो कोई भगवान आत्मा को प्रियरूप से आनन्द की भावना, रागरहित की चैतन्य के स्वभाव की भावना न करे, इष्ट न करे और **अन्य धर्म के समस्त आचरण करता है...** उसके अतिरिक्त दया, दान, तप, व्रत, अपवास करे, वह सब शून्य है, कहते हैं। निरर्थक है, उसके आत्मा को नुकसानकारक है। समझ में आया?

भावार्थ - **इच्छाकार का प्रधान अर्थ आपको चाहना है...** आत्मा का चाहना है। देखो न! इच्छाकार में वापस डाली यह चीज़ बदलकर।

मुमुक्षु : दूसरी चीज़।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरी कौन सी चीज़? पुण्य के शुभभाव, वह तो विभाव, विकार दुःखरूप है। उसकी भावना और वह ठीक है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। वह श्रावक नहीं, तथा प्रतिमा में वह आया नहीं। गजब बात, भाई! वीतराग मार्ग ऐसा है।

'अप्पा णिच्छदि धम्माइं करेइ णिरवसेसाइं' यह दो पद है। जो कोई भगवान आत्मा अमृत का सागर प्रभु, आनन्द का धाम और ज्ञान का पिण्ड, उसकी जिसे श्रद्धा, ज्ञान और अनुभव तथा भावना नहीं, वह फिर चाहे जैसे व्रत और तप को करे, महीने-महीने के अपवास करे और बारह व्रत, क्षुल्लक के धारण करे, तो भी शून्य है, कहते हैं। उसमें कहीं आत्मा को लाभ नहीं। **तो भी सिद्ध अर्थात् मोक्ष को नहीं पाता है...** तो भी उसकी मुक्ति नहीं होती। समझ में आया? मूल श्रावक हो तो भी मुनि की तो बात क्या करना! वे तो आत्मा के अनुभवसहित स्वरूप में-चारित्र में आनन्द में रमते हैं। श्रावक भी ऐसे होते हैं कि जिसे आत्मा ही, आनन्दरूपी आत्मा की जिसे भावना हुई है। उस आनन्द की ही जिसे अनुभवदशा हुई है। समझ में आया? इसलिए अनुभव में आनन्द को ही भाता है। शुभभाव को नहीं भाता।

आत्मा का चाहना, अपने स्वरूप में रुचि करना। रुचि का अर्थ आता है न छहढाला में? 'परद्रव्य से भिन्न अपनी रुचि करना।' परन्तु रुचि का अर्थ यह। रुचे-रुचे

अर्थात् अन्दर आत्मा सुहावे आनन्दस्वरूप और राग रुचे नहीं। शुभभाव भी रुचे नहीं, उसे आत्मरुचि कहते हैं। समझ में आया? विषय आदि के भाव में तो कहीं रुचि ही नहीं। समकिती को चौथे गुणस्थान में कहीं रुचि नहीं, उसे कहीं प्रेम नहीं। और रुचि होवे तो एक आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप की रुचि अर्थात् उसकी श्रद्धा और अनुभव। यह समकिती को विशेष अंश में शान्ति, स्थिरता हो, उसे प्रतिमा का विकल्प होवे तो वह व्यवहार है और वह शान्ति है, वह निश्चय है। आहाहा! यहाँ तो लाकर रखना वापस आत्मा में। बदल-बदलकर यहाँ लाये। इसका अर्थ ही यह है या नहीं? श्रावक हुआ और इच्छाकार करता है, इसका अर्थ क्या? तू स्वरूप को अनुभव करता है, आनन्द का अनुभव करता है। ऐसे आत्मा की, दूसरे वन्दन करनेवाले, नमस्कार करनेवाले, भावना-इच्छा, नमस्कार करके करते हैं। आहा! समझ में आया?

अन्य धर्म के समस्त आचरण करता है... है न पाठ? **'णिरवसेसाइं' 'णि अवसेस'** इस एक समकित के अनुभव के अतिरिक्त जितने अवशेष क्रियाकाण्ड के तप, व्रत, नियम, भक्ति, विनय और पूजा **'णि अवसेस'**, सब करे। बाकी रखे बिना व्यवहार। (वह) **'सिद्धि अर्थात् मोक्ष को नहीं पाता है...** उसे धर्म नहीं होता। तो मुक्ति तो कहाँ से होगी? समझ में आया? **और उसको संसार में ही रहनेवाला कहा है।** उसे तो निगोद आदि भव में भटकनेवाला कहा है। भारी बात। यह निगोद है न? भाई! इसमें आयेगा न? तब अपने निकाला था न? निगोद। मैंने कहा, यहाँ क्यों नहीं आया? परन्तु यहाँ नहीं, उसमें है। भव करते हैं न? भावपाहुड़। वहाँ निगोद शब्द (आता है)। १८ में आता है न? **'निगोद गच्छइ',** वह यहाँ अर्थ नहीं किया। अर्थ तो देखा था निगोद... निगोद। वह भव है न, भव? भावपाहुड़ में। निगोद के भव। वहाँ निगोत (अर्थ) किया है। यहाँ तो निगोद है। समझ में आया?

एक आत्मा विकल्प और शुभरागरहित है। शुभराग तो आस्रवतत्त्व है। भगवान आत्मा तो उससे भिन्न आनन्द और ज्ञानस्वभावी वस्तु है। ऐसे आत्मा की जिसे चाहना नहीं, रुचि नहीं, भावना नहीं, अनुभव आया नहीं और अकेले राग में राग की क्रिया निरवशेष जितनी व्यवहार शास्त्र में कही, ऐसी सब करे (वह) संसार में रहेगा। चार गति में भटकेगा, कहते हैं। कहो, समझ में आया? समकित बिना की सात प्रतिमा और दस

प्रतिमा और ग्यारह प्रतिमा, ऐसा कहते हैं यह। समझ में आया? **उसको संसार में ही रहनेवाला कहा है।** भगवान ने तो संसार में रहनेवाला कहा है। क्योंकि आत्मा रागरहित, संसाररहित है। संसार जो उदयभाव। शुभभाव, वह संसार है, उदयभाव है। स्वयं भी उदयभाव वह संसार है न? संसारत् कहा न? चौदहवीं (गाथा) में। उदयभाव है, उतना संसार है। शुभराग दया, दान, व्रत, तप का भाव, वह संसार है। वह संसार है, उससे रहित आत्मा की जिसे अनुभवदृष्टि और श्रद्धा-ज्ञान नहीं, वह ऐसा करता हो तो वह संसार है। संसार में रहे हैं और परिभ्रमण करेंगे। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : आचार्य बहुत कड़क हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कड़क नहीं, परन्तु है वैसे हैं। दिगम्बर के तीव्र वचनों के कारण... आता है न? वह वस्तु ही ऐसी है। आहाहा! देखो न! आगे तो अभी १८वीं गाथा में कहेंगे न! एक तिल के तुष / छिलका, छिलका मात्र भी कोई टुकड़ा रखे, साधु नाम धरावे कि हम साधु हैं (तो) निगोद जाएगा, निगोद में जाएगा। जैसा स्वरूप है, वैसा है। आचार्य कठोर नहीं है। जैसा स्वभाव है, वैसा वर्णन किया है। किसी व्यक्ति के लिये नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, प्रतिमाधारी हो। साधु की बात बाद में करेंगे। ग्यारह प्रतिमा हो। ऐसे श्रावक होने पर भी, जिसे सम्यग्दर्शन—शुभराग से भिन्न आत्मा की रुचि, दृष्टि, अनुभव नहीं, वह सब क्रियाकाण्ड के करनेवाले संसार में रहे है और संसार में रहेंगे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? क्योंकि आत्मा का स्वभाव ही संसारभावरहित है। आत्मा का स्वभाव संसारभावरहित है। समझ में आया?

परमपारिणामिक चैतन्यस्वभाव ज्ञायक, चैतन्य पुंज प्रभु में संसारभाव नहीं है, उसमें भव नहीं है, भव का फल नहीं है। ऐसे आत्मा की जिसे अन्तर्दृष्टि, रुचि और ज्ञायक का अनुभव नहीं, वह फिर प्रतिमाधारी हो तो भी वह राग में ही रहे हैं, ऐसा कहते हैं। वह आत्मा में स्थिर हुए नहीं, ऐसा कहते हैं न? समझ में आया? उसमें था न? आया था न? **'ठाणे ट्ठियसम्मत्तं'** (गाथा-१४)। ऐसा था न? ग्यारह प्रतिमा हो परन्तु **'ठाणे ट्ठियसम्मत्तं'** ऐसा था न? समकित में स्थित है वह। अरे! गजब बातें आयीं। समझ में आया? लो।

कहते हैं, जिसने स्थूल मिथ्यात्व छोड़े हैं और दिगम्बर में जिसका जन्म है, दिगम्बर की श्रावक की व्यवहार वृत्ति, ग्यारह प्रतिमा आदि अंगीकार किये हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? श्वेताम्बर में है, उसकी तो बात यहाँ निकाल डाली। वह तो दूसरे भाव मिथ्यादृष्टि हैं। द्रव्य से और भाव से सब प्रकार से मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! परन्तु कहते हैं, उस सम्प्रदाय की दृष्टि छोड़कर, जिसे वाडा में दिगम्बर दर्शन मिला है, उस दिगम्बर में जिसने सात और ग्यारह प्रतिमाएँ अंगीकार की, दस-बारह... बारह कहाँ है। रामजीभाई कहे, पन्द्रह होती तो अंगीकार करे। भान कहाँ है ? लाओ पन्द्रह प्रतिमा ले लेंगे। लो! प्रतिमा किसे कहना, स्थिरता किसे कहना, उसकी मर्यादा, विकल्प की मर्यादा इतनी उसकी स्थिरतावाले को होती है, उसकी तो कुछ खबर नहीं। फिर ले लो सात, ले लो ग्यारह और ले लो दस। समझ में आया ? वीतराग का मार्ग कठिन है, भाई! कठिन नहीं परन्तु जैसा है, वैसा यह वीतरागीमार्ग है। आहाहा!

मुनि की तो बात क्या करना, परन्तु श्रावक भी आत्मा के अनुभवी न हो, वे संसार में रहे हैं अर्थात् राग में रहे हैं। उसके शुभभाव में ही उसकी दृष्टि पड़ी है और वहाँ ही उसका हितपना मान रहा है। और वह विशेष आगे जाए तो प्ररूपणा ऐसी करे। यह तो अन्दर में भाव है परन्तु आगे जाकर बढ़ जाए, ऐसा करके कि इसे शुभभाव से भी आगे लाभ होगा। वह मिथ्यात्व का तीव्र पोषक है। समझ में आया ? अभिमान हो जाए ऐसा है यह सब। जाग उठे ऐसा है। चैतन्य भगवान पूर्णानन्द का नाथ... साकरटेटी आती है न अपने ? साकरटेटी नहीं आती ? क्या कहते होंगे हिन्दी में ? वह साकरटेटी आती है। तरबूजा और साकरटेटी, नहीं ? ... टेटी कहते हैं, साकरटेटी। परन्तु यह तो आत्मा में तो अमृत की टेटी, साकरटेटी पके ऐसा आत्मा है। साकरटेटी कहते हैं न ? क्या प्रकाशदासजी ? चीभड़ा होता है, चीभड़ा। तरबूज। एक साकरटेटी।

मुमुक्षु : साकरटेटी अलग और तरबूज अलग।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अलग-तरबूज अलग। तरबूज अलग और साकरटेटी अलग। यहाँ तो साकर शब्द आया न, उस समय जरा मस्तिष्क में। साकरटेटी कहते हैं। चीभडुं मीठा, मीठा बहुत होता है। लाल और शक्कर (जैसा लगे)। धूल में भी शक्कर नहीं। यह आत्मा तो अकेली अमृत की टेटी है। आहाहा! उसे आत्मा कहते हैं। शुभराग

है, वह आत्मा (नहीं है), वह तो आस्रवतत्त्व है। दया, दान, व्रत, तप के भाव, वे तो आस्रवतत्त्व हैं। यह साकरटेटी (नहीं), जहरटेटी है। सेठी!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : जहर रहे तो क्या है? अमृत के साथ जहर रहे तो कुछ जहर अमृत हो जाता है? शक्कर की डली रखी हो उसके साथ अफीम रखा हो, इससे कहीं अफीम शक्कर हो जाए?

इसी प्रकार भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ वह तो सच्चिदानन्द प्रभु है। ऐसी जहाँ दृष्टि हुई, तो कहते हैं कि राग तो उसे जहर दिखता है। आहाहा! महाव्रत के परिणाम और बारह व्रत के परिणाम और ग्यारह प्रतिमा के परिणाम, वह तो सब जहर-राग है। भले हो, कहते हैं। परन्तु यह आत्मा के भान बिना, वह संसार में है। भटकनेवाला है। अभी भी संसार में है और बाद में भी भटकनेवाला है। कहा न? देखो! **'णवि पावदि सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो' 'धम्माइं करेइ णिरवसेसाइं'।** लो। यह आगे आयेगा। २२२ पृष्ठ पर आता है। २२२ पृष्ठ में है। यह है, ८६ गाथा है, देखो! **'अह पुण अप्पा णिच्छदि पुण्णाइं करेदि णिरवसेसाइं'** यहाँ **'धम्माइं करेइ णिरवसेसाइं'** शब्द है। वहाँ **'पुण्णाइं करेदि णिरवसेसाइं'** है। भावपाहुड़ की ८६ गाथा, इसमें २२२ पृष्ठ पर है। देखो! **'अह पुण अप्पा णिच्छदि'** यहाँ ऐसा शब्द है, देखो! **'अह पुण अप्पा णिच्छदि धम्माइं करेइ णिरवसेसाइं'** वहाँ **'पुण्णाइं करेदि णिरवसेसाइं'।** लो, यहाँ तो धर्म को स्पष्ट पुण्य कहा है। धर्म अर्थात् यह व्यवहार धर्म। यह दया, दान, व्रत, तपस्या, क्रिया शुभभाव। **'तह वि ण पावदि सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो।।८६।।' 'तह वि ण पावदि सिद्धिं'** शब्द एक है। जरा पुण्य की जगह धर्म शब्द बदला। ८६ है न? ८७ भी यही है। १६ के साथ मिलाते हैं। है न ८६ और ८७। ८७ में भी ऐसा है।

एएण कारणेण य तं अप्पा सद्दहेण तिविहेण।
जेण य लहेह मोक्खं तं जाणिज्जह पयत्तेणं।।८७।।

एएण कारणेण य तं अप्पा सद्दहेण तिविहेण।
जेण य लहेह मोक्खं तं जाणिज्जह पयत्तेणं।।१६।।

दोनों गाथाएँ समान हैं। १५ और १६, वहाँ भावपाहुड़ में ८६ और ८७। समझ में आया? वहाँ **'पुण्णाइं करेदि'** कहा, यहाँ **'धम्माइं करेइ'** (कहा है)। **'धम्माइं करेइ'।** चाहे जैसा धर्म करे। धर्म शब्द से राग की, पुण्य की क्रिया। व्रत की, तप की, अपवास की। **'धम्माइं करेइ णिरवसेसाइं'** निरवशेष। जितनी क्रिया कहने की व्यवहार की, वह सब करता हो। **'तह वि ण पावदि सिद्धिं'** तो भी वह मुक्ति को नहीं पाता। संसार तो... मुक्ति को नहीं पाता यह तो कहा, अब? **'संसारत्थो'** भगवान ने कहा है, ऐसा कहते हैं, देखो! **'भणिदो'** है न? सब एक ही है। शब्द एक ही है। **'पुण्णाइं', 'धम्माइं'** दो ही अन्तर है, दूसरा कुछ नहीं। भावपाहुड़। समझ में आया? ओहोहो! दिगम्बर सन्तों की वाणी जगत को कठिन लगे। मार्ग तो यह है।

श्वेताम्बर को मिथ्यादृष्टि (कहा)। सभी पूरा संघ। हाय... हाय! और एक ओर कहे ग्यारह प्रतिमा ले, दिगम्बर में जैनधर्म में जन्मे हुए और दिगम्बर धर्म के नाम से ले, तथापि जिसे आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और अन्तर्दृष्टि नहीं, उसे बहिरात्मा राग में रहा है, उसे मुक्ति नहीं परन्तु संसार तो है। आहाहा! भारी काम। राग में रहा। राग अर्थात् बहिरात्मा। वह बहिरात्मा। बहिरात्मा, वह संसार। समझ में आया? शुभभाव से लाभ माननेवाले बहिरात्मा हैं। आत्मा में नहीं ऐसे भाव को माननेवाले मिथ्यादृष्टि हैं। मिथ्यादृष्टि चाहे जितनी क्रिया धर्म की नाम की करे, परन्तु वह सब संसार के लिये है। धर्म, मुक्ति को पाते नहीं। वे कहे कि, अभी नहीं परन्तु धीरे-धीरे आगे पायेगा। आगे पायेगा संसार, कहते हैं। अभी भी संसार और बाद में भी संसार। अरे! भारी काम। समझ में आया?

संसार में ही रहनेवाला कहा है।

भावार्थ - इच्छाकार का प्रधान अर्थ आपको चाहना है, सो जिसके अपने स्वरूप की रुचिरूप सम्यक्त्व नहीं है,... वह सामने इच्छाकार करता है और इसे यह न हो, तो कहते हैं, यह तो हो गया, यह तो वह की वह दशा है। **इच्छाकार का प्रधान अर्थ आपको चाहना है, सो जिसके अपने स्वरूप की रुचिरूप सम्यक्त्व नहीं है, उसके सब मुनि श्रावक की आचरणरूप प्रवृत्ति मोक्ष का कारण नहीं है।** श्रावक और मुनि के जितने व्यवहार आचरण हैं, (वे) सब बन्ध के कारण हैं। यह व्यवहार क्रिया पंच महाव्रत की, बारह व्रत की, ग्यारह प्रतिमा की, वह सब बन्ध के कारण की क्रिया है,

ऐसा कहते हैं। भारी... ऐई! प्रकाशदासजी! कहाँ निकला परन्तु ऐसा?

अरे! पंच महाव्रत में चारित्र था, वहाँ और ऐसा कहाँ से हो गया वापस? महाव्रत अंगीकार करो, जाओ। यहाँ कहते हैं, महाव्रत के परिणाम स्वयं अचारित्र और राग है। जिसे रागरहित आत्मा की दृष्टि नहीं, वह राग में रहा है। राग में रहा, इसलिए बहिरात्मा है। बहिरात्मा में है। संसार आत्मा में नहीं। राग में संसार है। तो वह संसार तो है। संसारार्थ है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! ऐशो, ऐशो करके धमाल करके पड़े हैं। कहते हैं, फल तो तेरा संसार भटकने का है। आहाहा! अपवास करे, उणोदरी करे, रसत्याग करे, शरीर के... खायेंगे नहीं, दूध-दही, खांड-साकर खायेंगे नहीं, बहुत रूखा खायेंगे। कैसा त्याग इसका? वह सब त्याग है आत्मा का। आत्मा का त्याग है और राग का ग्रहण है। समझ में आया? धर्मी को राग का त्याग है और आत्मा का ग्रहण है।

इच्छाकार का प्रधान अर्थ... मुख्य अर्थ—महा अर्थ ऐसा कहते हैं। **आपको चाहना है, सो जिसके अपने स्वरूप की रुचिरूप सम्यक्त्व नहीं है, उसके सब मुनि श्रावक की आचरणरूप प्रवृत्ति मोक्ष का कारण नहीं है।** जाओ! यह व्यवहारक्रिया करे, वह समकित का, निश्चय का कारण होगा या नहीं? परन्तु कारण होगा तो संसार का कारण मोक्ष के कारणरूप से होगा? यह व्रतादि की क्रिया, तपादि की क्रिया संसार है। यह संसार का भाव समकित का कारण होगा? भारी गड़बड़। ऐई! भगवानजीभाई! भारी कठिन पड़े, हों! नैरोबी जैसे में तो... आहाहा! हो.. हा..! बड़े मन्दिर दस-दस लाख के। भक्ति, पूजा, हो... हा...! बस! धर्म... धर्म... धर्म... धर्म। वहाँ जाकर कहे कि यह तेरा धर्म नहीं। इस राग की क्रिया में पड़ा, वह मिथ्यात्वभाव है। अपने सुनना नहीं, सुनना नहीं, चलो भाई! आहाहा! अरे! भगवान! तेरे घर को जीवन्त करने की यह बात है। राग की रुचि करके तूने जीव के घर को मार डाला है। आहाहा!

महाप्रभु अकेला चैतन्यस्वभावी नाथ, उसकी अन्दर प्रतीति और इसके जीवत्व के जीवन की विश्वास और अनुभव नहीं और एक राग, विकार, जिसके चैतन्य के मुर्दे, चैतन्य में से राग-मुर्दा निकला। मुर्दा, राग तो मुर्दा है। मर गया है। चैतन्य के भाव से मर गया हुआ अचेतन है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर मुनियों की बात ही पूरी अलग। दुनिया के साथ कहीं मिलान नहीं खाये ऐसी। सेठी!

मुमुक्षु : दुनिया से विरुद्ध के भाव...

पूज्य गुरुदेवश्री : विरुद्ध के भाव। आनन्दघनजी एक जगह कहते हैं, दुनिया के साथ इसका अभिप्राय मिलान खाये तो वह अभिप्राय ही समकित नहीं। दुनिया के साथ कैसे इसका अभिप्राय टकराता नहीं ?

गाथा-१६

आगे इस ही अर्थ को दृढ़ करके उपदेश करते हैं –

एएण कारणेण य तं अप्पा सद्दहेह तिविहेण।
जेण य लहेह मोक्खं तं जाणिज्जह पयत्तेण।।१६।।

एतेन कारणेन च तं आत्मानं श्रद्धत्त त्रिविधेन।
येन च लभध्वं मोक्षं तं जानीत प्रयत्नेन।।१६।।

अतएव त्रयविध उसी आतम का करो श्रद्धान अब।
जिससे मिले मुक्ति उसी को जानने का कर प्रयत।।१६।।

अर्थ – **पहिले कहा कि जो आत्मा को इष्ट नहीं करता है, उसके सिद्धि नहीं है, इस ही कारण से हे भव्यजीवो ! तुम उस आत्मा की श्रद्धा करो, उसका श्रद्धान करो, मन-वचन-काय से स्वरूप में रुचि करो, इस कारण से मोक्ष को पाओ और जिससे मोक्ष पाते हैं, उसको प्रयत्न द्वारा सब प्रकार के उद्यम करके जानो। (भावपाहुड गाथा ८७ में भी यह बात है।)**

भावार्थ – **जिससे मोक्ष पाते हैं, उस ही को जानना, श्रद्धान करना, यह प्रधान उपदेश है, अन्य आडम्बर से क्या प्रयोजन ? इस प्रकार जानना।।१६।।**

गाथा-१६ पर प्रवचन

आगे इस ही अर्थ को दृढ़ करके उपदेश करते हैं। लो! इसी भाव को विशेष दृढ़ करते हैं।

एएण कारणेण य तं अप्पा सद्दहेह तिविहेण।
जेण य लहेह मोक्खं तं जाणिज्जह पयत्तेण।।१६।।

देखो! आहाहा! वापस '**तिविहेण**'। यह भी वहाँ ८७ वीं गाथा है। शब्दशः शब्द है। सूत्र में ऐसा कहा है, ऐसा कहना है। वहाँ भाव ऐसा हो, उसका फल ऐसा होगा, यह कहा है।

अर्थ – पहिले कहा कि जो आत्मा को इष्ट नहीं करता है, उसके सिद्धि नहीं है,... भगवान आत्मा, अकेला ज्ञाता-दृष्टा का रसकन्द प्रभु, जिसमें उदयभाव के शुभराग की गन्ध नहीं, ऐसे आत्मा को इष्ट नहीं करते, प्रिय नहीं करते और उसका प्रेम राग में ढल गया है, उसे मुक्ति नहीं है, उसे धर्म नहीं है अर्थात् उसे मुक्ति नहीं है। **इस ही कारण से हे भव्यजीवो!** लो। आदेश किया है न? भाई! इसमें। '**सद्दहेह तिविहेण**' श्रद्धे तीन। मन, वचन और काया। करना, करना, अनुमोदन से। आत्मा आनन्दस्वरूप है, ऐसे नौ-नौ कोटि से श्रद्धा कर, कहते हैं। आहाहा! नौ कोटि से त्याग करते हैं न अज्ञानी? समझ में आया? यहाँ मन, वचन और काया से। कहीं संकल्प भी ठीक है, ऐसा नहीं रहता। अकेला आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, चैतन्यस्वभाव, वीतरागी मूर्ति की श्रद्धा कर। मन से, वाणी से भी उसे मान, यह बोल बोल कि श्रद्धा करने जैसी यह चीज़ है। उपदेश भी ऐसा हो, ऐसा कहते हैं। मन में भी यह हो, और काया की चेष्टा में भी उसकी ओर के झुकाव की श्रद्धा, यह उसे बतावे। यह नहीं, यह नहीं, यह नहीं। समझ में आया?

पहिले कहा कि जो आत्मा को इष्ट नहीं करता है, उसके सिद्धि नहीं है, इस ही कारण से हे भव्यजीवो ! तुम उस आत्मा की श्रद्धा करो,... आहाहा! अनन्त काल में आत्मा की श्रद्धा की नहीं। द्रव्यलिंग धारण किया, मुनि अनन्त बार हुआ। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' दिगम्बर मुनि, हों! वे (वस्त्रवाले) मुनि तो व्यवहार भी नहीं, वे तो कुलिंगी है। वे तो नौवें ग्रैवेयक में भी नहीं जाते। नौवें ग्रैवेयक में जाए, वे तो नग्नमुनि हों, दिगम्बर हों, व्यवहार श्रद्धा-ज्ञान आदि जिनके सच्चे हों, निश्चय खोटा हो, ऐसा जीव नौवें ग्रैवेयक जाए। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि। और यह वस्त्र-पात्रवाले कुलिंग नौवें ग्रैवेयक नहीं जाते, ग्रैवेयक में नहीं जाते। शुभभाव हो तो नीचे से बारहवें देवलोक जायें। मिथ्यादृष्टि।

मुमुक्षु : ऐसा... व्यवहार हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो व्यवहार भाव हो, उसकी बात है। शुभभाव होता है, अन्यमति भी हैं, अन्यमति बारहवें में जाते हैं। मिथ्यादृष्टि होते हैं परन्तु शुभभाव ऐसे हो जायें। अन्यमति में भी नग्न बाबा, साधु, वेदान्त के माननेवाले बहुत होते हैं। फकीर में होते हैं, फीलसूफी। सूफी... सूफी फकीर एक बार मैंने देखा था। वैरागी दिखाई दे, हों! बोटाद में बाहर निकलने का दरवाजा है न? रायचन्द गाँधी के सामने। बाहर निकला परन्तु उसका मुँह... फकीर। वस्त्र हरे। हरे होते हैं न? हरे वस्त्र हरे। ऐसे खड़ा था परन्तु उसकी चेष्टा में वैराग्य दिखाई दे। कहा, कौन है यह? सूफी फकीर है। अनहलहक् एक आत्मा, ऐसा माननेवाले वे लोग। वेदान्त की भाँति। अनहलहक् एक खुदा है। रुचि खोटी, तत्त्व की खबर नहीं होती परन्तु उसके मुख में ऐसा... साधु देखे तो उसे वैराग्य न दिखाई दे और यह एक ओर खड़ा था। मैं निकला तो उसे खबर तो पड़ी। ऐसे देखने खड़ा रहा। मैं आगे रहा। बहुत हरे नहीं और काले नहीं, ऐसे वस्त्र पहने हुए। ४०-४५ वर्ष की उम्र होगी। उदास। वे सब मिथ्यादृष्टि परन्तु तत्त्व की खबर नहीं। आहाहा!

सर्वज्ञ भगवान ने कहा हुआ एक-एक आत्मा पूर्णानन्द का नाथ है। ऐसे अनन्त आत्मायें और उससे अनन्तगुणे रजकण। यह सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त यह बात कहीं नहीं हो सकती। समझ में आया?

तुम उस आत्मा की श्रद्धा करो, उसका श्रद्धान करो, मन, वचन, काय से स्वरूप में रुचि करो,... मन से एक लिया है। समझ में आया? वाणी में भी यह रख, मन में भी यह, काया में भी यह। अन्दर का स्वरूप... स्वरूप... स्वरूप शुद्ध चैतन्यमूर्ति। मूर्ति। अखण्ड चिन्तामणि कल्पवृक्ष ऐसा जो भगवान आत्मा कल्पवृक्ष है, चिन्तामणि रत्न है, कल्पवेली है, कामकुम्भ है। आता है न ऐसा घड़ा? देव अधिष्ठित। जो माँगे वह घड़े में से निकला ही करे। ऐसा घड़ा आता है। कामकुम्भ घड़ा कहलाता है। जो इच्छे, वह निकला करे। वह घड़ा देव अधिष्ठित (होता है)। गहना चाहिए, खाने का चाहिए, वह उसमें से निकले। इसी प्रकार यह तो भगवान आनन्द का कुम्भ-घड़ा है। कामकुम्भ है। आहाहा!

ऐसे आत्मा को **मन, वचन, काय से स्वरूप में रुचि करो,...** यह पहला धर्म का मार्ग है। इसके बिना सब थोथा, बिना एक के शून्य है। समझ में आया? **इस कारण से मोक्ष**

को पाओ... यहाँ तो स्वरूप की रुचि से ही मोक्ष को पाये, ऐसा सीधा कहा, भाई! इतना वजन दिया है। आहाहा! यह तो उसकी श्रद्धा में आया है न कि इसमें स्थिर होऊँ तब चारित्र, तब मुक्ति होगी। आहाहा! ... आया न? उसे अनुसरण कर आचरण उसमें करना। यह आत्मा ज्ञान चैतन्य का कन्द है, उसमें स्थिर होऊँ, चारित्र स्थिर हो तो मुक्ति होगी। बाकी मुक्ति होगी नहीं। ऐसी श्रद्धा सम्यग्दर्शन में आ गयी है। समझ में आया?

मन, वचन, काय से स्वरूप में रुचि करो, इस कारण से मोक्ष को पाओ... लो, इस कारण से उसे केवलज्ञान होकर मुक्त होगा। परन्तु जिसे स्वरूप की दृष्टि और रुचि नहीं और क्रियाकाण्ड में पड़े हों, वे सब संसार में भटकनेवाले हैं। वर्तमान संसार है, भविष्य में संसार में भटकेंगे। आहाहा! **और जिससे मोक्ष पाते हैं, उसको प्रयत्न द्वारा सब प्रकार के उद्यम करके जानो।** क्या कहा? **जिससे मोक्ष पाते हैं...** जिससे अर्थात् श्रद्धा से, रुचि से। समझ में आया? कहा न पाठ में? देखो न!

एएण कारणेण य तं अप्पा सद्दहेह तिविहेण।
जेण य लहेह मोक्खं तं जाणिज्जह पयत्तेण।।१६।।

उसे। प्रयत्न द्वारा आत्मा का अनुभव जानना। निर्विकल्प आत्मा प्रयत्न द्वारा ज्ञात होता है। प्रयत्न के अतिरिक्त, पुरुषार्थ के बिना ज्ञात नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? **जिससे मोक्ष पाते हैं, उसको प्रयत्न द्वारा सब प्रकार के उद्यम करके...** अपने आप हो जाएगा, ऐसा नहीं। समझ में आया? और बहुत से कहते हैं न, क्रमबद्ध में आयेगा। परन्तु क्रमबद्ध में अन्तर्दृष्टि हो, उसे क्रमबद्ध का ज्ञान होता है। स्वभाव स्वरूप का प्रयत्न चालू हो, उसे क्रमबद्ध का ज्ञान सच्चा है। वह तो अकर्ता और ज्ञाता है। आहाहा! **प्रयत्न द्वारा सब प्रकार के उद्यम करके जानो।** देखो! भगवान आत्मा को तो जितनी वीर्य की ताकत (हो), उस सब ताकत द्वारा आत्मा को जानना। यह पहले करने में यह कर्तव्य है। अनन्त-अनन्त वीर्य जो उघड़ा हुआ हो, या ज्ञान उघड़ा हुआ हो, उस सबके द्वारा आत्मा में अनुभव करके रुचि करना, यह प्रयत्न करना। आहाहा! आत्मा तो मानो कुछ नहीं, ऐसा लोगों को हो गया। दया, दान, व्रत, भक्ति, और तप का शुभभाव (देखे), इसलिए आहाहा! यह हो पड़ा है। वह भगवान पूरा आत्मा रह गया अन्दर। आहाहा!

श्रीमद् तो एक बार कहते हैं, हमारे केवलज्ञान ही चाहिए नहीं, आत्मा पूरा प्राप्त

हुआ, अब केवलज्ञान भी नहीं चाहिए। केवलज्ञान फिर क्या देगा ? केवलज्ञान तो अपने आप हो जाएगा, चाहिए कहाँ है हमारे ? ऐसा कहते हैं। हुए बिना रहेगा नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? केवलज्ञान की इच्छा से कहीं केवलज्ञान आता है ? ऐसा तो आता है, मतिज्ञान केवलज्ञान को बुलाता है। धवल में (आता है) । बुलाता है अर्थात् आयेगा ही, ऐसा। जिसे आत्मा ज्ञानानन्द चैतन्य के आनन्द के भान का जिसे अनुभव प्रतीति हुई है, उसे तो मति और श्रुत निर्मल हुए हैं। उसे हुए, उसे केवलज्ञान हुए बिना रहेगा नहीं। इसलिए मतिज्ञान केवल (ज्ञान) को बुलाता है। चल, चल, आ जा, आ जा। धवल में ऐसा पाठ है, लो। यह मतिज्ञान कौन सा ? आत्मा का ज्ञान हुआ, वह मतिज्ञान। राग को अपना मानकर राग से लाभ माने, वह अज्ञान है। अज्ञान बुलावे मिथ्यात्व को। दृढ़ होगा मिथ्यात्व और भटकेगा। समझ में आया ? ले, और कहाँ आया ? मतिज्ञान केवलज्ञान को (बुलाता है) । आहाहा ! गजब शैली है !

भावार्थ – **जिससे मोक्ष पाते हैं, उस ही को जानना, श्रद्धान करना, यह प्रधान उपदेश है,...** देखो ! जिसके द्वारा मोक्ष पाना है, उसका बराबर ज्ञान करके श्रद्धान करना चाहिए। सम्यग्दर्शन, आत्मा की रुचि उसे बराबर जानना चाहिए कि क्या है यह वह वस्तु ? रुचि क्या ? और रुचि का विषय क्या ? उसे बराबर जानना चाहिए। श्रद्धान करना, यह तो मुख्य उपदेश है। भगवान का तो यह मुख्य उपदेश है। **अन्य आडम्बर से क्या प्रयोजन ?** देखो ! ऐसे व्रत और तप और हो... हा... शान्तियज्ञ और... क्या कहा ? शान्तिस्तोत्र। यह सब मर जाने के बाद ऐसा करना, फिर ऐसा करना, दीक्षा ले तब ऐसा करना। कोई गृहस्थ मरते होंगे तो उनके पश्चात् कराते हैं न आठ दिन बाद, मृत्युभोज। मृत्युभोज न करे और ऐसा करावे। यह सब आडम्बर है, कहते हैं। अट्ठाई महोत्सव करावे, लो। अपने वहाँ आठ दिन किया था न ? गोपालदासभाई... नहीं ? बाबूभाई वे कुछ अहमदाबाद में कराया था। पैसा खर्च किया था। अरे... !

कहते हैं कि भगवान आत्मा को जानना और उद्यम-पुरुषार्थ से प्रगट करना; इसके अतिरिक्त दूसरे आडम्बर से तुझे क्या काम है ? शास्त्र का बहुत जानपना करे तो लोगों को समझाना आवे। यह सब आडम्बर का तुझे क्या काम है ? ऐसा कहते हैं। आहाहा ! ऐसा कहते हैं। परन्तु तुझे क्या काम है ?

मुमुक्षु : धर्म की प्रभावना हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म की प्रभावना यहाँ होती होगी या बाहर होती होगी ?

अन्य आडम्बर से क्या प्रयोजन ? लो, यह तो सबको आडम्बर सिद्ध किया। जादवजीभाई ! पूजा, भक्ति, स्नात्र और स्तोत्र तथा अपवास, महीने-महीने के अपवास और उसकी निकालो शोभायात्रा, उन्हें फिर जीमाओ, उसकी महिमा करो, उसे अभिनन्दन दो, इसने इतने अपवास किये... ओहो ! अभी एक व्यक्ति लाया था। जवान व्यक्ति ने महीने के अपवास किये। महिमा बहुत की है। आहाहा ! यह सब मिथ्यात्व के आडम्बर हैं, कहते हैं। आहाहा ! स्थानकवासी में।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : करे तो सही, बेचारे क्या करें ? **इस प्रकार जानना।** लो।

गाथा-१७

आगे कहते हैं कि जो जिनसूत्र को जाननेवाले मुनि हैं, उनका स्वरूप फिर दृढ़ करने को कहते हैं -

वालग्गकोडिमेत्तं परिगहगहणं ण होइ साहूणं।
भुंजेइ पाणिपत्ते दिण्णण्णं इक्कठाणम्मि।।१७।

बालाग्रकोटिमात्रं परिग्रहग्रहणं न भवति साधूनाम्।
भुंजीत पाणिपात्रे दत्तमन्येन एकस्थाने।।१७।।

बालाग्र की अणि मात्र भी परिग्रह-ग्रहण मुनि को नहीं।
पर-दत्त एक-स्थान में कर-पात्र में आहार भी।।१७।।

अर्थ - **बाल के अग्रभाग की कोटि अर्थात् अणी मात्र भी परिग्रह का ग्रहण साधु के नहीं होता है, यहाँ आशंका है कि यदि परिग्रह कुछ भी नहीं है तो आहार कैसे करते हैं?**

इसका समाधान करते हैं – आहार करते हैं, सो पाणिपात्र (करपात्र) अपने हाथ ही में भोजन करते हैं, वह भी अन्य का दिया हुआ प्रासुक अन्न मात्र लेते हैं, वह भी एक स्थान पर ही लेते हैं, बारबार नहीं लेते हैं और अन्य-अन्य स्थान में नहीं लेते हैं।

भावार्थ **– जो मुनि आहार ही पर का दिया हुआ प्रासुक योग्य अन्नमात्र निर्दोष एकबार दिन में अपने हाथ में लेते हैं तो अन्य परिग्रह किसलिए ग्रहण करे ? अर्थात् ग्रहण नहीं करे, जिनसूत्र में इस प्रकार मुनि कहे है।।१७।।**

गाथा-१७ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो जिनसूत्र को जाननेवाले मुनि हैं, उनका स्वरूप फिर दृढ़ करने को कहते हैं। फिर से वापस दृढ़ (करते हैं) । पहले श्रावक का आया, पश्चात् मुनि का आया और यह श्रद्धा का आया। अब वापस मुनि का आता है।

वालग्गकोडिमेत्तं परिगहगहणं ण होइ साहूणं।
भुंजेइ पाणिपत्ते दिण्णण्णं इक्कठाणम्मि।।१७।

देखो! समकिती की बात की बहुत जोरदार। पहला प्रयत्न यह कर और जान और उसे प्रगट कर। अब कहते हैं कि मुनिपना कैसा होता है ? वीतराग के मार्ग में जैनशासन में मुनिपने की कैसी दशा होती है ?

अर्थ – बाल के अग्रभाग की कोटि अर्थात् अणी मात्र भी परिग्रह का ग्रहण साधु के नहीं होता है,... लो! समझ में आया ? बाल का अग्र भाग, उसकी कोटि अर्थात् अणी। इतना छिलका भी जिसे परिग्रह न हो। निर्ग्रन्थ कहलाये और बड़े पोटले सिर पर रखे...

मुमुक्षु : उपकरण कहीं परिग्रह कहलाये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : छोटा उपकरण हो तो परिग्रह कहलाये, बड़ा कहीं कहलाये ? इतने बड़े को। बड़ा तो बड़ा परिग्रह है। बड़ा पोटला बाँधे सिर पर। यहाँ डाले और यहाँ डाले। एक व्यक्ति सामने चले। साईकिल पर लेकर निकले। हमें बहुत दिखता है।

मुमुक्षु : वे सब उपकरण हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उपकरण कहलाये ?

यहाँ तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य स्पष्ट तत्त्व को बाहर प्रसिद्ध करते हैं। बाल के अग्र भाग की कोटि अर्थात् अणी, वह मात्र भी यदि परिग्रह रखे, वस्त्र का टुकड़ा, पात्र का टुकड़ा, अरे! पुस्तक (में) भी ममता रखे, वह परिग्रह है। समझ में आया ? ऐसा परिग्रह का ग्रहण साधु को नहीं होता।

यहाँ आशंका है कि यदि परिग्रह कुछ भी नहीं है तो आहार कैसे करते हैं? लो। **इसका समाधान करते हैं – आहार करते हैं सो पाणिपात्र (करपात्र) अपने हाथ ही में भोजन करते हैं,...** इसलिए लिया न ? **'पाणिपत्ते'।** आहार तो है। आहार के लिये कुछ पात्र-बात्र चाहिए या नहीं ? एक कढ़ी। कढ़ी का पात्र अलग, दाल-सब्जी का अलग, रोटी का अलग, दूध का अलग, पाँच-छह पात्र बड़े (रखे)। मानो बड़ा मजदूर निकला। ऐसे उठाकर। एक में पानी और एक में दूध और एक में ऐसा। मजदूर है, कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो है न। बहुत उसमें है। भगवती (सूत्र) में बहुत लेते हैं। साधु आहार लेने जाता है, दस पात्र लेना। दस रजोणा लेना, दस लड्डू लेना। ऐसा पाठ है। एक लड्डू स्वयं खाओ और नौ देना... दस कम्बल लेना, एक कम्बल स्वयं रखना। ऐसा भगवतीसूत्र में पाठ है। यह वह आचार ? यहाँ कहते हैं कि तिलतुषमात्र वस्त्र रखे तो साधु नहीं। अब ऐसे-ऐसे उठावे वे साधु, वे निर्ग्रन्थ। ऐसा मनवाया है। अर र! गजब किया है!! आहाहा! और भगवतीसूत्र में लो। इसलिए बेचारे को शंका ही न पड़े किसी को। भगवान का कहा हुआ भगवती(सूत्र)। वाँचन करे तो हमेशा एक-एक सोना मोहर रखे, बड़े राजा आदि हों तो। दूसरे एक-एक रुपया रखे। नारणभाई ने एक बार किया था। नारणभाई एक-एक रुपया रखते। स्वस्तिक करे और वह... आडम्बर का पार नहीं होता। बाहर से मानो... आहाहा! स्वस्तिक करे और उसके ऊपर एक-एक रुपया (रखे) और फिर भगवती वाँचन करे। भगवती वाँचना अर्थात् महा... यह भगवती में ऐसे गप्प मारी है।

मुमुक्षु : जितने प्रश्न आवे उतने रखे।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रश्न आवे उतने, ठीक। प्रश्न आवे उतने रखे। ठीक। आहाहा!

यहाँ तो समयसार जैसे महासिद्धान्त, जिसमें पुकार करके कहा। द्रव्यलिंग। द्रव्यलिंग अर्थात् वह महाव्रत का विकल्प है, नग्नपना उसे दृष्टि में से छोड़ दे। समयसार में आया न अन्तिम? अन्तिम गाथाओं में। आहाहा! पंच महाव्रत का विकल्प है, वह द्रव्यलिंग है और नग्नपना द्रव्यलिंग है। वस्त्र-पात्र, वह द्रव्यलिंग नहीं; वह तो कुलिंग है। उसे भगवान कहते हैं कि छोड़ उसकी दृष्टि। अन्दर स्वरूप में रमणता कर। तेरा भगवान आनन्दकन्द परमात्मा विराजता है, उसमें जा, उसमें स्थिर हो तो मुक्ति होती है। नहीं तो मुक्ति नहीं होगी।

मुमुक्षु : उसमें विहार कर।

पूज्य गुरुदेवश्री : विहार कर, ध्यान कर। आता है न? ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य की बात स्पष्ट। दुनिया की, समाज की समतौलना रहे या न रहे, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। मार्ग यह है, भाई! केवली का-परमात्मा का कहा हुआ अनादि सनातन सत्य का धोध वीतराग का यह है कि साधु को तिलतुषमात्र का टुकड़ा भी नहीं हो सकता। यह बाद में कहेंगे, जो तिलतुषमात्र रखे, वह निगोद में जायेगा। मुनिपना माने... यह १८ में कहेंगे। समझ में आया? यहाँ तो साधु नहीं, इतना कहते हैं। निर्णय तो कर, निर्णय तो कर। सत्य ऐसा है, यह कहते हैं। आहाहा!

यहाँ आशंका है कि... आहार करते हैं सो पाणिपात्र (करपात्र) अपने हाथ ही में भोजन करते हैं, वह भी अन्य का दिया हुआ प्रासुक अन्न मात्र लेते हैं,... लो! हाथ में लेते हैं वह भी अन्य का दिया हुआ, वह भी प्रासुक अर्थात् निर्दोष अन्न मात्र ले। लो। **वह भी एक स्थान पर ही लेते हैं,...** है न? एक स्थान। खड़े-खड़े एक स्थान। समझ में आया? ऐसा साधु का मार्ग अनादि का वीतराग का परम्परा मार्ग यह था। उसमें से यह सब भ्रष्ट होकर बिगाड़कर सब निकले हुए हैं। जैनधर्म को मलिन करके सब निकले हैं। ऐ... जादवजीभाई! ऐसा है यह तो अब। आहाहा! कहाँ गया तुम्हारा? माणेकलाल गया? समझ में आया? वह भी एक बार, बारम्बार नहीं। यहाँ तो तीन-तीन बार पात्र बदले। सवेरे दूध-चाय, सवेरे रोटियाँ, शाम को खिचड़ी-कढ़ी।

मुमुक्षु : रोटियाँ हो ? रोटियाँ... ऐई मजा...

पूज्य गुरुदेवश्री : रोटियाँ। दोपहर में और भजिया-बजिया बनाना उस समय आऊँगा। भजिया करके रखे-ऐसा कौन कहता था ? कोई कहता था न ? कोई कहता था ? कौन कहता था ? तुम ? धनजीभाई कहते थे, लो। गरणी दोपहर में आवे। हम उस समय आयेंगे। कुकर्म कर डाले हैं। वीतराग मार्ग को उथल-पुथल कर डाला है। कोई देव भी आते नहीं। किसके आवे ? जैसे जिसे भाव हो उसमें विघ्न... आहाहा! भगवान के समय में तो वे बहुत साधु (दीक्षित) हुए थे। बाहर से नग्नरूप से जहाँ कन्दमूल खाने लगे... (देवों ने आकर कहा), नहीं, ऐसा नहीं होगा। नग्नपना बदल डालो। दिगम्बर मुनि होकर कन्दमूल खाओ, फल-फूल खाओ, (यह नहीं चलेगा)। भगवान के साथ चार हजार साधुओं ने दीक्षा ली थी। निभ नहीं सके। भगवान ने बारह महीने तक आहार नहीं लिया। उन सबने हो...हो... करके साथ में (दीक्षा) ली थी। अन्त में देव का हुकम हुआ, पश्चात् वृक्ष की छाल पहनकर दूसरा वेश किया, पश्चात्... नग्नपना करके ऐसा करोगे तो दण्ड देंगे। यहाँ तो नग्नपना करके सब करे तो कोई देव आता नहीं। आहाहा! देव दण्डित है तो भी कोई देव आता नहीं। आहाहा!

कहते हैं, **अन्य स्थान में नहीं लेते हैं।** देखा! एक घर से दूसरे घर (नहीं जाते)। यहाँ थोड़ा ले और थोड़ा वहाँ ले और थोड़ा यहाँ ले। एक बार भी थोड़ा यहाँ ले और थोड़ा यहाँ ले, ऐसा नहीं। बहुत बार तो नहीं परन्तु एक जगह लेकर दूसरी जगह जाना, तीसरी जगह जाना (ऐसा नहीं है)। एक जगह हो और दूसरी ऐसी लाईन हो तो लेकर आवे। वह ले सके। यहाँ से फिर यहाँ ले और वहाँ ले, ऐसा मार्ग वीतराग का नहीं होता।

भावार्थ - जो मुनि आहार ही पर का दिया हुआ प्रासुक योग्य अन्नमात्र निर्दोष एकबार दिन में... देखा! **जो मुनि आहार ही पर का दिया हुआ प्रासुक योग्य अन्नमात्र...** वापस ऐसा। दूसरी कोई चीज़ भी नहीं। **निर्दोष एकबार दिन में...** इतने सब विशेषण हैं। उनके लिये बनाया हुआ नहीं, **एकबार दिन में अपने हाथ में लेते हैं...** कितने विशेषण रखे! **तो अन्य परिग्रह किसलिए ग्रहण करे?** दूसरा तो परिग्रह मुनि को होता नहीं। **अर्थात् ग्रहण नहीं करे, जिनसूत्र में इस प्रकार मुनि कहे है।** उसे भगवान ने मुनि कहा है। अन्तर आत्मा का अनुभव हो, आनन्द का ध्यान हो, वीतरागता

प्रगट हुई हो, बाहर में नग्नदशा हो, आहार में एक बार हाथ में आहार ले। वह भी निर्दोष, उनके लिये बनाया हुआ आहार ले नहीं। अन्न। वापस कोई उसमें पैसा डाले वह नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐसे मुनि को जैनदर्शन में मुनि कहा जाता है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-१८

आगे कहते हैं कि अल्प परिग्रह ग्रहण करे उसमें दोष क्या है ? उसको दोष दिखाते हैं -

जहजायरूवसरिसो तिलतुसमेत्तं ण गिहदि हत्थेसु।
जइ लेइ अप्पबहुयं तत्तो पुण णिग्गोदम्।।१८।।

यथाजातरूपसदृशः तिलतुषमात्रं न गृह्णाति हस्तयोः।
यदि लाति अल्पबहुकं ततः पुनः याति निगोदम्।।१८।।

है जन्म-सम आकार कर में नहीं तिल-तुष मात्र भी।
लेते यदी थोड़ा-बहुत लें हो निगोद दशा वही।।१८।।

***अर्थ* - मुनि यथाजातरूप है; जैसे जन्मता बालक नग्नरूप होता है, वैसे ही नग्नरूप दिगम्बर मुद्रा का धारक है, वह अपने हाथ से तिल के तुषमात्र भी कुछ ग्रहण नहीं करता है और यदि कुछ थोड़ा-बहुत लेवे-ग्रहण करे तो वह मुनि ग्रहण करने से निगोद में जाता है।**

***भावार्थ* - मुनि यथाजातरूप दिगम्बर निर्ग्रन्थ को कहते हैं, वह इस प्रकार होकर के भी कुछ परिग्रह रखे तो जानो कि इनके जिनसूत्र की श्रद्धा नहीं है, मिथ्यादृष्टि है; इसलिए मिथ्यात्व का फल निगोद ही है। कदाचित् कुछ तपश्चरणादिक करे तो उससे शुभकर्म बांधकर स्वर्गादिक पावे तो भी फिर एकेन्द्रिय होकर संसार में ही भ्रमण करता है।**

यहाँ प्रश्न है कि मुनि के शरीर है, आहार करता है, कमंडलु, पीछी, पुस्तक रखता है, यहाँ तिल तुषमात्र भी रखना नहीं कहा, सो कैसे ?

इसका समाधान यह है कि – मिथ्यात्वसहित रागभाव से अपनाकर अपने विषय –कषाय पुष्ट करने के लिए रखे, उसको परिग्रह कहते हैं, इस निमित्त कुछ थोड़ा बहुत रखने का निषेध किया है और केवल संयम के निमित्त का तो सर्वथा निषेध नहीं है। शरीर तो आयुपर्यन्त छोड़ने पर भी छूटता नहीं है, इनका तो ममत्व ही छूटता है, सो उसका निषेध किया ही है। जबतक शरीर है, तबतक आहार नहीं करे तो सामर्थ्य ही नहीं हो, तब संयम नहीं सधे, इसलिए कुछ योग्य आहार विधिपूर्वक शरीर से रागरहित होते हुए भी लेकर के शरीर को खड़ा रखकर संयम साधते हैं।

कमंडलु बाह्य शौच का उपकरण है, यदि नहीं रखे तो मलमूत्र की अशुचिता से पंच परमेष्ठी की भक्ति–वंदना कैसे करे और लोकनिंद्य हो। पीछी दया का उपकरण है, यदि नहीं रखे तो जीवसहित भूमि आदि की प्रतिलेखना किससे करे ? पुस्तक ज्ञान का उपकरण है, यदि नहीं रखे तो पठन–पाठन कैसे हो ? इन उपकरणों का रखना भी ममत्वपूर्वक नहीं है, इनसे रागभाव नहीं है। आहार–विहार–पठन–पाठन की क्रियायुक्त जबतक रहे; तबतक केवलज्ञान भी उत्पन्न नहीं होता है, इन सब क्रियाओं को छोड़कर शरीर का ही सर्वथा ममत्व छोड़ ध्यान अवस्था लेकर तिष्ठे, अपने स्वरूप में लीन हो, तब परम निर्ग्रन्थ अवस्था होती है, तब श्रेणी को प्राप्त हुए मुनिराज के केवलज्ञान उत्पन्न होता है, अन्य क्रियासहित हो, तबतक केवलज्ञान उत्पन्न नहीं होता है, इस प्रकार निर्ग्रन्थपना मोक्षमार्ग जिनसूत्र में कहा है।

श्वेताम्बर कहते हैं कि भव स्थिति पूरी होने पर सब अवस्थाओं में केवलज्ञान उत्पन्न होता है – तो यह कहना मिथ्या है, जिनसूत्र का यह वचन नहीं है, इन श्वेताम्बरों ने कल्पित सूत्र बनाये हैं, उनमें लिखा होगा। फिर यहाँ श्वेताम्बर कहते हैं कि जो तुमने कहा, वह तो उत्सर्गमार्ग है, अपवादमार्ग में वस्त्रादिक उपकरण रखना कहा है, जैसे तुमने धर्मोपकरण कहे, वैसे ही वस्त्रादिक भी धर्मोपकरण हैं; जैसे क्षुधा की बाधा आहार से मिटाकर संयम साधते हैं, वैसे ही शीत आदि की बाधा वस्त्र आदि से मिटाकर संयम साधते हैं, इसमें विशेष क्या ? इनको कहते हैं कि इसमें तो बड़े दोष आते हैं तथा कोई कहते हैं कि काम विकार उत्पन्न हो, तब स्त्री सेवन करे तो इसमें क्या विशेष ? इसलिए इस प्रकार कहना युक्त नहीं है।

क्षुधा की बाधा तो आहार से मिटाना युक्त है, आहार के बिना देह अशक्त हो जाता है तथा छूट जावे तो अपघात का दोष आता है, परन्तु शीत आदि की बाधा तो

अल्प है, यह तो ज्ञानाभ्यास आदि के साधन से ही मिट जाती है। अपवादमार्ग कहा, वह तो जिसमें मुनिपद रहे, ऐसी क्रिया करना तो अपवादमार्ग है, परन्तु जिस परिग्रह से तथा जिस क्रिया से मुनिपद भ्रष्ट होकर गृहस्थ के समान हो जावे, वह तो अपवादमार्ग नहीं है। दिगम्बर मुद्रा धारण करके कमंडलु-पीछी सहित आहार-विहार उपदेशादिक में प्रवर्ते, वह अपवादमार्ग है और सब प्रवृत्ति को छोड़कर ध्यानस्थ हो शुद्धोपयोग में लीन हो जाने को उत्सर्गमार्ग कहा है। इस प्रकार मुनिपद अपने से सधता न जानकर किसलिए शिथिलाचार का पोषण करना ? मुनिपद की सामर्थ्य न हो तो श्रावकधर्म ही का पालन करना, परम्परा से इसी से सिद्धि हो जावेगी। जिनसूत्र की यथार्थ श्रद्धा रखने से सिद्धि है, इसके बिना अन्य क्रिया सब ही संसारमार्ग है, मोक्षमार्ग नहीं है, इस प्रकार जानना ।।१८।।

प्रवचन-३२, गाथा - १८-१९, शुक्रवार, आषाढ़ शुक्ल ७, दिनांक १०-०७-१९७०

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य मुनि आचार्य थे। उन्होंने यह सूत्रपाहुड़ बनाया, आठ पाहुड़ में। वास्तव में सूत्र किसे कहना, उसकी इसमें व्याख्या है। सूत्र और सिद्धान्त जो भगवान ने, तीर्थंकरदेव ने कहे हुए, वे परम्परा से सूत्र कैसे आये और उसमें क्या कथन था और उससे विरुद्ध शास्त्र रचे, कल्पित, वे सब मिथ्यासूत्र हैं, सच्चे सूत्र और सच्चे शास्त्र वे नहीं हैं, ऐसा सिद्ध करते हैं, भाई ! यहाँ। भगवानजीभाई ! पक्षवालों को जरा कठिन लगे ऐसा है। वीतराग का मार्ग अनादि से सनातन सत्य चला आता था। भगवान के पश्चात् ६०० वर्ष तक, फिर उसमें से यह श्वेताम्बर निकले। उन्होंने सब कल्पित सूत्र बनाये और उसमें से यह स्थानकवासी तो अभी ५०० वर्ष से निकले, इन श्वेताम्बर में से। उसमें से तेरापन्थी तो अभी २०० वर्ष में स्थानकवासी में से निकले। इन सबके कहे हुए सिद्धान्तसूत्र भगवान के कहे हुए नहीं हैं, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। आचार्य स्वयं अपनी कल्पना से अपना सम्प्रदाय चलाने के लिये वे शास्त्र रचे हैं। भगवान के शास्त्र में तो ऐसा कहा है, देखो ! १८वीं गाथा। जरा कड़क गाथा, कठिन है।

आगे कहते हैं कि अल्प परिग्रह ग्रहण करे उसमें दोष क्या है ? साधु हो और थोड़ा

वस्त्र रखे एकाध टुकड़ा या पात्र का एकाध पात्र रखे, ऐसा परिग्रह रखे, उसमें दोष क्या?

जहजायरूवसरिसो तिलतुसमेत्तं ण गिहदि हत्थेसु।
जइ लेइ अप्पबहुयं तत्तो पुण णिग्गोदम्।।१८।।

अर्थ - **मुनि यथाजातरूप है,...** यथाजात। जैसा माँ से जन्मा वैसा और यथाजात— जैसा तीर्थंकर का शरीर नग्न था वैसा। समझ में आया? **मुनि यथाजातरूप है, जैसे जन्मता बालक नग्नरूप होता है, वैसे ही नग्नरूप दिगम्बर मुद्रा का धारक है,...** मुनि का मार्ग तो अनादि का वीतराग मार्ग में नग्नपना-दिगम्बरपना, बाह्य और अन्तर में तीन कषाय का अभाव, ऐसी वीतरागदशा, ऐसा मुनिपना था। अनादि का ऐसा है।

वह अपने हाथ से तिल के तुषमात्र भी कुछ ग्रहण नहीं करता;... तिल का छिलका जितना भी यदि परिग्रह रखे, **कुछ ग्रहण नहीं करता;...** वह तिल का छिलका जितना भी परिग्रह, मुनि दिगम्बर सन्त सच्चे वीतराग ने कहे हुए मुनि इतना तिल के छिलके जितना भी परिग्रह नहीं रखते। **और यदि कुछ थोड़ा-बहुत लेवे...** थोड़ा-बहुत परिग्रह रखे तो, **वह मुनि ग्रहण करने से निगोद में जाता है।** ऐसी बात ऐसी आयी है, भाई! ऐई! कठोर बात है या नहीं? कठोर है या जैसी है वैसी है? यह परम सत्य है। सूत्र में-सिद्धान्त में जो शास्त्र में, वस्त्र दो-चार रखना और मुनिपना मनवाया है, वे सब मिथ्यादृष्टि के बनाये हुए शास्त्र हैं। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : ...निगोद में...

पूज्य गुरुदेवश्री : निगोद में... इसका कारण है कि पूरा मार्ग बदल डाला। ऐसा कहो न, बराबर है। ककड़ी के चोर को फाँसी की सजा, ऐसा तो नहीं होगा न? प्रश्न तो बराबर है, चिमनभाई! बात यह है कि आत्मा का जहाँ तीन कषाय का अभाव, ऐसी दशा होती है, उसे वस्त्र रखने का विकल्प / राग नहीं होता। पात्र रखने के राग का अंश नहीं होता। ऐसा तीव्र आस्रव उसे नहीं होता।

मुमुक्षु : वह तीव्र आस्रव है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तीव्र आस्रव है। ऐसी बात है जरा।

मुमुक्षु : मुनि को ऐसा आस्रव होता ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा होता नहीं। उस भूमिका के अनुसार वस्त्र-पात्र लेने का राग तीव्र आस्रव है, वह आस्रव उन्हें होता नहीं। और वह आस्रव होने पर भी मुनिपना मानते हैं, वे सब वर्तमान कदाचित् कोई ब्रह्मचर्य आदि क्रिया पाले तो स्वर्ग में एकाध भव जाए परन्तु वहाँ से फिर से, मनुष्य आदि पशु होकर फिर निगोद में जानेवाले हैं। आलू, शक्करकन्द में उपजनेवाले हैं। ऐसा कठिन मार्ग है, बापू! आहाहा! पहले-पहले सुनाया हो। यहाँ से परिवर्तन किया तब (कहें) तो लोग भड़के। अब तो यह ३६ वाँ चातुर्मास चलता है। समझ में आया?

सर्वज्ञ तीर्थंकरदेव परमेश्वर केवलज्ञानी महावीर परमात्मा आदि अनन्त तीर्थंकरों ने सिद्धान्त में शास्त्र में मुनिपने को नग्नपने का वर्णन किया है और जिसने वस्त्र-पात्रसहित मुनिपना मनाया है, वे सब मिथ्यादृष्टि के कल्पित शास्त्र हैं। स्पष्ट बात है, इसमें कुछ... आहाहा! पहले सुने तो चिल्लाहट मचाये, तुम्हारे पिता हिम्मतभाई भी। श्रीमद् के अनुयायियों में भी चिल्लाहट मचाये। बापू! मार्ग तो यह है। चारित्रवन्त गुरु ऐसे होते हैं कि उन्हें तीन कषाय का अन्दर अभाव होता है। जिससे वस्त्र, पात्र ग्रहण के विकल्प का-राग का-आस्रव का उन्हें अभाव होता है। ऐसे को वस्त्र, पात्र रखकर राग का आस्रव सेवन कर और मुनिपना मानना और मुनिपना इसे कहना, ऐसे सिद्धान्त कहे हों, वे सिद्धान्त भी खोटे, उनके माननेवाले भी खोटे और उसे पालनेवाले वस्त्रसहित मुनिपना माननेवाले, मनानेवाले और माननेवाले को भला जाननेवाले तीनों धीरे-धीरे एकेन्द्रिय में जानेवाले हैं। धीरुभाई! ऐसा मार्ग है। जरा सूक्ष्म है। अब मौके से आये और उसमें यह गाथा आयी। समझ में आया? आहाहा! भारी कठिन काम।

वस्तु ऐसी भगवान ने कही है। वह भी भगवान के नाम से शास्त्र चढ़ा दिये। आचारांग और सूयगडांग और उत्तराध्ययन तथा दशवैकालिक और... बिल्कुल भगवान के कहे हुए नहीं हैं। मिथ्यादृष्टि साधु हुआ, उसने यह बनाये हुए हैं। माने, न माने स्वतन्त्र जगत की चीज़ है। कहो, समझ में आया?

कुन्दकुन्दाचार्य महाराज पंच महाव्रतधारी सत्यव्रत के रखनेवाले और जिन्हें तीन कषाय के अभाव की वीतरागदशा प्रगट हुई है, वे कहते हैं, जो कोई दिगम्बर मुनि के

अतिरिक्त मुनिपना नाम धराकर थोड़ा-बहुत परिग्रह वस्त्र रखे, तिलतुष-तिल के छिलके जितना भी (रखे तो वह निगोद में जाएगा)। उसने बहुत महीने सेवन किया है न। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तीन कोटि से त्याग कराया। काया से वस्त्र का त्याग कब होगा? कि नग्न हो तो। काया का त्याग। मन, वचन, काया से परिग्रह का त्याग चाहिए न? नौ कोटि से त्याग होवे तो वस्त्र, पात्र तो परिग्रह है। काया से त्याग हो, तब उसके ऊपर वस्त्र, पात्र रहे नहीं। ऐसी स्थिति है। आहाहा!

मुमुक्षु : मूर्छा परिग्रह।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूर्छा परिग्रह परन्तु यह राग, वस्त्र है वही मूर्छा है। वस्त्र रखे और मूर्छा नहीं, ऐसा नहीं है। वस्त्र, पात्र रखने का भाव ही मूर्छा है, कषाय है। उसे तीन कषाय का अभाव नहीं हो सकता। ऐसा मार्ग है, भाई! समझ में आया? जिस कुल में-सम्प्रदाय में जन्मे, उसका उसे पोषण हो परन्तु मार्ग तो यह है। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : जैनधर्म को मलिन कर दिया है। वास्तव में तो ऐसा है। श्वेताम्बरों ने शास्त्र रचकर वीतराग मार्ग को मलिन किया है। वीतरागी मार्ग था। आहाहा! भले कहते हैं, उच्च पद न पालन कर सके तो निम्न पद-गृहस्थाश्रम में ब्रह्मचारीरूप से रहकर गृहस्थाश्रम में भी धर्म हो सकता है। वस्त्र, पात्र रखे उसे धर्म नहीं होता, ऐसा कुछ है? परन्तु गृहस्थाश्रम में धर्मी ब्रह्मचारी रहकर या गृहस्थाश्रम में रहकर वस्त्र क्या, राजपाट हो परन्तु सम्यग्दर्शन और ज्ञान निर्मल हो तो वह धर्म कर सकता है। परन्तु उच्च पद नाम धराकर निम्नपद की क्रिया के साधन रखे, वह बात है यहाँ तो। समझ में आया?

और यदि थोड़ा-बहुत लेवे, ग्रहण करे तो वह मुनि ग्रहण करने से निगोद में जाता है। एकेन्द्रिय होगा। वनस्पति। अनन्त काल में वापस मनुष्य होना उसे दुर्लभ हो जाएगा। श्यामदासजी! ऐसा मार्ग है, भाई! आहाहा! ऐई! प्रकाशदासजी! पहले दिन आये हो और ऐसा कहे तो भड़के, भागो यहाँ से। हाय... हाय..! कितने वर्ष उस साधु के

पास रहे। हस्तिमलजी और फलाणे मलजी और अमुक मलजी सब कहते हों कि ऐसा मुनिपना है। लो, तुम मुनिपना। भगवान के सिद्धान्त वे नहीं हैं। कल्पित बनाये हुए शास्त्रों के वे मुनि को वस्त्र-पात्र रखने का कहा है, वे सब कल्पित मिथ्यादृष्टि ने शास्त्र रचे। आज माने, कल माने, बाद में माने, यह मानने से ही छुटकारा है। ऐई! मोहनभाई! अब तुम्हारे क्या है? अब तो यहाँ पड़े हैं। समझ में आया? जिसे श्रद्धा सुधारनी हो, उसे इस प्रकार से वस्त्र-पात्र जिस शास्त्र में मुनि को कहे हों, वह सिद्धान्त माननेयोग्य नहीं है। वस्त्र-पात्र रखकर मुनिपना मानते हों, उस मुनि को मुनिपना माननेयोग्य नहीं है। आहाहा! भारी काम।

भावार्थ-मुनि यथाजातरूप दिगम्बर निर्ग्रन्थ को कहते हैं। मुनि तो यथाजात—जैसा तीर्थंकर का नग्नपना था और जैसा नग्न जन्मा, वैसा दिगम्बर निर्ग्रन्थ को कहते हैं। एकदम निर्ग्रन्थ। कहना निर्ग्रन्थ और वस्त्र रखना, ग्रन्थ-वस्त्र तो ग्रन्थ है। समझ में आया? ग्रन्थ रखे, वह तो गृहस्थी है। समझ में आया? पैसा रखे तो ग्रन्थ, तो वस्त्र-पात्र परिग्रह नहीं? वस्त्र, पात्र परिग्रह न हो तो गृहस्थाश्रम में वस्त्र रखे तो उसे भी मुनि मानो। समझ में आया? यदि वह परिग्रह न हो तो। परिग्रह है, भाई! आहाहा!

वह इस प्रकार होकर के भी कुछ परिग्रह रखे तो जानो कि जिनसूत्र की श्रद्धा नहीं है, मिथ्यादृष्टि है,... शान्ति से यह सुननेयोग्य है, भाई! यह चौथी बार वाँचन होता है। अब स्पष्ट होता है न? अष्टपाहुड़। (संवत्) २००२ के वर्ष में वाँचन किया था। २०११, २०१७ और यह २०२६। ऐसा बारम्बार वाँचन हो तो लोग भड़के इसलिए... ऐई..! शिवलालभाई! वीतराग का मार्ग परमेश्वर का केवली तीर्थंकरदेव, अनादि तीर्थंकर हुए, महावीर आदि। भगवान के बाद ६०० वर्ष तक यह सच्चा मार्ग रहा। दिगम्बर मुनियों प्ररूपणा सनातन अनादि सत्य थी वह (करते थे)। फिर बारह वर्ष के तीन दुष्काल पड़े। उसमें से श्वेताम्बर पन्थ निकला। समझ में आया? ऐ... शान्तिभाई! तुम्हारे क्या है अब? उसमें थे वहाँ तक... लड़की आयी और अब तुम आये। मार्ग ऐसा है। आहाहा!

जिसकी श्रद्धा में बिगाड़ है, उसका ज्ञान, श्रद्धान सब... पहले आया था न? **'दंसण भट्ठा, णाण भट्ठा, चरित्त भट्ठा'** श्रद्धा भ्रष्ट है, वह तो ज्ञान और चारित्र इन सबसे भ्रष्ट है। आहाहा! कठिन काम। जगत के सामने खड़े रहना और ऐसा मार्ग बाहर कहना। यह तो कुन्दकुन्दाचार्य के बनाये हुए शास्त्र हैं। मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगल

कुन्दकुन्दार्यो। दिगम्बर में तो तीसरे नम्बर में कुन्दकुन्दाचार्य (आते हैं)। श्वेताम्बर में तीसरे नम्बर पर स्थूलीभद्र (आते हैं)। कल्पना से बनाये हुए और वे आये हुए नये। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पृथक् तो इससे पहले पहले पड़ गये, फिर निकल गये। नाम रखा। समझ में आया?

जिनसूत्र की श्रद्धा नहीं है, मिथ्यादृष्टि है इसलिए मिथ्यात्व का फल निगोद ही है। आहाहा! अनन्त तीर्थंकरों का मार्ग विरोध किया। अनन्त केवलियों ने कहे हुए का नकार किया। अनन्त मुनियों ने पालन किये हुए मुनिपने का यह मुनिपना ऐसा नहीं, वस्त्र-पात्र सहित भी मुनिपना होता है, (ऐसा) अनन्त मुनियों का अनादर, अशातना की। अर्थात् कि अनन्त आत्मा के गुणों की उसने अशातना की। सेठी! कहो, खानदान लोगों को ऐसा बोलना पोसाये? यहाँ तो ऐसा स्पष्ट लिखते हैं। सबको समान लगाना, सबको समभाव रखना। समभाव (अर्थात्) सच्चा और खोटा, जहर और अमृत पर समभाव रखना? और दोनों खाना साथ में? समझ में आया?

कहते हैं, **कदाचित् कुछ तपश्चरणादिक करे...** यह ब्रह्मचर्य पालता हो, दया पालता हो, आहार-पानी निर्दोष, उनके माने हुए लेता हो, ऐसी क्रिया करे तो कदाचित् शुभभाव हो और स्वर्ग में जाए। परन्तु मिथ्यादृष्टि साथ में है-मिथ्यादृष्टिपना है, वहाँ से फिर से अन्त में तो एकेन्द्रिय में जानेवाले हैं। निगोद में जानेवाले हैं। आहाहा! गजब बात है। कहो, जादवजीभाई! वहाँ तो सब चारित्र में प्रमुख थे। यहाँ कहते हैं कि वह तो अज्ञान का प्रमुखपना था। ऐई! वीरचन्दभाई! क्या यह तुम्हारे वहाँ सब? नैरोबी में। आहाहा!

कहते हैं, वस्त्र-पात्र रखकर मुनि मनावे, माने तो कदाचित् वर्तमान में ब्रह्मचर्य आदि कोई क्रिया दया, दान की होती है तो वर्तमान में पुण्य बाँधकर मिथ्यादृष्टिसहित स्वर्ग में, देव में जाए। वहाँ से फिर चार गति में एकेन्द्रिय में जाकर भटकेगा, ऐसी बात है, भाई! भारी कठिन काम। ऐई! सुजानमलजी!

मुमुक्षु : कलंकित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कलंकित।

रागादि पाले तो भी **फिर एकेन्द्रिय होकर संसार ही में भ्रमण करता है।** क्या कहा?

मुमुक्षु : निगोद में तो जानेवाले हैं, ऐसा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : जानेवाले हैं। बीच में शुभभाव होवे तो स्वर्ग आदि जा। उसका धाम वहाँ। बीच में धर्मशाला थोड़ी। मिथ्यादृष्टिपना है, झूठे शास्त्र को माने, झूठा मुनिपना मनवाया, इसलिए उसका धाम तो (निगोद है)। मुनि सच्चे हैं, दिगम्बर हैं, तीन कषाय का अभाव है, ऐसे मुनि को कदाचित् राग बाकी रहे तो उसे भी स्वर्ग में रहना पड़े और वहाँ से (आकर) मुनि होकर मोक्ष जाएगा। और उस स्वर्ग में जाकर फिर ढोर, मनुष्य होकर निगोद में जाएगा। समझ में आया?

यहाँ प्रश्न है कि मुनि के शरीर है, आहार करता है,... मुनि के शरीर है या नहीं? **आहार करता है, कमण्डलु, पिच्छी, पुस्तक रखता है,...** दिगम्बर मुनि भी भगवान की आज्ञा के मुनि कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, पूज्यपादस्वामी इत्यादि। वीतराग के सन्त पुस्तक रखे, कमण्डलु रखे, पिच्छी रखे। **यहाँ तिल-तुषमात्र भी रखना नहीं कहा, सो कैसे?** तुम तो कहते हो कि तिल के तुष जितना रखना नहीं और ऐसा तो दिगम्बर में भी रखते हैं। ऐसा शिष्य का प्रश्न है। समझने के लिये प्रश्न है, हों! तुम तिल के छिलके जितना राग है तो निगोद में जाएगा, (ऐसा कहते हो)। यहाँ तो मुनि महासन्त सच्चे वीतरागी मुनि पुस्तक रखे, कमण्डल रखे, पिच्छी रखे वह क्या है? हमें समझ में नहीं आता। तो हमें समझाओ। क्या है यह सब?

इसका समाधान यह है कि मिथ्यात्व-सहित रागभाव से अपनाकर... विपरीत श्रद्धासहित रागभाव को अपना मानकर **अपने विषय-कषाय पुष्ट करने के लिये रखे...** विषय-कषाय पोषण के लिये रखे। देखो! कितनी शर्त है इसमें! विपरीत मिथ्यात्वसहित रागभाव से अपने विषय-कषाय पोषण के लिये रखे, **उसको परिग्रह कहते हैं,...** परिग्रह की व्याख्या यह की। परिग्रह की व्याख्या यह। मिथ्याश्रद्धासहित, रागभावसहित अपना मानकर, अपने हित के लिये मानकर विषय-कषाय पोषण के लिये रखे, वह परिग्रह। **इस निमित्त कुछ थोड़ा-बहुत रखने का निषेध किया है...** इस कारण से कुछ भी थोड़ा बहुत रखना निषेध्य है। **केवल संयम के निमित्त का तो सर्वथा**

निषेध नहीं है। संयम के निर्वाह के लिये कहीं निषेध नहीं है।

शरीर तो आयु पर्यन्त छोड़ने पर भी छूटता नहीं है... शरीर तो कहीं छूट नहीं जाता। वह तो आयुष्य हो, वहाँ तक रहे बिना जाता नहीं। **इसका तो ममत्व ही छूटता है,...** शरीर की तो ममता छूटे। शरीर नहीं छूटता। बहुत सरस स्पष्टीकरण किया है। **सो उसी का निषेध किया ही है।** ममता का तो निषेध किया है। शरीर की भी ममता तो करना नहीं। **जब तक शरीर है, तब तक आहार नहीं करे तो सामर्थ्य ही नहीं हो,...** जब तक शरीर है, और आहार आदि न ले तो शरीर में सामर्थ्य रहे नहीं, इसलिए आहार लेने की वृत्ति होती है। **तब संयम नहीं सधे,...** शरीर निर्बल पड़ जाये और आहार न हो तो (शरीर) निभ नहीं सकता।

इसलिए कुछ योग्य आहार... दिगम्बर मुनि सच्चे सन्त वनवासी। योग्य आहार— उनके लिये बनाया हुआ आहार नहीं, पानी–आहार भी उनके लिये बनाया हुआ नहीं। **विधिपूर्वक...** वह भी विधि से दे तो ले। यह विधि–तिष्ठ... तिष्ठ... तिष्ठ। निर्दोष आहार पानी जो हो। यह तो अन्तर के भावलिंगसहित द्रव्यलिंग की बात है। अकेले नग्न दिगम्बर हों, उन्हें भी यहाँ साधु गिना नहीं। नग्न मुनि हो परन्तु अन्दर में तो अभी दृष्टि मिथ्यात्व है। राग की क्रिया को धर्म माने, महाव्रत के परिणाम राग है, उसे चारित्र माने, वह भी मिथ्यादृष्टि है। अरे! गजब बात, भाई! ऐसी।

विधिपूर्वक शरीर से रागरहित होते हुए लेकर के शरीर को खड़ा रखकर संयम साधते हैं। रागरहित होते हुए शरीर को खड़ा रखते हैं। नहीं कहते? कि शरीर को खड़ा रखते हैं। यह ओंगन (स्निग्ध पदार्थ / ग्रीस) दे न? गाड़ी को ओंगन? ओंगन कहते हैं न? गाड़ी के पहिये को ओंगन नहीं देते? ओंगन नहीं समझते? यह गाड़ी के पहियों में ऐडी और कपड़े नहीं आते? ओंगन। इस प्रकार यह ओंगन दे इतना। हाथ चलाने को। गाड़ी चले, दूसरा क्या है? नग्न शरीर है। आहार बिना नहीं चलता, इसलिए जरा ओंगन देने का भाव आता है। वह भी संयम के हेतु से। किसी शरीर की ममता से नहीं। आहाहा! ऐसा मुनि का मार्ग, परमेश्वर का कहा हुआ लोगों ने विपरीत कर डाला। समझ में आया? आहाहा!

नव तत्त्व की श्रद्धा बदल गयी। वस्त्र रखकर साधुपना मनवाया, शास्त्र को माना, उस शास्त्र में नव तत्त्व की विपरीत मान्यता हुई। क्यों? कि मुनि है, उन्हें तो तीन कषाय

का अभाव हो, तब उन्हें वस्त्र-पात्र लेने के विकल्प का आस्रव नहीं होता, तथापि उन्हें ऐसा आस्रव होवे तो उसे आस्रवतत्त्व की विपरीत श्रद्धा हुई। संवर उग्र नहीं होने पर भी उसे छठे गुणस्थान के योग्य संवर, निर्जरा मनवाया। संवर-निर्जरा की विपरीत श्रद्धा। आस्रव की विपरीत श्रद्धा। छठवें गुणस्थान में हो, उस जीव का बहुत ही आश्रय लिया हुआ होता है। जीव भगवान ज्ञायकमूर्ति है, उसका बहुत आश्रय लिया हुआ हो, तब उसे संवर, निर्जरा की योग्यता इतनी होती है। इससे नीची-छोटी मानता है तो उसने जीव का आश्रय उतना लिया नहीं। जीव की भूल, संवर-निर्जरा की भूल, आस्रव की भूल, यह अजीव का संयोग कितना रहता है, उसकी भूल। क्योंकि मुनि हो उसे तीन कषाय टल गये, तब आहार-पानी आदि लेने का विकल्प होता है। उसे यह नहीं होता। अर्थात् अजीव का संयोग इतना होता है, इससे उसकी विपरीत मान्यता हुई। एक-एक तत्त्व की विपरीत मान्यता है।

मुमुक्षु : जैनपना ही नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। उसमें जैनपना ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : दो हजार...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा! तब... हुआ।

कमण्डलु बाह्य शौच का उपकरण है,.. कमण्डल रखते हैं, वह तो दिशा (मल विसर्जन) में मैल होता है, उसे साफ करने के लिये होता है। **यदि नहीं रखे तो मल-मूत्र की अशुचिता से...** मल-मूत्र की अशुचिता से **पंच परमेष्ठी की भक्ति वन्दना कैसे करे?** पंच परमेष्ठी की भक्ति वन्दना कर नहीं सकते। **और लोकनिन्द्य हो।** पानी का उपकरण न रखे तो विष्टा, पेशाब ऐसा का ऐसा शरीर में रहे तो निन्द्य हो। शास्त्र को छुआ जाए नहीं, स्वाध्याय हो नहीं। इस लिये कमण्डल में पानी रखकर शौच के लिये रखते हैं। समझ में आया? पीने के लिये नहीं रखते। आहाहा! यहाँ तो पानी लावे तो शाम तक पीया करे। आधे मण, दो सेर पानी। और वह परिग्रह नहीं ऐसा कहे। दस-दस, बीस-बीस साधु हों तो पानी की मटकी भरी हो। ठण्डा। सवेरे पीवे, दोपहर में पीवे, शाम को पीवे। अरे! यह कहीं मार्ग है, बापू! वीतराग के मुनियों का यह मार्ग नहीं। यह अन्यमत के मार्ग का

मार्ग है। मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है, वे सब अन्यमत हैं। श्वेताम्बर, स्थानकवासी और तेरापन्थी, वे जैन भी नहीं हैं। अन्य है। ऐई!

पिच्छी दया का उपकरण है, यदि नहीं रखे तो जीवसहित भूमि आदि की प्रतिलेखना किससे करे? ऊन नहीं होती। ऊन में तो जीवांत होती है। बकरे की। मोरपिच्छी बाहर बहुत मिले। बारह महीने मोर पंख निकालते हैं। रामजीभाई कहते थे कि हमारे खेत में मोरपिच्छी कितनी ही पड़ी होती है। खेत में होवे न। ढ़ेर पड़े हों। हर वर्ष निकालते हैं। और जहाँ सैकड़ों मोर एक-एक गाँव में हो, (वहाँ) कितने ही ढ़ेर पड़े हों। मोरपिच्छी ही मुनि को होती है। वह दया के उपकरणरूप से है। उन्हें ओघा और गोछा और ऊन के मुनि के नहीं हो सकते। भारी बात, भाई! परन्तु यह तो बहुत फेरफार। अभी तक क्या सब सुना था? यह पूर्व-पश्चिम का अन्तर पड़ गया। कबीर से स्थानकवासी ठीक। स्थानकवासी मूर्ति को नहीं मानते और दया, ब्रह्मचर्य, यह करने से अच्छे। उसमें से वापस यह निकला। कबीर भी मूर्ति मानते नहीं, स्थानकवासी मूर्ति मानते नहीं, इसलिए समान लगते हैं। और उनकी अपेक्षा दया (पाले), देखकर चले, आहार ले, आहाहा! मार्ग तो यह अच्छा लगता है। यहाँ कहते हैं कि वीतराग के मार्ग की अपेक्षा से... यह आगे कहेंगे। निन्द्य मार्ग है, ऐसा कहेंगे। है न? १९वीं गाथा में आयेगा, १९ में आयेगा।

जस्स परिग्गहगहणं अप्पं बहुयं च हवइ लिंगस्स।
सो गरहिउ जिणवयणे परिगहरहिओ णिरायारो।।१९।।

वह निन्दापात्र है। आहाहा! गजब बात, भाई! देखकर चले, उसके लिये बनाया हुआ आहार न ले, स्त्री, पुत्र छोड़कर बैठे, दुकान का धन्धा छोड़ दे। तो भी कहते हैं कि उसका मार्ग तो निन्दा के योग्य है, प्रशंसा के योग्य नहीं। वीतराग मार्ग से विरुद्ध श्रद्धा करके विरुद्ध आचरण में मुनिपना माना। आहाहा! समझ में आया?

पिच्छी दया का उपकरण है... यहाँ तो मोरपिच्छी की अपेक्षा से बात है। मोरपिच्छी बहुत... **पुस्तक ज्ञान का उपकरण है, यदि नहीं रखे तो पठन-पाठन कैसे हो? इन उपकरणों का रखना भी ममत्वपूर्वक नहीं है,...** यह कहीं ममतापूर्वक नहीं है। **इनसे रागभाव नहीं है।** इनमें रागभाव होता नहीं। तीव्र राग नहीं होता। अल्प राग तो है। वह राग नहीं। **आहार-विहार-पठन-पाठन की क्रियायुक्त जबतक रहे, तबतक**

केवलज्ञान भी उत्पन्न नहीं होता है,... क्या कहते हैं ? मुनि को जब तक दिगम्बरदशा है और उसमें भी पठन-पाठन के लिये पुस्तक है, दया के लिये पिच्छी की उपकरण है, शौच के लिये पानी है, इन पर जब तक उसका लक्ष्य रहेगा, तब तक वह केवलज्ञान नहीं पायेगा। छठवें गुणस्थान की मुनि की क्रिया की व्याख्या है। इतना भी प्रमादभाव है, ऐसा कहते हैं। परन्तु दूसरा कोई उपाय नहीं। शरीर को निभाने के लिये आहार लेना पड़े और शौच के लिये उपकरण कमण्डल, दया के लिये पिच्छी, ज्ञान के लिये शास्त्र। जब तक इनके ऊपर लक्ष्य रहेगा, तब तक आगे बढ़कर अप्रमत्तदशा नहीं होगी। आहाहा! इतना लक्ष्य रह गया है न। अपूर्ण रह गये हैं। समझ में आया ? ऐसा मार्ग वीतराग का... आता है न ? दूध के दाँत से लोहे के चने चबाना, ऐसी तो बातें करे और माने वापस ऐसा। दूध के दाँत से लोहे के चने चबाना, बापू! और मेरुपर्वत तराजू से तौलना, ऐसा मुनिपना। परन्तु कैसा मुनिपना ? यह। समझ में आया ?

भगवान के पश्चात् गौतमस्वामी और फिर कुन्दकुन्दाचार्य का नाम जैनशास्त्र में आता है। उन्होंने यह बनाया हुआ, परम्परा भगवान ने कहा हुआ, गणधरों से रचित, इस शास्त्र की रचना के अनुसार यह शास्त्र रचे हैं। घर की कल्पना के कहे हुए नहीं हैं। ऐसी बात है। श्वेताम्बर में ८४ शास्त्र रचे। वल्लभीपुर। तब स्थानकवासी थे भी नहीं। वे सब ८४ रचे, यह नन्दिसूत्र में पाठ है। सब आचार्यों ने देवगरणी श्रमणादि इकट्ठे होकर कल्पित रचे। अपने मत को पोषण करने के लिये (रचे)। पश्चात् स्थानकवासी निकले। उन्हें कुछ खबर नहीं थी। वे शास्त्र मान्य रखे। उन्होंने ४५ मान्य रखे, ८४ बनाये थे उनमें से, इन्होंने ३१ मान्य रखे। ३२वाँ आवश्यक घर का बनाया।

कहते हैं, ऐसे उपकरण भी ममतारहित रखे। उनमें राग विशेष हो नहीं। जब तक उन्हें क्रिया में लक्ष्य होता है—दिगम्बर मुनि को भी, तब तक उन्हें केवलज्ञान नहीं होगा। आहाहा! **इन सब क्रियाओं को छोड़कर...** यह शौच का उपकरण और दया का उपकरण इत्यादि का लक्ष्य छोड़कर, **सर्वथा ममत्व छोड़ ध्यान अवस्था लेकर तिष्ठे...** अन्तर के आनन्द के कन्द में स्थिर होकर **शरीर का भी सर्वथा ममत्व छोड़ ध्यान अवस्था लेकर तिष्ठे, अपने स्वरूप में लीन हो...** आनन्द के धाम में अन्दर घोलन में लीन हो जाये। जिसे चलने का विकल्प भी नहीं, आहार लेने का विकल्प नहीं, दया के

उपकरण पर लक्ष्य नहीं। आहाहा! जब तक ऐसी दशा में रहे, तब तक मुनिपने में छठवें-सातवें गुणस्थान में होते हैं, ऐसा कहते हैं।

आगे बढ़कर **परम निर्ग्रन्थ अवस्था होती है,...** लो। परम निर्ग्रन्थ। छठवें गुणस्थान में निर्ग्रन्थदशा है, परन्तु परम निर्ग्रन्थ नहीं। क्योंकि वह उपकरण दया का, शौच का (हो), तब तक लक्ष्य जाता है न इसलिए। वह छूटकर ध्यान में जब स्थिर होकर केवल (ज्ञान) हो, तब परम निर्ग्रन्थ दशा हो जाती है। फिर उन्हें कुछ दया का उपकरण नहीं होता और शौच का भी नहीं होता। उन्हें पठन-पाठन नहीं होता। केवलज्ञान हुआ तब। आहाहा! समझ में आया? **परम निर्ग्रन्थ अवस्था होती है, तब श्रेणी को प्राप्त हुए मुनिराज को केवलज्ञान उत्पन्न होता है, अन्य क्रियासहित हो तब तक केवलज्ञान उत्पन्न नहीं होता है,...** दिगम्बर मुनि, तीन कषाय का अभाव है, परन्तु जब तक विकल्प में आहार लेने का भाव है, दया के उपकरण का लक्ष्य, पठन-पाठन का पढ़ने का विकल्प (होगा) तब तक उसे केवलज्ञान नहीं होगा। आहाहा! **इस प्रकार निर्ग्रन्थपना मोक्षमार्ग जिनसूत्र में कहा है।** वीतराग भगवान के शास्त्र में ऐसा मुनिपना कहा है।

श्वेताम्बर कहते हैं कि भव स्थिति पूरी होने पर सब अवस्थाओं में केवलज्ञान उत्पन्न होता है... वे लोग कहते हैं, चाहे जो हो, वस्त्र हो, गृहस्थ का लिंग हो, स्त्री का लिंग हो तो भी केवलज्ञान होता है। मरुदेवी माता को हाथी के हौदे केवलज्ञान हुआ। ऐलचीकुमार को नाचते-नाचते केवल(ज्ञान) हुआ। यह सब बातें कल्पित-झूठी है। ऐसा है नहीं। भवस्थिति पूरी हो, तब चाहे जब केवलज्ञान हो। स्त्री के लिंग में हो, पुरुष के लिंग में हो, अन्य लिंग के—बाबा के वेष हो तो भी हो। पन्द्रह लिंग से सिद्ध कहा है न? उसने पन्द्रह भेद से सिद्ध कहा है। झूठ बात है।

अत्यन्त दिगम्बर मुद्रा हो और अन्तर में तीन कषाय का अभाव हो, वह आगे श्रेणी मांड़कर केवलज्ञान पावे। वस्त्र, पात्र के भाववाला हो, वह तो मुनिपना नहीं पाता तो केवल(ज्ञान) तो पाये कहाँ से? मुनिपना न हो, वहाँ केवल कहाँ से आया? आहाहा! गजब मार्ग, भाई!

श्वेताम्बर कहते हैं कि भव स्थिति पूरी होने पर सब अवस्थाओं में

केवलज्ञान उत्पन्न होता है... यह अपने एक पुस्तक में आया था, नहीं? एक पुस्तक नहीं थी कुछ? उसमें यह बात आती है। ऐसा कि भवस्थिति पूरी हो जाये, चाहे जिस काल में, भगवान ने देखा कि इसे केवलज्ञान होनेवाला है तो चाहे जिस स्थिति में होगा। निमित्त चाहे जैसा हो, उसमें क्या है? उपादान तैयार चाहिए। ऐई! चेतनजी! कहा था या नहीं? केशवलालजी ने। चाहे जैसा निमित्त हो। ऐसा नहीं होता। समझ में आया? केशवलालजी आये थे न एक बार? निमित्त तो चाहे जैसा हो, ऐसा हो... गप्प ही गप्प मारते हैं।

मुमुक्षु : निमित्त तो कुछ करता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त कुछ नहीं करता। निमित्त चाहे जैसा हो—ऐसा नहीं होता। सिद्धान्त से अत्यन्त विरुद्ध श्रद्धा है। तत्त्व से विरुद्ध श्रद्धा है। अज्ञानी है। निमित्त हो तो ऐसा ही होगा। केवलज्ञान होने में मुनिपने में नग्नदशा ही होगी। अट्ठाईस मूलगुण के ही विकल्प होंगे। निमित्त को दूसरी दिशा होगी नहीं। आहाहा! क्या हो? ऐसे लोगों को निवृत्ति नहीं मिलती। एक तो मानो कमाने के कारण निवृत्ति नहीं मिलती। कमाने में से थोड़ा समय मिले तो बाहर में कहे, उसे सुनकर चले जाते हैं। हो गया, जाओ, झटका कर। करो दुकान का धन्धा फिर तेईस घण्टे। अब यह निर्णय करने के लिये निवृत्त कब हो? ऐई.. धीरुभाई! यह तो अब और लड़के-बड़के तैयार हुए तो निवृत्त हुए। आहाहा! यह बात सत्य है। महाभाग्य और पुण्य का योग हो तो यह वीतराग के शास्त्र सुनने को मिलते हैं। ऐसी बात है। आहाहा! गणधरों ने रचे हुए, केवलियों ने कहे हुए उनके अनुसार भगवान कुन्दकुन्दाचार्य रचे। किंचित्मात्र कुछ अन्तर नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया?

कहते हैं कि भवस्थिति पके, तब चाहे जो निमित्त हो और केवलज्ञान हो जाए **यह कहना मिथ्या है,...** चार महीने चातुर्मास (में) रहे थे न? कुमुदविजय ब्राह्मण। वहाँ चौमासा में रहे थे और व्याख्यान हर रोज सुने। कुमुदविजय ब्राह्मण पण्डित। मन्दिरमार्गी दीक्षा ली हुई। बात सत्य लगती है, सौ में सौ प्रतिशत सत्य है। फिर, क्यों हमारे इसमें... क्या कुछ भाषा कही? अमल में क्यों नहीं लाना? हम कहीं किसी को कहते हैं कि तुम ऐसा करो या ऐसा करो। हम तो मार्ग कहते हैं। उसे कुछ कहते हैं कि तू छोड़कर बैठ यहाँ। हमारे क्या है यहाँ? दो-तीन बार अन्दर आकर कहा, हों! सौ में सौ प्रतिशत मार्ग यह है। यहाँ हम आश्रय तो किसी को नहीं देते। यहाँ तो तुम्हारी गरज हो तो रहो, तुम्हें ठीक पड़े

वैसा करो। हमारे कहीं तुम्हें गौशाला नहीं कि इकट्ठा करना है। यह ... सम्प्रदाय में उसने लेख लिखा। क्योंकि उसे ऐसा होता है कि वहाँ और अभडाय नहीं आये न। लेख लिखा। यह एक बात करते हैं, ऐसी कि विकल्प टूटे बिना मुनिपना नहीं होता और विकल्प टूटे बिना केवल (ज्ञान) नहीं होता और वापस वस्त्र उन्हें नहीं रहता। यह कहीं मिलान नहीं खाता, ऐसा वापस उसने कहा। वस्त्र न रहे, ऐसा किसने कहा? सुन न! वस्त्र रखने का भाव है, वह ममत्व है, वह मुनिपना आने नहीं देता। ऐसी बात है। क्या हो? जिसमें पचास-पचास वर्ष रहे हों, उसमें नामांकित ... हों। उसकी वापस मूल कीमत भी हुई हो कि यह अच्छे हैं, उसमें से निकलना कठिन पड़ता है।

जिनसूत्र का यह वचन नहीं है,... देखो! भवस्थिति पकेगी, तब चाहे जिस अवस्था में केवलज्ञान होगा, यह भगवान की वाणी नहीं है। देखा! **इन श्वेताम्बरों ने कल्पित सूत्र बनाये हैं,...** यह ३२, ४५ सब कल्पित बनाये हुए हैं। भगवान के नहीं, केवली के नहीं, समकिती के नहीं, अगृहीत मिथ्यादृष्टि के नहीं, गृहीत मिथ्यादृष्टि के बनाये हुए हैं। ऐसी यह बात है, बापू! सत्य यह है। ठीक लगे, न ठीक लगे, इसे तुलना करना। परीक्षा करना चाहिए। क्या हो? **जिनसूत्र का यह वचन नहीं है,... कल्पित सूत्र बनाये हैं, उनमें लिखा होगा।** कल्पित सूत्र में लिखा होगा। समझ में आया?

फिर यहाँ श्वेताम्बर कहते हैं कि जो तुमने कहा वह तो उत्सर्गमार्ग है,... ऐई! चेतनजी! अपवादमार्ग नहीं। कहा था न? खबर है न। **उत्सर्गमार्ग है, अपवादमार्ग में वस्त्रादिक उपकरण रखना कहा है,...** कहा है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : प्रवचनसार में।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रवचनसार में कहाँ कहा है? अपवाद में तो यह मोरपिच्छी, कमण्डल अपवाद में रखने का है। वस्त्र-पात्र कहाँ अपवाद में है? वह तो मिथ्यात्व में है।

जैसे तुमने धर्मोपकरण कहे, वैसे ही वस्त्रादिक भी धर्मोपकरण हैं,... ऐसा अज्ञानी कहते हैं। **जैसे क्षुधा की बाधा आहार से मिटाकर संयम साधते हैं, वैसे ही शीत आदि की बाधा वस्त्र आदि से मिटाकर संयम साधते हैं,...** आहार की भूख लगी हो तो देखो! आहार लाकर क्षुधा मिटाते हैं न! उसी प्रकार शीत की सर्दी बहुत लगती

हो तो वस्त्र (रखकर) संयम साधते हैं। इसमें विशेषता दोनों में अन्तर क्या? ऐसा शिष्य कहता है।

इनको कहते हैं कि इसमें तो बड़े दोष आते हैं। तथा कोई कहते हैं कि काम विकार उत्पन्न हो, तब स्त्री सेवन करे तो इसमें क्या विशेष? तू ऐसा कहता है तो हम कहते हैं कि विषय की वासना हो तो एक स्त्री का सेवन करे तो उसमें क्या दिक्कत? ऐसे सर्दी होवे तो वस्त्र रखे, उसमें क्या बाधा? दोनों समान हैं, सुन न! समझ में आया? **इसलिए इस प्रकार कहना युक्त नहीं है।** यह तेरा कहना बराबर उचित नहीं है।

क्षुधा की बाधा तो आहार से मिटाना युक्त है,... भूख की (वेदना) तो आहर से मिटती है। **आहार के बिना देह अशक्त हो जाता है तथा छूट जावे तो अपघात का दोष आता है,...** शरीर निभाने के लिये आहार लेने की वृत्ति तो होती है। वह कहीं परिग्रह नहीं है। और तो भी जब तक आहार लेने की वृत्ति है, तब तक केवलज्ञान होगा नहीं। यह भी अभी इतना दोष है। आहाहा! **परन्तु शीत आदि की बाधा तो अल्प है, यह तो ज्ञानाभ्यास आदि के साधन से ही मिट जाती है।** देखा! ठण्डी-बण्डी, गर्मी हो, वह तो ज्ञानाभ्यास में रहे तो इसे खबर भी नहीं पड़ती। कहाँ शीत और कहाँ आताप? आहाहा! ऐसा मार्ग है। समझ में आया?

अपवादमार्ग कहा वह तो जिसमें मुनिपद रहे, ऐसी क्रिया करना... अपवाद में तो मुनिपना न रहे वह अपवाद? ऐसा कहाँ से लाया? बहुत सरस लिखा है। **जिस क्रिया से मुनिपद भ्रष्ट होकर...** देखो! **जिस परिग्रह से तथा जिस क्रिया से...** जिस परिग्रह से और जिस क्रिया से **मुनिपद भ्रष्ट होकर गृहस्थ के समान हो जावे, वह तो अपवादमार्ग नहीं है। दिगम्बर मुद्रा धारण करके कमण्डलु पिच्छी सहित आहार-विहार उपदेशादिक में प्रवर्ते वह अपवादमार्ग है...** वह अपवादमार्ग है। यह तो लगा दिया कि वस्त्र, पात्र अपवादमार्ग है। यहाँ की बातें लेकर, सुनकर (लगा दिया)। लोग बेचारे मूर्ख इकट्ठे हुए हों, सामने सुननेवाले (उन्हें ऐसा लगे)... आहाहा! बात बहुत अच्छी की।

मुमुक्षु : हमारे में भी अध्यात्म है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हमारे में भी अध्यात्म है। धूल भी नहीं, सुन न! मिथ्यात्व का पोषण करके, लोगों को कराकर जिन्दगी बर्बाद करके चले गये। लोगों को बेचारों को कुछ खबर नहीं होती। समझ में आया? वस्तु की स्थिति ऐसी है, हों! किसी व्यक्ति की (बात नहीं)। मार्ग ऐसा है। मार्ग... कुन्दकुन्दाचार्य तो स्पष्ट करते हैं, देखो!

दिगम्बर मुद्रा धारण करके कमंडलु-पीछी सहित आहार-विहार उपदेशादिक में प्रवर्ते वह अपवादमार्ग है और सब प्रवृत्ति को छोड़कर ध्यानस्थ हो शुद्धोपयोग में लीन हो जाने को उत्सर्गमार्ग कहा है। इसका नाम उत्सर्गमार्ग है। परन्तु अपवादमार्ग में वस्त्र-पात्र रखना, यह अपवादमार्ग (नहीं है)। मुनिपना रहे, ऐसी स्थिति में अपवाद होता है। परन्तु उसमें से तो मुनिपना रहता नहीं। आहाहा! समझ में आया? **इस प्रकार मुनिपद अपने से सधता न जानकर किसलिए शिथिलाचार का पोषण करना?** मुनिपना न पालन किया जा सके तो किसलिए खोटे आचरण का पोषण करना? समझ में आया? **मुनिपद की सामर्थ्य न हो तो श्रावकधर्म ही का पालन करना,...** गृहस्थाश्रम में भी श्रावकपना, ब्रह्मचारीपना रखकर भी धर्म हो सकता है। ऐसा बड़ा मुनिपद नाम धरावे और ऊँचे नाम में विपरीत क्रिया और उपकरणादि रखकर माने तो कहते हैं कि उसमें तो कुछ लाभ नहीं है, नुकसान है।

यहाँ तो (कहते हैं), **श्रावकधर्म ही का पालन करना, परम्परा से इसी से सिद्धि हो जावेगी।** साधुपना न हो। गृहस्थाश्रम में हो, वस्त्र-पात्र छोड़ न सकता हो तो वह भी समकिती होवे तो वह आगे बढ़कर स्वर्ग में जाएगा। वहाँ से (मनुष्य होकर) मुनिपना पाकर केवलज्ञान पायेगा। परन्तु मिथ्यात्व को पोसकर ऐसी बात तू करता है, वह शास्त्र से विरुद्ध है, कहते हैं। **जिनसूत्र की यथार्थ श्रद्धा रखने से सिद्धि है,...** वीतराग के सूत्रों की यथार्थ श्रद्धा रखे। देखो! **इसके बिना अन्य क्रिया सब ही संसारमार्ग है, मोक्षमार्ग नहीं है, इस प्रकार जानना। आगे इस ही अर्थ का समर्थन करते हैं।**

मुमुक्षु : यह मुनिपद अपने से...

पूज्य गुरुदेवश्री : इस प्रकार मुनिपद अपने से सधता न जानकर किसलिए शिथिलाचार का पोषण करना? मुनिपद नहीं पलता। मुनिपद मुझमें नहीं। **मुनिपद की सामर्थ्य न हो तो श्रावकधर्म ही का पालन करना,...** गृहस्थाश्रम में श्रावकपना

पालन करे, उसमें कुछ विरोध नहीं है, उसमें कुछ दोष नहीं है। दोष है परन्तु वह तो चारित्र का दोष है, परन्तु मिथ्या श्रद्धा का दोष नहीं। यह तो बड़ा मुनिपना नाम धराकर मुनिपने में... और वस्त्र-पात्र रखे तो महा मिथ्यात्व का दोष है। महा मिथ्यात्व का पाप अनन्त पाप निगोद में ले जाए, ऐसा पाप है। समझ में आया? यह भी सब इसमें उतरता होगा न? लो।

श्रावकधर्म ही का पालन करना, परम्परा से इसी से सिद्धि हो जावेगी। सम्यग्दर्शन की श्रद्धा बराबर रखे, ज्ञान बराबर हो, योग्यता प्रमाण की स्थिरता हो। मुझमें मुनिपना नहीं। आगे जाकर, देवलोक में जाकर, आगे जाकर साधुपना-चारित्र नग्नपना अंगीकार करके (मुक्ति को) पायेगा। यह तो ऐसे वस्त्र-पात्र रखकर मुनिपना नाम धरावे (ऐसे) मिथ्यात्व में निगोद में जाये। समझ में आया?

गाथा-१९

आगे इस ही का समर्थन करते हैं -

जस्स परिग्गहगहणं अप्पं बहुयं च हवइ लिंगस्स।
सो गरहिउ जिणवयणे परिगहरहिओ णिरायारो॥१९॥

यस्य परिग्रहग्रहणं अल्पं बहुकं च भवति लिंगस्य।
स गर्ह्यः जिनवचने परिग्रहरहितः निरागारः॥१९॥

जिसके यहाँ थोड़ा-बहुत भी है परिग्रह मुनी के।
वह जिन-वचन में निंद्य परिग्रह-रहित वृत्ति मुनी के॥१९॥

***अर्थ* - जिसके मत में लिंग जो भेष उसके परिग्रह का अल्प तथा बहुत ग्रहण करना कहा है, वह मत तथा उसका श्रद्धावान पुरुष गर्हित है, निंदायोग्य है, क्योंकि जिनवचन में परिग्रहरहित ही निरागार है, निर्दोष मुनि है, इस प्रकार कहा है।**

***भावार्थ* - श्वेताम्बरादिक के कल्पित सूत्रों में भेष में अल्प बहुत परिग्रह का ग्रहण कहा है, वह सिद्धान्त तथा उसके श्रद्धानी निंद्य हैं। जिनवचन में परिग्रहरहित को ही निर्दोष मुनि कहा है॥१९॥**

गाथा-१९ पर प्रवचन

आगे इस ही का समर्थन करते हैं। इस अर्थ का समर्थन करते हैं। लो।

जस्स परिग्गहगहणं अप्पं बहुयं च हवइ लिंगस्स।
सो गरहिउ जिणवयणे परिगहरहिओ णिरायारो।।१९।।

जिस लिंग में थोड़ा और बहुत परिग्रह हो, ऐसा कहते हैं। देखा!

अर्थ – **जिसके मत में लिंग जो भेष उसके परिग्रह का अल्प तथा बहुत ग्रहण करना कहा है,...** जिसके लिंग में थोड़ा बहुत भी वस्त्र-पात्र रखने का कहा, **वह मत तथा उसका श्रद्धावान पुरुष गर्हित है, निंदायोग्य है,...** है न पाठ? **'सो गरहिउ'** घृणा योग्य है, निन्दा करनेयोग्य है। वह मत और उस मत के माननेवाले सब निन्दा के योग्य है। प्रशंसा के योग्य नहीं। आहाहा! ऐसा तो सुना नहीं हो वहाँ। ऐई! प्रकाशदासजी!

मुमुक्षु : कभी नहीं सुना।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं? यह तो लगकर पड़े थे वहाँ। पन्द्रह भेद से सिद्ध वे लोग कहते हैं। श्रीमद् में भी लिखा है। खोटी बात है। दिगम्बर मुद्रा, वह भी पुरुष लिंग, इसके अतिरिक्त केवलज्ञान नहीं हो सकता। स्त्री को केवलज्ञान नहीं होता, स्त्री को साधुपद नहीं होता। उसे पंचम गुणस्थान योग्य हो। क्योंकि उसे एक वस्त्र रखना पड़ता है। वस्त्र रखे बिना रहे नहीं। उसे मुनिपना नहीं हो सकता। ऐसा मार्ग है, भाई! जगत से तो बहुत फेरफार बहुत हो गया। उस फेरफार को समझने की फुरसत कहाँ है?

जिसके मत में, लिंग में-वेश में, ऐसा। साधु... वेश। परिग्रह का थोड़ा या बहुत रखने का जिस शास्त्र में, जिस मत में कहा हो, **उसका श्रद्धावान पुरुष गर्हित है,...** वह अभिप्राय भी निन्दा योग्य है, उसके माननेवाले भी निन्दायोग्य है। **क्योंकि जिनवचन में परिग्रह रहित ही निरागार है,...** भगवान की वाणी में तो वस्त्र-पात्र के टुकड़े रहित, अखण्डानन्द वीतरागमूर्ति दशा जिसे प्रगट हुई है, उसकी तो अकेली दिगम्बर मुद्रा ही होती है। आहाहा! यह स्थूल मिथ्यात्व के त्याग की बात अभी चलती है। दोपहर में सूक्ष्म

मिथ्यात्व के त्याग की बात चलती है। आहाहा! गजब बात। **जिनवचन में परिग्रह रहित ही निरागार है, निर्दोष मुनि है, इस प्रकार कहा है।**

भावार्थ – श्वेताम्बरादिक... श्वेताम्बर अर्थात् मूर्तिपूजक, स्थानकवासी इत्यादि। **कल्पित सूत्रों में भेष में अल्प बहुत परिग्रह का ग्रहण कहा है, वह सिद्धान्त तथा उसके श्रद्धानी निंद्य हैं। जिनवचन में परिग्रह रहित को ही निर्दोष मुनि कहा है।** वीतराग मार्ग में अनादि गणधरों ने, सन्तों ने कहा हुआ मार्ग, उसमें तो वस्त्र के एक टुकड़े रहित, दिगम्बरदशा और अन्दर तीन कषाय का अभाव (हो), उसे मुनिपना और निर्ग्रन्थपना कहा है। उसे निर्दोष मुनि कहा। बाकी सब सदोष और मिथ्यादृष्टि है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-२०

आगे कहते हैं कि जिनवचन में ऐसा मुनि वन्दने योग्य कहा है –

पंचमहव्वयजुत्तो तिहिं गुत्तिहिं जो स संजदो होई।
णिग्गंथमोक्खमग्गो सो होदि हु वंदणिज्जो य।।२०।।

पंचमहाव्रतयुक्तः तिसृभिः गुप्तिभिः यः स संयतो भवति।
निर्ग्रंथमोक्षमार्गः स भवति हि वन्दनीयः च।।२०।।

पाँचों महाव्रत तीन गुप्ति सहित जो संयत वही।
निर्ग्रंथ मुक्तिमार्ग है नमनीय भी वह नित्य ही।।२०।।

अर्थ – जो मुनि पंच महाव्रत युक्त हो और तीन गुप्ति संयुक्त हो, वह संयत है, संयमवान है और निर्ग्रन्थ मोक्षमार्ग है तथा वह ही प्रगट निश्चय से वंदने योग्य है।

भावार्थ – अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाँच महाव्रत सहित हो और मन, वचन, कायरूप तीन गुप्ति सहित हो, वह संयमी है, वह निर्ग्रंथ स्वरूप है, वह ही वंदने योग्य है। जो कुछ अल्प बहुत परिग्रह रखे, सो महाव्रती संयमी नहीं है, यह मोक्षमार्ग नहीं है और गृहस्थ के समान भी नहीं है।।२०।।

प्रवचन-३३ गाथा-२० से २४ रविवार, आषाढ़ शुक्ल ८, दिनांक १२-०७-१९७०

अष्टपाहुड़। आचार्य कुन्दकुन्दाचार्यदेव अष्टपाहुड़ में सूत्रपाहुड़ का अधिकार कहते हैं। भगवान सर्वज्ञ परमात्मा, जिन्हें एक समय में तीन काल का ज्ञान था, ऐसा ही जीव का स्वभाव है। ऐसा जीव का स्वभाव है, वह प्रगट हुआ था, उसमें उन्होंने मुनिपना सच्चा कैसा होता है, यह देखा और तत्प्रमाण कहा। धर्मी को धर्म करने से पहले भी देव-गुरु और शास्त्र कैसे होते हैं, उनकी श्रद्धा करना चाहिए। यह है व्यवहारश्रद्धा। व्यवहारश्रद्धा भी जिसकी स्पष्ट न हो, उसे निश्चय सम्यग्दर्शन और सम्यक्श्रद्धा नहीं होती। समझ में आया?

जिसे इन जन्म-मरण के दु:खों का नाश करना हो और आत्मा में आनन्द है, उस आनन्द को पूर्ण प्रगट करना हो, ऐसे मोक्षदशा के अभिलाषी जीव को कैसी श्रद्धा मुनि की और देव की होती है, उसका यह वर्णन भगवान के सिद्धान्त शास्त्र में है। २०वीं गाथा।

पंचमहव्वयजुत्तो तिहिं गुत्तिहिं जो स संजदो होई।
णिग्गंथमोक्खमग्गो सो होदि हु वंदणिज्जो य।।२०।।

***अर्थ* – जो मुनि पंच महाव्रत युक्त हो...** सम्यग्दर्शनसहित तो हो ही। आत्मा के राग और पुण्य के विकल्प से रहित ऐसा आत्मा निर्विकल्पस्वरूप है, आनन्द और चैतन्य का धाम आत्मा है, उसके अन्दर निर्विकल्प सम्यग्दर्शन की श्रद्धा तो पहले होती है। तदुपरान्त मुनि को चारित्रदशा होती है और उस भूमिका में उसे पंच महाव्रत के विकल्प का शुभभाव होता होता है। **'पंचमहव्वयजुत्तो'** पंच महाव्रत है विकल्प, राग, परन्तु ऐसा विकल्प मुनिदशा जहाँ आनन्द की हो, जिसे मुक्ति करनी है, पूर्णानन्द की प्राप्ति करनी है, ऐसी जो मुक्तदशा, उसके जो अभिलाषी, उसे प्रथम तो सम्यग्दर्शन प्रगट करना चाहिए और सम्यग्दर्शन उपरान्त स्वरूप में लीनता का आनन्द और चारित्र चाहिए। उस चारित्र की भूमिका में उसे पंच महाव्रत होते हैं।

तीन गुप्ति... होती है। **वह संयत है,...** मोक्ष का मार्ग चारित्र है और चारित्र की भूमिका में ऐसे भाव उसे होते हैं। **संयमवान है और निर्ग्रन्थ मोक्षमार्ग है...** कहते हैं कि मोक्षमार्ग तो निर्ग्रन्थ है। जिसे अन्दर राग की गाँठ भी नहीं होती और बाह्य में वस्त्र तथा

पात्र भी नहीं होते। ऐसे सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी भगवान की वाणी में, सिद्धान्त में यह आया है। समझ में आया ? यह निर्ग्रन्थ मोक्षमार्ग है। ओहो ! पूर्णानन्द की प्राप्ति ऐसी मुक्ति, उसके लिये तो निर्ग्रन्थ मोक्षमार्ग ही कारण होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

तथा वह ही प्रगट निश्चय से वंदने योग्य है। जैनमार्ग में अर्थात् वास्तविक वीतराग मार्ग में, वास्तविक मोक्ष के मार्ग में ऐसे साधु चारित्रवन्त निर्ग्रन्थ मोक्षमार्गी, वे वन्दनीय और आदरणीय हैं। ऐसी श्रद्धा समकित होने से पहले ही व्यवहार श्रद्धा तो उसे ऐसी होना चाहिए। समझ में आया ? देव, गुरु, शास्त्र की भी जिसकी सच्ची श्रद्धा नहीं, यह तो पहले कहा है, मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा है, पहले तो देव, गुरु और शास्त्र की सच्ची श्रद्धा होना चाहिए। पश्चात् नवतत्त्व की, पश्चात् स्व-पर की और पश्चात् एक आत्मा की (श्रद्धा होना चाहिए) । सूक्ष्म बातें हैं, भाई ! समझ में आया ?

कहते हैं, वीतराग आत्ममार्ग, जहाँ आत्मा की शान्ति के पन्थ में शान्तिपन्थ में मुनि स्थित हैं, जिन्हें पूर्ण शान्ति प्रगट होने की निकटता-नजदीकता है, संसार का अन्त जिन्हें अल्प काल में है, ऐसे मुनि की ऐसी दशा होती है। समझ में आया ?

भावार्थ – अहिंसा,... एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय जीव को नहीं मारने का विकल्प उसे होता है। मारने का विकल्प नहीं होता। अहिंसा। **सत्य,...** सत्य जैसा है, वैसा भगवान का कहा हुआ हो, तत्प्रमाण बोलना। **अस्तेय,...** चोरी नहीं। **ब्रह्मचर्य,...** निश्चय ब्रह्मचर्य तो आत्मा आनन्द में रमे, वह ब्रह्मचर्य है। व्यवहार ब्रह्मचर्य काया से शरीर और वाणी आदि से विषय न लेना, ऐसा व्यवहार ब्रह्मचर्य। **अपरिग्रह,...** मुनि परिग्रह रहित होते हैं। एक वस्त्र की लंगोटी भी मुनि को नहीं होती। आहाहा ! ऐसा वीतराग का मार्ग है, भाई ! परमेश्वर केवलज्ञानी त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने एक समय में तीन काल-तीन लोक देखे, उनकी वाणी में ऐसा मार्ग आया है।

मन, वचन, कायरूप तीन गुप्ति सहित हो, वह संयमी है, वह निर्ग्रंथ स्वरूप है,... ऐसी दशा बिना किसी को मुक्ति तीन काल में नहीं होती। **वह ही वन्दने योग्य है।** ऐसे सन्त-चारित्रवन्त, बाह्य नग्नदशा, अभ्यन्तर वीतरागी दशा, वे चारित्ररूप से वीतरागमार्ग में वन्दनरूप से वे गिनने में आये हैं। समझ में आया ? कहो, यह सूत्रपाहुड़ है। भगवान

के कहे हुए सिद्धान्त में तो यह है। बाकी नये कल्पित शास्त्र रचे, उसमें चाहे जो रचना की, वह उनकी घर की है। भगवान ने कही हुई नहीं। समझ में आया? इतनी जिन्हें अभी परीक्षा का ठिकाना नहीं होता, वह आत्मा रागरहित, विकल्परहित निर्विकल्प है, उसे अन्तर में अनुभव में, श्रद्धा में लेना अलौकिक बात है। समझ में आया?

कहते हैं, **जो कुछ अल्प बहुत परिग्रह रखे...** थोड़े-बहुत वस्त्र रखे, पात्र रखे **सो महाव्रती संयमी नहीं है,...** उसे वीतराग संयममार्ग में संयमी नहीं कहते। **यह मोक्षमार्ग नहीं है...** उसे मोक्षमार्ग भी नहीं है। भारी काम, भाई! कठिन। वाडाबन्दी में यह बात बैठना (कठिन)। वाडा (सम्प्रदाय) बाँधकर जगत को बेचारे को मार डाला। मार्ग की खबर भी नहीं होती। ऐई! धीरुभाई! कहाँ गये? शिवलालभाई आये हैं या नहीं? समझ में आया? भगवानजीभाई! मार्ग ऐसा है, भाई! और अपने को भी यह मार्ग आयेगा, तब उसकी मुक्ति होगी। यह कहीं अकेले सम्यग्दर्शन और ज्ञान से भी मुक्ति होगी नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

परमेश्वर सर्वज्ञदेव, जिन्होंने एक समय में तीन काल-तीन लोक, परमात्मा तीर्थंकरदेव केवली ने देखे, उनके ज्ञान में तो यह आया था। और उनके कहे हुए सिद्धान्तों-शास्त्रों में तो यह कहा गया है। जिसे वस्त्र का धागा न हो, बाह्य में नग्नमुनि हो, अभ्यन्तर में राग का लेप नहीं, ऐसी वीतरागदशा प्रगट हुई हो। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मुनिमार्ग निर्ग्रन्थ मार्ग कहा जाता है न वह? ... तो निर्ग्रन्थ किसे कहना? वस्त्र-पात्र रखे, वह निर्ग्रन्थ कहाँ से आये? वस्त्र-पात्र तो परिग्रह है। उसे परिग्रह न कहो तो गृहस्थ वस्त्र-पात्र रखे, उन्हें भी निर्ग्रन्थ कहना चाहिए। समझ में आया? नहीं आये तुम्हारे जयन्तीभाई? ठीक। नम्बर किया होगा। रविवार में आना और काम आ जाता होगा। समझ में आया?

यहाँ तो भगवान थोड़ा-सा भी जरा-सा भी एक लंगोटी जितना भी वस्त्र का टुकड़ा रखे तो वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर के मार्ग में उसे मुनि कहा नहीं। भगवानजीभाई! ऐसा मार्ग है। और यह तो नये शास्त्र, सब कल्पित बनाये। ३२, ४५ आदि तो कल्पित है। आचार्य के, भगवान के कहे हुए नहीं। स्वयं की कल्पना से सम्प्रदाय चलाने को बनाये और नाम दिया भगवान का। लोगों को बेचारों को खबर भी नहीं होती। समझ में आया? ऐसा मार्ग अनादि का है, वह यहाँ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं।

वह **गृहस्थ के समान भी नहीं है।** लो। जो कोई वस्त्र का धागा रखकर मुनि है— ऐसा मनाते हैं, वे मुनि तो नहीं, परन्तु गृहस्थवत् भी नहीं है। क्योंकि उनकी श्रद्धा झूठी है। गृहस्थ होवे उसे तो सम्यग्दर्शन की श्रद्धा सच्ची होती है। उसे देव, गुरु, धर्म की श्रद्धा सच्ची होती है। समझ में आया? यह मार्ग बहुत विकट मार्ग। उसने जगत को कहीं चढ़ा दिया। भगवान के नाम से चढ़ाया। अर्थात् कोई शंका ही कर नहीं सकता। आहाहा! जगत के साथ बहुत झाँसापट्टी की है। समझ में आया?

गृहस्थ के समान भी नहीं है। कहते हैं कि वस्त्र रखे, वह मोक्षमार्ग और मुनि तो नहीं, परन्तु गृहस्थ जैसा भी नहीं है। 'अतो भ्रष्ट, ततो भ्रष्ट' ऐसा कहते हैं। गृहस्थाश्रम में तो सम्यग्दर्शन हो, सच्ची श्रद्धा हो, सच्चा ज्ञान हो और बारह व्रत के कदाचित् विकल्प भी हो, तो वह मोक्षमार्गी है। वस्त्र आदि रखकर मुनिपना मनावे, वह मोक्षमार्गी तो नहीं परन्तु गृहस्थ जैसे भी नहीं हैं। आहाहा! भारी कठिन काम। गले उतरना... समझ में आया? भगवान के सूत्र सिद्धान्त की बात चलती है। देखो! यह।

गाथा-२१

आगे कहते हैं कि पूर्वोक्त एक भेष तो मुनि का कहा, अब दूसरा भेष उत्कृष्ट श्रावक का इस प्रकार कहा है –

दुइयं च उत्त लिंगं उक्किट्ठं अवरसावयाणं च।
भिक्खं भमेइ पत्ते समिदीभासेण मोणेण।।२१।।

द्वितीयं चोक्तं लिंगं उत्कृष्टं अवरश्रावकाणां च।
भिक्षां भ्रमति पात्रे समितिभाषया मौनेन।।२१।।

जो दूसरा उत्कृष्ट प्रतिमा-युक्त श्रावक लिंग है।
भाषा समितिमय मौन रह भ्रम पात्र में भोजन करें।।२१।।

अर्थ – **द्वितीय लिंग अर्थात् दूसरा भेष उत्कृष्ट श्रावक जो गृहस्थ नहीं है, इस प्रकार उत्कृष्ट श्रावक का कहा है, वह उत्कृष्ट श्रावक ग्यारहवीं प्रतिमा का धारक है, वह**

भ्रमण करके भिक्षा द्वारा भोजन करे और पत्ते अर्थात् पात्र में भोजन करे तथा हाथ में करे और समितिरूप प्रवर्तता हुआ भाषासमितिरूप बोले अथवा मौन से रहे।

***भावार्थ* – एक तो मुनि का यथाजातरूप कहा और दूसरा यह उत्कृष्ट श्रावक का कहा, वह ग्यारहवीं प्रतिमा का धारक उत्कृष्ट श्रावक है, वह एक वस्त्र तथा कोपीन मात्र धारण करता है और भिक्षा से भोजन करता है, पात्र में भी भोजन करता है और करपात्र में भी करता है, समितिरूप वचन भी कहता है अथवा मौन भी रखता है, इस प्रकार यह दूसरा भेष है।।२१।।**

गाथा-२१ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि पूर्वोक्त एक भेष तो मुनि का कहा,... वीतराग सिद्धान्त में मुनि का यह एक वेश-निर्ग्रन्थ दिगम्बरदशा (कहा)। वन में विचरते हों और आत्मा के आनन्द के भोक्ता हों। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव जिसे हो। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द है। ऐसा ही अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन, प्रचुर-बहुत आनन्द का वेदन होता है। आहाहा! और बाह्य में दिगम्बर दशा होती है। वह जैनमार्ग में परमेश्वर के मार्ग में वीतराग के मार्ग में यह एक वेश मुनि का केवल गिनने में आया है। समझ में आया? **अब दूसरा भेष उत्कृष्ट श्रावक का इस प्रकार कहा है।** उत्कृष्ट श्रावक। दसवीं, ग्यारहवीं प्रतिमा होवे न! एक लंगोटी रखे। एक टुकड़ा वस्त्र रखे। आत्मा का अनुभव हो। आत्मा के अन्तर चैतन्य का पहलू जिसने देख लिया होता है। पुण्य-पाप के रागरहित भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप, सिद्धस्वरूप ही यह भगवान आत्मा है। वे सिद्ध हुए, वे कहाँ से हुए? राग की क्रिया और कुछ बाह्य की क्रिया से हुए नहीं। अन्दर में सिद्धपद स्वरूप है आत्मा में, उसमें से सिद्धपद प्रगट किया है। ऐसा जिसे प्रथम सम्यग्दर्शन का भान, दशा होती है और तदुपरान्त बारह व्रत के विकल्प अथवा ग्यारह प्रतिमा (होती है)। वह उत्कृष्ट श्रावक का वेश वीतरागमार्ग में, परमेश्वर के मार्ग में, केवली के मार्ग में उसे दूसरा वेश गिनने में आया है।

दुइयं च उत्त लिंगं उक्किट्ठं अवरसावयाणं च।
भिक्खं भमेइ पत्ते समिदीभासेण मोणेण।।२१।।

अर्थ – द्वितीय लिंग अर्थात् दूसरा भेष उत्कृष्ट श्रावक जो गृहस्थ नहीं है,... वह भी मुनि के साथ वनवास में रहते हैं। **इस प्रकार उत्कृष्ट श्रावक का कहा है, वह उत्कृष्ट श्रावक ग्यारहवीं प्रतिमा का धारक है, वह भ्रमण करके भिक्षा द्वारा भोजन करे...** कहीं पकाया हुआ उनके लिये बनाया हुआ नहीं लेते। श्रावक, हों! ग्यारहवीं प्रतिमाधारी। देखो! वीतराग का मार्ग। उत्कृष्ट ग्यारह प्रतिमाधारी एक बार आहार ले। समझ में आया? भ्रमण भिक्षा करके भोजन ले, **पात्र में भोजन करे तथा हाथ में करे...** पात्र में ले अथवा हाथ में ले। ऐसा मार्ग है। समझ में आया? आहाहा! मार्ग का ऐसा रूप बिगाड़ डाला है न। बहुत वर्ग उसमें ही पड़ा है। यह बात उसे बैठना कठिन। यह वह भगवान की होगी? हम भी भगवान के शास्त्र मानते हैं। भगवान ने कहे हुए ३२ सूत्र हैं, ४५ सूत्र हैं। भाई! ठगा गये हो। भाई! तुम्हें खबर नहीं। भगवान ने कहे हुए सिद्धान्त दूसरे थे। समझ में आया? यह तो कल्पित अपना सम्प्रदाय चलाने के लिये नये बनाये हैं। भगवान के कहे हुए ये सिद्धान्त नहीं हैं। आहाहा! भारी काम, भाई!

भगवान के कहे हुए सिद्धान्तों में यह बात है। समझ में आया? **और समितिरूप प्रवर्तता हुआ भाषासमितिरूप बोले अथवा मौन से रहे।** श्रावक, हों! मुनि तो कोई अलौकिक दशा! आहाहा! जो गणधर को भी पूज्य है, ऐसी मुनिदशा। गणधर, जो तीर्थंकर के युवराज, वे भी णमो लोए सव्व साहूणं (बोले), उन्हें जो नमस्कार गणधर का पहुँचे, वह पद तो अलौकिक है। समझ में आया? ऐसे मुनिमार्ग को भगवान के शास्त्र में मुनिरूप से, गुरुरूप से, चारित्रवन्तरूप से वन्दन करनेयोग्य कहा है। यह तो अष्टपाहुड़। अन्दर हो वह कहा जाए या नहीं? ऐ... चन्दुभाई! यह तो किसी समय वाँचन किया जाता है। (संवत्) २०१७ के वर्ष में वाँचन किया था। यह और २०२६ में आया। इससे पहले २००२ में, २०११ में (वाँचन हुआ था)। यह चौथी बार वाँचन होता है। मार्ग तो यह है। मगनभाई! आहाहा! यह अपने पहले आ गया था, अभी २३ में आयेगा, इससे पहले भी आ गया।

भावार्थ – एक तो मुनि का यथाजातरूप कहा... जैसा जन्मा वैसा उसका— मुनि का रूप होता है। एक वस्त्र का धागा नहीं और आहारपात्र हाथ में ले। करपात्र। पात्र-बात्र की उपाधि का पार नहीं होता। वस्त्र रखे तो धोना, उसमें मैल चढ़े, जूं पड़े। यह तो

सब परिग्रह है। आहाहा! समझ में आया? **दूसरा यह उत्कृष्ट श्रावक का कहा, वह ग्यारहवीं प्रतिमा का धारक उत्कृष्ट श्रावक है, वह एक वस्त्र तथा कोपीन मात्र धारण करता है...** ओढ़ने-पहनने का एक छोटा वस्त्र और एक कोपीन-लंगोटी। **और भिक्षा से भोजन करता है,...** भिक्षा से आहार ले। **पात्र में भोजन करे तथा हाथ में करे और समितिरूप...** वचन बोले अथवा मौन भी रहे। ऐसा सिद्धान्त वीतराग के-परमेश्वर के निर्ग्रन्थ मार्ग में ऐसा दूसरा रूप श्रावक का गिनने में आया है। पहला दिगम्बर मुनि और दूसरा यह।

गाथा-२२

आगे तीसरा लिंग स्त्री का कहते हैं –

लिंगं इत्थीण हवदि भुंजइ पिंड सुएयकालम्मि।
अज्जिय वि एक्कवत्था वत्थावरणेण भुंजेदि।।२२।।

लिंगं स्त्रीणां भवति भुंक्ते पिंडं स्वेक काले।
आर्या अपि एकवस्त्रा वस्त्रावरणेन भुंक्ते।।२२।।

है स्त्रियों का लिंग दिन में एक भुक्ति आर्यिका।
भी एक साड़ी-धारिका साड़ी-सहित भोजन कहा।।२२।।

अर्थ – **स्त्रियों का लिंग इस प्रकार है – एक काल में भोजन करे, बारबार भोजन नहीं करे, आर्यिका भी हो तो एक वस्त्र धारण करे और भोजन करते समय भी वस्त्र के आवरण सहित करे, नग्न नहीं हो।**

भावार्थ – **स्त्री आर्यिका भी हो और क्षुल्लिका भी हो, वे दोनों ही भोजन तो दिन में एकबार ही करे, आर्यिका हो, वह एक वस्त्र धारण किये हुए ही भोजन करे, नग्न नहीं हो। इस प्रकार तीसरा स्त्री का लिंग है।।२२।।**

गाथा-२२ पर प्रवचन

आगे तीसरा लिंग स्त्री का कहते हैं। आर्यिका होती है। एक वस्त्र रखे। साध्वी नहीं हो सकती। स्त्री का देह हो, वह साध्वी नहीं हो सकती। क्योंकि नग्न हो तो ही साध्वी हो सकती है परन्तु (स्त्री) नग्न नहीं रह सकती। इसलिए एक वस्त्र रखती है। पंचम गुणस्थान में वह श्राविका होती है। उत्कृष्ट हो, इसलिए उसे आर्यिका कहा जाता है।

लिंगं इत्थीण हवदि भुंजइ पिंड सुएयकालम्मि।
अज्जिय वि एक्कवत्था वत्थावरणेण भुंजेदि।।२२।।

अर्थ - स्त्रियों का लिंग इस प्रकार है - एक काल में भोजन करे,... एक बार आहार। वह आर्यिका भी एक बार आहार (ले)। दो बार आहार नहीं। सवेरे चाय और दोपहर में रोटियाँ और शाम को खिचड़ी, कढ़ी और...

मुमुक्षु : खिचड़ी, कढ़ी तो भूतकाल में गये। यह तो भजिया गरम...

पूज्य गुरुदेवश्री : भजिया गरमागरम। धनजीभाई कहते थे। आहाहा! अरे! भगवान क्या हो?

कहते हैं, **एक काल में भोजन करे,...** स्त्री हो वह। साध्वी नहीं हो सकती। आर्यिका कहलाती है। पंचम गुणस्थान होता है। छठा गुणस्थान स्त्री का देह हो, उसे नहीं आ सकता। ऐसा अनादि का वीतरागमार्ग का मार्ग है। आज माने, कल माने, यह मानने से उसे सत्य का स्वीकार है। समझ में आया? स्त्री आर्यिका भी हो और क्षुल्लिका भी हो। **एक वस्त्र धारण करे और भोजन करते समय भी वस्त्र के आवरण सहित करे,...** भोजन करते समय भी वस्त्ररहित नहीं हो सकती।

भावार्थ **- स्त्री आर्यिका भी हो और क्षुल्लिका भी हो, वे दोनों ही भोजन तो दिन में एकबार ही करे, आर्यिका हो, वह एक वस्त्र धारण किये हुए ही भोजन करे, नग्न नहीं हो। इस प्रकार तीसरा स्त्री का लिंग है।** भगवान के मार्ग में यह तीन लिंग कहे हैं।

गाथा-२३

आगे कहते हैं कि वस्त्र धारक के मोक्ष नहीं है, मोक्षमार्ग नग्नपणा ही है –

ण वि सिज्झदि वत्थधरो जिणसासणे जइ वि होइ तित्थयरो।
णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे।।२३।।

नापि सिध्यति वस्त्रधर: जिनशासने यद्यपि भवति तीर्थंकर:।
नग्न: विमोक्षमार्ग: शेषा उन्मार्गका: सर्वे।।२३।।

हों तीर्थंकर भी वस्त्र-धारी सिद्ध हों नहीं जैन में।
है नग्नता शिव-मार्ग शेष सभी कहे उन्मार्ग हैं।।२३।।

अर्थ – जिनशासन में इस प्रकार कहा है कि वस्त्र को धारण करनेवाला सीझता नहीं है, मोक्ष नहीं पाता है, यदि तीर्थंकर भी हो तो जबतक गृहस्थ रहे तबतक मोक्ष नहीं पाता है, दीक्षा लेकर दिगम्बररूप धारण करे तब मोक्ष पावे; क्योंकि नग्नपना ही मोक्षमार्ग है, शेष सब लिंग उन्मार्ग है।

भावार्थ – श्वेताम्बर आदि वस्त्रधारक के भी मोक्ष होना कहते हैं, वह मिथ्या है, यह जिनमत नहीं है।।२३।।

गाथा-२३ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि वस्त्र धारक के मोक्ष नहीं है, मोक्षमार्ग नग्नपणा ही है – यह गाथा श्रीमद् में भी है, भाई! श्रीमद् में रखी है। अकेली गाथा, हों! पृथक्। है या नहीं? ऐई! चेतनजी! खबर नहीं? है उसमें कहीं। वह कहीं हाथ आवे? इतने बड़े में कहाँ से हाथ आवे? पीछे में है, पीछे में कहीं। ३२वें वर्ष में कहीं है अवश्य, हों कौन जाने कहाँ होगी? गाथा है, हों! कहीं। खबर नहीं? एक बार कहा था। चन्दुभाई को खबर है या नहीं? गाथा थी। श्लोक है। सात गाथा है।

ण वि सिज्झदि वत्थधरो जिणसासणे जइ वि होइ तित्थयरो।
णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे।।२३।।

कहते हैं... श्लोक का आधार पीछे दिया होगा, हों! शास्त्र का आधार दिया हो न कि अष्टपाहुड़ की यह गाथा है। उसमें कहीं दिया होगा।

अर्थ – जिनशासन में... वीतराग परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव के शासन में तीन काल में भगवान का मार्ग वीतराग केवली का है, उसमें **वस्त्र को धारण करनेवाला सीझता नहीं है, मोक्ष नहीं पाता है,...** वस्त्र का धारण करनेवाला हो, तब तक मुनि नहीं हो सकता और उसे मुक्ति नहीं हो सकती। समझ में आया? **यदि तीर्थंकर भी हो तो जबतक गृहस्थ रहे तबतक मोक्ष नहीं पाता है,...** भगवान तीन ज्ञान लेकर आये हों, तीर्थंकर तो। स्वर्ग में से आवे, कोई नरक में से आवे। श्रेणिक राजा है न? अभी नरक में है। ८४ हजार वर्ष की स्थिति में है। आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर होनेवाले हैं। श्रेणिक राजा। वे भगवान के समय में थे। राजा श्रेणिक। चेलना रानी। उनकी स्त्री समकिती थी। स्वयं (राजा श्रेणिक) बौद्धपन्थी था। चेतनारानी का निमित्त और समकित को प्राप्त हुए। क्षायिक समकित प्राप्त हुए। तीर्थंकरगोत्र बाँधा है। श्रेणिक राजा। भगवान के समय में। मुनि की अशातना की थी। ३३ सागर की स्थिति नरक की बाँधी थी। फिर भगवान के शासन में आकर सबको वन्दन करते हैं। क्षायिक समकित पाते हैं। ३३ सागर की स्थिति तोड़ डालते हैं। चौरासी हजार वर्ष की रह जाती है। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में अभी पहले नरक में हैं। श्रेणिक राजा का जीव। तीर्थंकरगोत्र बाँधा है। क्षायिक समकिती है। पहले नरक में है। वहाँ से निकलकर आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर होंगे। जैसे महावीर भगवान हुए, वैसे तीर्थंकर होंगे। समझ में आया? परन्तु क्षायिक समकित पाये थे।

कहते हैं कि वे तीर्थंकर नरक में से आयेंगे। और कोई तीर्थंकर स्वर्ग में से (आते हैं)। यह ऋषभदेव भगवान, महावीर भगवान, वे स्वर्ग में से आये हैं। ऋषभदेव भगवान सर्वार्थसिद्धि में से आये हैं। परन्तु वे भगवान आवे माता के गर्भ में, वे तीन ज्ञान लेकर आते हैं। मति, श्रुत और अवधि। पश्चात् मुनि होते हैं, वस्त्र छोड़कर निर्ग्रन्थ होते हैं, तब उन्हें चौथा ज्ञान होता है। वस्त्रसहित उन्हें चौथा ज्ञान (नहीं) होता है, उसे साधुपना भी नहीं

होता। तीर्थंकर जैसे को उस भव में मोक्ष जाना निश्चित है। समझ में आया ? भगवान को तो उस भव में मोक्ष है। वह भी हैं इसमें।

अष्टपाहुड़ में है न ? 'भवितव्य' आता है न ? वह कहीं आता है। भावपाहुड़ में या मोक्षपाहुड़ में। .... सिद्धि आता है न ? जिसकी मुक्ति और सिद्धि निश्चित है। आता है, श्लोक आता है। सब कहीं याद आता है अपने को। उसे भी मुनिपना चारित्र वीतरागी दशा अंगीकार किये बिना केवलज्ञान नहीं पाते। समझ में आया ? मोक्षपाहुड़ में होगा। सब याद कहाँ से रहे ? गाथा की गाथा। ऊपर से याद रहता है कि यह है। आहाहा ! भावपाहुड़ में है कहीं, हों ! भावपाहुड़ नहीं, मोक्षपाहुड़ (होगा) प्राय: करके। मोक्षपाहुड़। इस जगह है। है ? मोक्षपाहुड़ में ६० गाथा, देखो ! यह रही। ६० वीं।

धुवसिद्धि तित्थयरो चउणाणजुदो करेइ तवयरणं।
णाऊण धुवं कुज्जा तवयरणं णाणजुत्तो वि।।६०।।

अर्थ – **आचार्य कहते हैं कि देखो! जिसको नियम से मोक्ष होना है...** भगवान को तो इस भव में निश्चय मोक्ष होना है। तीन ज्ञान लेकर आये। जन्मते जिनका महोत्सव इन्द्रों ने मेरुपर्वत पर किया। निश्चित है कि इस भव जिन्हें मुक्ति–परमात्मा को दिखाई दे, वे भी **चार ज्ञान–मति, श्रुत, अवधि और मन:पर्यय इन से युक्त है, ऐसा तीर्थंकर भी तपश्चरण करता है,...** मुनिपना लेते हैं। चारित्र अंगीकार करते हैं, नग्न मुनि होते हैं, तब उन्हें मुक्ति होती है, नहीं तो उन्हें भी मुक्ति नहीं होती। समझ में आया ? आया ? यह है अवश्य। **'णग्गो विमोक्खमग्गो'। 'णग्गो विमोक्खमग्गो, सेसा उम्मग्गया सव्वे'।** नागा बादशाह से आघा। ऐसा मार्ग वीतराग का है। अन्तिम टुकड़ा है। आहाहा !

एक वस्त्र का इतना टुकड़ा रखे तो उसे धोना और उसका मैल और उसकी जूं पड़े। वह सब परिग्रह है, कहते हैं। ऐसा परिग्रहपना हो, वहाँ तक उसे मुनिपना नहीं हो सकता। ऐसी बात है, बापू ! सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने ऐसे ज्ञान में देखकर शास्त्र में यह आया है।

कहते हैं कि **जिनशासन में...** देखो ! इसे जैनशासन कहते हैं कि **वस्त्र धारण करनेवाला सिझता नहीं है,...** वस्त्र को धारण करनेवाला मोक्ष नहीं पाता। मुनि नहीं हो

सकता तो केवल (ज्ञान) कहाँ से पायेगा ? अरे रे ! सम्प्रदाय का विवाद निकला, सच्ची बात सुनने के कान बन्द किये। क्या हो ? जीवों की पात्रता नहीं होती वहाँ... अनादि से ऐसा का ऐसा उल्टी श्रद्धा से चार गति में भटकता है। यह तो बाह्य श्रद्धा की बात है, हों ! व्यवहार श्रद्धा। व्यवहार श्रद्धा ऐसी होने पर भी यदि निश्चय सम्यग्दर्शन न हो तो भी उसे धर्मी नहीं कहा जाता। आहाहा !

यदि तीर्थंकर भी हो तो जब तक गृहस्थ रहे, तब तक मोक्ष नहीं पाता है... तीर्थंकरपना हो, भगवान तीन ज्ञान लेकर आये हैं, निश्चित इन्द्र जिनके सेवक हैं। सौ इन्द्र जिनके भगत हैं। जिनके जन्म समय चौदह ब्रह्माण्ड में जरा हिलता है ऐसा–साता हो जाए। नारकी को भी जरा साता हो जाए। ऐसे तीन लोक के नाथ तीर्थंकर तीन ज्ञान लेकर माता के गर्भ में आये। कितने तो क्षायिक समकित लेकर (आये)। कितने ही। श्रेणिक (महाराजा को) पहले नरक में क्षायिक है। कितने ही तीसरे नरक से तीर्थंकर होते हैं। वे क्षयोपशम समकिती होते हैं। कोई तीसरे नरक में गये हों, वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होते हैं। क्षायिक समकिती न हो, क्षायिक यहाँ होता है। परन्तु कहते हैं कि तीर्थंकर जैसे जीव को भी जब तक गृहस्थाश्रम वस्त्रसहित रहे, तब तक वे मुक्ति, केवल(ज्ञान) नहीं पाते। आहाहा !

मार्ग यह है। इसे अंगीकार करना ही पड़ेगा। अनादि से... पहले ऐसी मान्यता करके अन्तर स्वरूप का सम्यग्दर्शन प्रगट करना चाहिए। समझ में आया ? अकेली बाहर की मान्यता करे, तो भी सम्यग्दर्शन है, ऐसा नहीं है। आहाहा !

गृहस्थ रहे, तब तक मोक्ष नहीं पाता है, दीक्षा लेकर दिगम्बररूप धारण करे, तब मोक्ष पावे,... आहाहा ! नग्न। माता से जन्मा ऐसा निर्विकार। आनन्द में झूलनेवाले, अतीन्द्रिय आनन्द के रसिक, अतीन्द्रिय आनन्द के रसिया, ऐसे सन्त भगवान के मार्ग में दिगम्बर लिंग धारण करे, तब उन्हें मुनिपना आवे। समझ में आया ? आहाहा !

आज्ञा में आता है न ? चरणानुयोग में नहीं आता ? बन्धुवर्ग, माता, पिता, स्त्री की आज्ञा ले। विदा ले। माता... पत्नी। शरीर को रमानेवाली। हमारी अनुभूतिरूपी स्त्री हमें प्रगट हुई है। आहाहा ! हमारा आत्मा आनन्द के वेदन में समकित में आया है। हमें ज्ञानचेतना प्रगटी है। हे माता ! इस शरीर को उत्पन्न करनेवाली। मुझे तूने उत्पन्न नहीं किया।

मैं तो आत्मा हूँ। हे पत्नी! इस शरीर को रमानेवाली। तू आत्मा को रमानेवाली नहीं है। आज्ञा दे। आज्ञा दे। क्षणभर भी हमें आनन्द के बिना कहीं चेन नहीं पड़ता। हम वन में चले जायेंगे। आहाहा! राजकुमार हो, अरबों रुपये की दिन की जिन्हें आमदनी हो, वे कमण्डल-मोरपिच्छी (लेकर) चल निकलते हैं। आहाहा! मोक्ष का प्रयाण। समझ में आया? मोक्ष की यात्रा के लिये निकले अब। उनकी दशा भगवान के मार्ग में तो अत्यन्त दिगम्बर कही है। भगवान! सम्प्रदाय की यह बात नहीं, हों! सिद्धान्तसूत्र की बात है। यह देखो न! समझ में आया? तब (कोई) कहे, दूसरे मार्ग में तो कहा है न? बापू! वे भगवान के कहे हुए नहीं हैं, भाई! गणधर के नाम से चढ़ाये हैं, लोगों को विश्वास आने के लिये। परन्तु वे गणधर के कहे हुए नहीं है, भाई! ठगा गये। रतिभाई! आहाहा!

वहाँ तो दुकान पर भी हम तो शास्त्र पढ़ते थे। श्वेताम्बर शास्त्र। स्थानकवासी थे न हम तो। हमारे परिवार की पीढ़ी, आठ पीढ़ी स्थानकवासी। गृहस्थ। पिता के पिता गढडा के। गृहस्थ। पालेज दुकान घर की थी। वह सब शास्त्र पढ़ते। दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग, सूयगडांग, सब पढ़ते। वहाँ पढ़े थे। उस समय तो यह भगवान के हैं, ऐसा माना था। यहाँ क्या खबर की यह... समझ में आया? यह (संवत्) १९६४, ६५, ६६, ६७ की बात है। १९७० में दीक्षा (ली)। ५७ वर्ष में दीक्षा। उसके पहले की बात है। साठ वर्ष पहले, हों! दुकान तो पिताजी की घर की थी। निवृत्ति बहुत। दशवैकालिक, सूयगडांग तो बहुत बार पढ़ा। आचारांग, उत्तराध्ययन पूरा ३६ अध्ययन है न? २२०० श्लोक। बहुत पढ़े। तब तो भगवान ने कहे हैं ऐसा माना था। फिर खबर पड़ी कि ओह! भगवान... यह तो... ऐई! नवनीतभाई!

फिर हमारे भाई को कहा, दीक्षा बड़ी धूमधाम से ली थी। उमराला में ५७ वर्ष पहले। बड़ी दीक्षा हाथी के हौदे। भाई को कहा कि तुमने बड़ी दीक्षा दी... परन्तु मुनिपना ऐसा नहीं होता। साधुपना ऐसा नहीं होता। मार्ग दूसरा है, भाई! ऐई! हमारे भाई-बड़े भाई थे न? बहुत ... बहुत प्रेम था हमारे प्रति। खुशालभाई। बहुत प्रेम था। छोड़ दो। खोटे में नहीं रहना परन्तु धीरे-धीरे करना। इतना जरा (बोले)। खानदान सही न। एकदम धक्का लगेगा। नाम बड़ा है (इसलिए) एकदम छोड़ेगे तो धक्का लगेगा। (संवत्) १९८७ में बात हुई थी। १९९१ में यहाँ (परिवर्तन किया)। मार्ग दूसरा है, बापू! भाई! क्या हो?

इसे सुनने को मिला नहीं न। मुनिपना कैसा होता है, इसने सुना नहीं। आहाहा! मुनिपना प्रगट हो, वह तो अलौकिक! वह तो परमेश्वर! पंच परमेष्ठी। परम में इष्ट वह परमेष्ठी। परम परमात्मा अपना स्वरूप, उसमें इष्ट-स्थिर हैं वे। आहाहा! यहाँ तो उसे विकल्प के, शुभभाव का ठिकाना नहीं होता। बाहर के वस्त्र के... यहाँ तो पंच परमेष्ठी। परम परमात्मस्वरूप में इष्ट। स्थिर, स्थिर हैं अन्दर। आहाहा! समझ में आया? धन्य अवतार! यह चारित्रदशा के भाव, धन्य वस्तु! प्राप्त करे वह तो धन्य! धन्य!! और धन्य है!!! कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? परन्तु पहले इसे श्रद्धा तो करनी पड़ेगी। आहाहा! नवनीतभाई! यह तो शास्त्र ऐसा आवे, तब फिर कहीं छिपाया जाए?

नग्नपना ही मोक्षमार्ग है, शेष सब लिंग उन्मार्ग है। सब कुमार्ग है—उन्मार्ग है। वस्त्रसहित (जो) शास्त्र मुनिपना माने, मनावे, वे शास्त्र भी उन्मार्ग के हैं, वे साधु उन्मार्गी हैं। ऐसा भगवान परमात्मा ने कहा हुआ मार्ग है। सीमन्धर भगवान महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। साक्षात् प्रभु विराजते हैं। बीस तीर्थंकर, लाखों केवली। उनके पास यह कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। संवत् ४९ में। दो हजार वर्ष पहले। वहाँ से आकर यह शास्त्र रचे हैं। भगवान के पास आठ दिन रहे थे। वहाँ तो धोख मार्ग, निर्ग्रन्थ का मार्ग, परमात्मा का वहाँ चलता है। केवलज्ञान पाकर मोक्ष जानेवाले महाविदेह में भगवान अभी तो मौजूद हैं। पाँच सौ धनुष का देह है, करोड़ पूर्व का आयुष्य है। एक पूर्व में सत्तर लाख छप्पन हजार करोड़ वर्ष होते हैं। समझे न! ऐसा भगवान का करोड़ पूर्व का आयुष्य है। परमात्मा अभी विराजते हैं, अरिहन्त पद में हैं। भगवान महावीर आदि तो सिद्ध पद में हो गये। अब शरीर नहीं तो सिद्ध हो गये। अशरीरी। अरिहन्त को अभी शरीर होता है। आठ कर्म में चार कर्म जलाये होते हैं और चार कर्म बाकी होते हैं। समझ में आया? भगवान महाविदेह में मनुष्यरूप से अरिहन्त पद में विराजते हैं। आगामी चौबीसी में तेरहवें तीर्थंकर के काल में मोक्ष जायेंगे। विगत तीर्थंकर में बीसवें तीर्थंकर के समय मुनिपना लिया। फिर मुनि केवली हुए। समझ में आया? इतना लम्बा आयुष्य है। उनके पास गये थे और वह वाणी वह लेकर के आये हैं। समझ में आया? कहते हैं,... श्रीमद् ने भी कहा उसमें। उसे कौन माने? वापस विवाद उठे।

मुमुक्षु : नग्नभाव, मूंड भाव...

पूज्य गुरुदेवश्री : नग्नभाव, यह भाव सिद्ध किया। मूंड भाव अर्थात् भाव। वस्त्ररहित कहाँ हुआ इसमें ? ऐसा नहीं चलता। नग्नभाव, मूंडभाव। वे लोग तर्क करते हैं न। बाकी उसमें तो 'अदन्तधोवन आदि परम प्रसिद्ध जो' यह तो इन अट्ठाईस मूलगुण का शब्द है। सत्ताईस में अदन्तधोवन शब्द नहीं आता। अदन्तधोवन शब्द अट्ठाईस मूलगुण में है। समझ में आया ?

नग्नभाव मूंडभाव सह अस्नानता
अदन्तधोवन आदि परम प्रसिद्ध जो,

नग्नभाव मूंडभाव... भाव तो अन्दर नग्न और बाह्य नग्न, दोनों। यह तो पहले में नहीं आया ? बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ में ? द्रव्य से, भाव से संयम। बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ। फिर आता है न ? द्रव्य-भाव से संयम। द्रव्य-भाव संयममय, यह। उसमें भी बाह्य अभ्यन्तर। द्रव्य, भाव संयममय निर्ग्रन्थ। मात्र शरीर के अतिरिक्त कुछ नहीं होता। शरीर तो आयुष्य हो, तब तक छोड़ा नहीं जाता। आहाहा ! दशा, सन्तों की दशा, चारित्र की दशा, बापू ! परमेश्वर में रहे हैं। परमेश्वर के पदचिह्नों में पड़े, वे परमेश्वर होनेवाले हैं। उनका मार्ग अलग है, भाई ! इसके अतिरिक्त यह कल्पित बनाकर जो उसे मूंडकर साधु, साध्वी मानते हैं, कहते हैं वे सब वीतरागमार्ग से उन्मार्ग है। आज माने, कल माने, बाद में माने, यह मानने से ही छुटकारा है। समझ में आया ? यह माने बिना इसका मिथ्यादर्शन छूटेगा नहीं। आहाहा !

सोलह वर्ष में ऐसा पढ़ा जाता है, हों ! समयसार और प्रवचनसार (पढ़ा जाता है)। लोग जाने तो सही न, भाई ! इतनी खबर नहीं, यह परिवर्तन करके बैठे हैं, वह किसलिए ? कोई कारण होगा या नहीं ? वीतराग का मार्ग अनादि का दिगम्बर जैनदर्शन दिगम्बर है। उसमें से श्वेताम्बर ६०० वर्ष में निकले। मूर्तिपूजक श्वेताम्बर, उसमें से स्थानकवासी ५०० वर्ष पहले निकले। उसमें से ये निकले हैं। दोनों अनादि का मार्ग नहीं हैं। उसमें यह तेरापन्थी तुलसी निकले। दया को पाप माने, पर की दया पालना भी (पाप माने)। उनमें से २०० वर्ष पहले निकले हुए। अनादि वीतराग का मार्ग दिगम्बर मार्ग है। सनातन। ढ़िंढोरा पीटकर कहने की बात है। समझ में आया ? इस मार्ग में आये बिना किसी की मुक्ति है नहीं। ऐई ! इन्हें तो अभी बाहर का था। तुम्हारे तो। देशसेवा और... देशसेवा धूल में भी

नहीं करता। देशसेवा करें तो हमारा (कल्याण होगा) । धूल भी नहीं। कौन करता था ? इस शरीर का कर नहीं सकता। यह तो मिट्टी है। यह तो पुद्‌गल है। यह जड़ की अवस्था जड़ से होती है, क्या आत्मा से होती है ? किसी की सेवा कर दे, इसलिए फिर लाभ मिले और सामने पड़े (प्रसिद्ध हो) । अनादि से ऐसा चलता है। यह वस्तु कहीं नयी नहीं है। फिर कहीं माने तो सही न।

बापू! मार्ग तो सर्वज्ञ परमेश्वर केवलीपण्णत्तो धम्मो शरणं। परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने जो यह कहा है, वह शरण है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई शरण नहीं है। समझ में आया ?

शेष सब लिंग उन्मार्ग है। भावार्थ करे, तब स्पष्ट तो करना पड़े न।

भावार्थ – श्वेताम्बर आदि वस्त्रपात्र के भी मोक्ष होना कहते हैं, वह मिथ्या है, यह जिनमत नहीं है। वीतराग का मत, वीतराग का मार्ग नहीं। ऐ... हीराभाई ! तुम तो मन्दिरमार्गी थे, नहीं ? श्वेताम्बर। मन्दिरमार्गी श्वेताम्बर। इनके कुछ स्थानकवासी थे। और दिगम्बर कोई ऐसे। यह श्वेताम्बर है, यह स्थानकवासी है। अपने नवनीतभाई दिगम्बर में पहले से जन्मे हुए। हमारे जादवजीभाई और सब स्थानकवासी। स्थानकवासी ही अधिक। यह स्थानक तो आत्मा, उसका वासी होना, इसका नाम स्थानकवासी है। समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं, पाठ में है इसलिए स्पष्टीकरण तो करना पड़े न। दूसरा क्या हो ? श्वेताम्बर मन्दिरमार्गी या स्थानकवासी या तेरापंथी, तीनों वस्त्रधारी को मोक्ष होना कहते हैं, वह मिथ्यादृष्टि है। वह जिनमत–वीतराग की आज्ञा का मार्ग नहीं है। भारी भाई यह तो।

गाथा-२४

आगे स्त्रियों को दीक्षा नहीं है, इसका कारण कहते हैं –

लिंगम्मि य इत्थीणं थणंतरे णाहिकक्खदेसेसु।
भणिओ सुहुमो काओ तासिं कह होइ पव्वज्जा।।२४।।

लिंगे च स्त्रीणां स्तनांतरे नाभिकक्षदेशेषु।
भणितः सूक्ष्मः कायः तासां कथं भवति प्रव्रज्या।।२४।।

हों स्तनों के मध्य योनि काँख नाभि में कहे।
बहु सूक्ष्म प्राणी तब प्रव्रज्या कहें कैसे नारि के?।।२४।।

अर्थ – स्त्रियों के लिंग अर्थात् योनि में, स्तनांतर अर्थात् दोनों कुचों के मध्य प्रदेश में तथा कक्ष अर्थात् दोनों काँखों में, नाभि में सूक्ष्मकाय अर्थात् दृष्टि के अगोचर जीव कहे हैं, अतः इस प्रकार स्त्रियों के [1]प्रवज्या अर्थात् दीक्षा कैसे हो ?

भावार्थ – स्त्रियों के योनि, स्तन, कांख, नाभि में पंचेन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति निरन्तर कही है, इनके महाव्रतरूप दीक्षा कैसे हो ? महाव्रत कहे हैं वह उपचार से कहे हैं, परमार्थ से नहीं है, स्त्री अपने सामर्थ्य की हद्द को पहुँचकर व्रत धारण करती है, इस अपेक्षा से उपचार से महाव्रत कहे हैं।।२४।।

गाथा-२४ पर प्रवचन

आगे स्त्रियों को दीक्षा नहीं है, इसका कारण कहते हैं। स्त्री को दीक्षा नहीं होती। भगवान के मार्ग में उसे साध्वीपना नहीं आता। स्त्री को बहुत तो पंचम गुणस्थान आता है। यह अनादि का मार्ग है। यह सब साध्वी नाम धराते हैं। हमें छठे गुणस्थान में हैं। सब मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्व का सेवन करनेवाले हैं। समझ में आया? मार्ग ऐसा है, बापू!

---

१. पाठान्तर – प्रव्रज्या।

सत्य तो यह है। कड़क लगे या दूसरा लगे, मार्ग तो बापू! ऐसा है, भाई! क्या कहते हैं ? देखो! स्त्री को दीक्षा नहीं होती। उसे साध्वीपना नहीं हो सकता।

लिंगम्मि य इत्थीणं थणंतरे णाहिकक्खदेसेसु।
भणिओ सुहुमो काओ तासिं कह होइ पव्वज्जा।।२४।।

अहो! देह जड़ मिट्टी का। स्त्री के लिंग / चिह्न मिट्टी के, पुद्‌गल के। उस लिंग में, **योनि में, स्तनांतर...** स्तन के अन्तर में अन्तर। **अर्थात् दोनों कुचों के मध्य प्रदेश में...** स्तन। **कक्ष अर्थात् दोनों काँखों में,...** काँख में। **नाभि में सूक्ष्मकाय अर्थात् दृष्टि के अगोचर जीव कहे हैं,...** ओहो! जीव उत्पन्न (होते हैं)। जहाँ चिकनाहट होती है, वहाँ सब पंचेन्द्रिय जीव उत्पन्न होते हैं। सूक्ष्म पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छन जीव। उनकी वह दया पाल नहीं सकती। इतनी हिंसा होती है, इसलिए उसे मुनिपना नहीं हो सकता। आहाहा! **इस प्रकार स्त्रियों के प्रवज्या अर्थात् दीक्षा कैसे हो?** उसे दीक्षा नहीं हो सकती। समझ में आया ? स्त्री। जिसका शरीर स्त्री है, उसे दीक्षा तीन काल में जैनदर्शन में नहीं हो सकती। अभी जो मानते हैं, वे सब मिथ्यादृष्टि गृहीत मिथ्यात्व है। नवनीतभाई! ... बालब्रह्मचारी दीक्षा और यह दीक्षा। अभी तो सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं, दीक्षा कहाँ से आयी ? समझ में आया ? आहाहा! भारी मार्ग।

'धार तलवार नी सोह्यली, दोह्यली चौदमा जिनतणी चरणसेवा' भगवान की आज्ञा कठिन है। 'धार पर नाचता देख बाजीगरा, सेवना धार पर रहे न देवा।' वीतराग की आज्ञा है कि स्त्रियों को दीक्षितपना तीन काल में साधुपना नहीं हो सकता है। जो कुछ स्त्री को साधुपद शास्त्र ने मनवाया है, वे शास्त्र भी झूठे हैं और वह साधुपद मानते हैं, वह भी झूठा और मिथ्यादृष्टि है। जादवजीभाई! छाछ लेने जाए और फिर बर्तन छिपावे ? नहीं कहते ? छाछ लेने जाना हो न, दस सेर छाछ चाहिए हो तो दो सेर लोटा लेकर जाता हो और दस सेर चाहिए हो तो सामने घड़ा रखे। लो, इस घड़े में दस सेर छाछ चाहिए है। यह कहीं छिपाकर रखे ? प्रतिदिन दो सेर (लेनी हो तो) कलश लेकर जाए। घर में मेहमान आये। कढ़ी बनानी हो। घड़ा सामने रखे, उसे छिपाकर न रखे। इसी प्रकार यहाँ भगवान कहते हैं, मार्ग कहीं छिपाकर नहीं रखते। मार्ग खुल्ला रखते हैं। मार्ग ऐसा है। जँचे, न जँचे, स्वतन्त्र जीव है। कठिन काम, बहुत कठिन काम।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। तुम्हारे कुछ होगा।

मुमुक्षु : छाछ लेने जाना और बर्तन छिपाना?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। बर्तन छिपाना नहीं। हमारे (ऐसा कहा जाता है), छाछ लेने लाना हो तो दौणी छिपाना नहीं। अपने यह कहावत है। छोटी उम्र से सुनी हुई।

कहते हैं, स्त्री को साधुपद क्यों नहीं होता? भगवान केवली ने स्त्री के अवयव जो अन्तर पड़े, जिसमें ढंक कर रहे, उस चिकनाई में बहुत जीव उत्पन्न होते हैं। उनका वहाँ संहार होता है। आहाहा! उसे दीक्षा कैसे हो? उसे दीक्षा मानना और जिसने मनवायी, वे सब मिथ्या शास्त्र मिथ्यादृष्टि के बनाये हुए हैं। भारी बात, भाई! मार्ग ऐसा है, भाई! वीतराग की आज्ञा के कथन ऐसे हैं। शान्तिभाई! भारी मार्ग, भाई! यह बाहर से वापस माने और अन्तर में भान न हो, वे कहीं श्रावक नहीं हैं। बाहर से माने कि हम मानते हैं। परन्तु अन्तर रागरहित आत्मा कौन है, उसका सम्यग्दर्शन नहीं, वह भी धर्मी नहीं।

यहाँ तो धर्मीजीव को ऐसे मार्ग में ऐसा माननेयोग्य हो तो ऐसे होते हैं। समझ में आया? सूत्र है न यह? यह सूत्रपाहुड़ है न? सूत्र अर्थात् सिद्धान्त। भगवान की वाणी में आये हुए ये शास्त्र। उनमें यह कहा हुआ है। भगवान के नाम से चढ़ाये, उसके बिना चले नहीं, चले नहीं। आहाहा! माल लेने जाये तो भी पहले माल न ले गया हो, पाँच हजार नारियल अमुक ले गया। नामा में सामने आगे रखे। इसलिए फिर दूसरे एकदम लेने लगे। थोड़ा भाव बढ़ाया हो न। मेथी की बोरियाँ पाँच सौ, हजार है। देखो! पच्चीस बोरियाँ अमुक सेठ इस भाव ले गये हैं। होवे खोटा-खोटा, हों! नामा बतावे। हाँ, सेठ ले गये लगते हैं। इस भव में हमको दो। दस बोरियाँ दो। यह सब हुआ है, हों! यह तो देखा हुआ है। बड़े के नाम से चढ़ावे। कोई ले न गया हो, हों! माणेकलाल! होता है या नहीं ऐसा? होता है, मुझे खबर है, वहाँ पालेज में। नाम पहले खोटा बतावे, भाव कुछ बढ़ाया हुआ हो। बड़े के नाम से कहे तो... पाँच सौ बोरियाँ हैं। पच्चीस वहाँ ले गये हैं। यह भाव है। इसी प्रकार भगवान के नाम से चढ़ावे, इसलिए बेचारे लेने लगे। एकदम। ऐ... सुजानमलजी!

भावार्थ - स्त्रियों के योनि, स्तन, काँख, नाभि में पंचेन्द्रिय जीवों की

उत्पत्ति निरन्तर कही है, इनके महाव्रतरूप दीक्षा कैसे हो ? महाव्रत कहे हैं वह उपचार से कहे हैं,... आर्यिका को महाव्रत होते हैं। वे उपचार से हैं, व्यवहार से। अन्तिम में अन्तिम स्थिति में ऐसा ले लिया हो। **परमार्थ से नहीं है, स्त्री अपने सामर्थ्य की हद्द को पहुँचकर व्रत धारण करती है, इस अपेक्षा से उपचार से महाव्रत कहे हैं।** आर्यिका होती है, एक वस्त्र रखती है। पंच महाव्रत का उसके उपचार होता है। सच्चे महाव्रत नहीं हो सकते। ऐसा वीतरागमार्ग में सच्ची श्रद्धा के विषयरूप से ऐसे मुनि और ऐसे आर्यिका को गिनने में आया है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-२५

आगे कहते हैं कि यदि स्त्री भी दर्शन से शुद्ध हो तो पापरहित है, भली है –

जइ दंसणेण सुद्धा उत्ता मग्गेण सावि संजुत्ता।
घोरं चरिय चरित्तं इत्थीसु ण [१]पव्वया भणिया।।२५।।

यदि दर्शनेन शुद्धा उक्ता मार्गेण सापि संयुक्ता।
घोरं चरित्वा चारित्रं स्त्रीषु न पापका भणिता।।२५।।

हो भले दर्शन शुद्ध होती मार्ग से संयुक्त भी।
हो घोर तपसी चरण पर नहिं नारि के दीक्षा कही।।२५।।

***अर्थ* – स्त्रियों में जो स्त्री दर्शन अर्थात् जिनमत की श्रद्धा से शुद्ध है, वह भी मार्ग से संयुक्त कही गई है। जो घोर चारित्र तीव्र तपश्चरणादिक आचरण से पापरहित होती है, इसलिए उसे पापयुक्त नहीं कहते हैं।**

***भावार्थ* – स्त्रियों में जो स्त्री सम्यक्त्वसहित हो और तपश्चरण करे तो पापरहित होकर स्वर्ग को प्राप्त हो; इसलिए प्रशंसा करने योग्य है, परन्तु स्त्रीपर्याय से मोक्ष नहीं है।।२५।।**

---

१. पाठान्तर – पावया।

प्रवचन-३४, गाथा-२५ से २७, सोमवार, आषाढ़ शुक्ल ९, दिनांक १३-०७-१९७०

सूत्रपाहुड़। **आगे कहते हैं कि यदि स्त्री भी दर्शन से शुद्ध हो तो पापरहित है, भली है।** यहाँ ऐसा सिद्ध करना है, स्त्री का जिसे देह है, उसे साधुपद और केवलज्ञान नहीं हो सकता। ऐसा सूत्र, सिद्धान्त-भगवान के आगम में ऐसी वाणी है। यह सूत्रपाहुड़ है न? भगवान के कहे हुए आगम, शास्त्र, सिद्धान्त, सूत्र में स्त्री को दीक्षित, साधुपद और मुनि, केवलज्ञान कहा नहीं, उसे नहीं हो सकता। उसे पंचम गुणस्थान की योग्यता होती है। यह कहते हैं।

जइ दंसणेण सुद्धा उत्ता मग्गेण सावि संजुत्ता।
घोरं चरिय चरित्तं इत्थीसु ण [२]पव्वया भणिया।।२५।।

अर्थ - स्त्रियों में जो स्त्री दर्शन अर्थात् जिनमत की श्रद्धा से शुद्ध है,... वीतराग का मार्ग जो आत्मदर्शन, उसकी उसे शुद्धि हो, सम्यग्दर्शन से शुद्धि हो। स्त्री को भी सम्यग्दर्शन हो सकता है। वह जिनमत अर्थात् वीतराग का अभिप्राय, जो आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्द की खान, निधान है, उसका जिसे अन्तर में भान होकर समकित होता है, वह **शुद्ध है, वह भी मार्ग से संयुक्त कही गई है।** वह भी मार्ग में है। भले मुक्ति न हो, है मार्ग में। वीतरागमार्ग के अन्दर उसे भी-स्त्री को भी मार्ग में गिना गया है।

जो घोर चारित्र तीव्र तपश्चरणादिक... करे। आर्यिका होकर कठोर तपस्या करे। चारित्र महाव्रत उपचार से पाले, तो भी **पापरहित होती है, इसलिए उसे पापयुक्त नहीं कहते हैं।** उसे पापसहित नहीं कहा जाता। मूल तो ऐसा कहना है कि ऐसा करे तो भी वह स्वर्ग में जा सकती है। सम्यग्दर्शनसहित हो, आत्मज्ञानसहित (हो) और घोर तपस्या और चारित्र जो उसके योग्य क्रिया हो, तो भी वह मरकर स्वर्ग में जाती है। उसे मुक्ति नहीं होती, ऐसा वीतराग के सिद्धान्त में अनादि से चला आया है।

भावार्थ - स्त्रियों में जो स्त्री सम्यक्त्वसहित हो... नीचे (अर्थ) किया है। **'पावया'** का अर्थ किया है न। **'प्रव्रज्या'** नहीं होती, ऐसा। है, आता है। चाहे जैसी स्त्री समकितसहित हो और अर्यिका हो तो भी उसे प्रव्रज्या-साधुपद नहीं हो सकता। समझ में

आया ? ऐसा अनादि वीतराग-सर्वज्ञ परमेश्वर के आगम में यह हुकम है। श्वेताम्बरों ने कल्पित शास्त्रों में स्त्री को साधुपद और केवलज्ञान सिद्ध किया है। वह कल्पित है। वे वीतराग के सिद्धान्त और शास्त्र नहीं हैं। लगे ऐसा कठोर, सम्प्रदाय के लोगों को धक्का लगे। सत्य तो सत्य ही रहता है। सत्य कहीं दूसरे प्रकार से हो जाएगा ?

स्त्रियों में जो स्त्री सम्यक्त्व सहित हो और तपश्चरण करे तो पापरहित होकर स्वर्ग को प्राप्त हो... ऐसा करे तो वह स्वर्ग में जाए। **इसलिए प्रशंसा करने योग्य है, परन्तु स्त्रीपर्याय से मोक्ष नहीं है।** श्वेताम्बर जो कहते हैं न ? मरुदेवी को मोक्ष। अमुक सीताजी को मोक्ष, द्रोपदी को... यह सब बातें मिथ्या हैं। कल्पित बनायी हुई बात है। भगवान के शास्त्र में यह नहीं था। स्वयं कल्पित शास्त्र बनाये उसमें यह सब लिखा। लोगों को बेचारों को खबर नहीं होती। जिस सम्प्रदाय में जन्मे, उसमें वे माने। मार्ग वह नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

गाथा-२६

आगे कहते हैं कि स्त्रियों के ध्यान की सिद्धि भी नहीं है –

चित्तासोहि ण तेसिं ढिल्लं भावं तहा सहावेण।
विज्जदि मासा तेसिं इत्थीसु ण संकया झाणा ।।२६।।

चित्ताशोधि न तेषां शिथिल: भाव: तथा स्वभावेन।
विद्यते मासा तेषां स्त्रीषु न शंकया ध्यानम् ।।२६।।

उनके नहीं मन शुद्धि स्वाभाविक शिथिल हों भाव भी।
मासिकधरम शंका-वशी निश्शंक ध्यान रहे नहीं।।२६।।

***अर्थ* – उन स्त्रियों के चित्त की शुद्धता नहीं है, वैसे ही स्वभाव ही से उनके ढीला भाव है, शिथिल परिणाम है और उनके मासा अर्थात् मास-मास में रुधिर का स्राव विद्यमान है, उसकी शंका रहती है, उससे स्त्रियों के ध्यान नहीं है।**

भावार्थ – **ध्यान होता है, वह चित्त शुद्ध हो, दृढ परिणाम हो, किसी तरह की शंका न हो तब होता है; सो स्त्रियों के तीनों ही कारण नहीं हैं, तब ध्यान कैसे हो ? ध्यान के बिना केवलज्ञान कैसे उत्पन्न हो और केवलज्ञान के बिना मोक्ष नहीं है, श्वेताम्बरादिक मोक्ष कहते हैं, वह मिथ्या है।।२६।।**

गाथा-२६ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि स्त्रियों के ध्यान की सिद्धि भी नहीं है। ध्यानसिद्धि बिना मुनिपना और केवलज्ञान नहीं हो सकता। ध्यान एकाग्र अन्दर आत्मा के आनन्द में बहुत उग्रता से ध्यान होना, वह स्त्री का शरीर जिसे हो, उसे वैसा नि:शंक ध्यान होने की योग्यता नहीं है। चौथे-पाँचवें के योग्य होवे, वह हो सकता है। परन्तु जो शुक्लध्यान की श्रेणी माँडकर ध्यान होनेयोग्य है, वैसा ध्यान उसे नहीं हो सकता।

चित्तासोहि ण तेसिं ढिल्लं भावं तहा सहावेण।
विज्जदि मासा तेसिं इत्थीसु ण संकया झाणा।।२६।।

अर्थ – **उन स्त्रियों के चित्त की शुद्धता नहीं है,...** मुनि के योग्य जो चित्त की शुद्धि चाहिए, वह उसे नहीं हो सकती। **वैसे ही स्वभाव ही से उनके ढीला भाव है,...** प्रमादभाव, शिथिलभाव बहुत होता है। **और उनके मासा अर्थात् मास-मास में रुधिर का स्राव विद्यमान है, उसकी शंका रहती है, उससे स्त्रियों के ध्यान नहीं है।** आनन्द के ध्यान में नि:शंकरूप से स्थिर होना, (ऐसा नहीं होता)। ऐसा स्त्री का देह हड्डियों का पिंजर जैसा है। उसमें शंका रहा करे। समझ में आया?

भावार्थ – **ध्यान होता है, वह चित्त शुद्ध हो,...** ध्यान हो, चित्त शुद्ध निर्मल हो और वस्त्ररहित आदि के परिणाम हों। **दृढ परिणाम हो,...** अन्दर में जम गये परिणाम हों। **किसी तरह की शंका न हो...** तीन बोल है। तब ध्यान—अन्दर में एकाग्र हो। **सो स्त्रियों के तीनों ही कारण नहीं हैं, तब ध्यान कैसे हो?** केवलज्ञान प्राप्त करने का ध्यान उसे नहीं हो सकता। कहो, समझ में आया?

ध्यान के बिना केवलज्ञान कैसे उत्पन्न हो और केवलज्ञान के बिना मोक्ष नहीं है, श्वेताम्बरादिक मोक्ष कहते हैं, वह मिथ्या है। श्वेताम्बर स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी, तेरापन्थी स्त्री को साधुपद कहते हैं और स्त्री को मोक्ष हुआ कहते हैं, वह अत्यन्त मिथ्या बात है, झूठी बात है। वीतराग के मार्ग की वह बात नहीं है। ऐसा मार्ग चलता होगा? लाखों लोग। दस-दस, बीस-बीस लाख लोग (हों)। लोग तो गाडरिया का प्रवाह है। भान न हो तो चले सब, उसमें क्या है? श्वेताम्बर ने शास्त्र नये बनाये, कल्पित। भगवान के बाद (बनाये) और उनके वे कल्पित शास्त्र स्थानकवासी ने मान्य रखे, उनके वे कल्पित शास्त्र तेरापन्थी ने मान्य रखे। उन शास्त्रों में स्त्री को साधुपद, मुक्ति कही गयी है। वह सब कल्पित / झूठी बातें हैं। वीतराग मार्ग से अत्यन्त विरोध। सत्य से अनमेल बात है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर एकाग्रता, लीनता, अन्दर में जम जाना। मजबूत संहनन स्त्री के शरीर में वह हो नहीं सकता। शिथिल शरीर (होता है)।

गाथा-२७

आगे सूत्रपाहुड को समाप्त करते हैं, सामान्यरूप से सुख का कारण कहते हैं -

गाहेण अप्पगाहा समुद्दसलिले सचेलअत्थेण।
इच्छा जाहु णियत्ता ताह णियत्ताइं सव्वदुक्खाइं।।२७।।

ग्राह्येण अल्पग्राहा: समुद्रसलिले स्वचेलार्थेन।
इच्छा येभ्य: निवृत्ता: तेषां निवृत्तानि सर्वदु:खानि।।२७।।

पट-शुद्धि मात्र समुद्र-जल-सम ग्राह्य भी जो अल्प ले।
इच्छा-निवृत्ति है जिन्हें सब दु:ख-निवृत्ति उन्हें।।२७।।

अर्थ - **जो मुनि ग्राह्य अर्थात् ग्रहण करनेयोग्य वस्तु आहार आदिक से तो**

अल्पग्राह्य हैं, थोड़ा ग्रहण करते हैं, जैसे कोई पुरुष बहुत जल से भरे हुए समुद्र में से अपने वस्त्र को धोने के लिए वस्त्र धोनेमात्र जल ग्रहण करता है और जिन मुनियों के इच्छा निवृत्त हो गयी, उनके सब दुःख निवृत्त हो गये।

***भावार्थ* – जगत में यह प्रसिद्ध है कि जिनके सन्तोष है, वे सुखी हैं, इस न्याय से यह सिद्ध हुआ कि जिन मुनियों के इच्छा की निवृत्ति हो गयी है, उनके संसार के विषयसम्बन्धी इच्छा किंचित्मात्र भी नहीं हैं, देह से विरक्त हैं; इसलिए परम सन्तोषी हैं और आहारादि कुछ ग्रहण योग्य हैं, उनमें से भी अल्प को ग्रहण करते हैं, इसलिए वे परम सन्तोषी हैं, वे परम सुखी हैं, यह जिनसूत्र के श्रद्धान का फल है, अन्य सूत्र में यथार्थ निवृत्ति का प्ररूपण नहीं है, इसलिए कल्याण के सुख को चाहनेवालों को जिनसूत्र का निरन्तर सेवन करना योग्य है।।२७।।**

ऐसे सूत्रपाहुड को पूर्ण किया।

गाथा-२७ पर प्रवचन

आगे सूत्रपाहुड को समाप्त करते हैं,... अन्तिम गाथा कहकर पूरा करते हैं। सूत्रपाहुड़ अर्थात् भगवान के कहे हुए सिद्धान्त को यहाँ सूत्र कहते हैं। इसलिए कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने ऐसे सूत्र के अतिरिक्त दूसरे कल्पित सूत्र के नाम दिये, आचारांग और सूयगडांग और ठाणांग और ग्यारह अंग के नाम दिये न? सब कल्पित। गणधर के नाम से जगत को ठगा है, ठगा है। भारी कठिन काम। ऐ! भीखाभाई! ऐसा मार्ग है, भाई! समझ में आया? **सूत्रपाहुड को समाप्त करते हैं, सामान्यरूप से सुख का कारण कहते हैं –**

गाहेण अप्पगाहा समुद्दसलिले सचेलअत्थेण।
इच्छा जाहु णियत्ता ताह णियत्ताइं सव्वदुक्खाइं।।२७।।

अर्थ – जो मुनि... दिगम्बर मुनि होते हैं, उन्हें अन्तर में आनन्द की उग्रता का वेदन होता है। प्रचुर स्वसंवेदन। आत्मा का स्व-अपना प्रत्यक्ष आनन्द का वेदन प्रचुर होता है। बाह्य में उनकी दशा एकदम दिगम्बर, माता से जन्मे ऐसी होती है। उसे **ग्राह्य अर्थात्**

ग्रहण करनेयोग्य वस्तु आहार आदिक से तो अल्पग्राह्य हैं,... एक शरीर को निभाने जितना आहार-पानी लेते हैं। बाकी कुछ ग्रहण नहीं करते। समझ में आया? दृष्टान्त देते हैं।

जैसे कोई पुरुष बहुत जल से भरे हुए समुद्र में से अपने वस्त्र को धोने के लिए वस्त्र धोनेमात्र जल ग्रहण करता है... वस्त्र को धोने मात्र का पानी ग्रहण करे। पूरा समुद्र भरा हो तो सबको पकड़े? इसी प्रकार मुनि, शरीर के निभाव के लिये आहार-पानी थोड़ा ग्रहण करे, बाकी दूसरी कोई चीज़ ग्रहण करे नहीं। वस्त्र-पात्र आदि मुनि को नहीं हो सकते। ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया? जिसकी ऐसी व्यवहार श्रद्धा का भी ठिकाना नहीं, उसे गृहीत मिथ्यात्व टले बिना, अगृहीत मिथ्यात्व टलता नहीं। समझ में आया?

जिन मुनियों के इच्छा निवृत्त हो गयी,... कहते हैं कि, मुनि तो एक आहार-पानी लेने की शरीर में क्षुधा हो उतनी वृत्ति जरा होती है। वह भी उसे निभाने जितना आहार-पानी थोड़ा लेते हैं, बस। समुद्र पानी से भरपूर है। अपना एक वस्त्र धोना है, उतना पानी ले, बाकी सब पानी की इच्छा करे वह? इसी प्रकार मुनि को इतनी एक आहार-पानी की इच्छा वर्तती है। इसके अतिरिक्त **इच्छा निवृत्त हो गयी,...** बस इच्छा मात्र निवृत्त हो गयी है। ऐसी मुनि की दशा वीतरागमार्ग में वीतरागी सन्तों की दशा कही है।

उनके सब दुःख निवृत्त हो गये। इच्छा ही सब गयी। एक अल्प आहार लेने की वृत्ति रही। तो कहते हैं कि इच्छा से निवृत्त हुए, वे सुखी। 'क्या इच्छत... खोवत सबै...' आता है न? 'है इच्छा दुःखमूल।' इच्छा नहीं होती। मात्र एक आत्मा का आनन्द का अनुभव और शरीर के लिये पोषण की एक आहार की वृत्ति... हो। बाकी कुछ इच्छा नहीं। आनन्द में-सन्तोष में सन्त झूलते हैं। उन्हें जैनदर्शन में आचार्य, उपाध्याय, साधुपद कहा जाता है। समझ में आया?

***भावार्थ* – जगत में यह प्रसिद्ध है...** नहीं कहते? सन्तोषी सुखी, सदा सुखी। आत्मा का आनन्द जहाँ प्रगट हुआ है, अतीन्द्रिय आनन्द के जहाँ स्वाद अन्दर से आते हैं। आहाहा! घूँट, अतीन्द्रिय आनन्द का भान हुआ है तो अतीन्द्रिय आनन्द की घूँटें अन्दर से

आवें। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र उछला है, ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय महापदार्थ और अतीन्द्रिय महासुख, ऐसा अन्दर भरा है, उसका सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा का स्वाद आता है। और आगे मुनि होने पर उसे उग्र आनन्द का स्वाद आता है। ऐसे आनन्द के वेदन में कहते हैं, सर्व दुःख से निवृत्ति हो गयी। इच्छा निवृत्त हो गयी। कुछ इच्छा है नहीं। आहाहा!

जिनके सन्तोष है, वे सुखी हैं, इस न्याय से यह सिद्ध हुआ कि जिन मुनियों के इच्छा की निवृत्ति हो गयी है,... सब इच्छा निवृत्त हो गयी। एक अल्प आहार-पानी की वृत्ति। वह अमुक चौबीस घण्टे में या उपवास न हो, तब (उद्भवित होती है)। आहाहा! निवृत्त... निवृत्त... निवृत्त... निवृत्त... वे सुखी है। कहो, वे सब पैसेवाले और इज्जतवाले सुखी हैं, ऐसा नहीं कहा यहाँ तो। इच्छा दुःख है। इच्छा छूटे तो आनन्द हो। वह तो सब इच्छा है। पैसे की और इज्जत की और लड़के की और मकान की...

मुमुक्षु : इज्जत परिग्रह में आयी न?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब परिग्रह है। परिग्रह की... इच्छा (हो) वह प्राणी दुःखी है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : होवे ऐसा कहे या दुनिया का खींचकर कहे? महेन्द्रभाई का पत्र आवे, पिताजी साहेब! ऐसा है, वैसा है। इच्छा अन्दर जाये। बाबूभाई ऐसा कहते हैं। वह सब दुःख है, ऐसा कहते हैं। मलूकचन्दभाई! विनयवाले लड़के अच्छे हों। परन्तु लड़का किसका? इच्छा ही दुःख है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! यह शरीर मेरा, यह भी वृत्ति है, वह मिथ्यात्व है, दुःख है। मात्र उसे निभाने की जरा वृत्ति हो, है तो वह दुःख, परन्तु इतनी तो इच्छा मुनि को छठवें (गुणस्थान में) रही है। बाकी सब इच्छा से निवृत्त हुए है, ऐसा कहना है। सुख... सुख... सुख... सुख... सुख के सागर में स्नान करते हैं। आहाहा! समझ में आया? दुनिया में भी नहीं कहते? 'सुखिया जगत में सन्त, दुरिजन दुःखिया रे...' सुखिया जगत में सन्त। आत्मा आनन्द है। उस आनन्द के अतिरिक्त कोई भावना ही मुनि को नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी मुनि की दशा, आनन्द का घोंटन... घोंटन आनन्द का होता है। दूधपाक घोंटते हैं न? उसी प्रकार अन्दर आनन्द गाढ होता है।

आहाहा! उन्हें मुनि कहते हैं। वस्त्र तो नहीं, पात्र नहीं, शरीर के प्रति भी जिसे मूर्च्छा नहीं। ऐसे मुनि की इच्छा निवृत्त हुई है।

संसार के विषयसम्बन्धी इच्छा किंचित् मात्र भी नहीं हैं,... संसार के विषय सम्बन्धी तो है ही नहीं। **देह से विरक्त हैं...** लो। **इसलिए परम...** परम। आहाहा! जंगल में स्थित हों। एक ओर बाघ हो तथा एक ओर भालू हो और एक ओर स्वयं बैठे हों। आनन्द... आनन्द... आनन्द है। लो, इसका नाम मुनिपना। अन्दर आत्मा आनन्द उछल गया है। समझ में आया?

जैसे समुद्र में पानी का ज्वार आता है न? हिलोरें मारे ऐसे पानी। आते-आते मानो अभी नजदीक आ जाएगा, ऐसा लगे। यहाँ है न? क्या कहलाता है? पोरबन्दर। दो-दो आदमी डूबे इतना पानी आगे चला जाए, दो-दो आदमी डूबे (इतना पानी) सामने आगे आ जाए। चलते हुए ऐसे मानो यहाँ आ जाएगा, (ऐसा लगे)। यहाँ तो यहाँ आ जाएगा उसे पावर प्रस्फुटित हो। आ जाए। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद है न जहाँ सम्यग्दर्शन हुआ वहाँ। आहाहा! चौथे गुणस्थान में। पाँचवें में विशेष आनन्द, छठवें में विशेष आनन्द, सातवें में ध्यान का आनन्द है। आहाहा! यह वीतराग का मार्ग है। समझ में आया? वे सन्तोषी हैं, सुखी हैं।

आहारादि कुछ ग्रहण योग्य हैं, उनमें से भी अल्प को ग्रहण करते हैं... ऐसा कहा न? अल्प ग्रहण करे। **इसलिए वे परम सन्तोषी हैं, वे परम सुखी हैं,...** लो। इसलिए परम सुखी है। **यह जिनसूत्र के श्रद्धान का फल है,...** देखो! वीतराग के सिद्धान्त का श्रद्धान। वीतराग के सिद्धान्त वीतरागी आत्मा की श्रद्धा कराते हैं। वे राग से लाभ हो, पुण्य से लाभ हो, यह वीतरागी श्रद्धा नहीं है। ऐसा कहते हैं। **जिनसूत्र के श्रद्धान का फल है, अन्य सूत्र में यथार्थ निवृत्ति का प्ररूपण नहीं है...** ऐसी कथनी वीतराग सूत्र के अतिरिक्त; कल्पित सूत्र बनाये या अन्य के शास्त्र में यह बात नहीं होती। समझ में आया? है न? **अन्य सूत्र में यथार्थ निवृत्ति का प्ररूपण नहीं है...**

मुमुक्षु : सूत्रों की बात की।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। वस्त्र तीन चलते हैं और इतने चार चलते हैं और यह धोना

और जूं पड़े। चौदह उपकरण। उसने तो १११ लिये हैं। और जूँ पड़े सैकड़ों, हों! सैकड़ों जूँ। उसे रखे शरीर पर रखे सवेरे, शाम। और वापस उसमें-वस्त्र में ले लेवे। बहुत जूँ पड़े। दामोदर सेठ भी एक बार ऐसा करते थे। गृहस्थ थे। परन्तु फोवा होता है न? फोवा। फोवा में इतनी जूँ पड़ी कि एक बार हजारों पड़ी थी। धोतिया में रखे। एक बार शरीर को ऐसे रखे। पीवे खून। बाहर जाए तो एक व्यक्ति को सौंपे, कोई नौकर (हो उसे)। आहाहा! ऐसे ओढ़े, वह जूँ हो वह चिपके और खून पी जाए। कहो, ऐसा हुआ था। दामनगर। ऐसी लाईन चढ़ गयी। स्वयं छठ्ठ करते थे। उसका मैल, पसीना और हर रोज नहाते उसमें हजारों जूँ पड़ गयी। प्रतिदिन वस्त्र शरीर को छूआवे। इसलिए रक्त पी ले। एकाध बार, पाव घण्टे। साधु करते। हम भी सब करते थे। यह जूँ पड़े, डालें कहाँ? बाहर जाए तो मर जाए। शीशी में रखे, वहाँ रखे। दसा-बीस हो, फिर ले लेवे। चौबीस घण्टे में। सवेरे-शाम दो बार। समझ में आया? पहले एक रिवाज था न? वस्त्र पहनना और जूँ पड़े बिना रहे नहीं, तब करना क्या? कहीं जूँ डाल नहीं दी जाती।

अन्य सूत्र में यथार्थ निवृत्ति का... जिसे कुछ टुकड़ा भी नहीं मिले, जूँ किसकी पड़े? समझ में आया? पात्र नहीं होते। धोने के लिये समय कहाँ वहाँ? रंग-रोगन देना और यह करना और... आहाहा! प्रवृत्ति बहुत, कहते हैं। यह तो निवृत्ति का मार्ग भगवान ने कहा है। आहा! **इसलिए कल्याण के सुख को चाहनेवालों को जिनसूत्र का निरन्तर सेवन करना योग्य है।** भगवान ने वीतराग में जो सिद्धान्त-सूत्र कहे, उनकी सेवा करने योग्य है। वे कहते हैं, उसे माननेयोग्य है। उनमें... समझ में आया? चौथे गुणस्थान से कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की श्रद्धा छूट गयी। अनन्तानुबन्धी की कषाय टल गयी। भगवान के मार्ग में ऐसा यह आता है। इसके अतिरिक्त अन्यत्र समकित-बमकित नहीं होता। अन्य सूत्र को माननेवाले, अन्य सूत्र में विरोध करे और उसे माने, उसे समकित नहीं होता। मिथ्यादृष्टि का पोषण होता है, ऐसा कहते हैं।

कल्याण के सुख को चाहनेवालों को जिनसूत्र का निरन्तर सेवन करना योग्य है। भगवान ने कहे हुए शास्त्र, उन्हें सुनना, विचार करना, मनन करना, श्रद्धा करना और स्वरूप में स्थिर होने के लिये चारित्र का प्रयत्न करना। वह यह मार्ग है। दुनिया के

साथ कहीं मिलान नहीं खायेगा। ऐसा कहते हैं। अनमेल हो जाना हो अकेला (उसके लिये यह मार्ग है)।

भाई का लड़का कहता था न? दिलीप। तुम्हारा दिलीप। तुम्हारे लड़के को उसके पिता ने पूछा था। पहिचानते हो? अभी यहाँ नहीं थे? अभी गया। अभी तुम्हारे आने से पहले। डेढ़ महीने रहा। उसका पिता कहे, ग्यारह वर्ष पूरे हुए, बारहवाँ लगा। उनके पुत्र का पुत्र। उसके पिता ने पूछा, दिलीप! यह महाराज कहते हैं कि साधु होकर जंगल में रहे, उन्हें कैसे सुहाता होगा? पप्पा! उन्हें अन्दर आनन्द होता है। अतीन्द्रिय आनन्द होता है। सुहावे, न सुहावे, क्या कहते हो तुम? फिर दृष्टान्त दिया, दिलीप ने उसके पिता को। सिद्ध अकेले रहते हैं या नहीं? सिद्ध को नहीं सुहाता होगा वहाँ? सिद्ध को अनन्त आनन्द है। वह अकेले हैं। तुम्हें कलबलाहट चाहिए, बापूजी! पप्पा। कलबलाहट चाहिए। तुम्हें निवृत्ति नहीं चाहिए। ऐसा कहा। भगवानजीभाई! इन जादवजीभाई का पौत्र।

मुमुक्षु : हमारे लड़के ऐसा न कहे, तब तक तो निवृत्त नहीं होना न?

पूज्य गुरुदेवश्री : अब लड़के को भान कब था? वह तो सब मजदूर की भाँति मजदूरी करते हों। वह भी लड़का है न? अभी तो ग्यारह वर्ष पूरा करके बारहवाँ लगा है। सिद्ध निवृत्त में हैं। अकेले आनन्द में हैं, अकेले। तुम्हारे कलबलाहट चाहिए। यह और यह और यह... कलबलाहट। तुम्हें निवृत्ति नहीं चाहिए, सिद्ध नहीं होना। ऐई!

मुमुक्षु : न्याय की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : न्याय की बात है न। आत्मा है या नहीं? आत्मा चाहे जो जगे। चाहे तब जगे। आठ वर्ष में केवलज्ञान ले। उसमें क्या हो गया? उसके काका को काकी को घण्टे भर समझाता है। कलकत्ता में। गृहस्थ लोग हैं न? हुण्डी का धन्धा है, ब्याज बँटाओ का। यहाँ आ नहीं सकते। उसके बापू। बैठो। बैठो, एक घण्टे सुनो। सुनावे। ऐसा लड़का है। हमारे वजुभाई कहे, यह तो कौन जाने अपने मुमुक्षु में से मरकर आया है? ऐसा कहते। नहीं? ऐसा बोले। आत्मा के अतिरिक्त दूसरे का कर सकता हूँ, वे पागल जैसे हैं। पागल ही हैं। पागल जैसे नहीं। जादवजीभाई! कहा था या नहीं? आत्मा के अतिरिक्त परद्रव्य का कर्ता (हो), कर सकता है, ऐसा माने। करता हूँ, क्या धूल करे? तेरे द्रव्य का

प्रवेश है अन्दर कि तू पर का करे ? पागल जैसे हैं, पागल। पागल है। पागल जैसे नहीं। ऐ... नवनीतभाई ! पागल जैसे नहीं। पागल ही हैं। जैसे और उपमा (क्या) ? उसमें क्या है ? आत्मा है न ! चाहे वहाँ से निवृत्ति... माँ-बाप गड्ढे में पड़े हैं, हों ! इसे कमलेश को कहा। धर्मचन्दभाई के है न ? ... यह वहाँ गया है। कमलेश ! यह माँ-बाप सब गड्ढे में पड़े हैं, हों ! अपने को गड्ढे में डालना चाहते हैं। चल जंगल में जायें। जंगल में जायें, ऐसा बोला। अभी से ऐसा धड़ाका मारता है। यह माँ-बाप सब गड्ढे में पड़े हैं, पढ़ो, पढ़ो। क्या पढ़े ? धूल। ऐसा पठन तो अनन्त बार पढ़ा है। पठन पढ़कर भूल गया वह पठन ? ऐई !

आत्मा में अन्दर में रुचना चाहिए, भाई ! समझ में आया ? अभी अव्यक्तरूप से बिना भान के भी बोलता है न ? परन्तु वीर्य से, हों ! ऐसा नहीं कि ऐसे जरा... जरा... भरावदार शरीर है। भरावदार शरीर है, दिखाब ऐसा... ऐसा सरस आत्मा ! ऐसा कहे। ऐसा सरस आत्मा ! दूसरा सरस होवे कौन ?

मुमुक्षु : होशियार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। होशियार है। उसके बाप को, दादा को घड़ीक में ऐसा हो जाता है कि अपने को इसके पास से समझना पड़ेगा। आत्मा है न ! अव्यक्तरूप से भी अभी जरा बिना भान के....

आत्मा है। उसमें जब सम्यग्दर्शन पावे और उसमें मुनि हो... आहाहा ! उसकी बात क्या करना ! जैनसूत्र की श्रद्धा करके, सम्यग्दर्शन करके, सम्यग्ज्ञान करके जिसने चारित्र-वीतरागता अंगीकार (करके) शुद्धोपयोग किया है, वे मुनि। जिनसूत्र का वास्तव में सेवन करके भाव निकाला है। वे जगत में सुखी हैं। समझ में आया ? बाकी चक्रवर्ती और सर्वार्थसिद्धि के देव इच्छावाले इतने वे दु:खी हैं। जितनी इच्छा छूटी, उतने सुखी हैं।

समकिती को भी अनन्तानुबन्धी इच्छा गयी है न ? अनन्तानुबन्धी का राग और द्वेष, क्रोध और मान, वह द्वेष; माया और लोभ, वह राग। इतनी इच्छा टूट गयी है। उतना आनन्द है, शान्ति है, शान्ति है। इतनी स्वरूप की शान्ति है। आहाहा ! लो, यह सूत्रपाहुड़ (पूरा) हुआ। छप्पय। स्वयं थोड़ा कहते हैं।

(छप्पय)

जिनवर की ध्वनि मेघध्वनिसम मुख तैं गरजे।
गणधर के श्रुति भूमि वरषि अक्षर पद सरजै।।
सकल तत्त्व परकास करै जगताप निवारै।
हेय अहेय विधान लोक नीकै मन धारै।।
विधि पुण्य पाप अरु लोक की मुनि श्रावक आचरण पुनि।
करि स्व-पर भेद निर्णय सकल कर्म नाशि शिव लहत मुनि।।१।।

(दोहा)

वर्द्धमान जिनके वचन वरतैं पंचमकाल।
भव्य पाय शिवमग लहै नमूं तास गुणमाल।।२।।

इति पण्डित जयचन्द्र छाबड़ा कृत देशभाषावचनिका के हिन्दी अनुवाद सहित श्रीकुन्दकुन्दस्वामि विरचित सूत्रपाहुड समाप्त।।२।।

जिनवर की ध्वनि मेघध्वनिसम मुख तैं गरजे।
गणधर के श्रुति भूमि वरषि अक्षर पद सरजै।।
सकल तत्त्व परकास करै जगताप निवारै।
हेय अहेय विधान लोक नीकै मन धारै।।
विधि पुण्य पाप अरु लोक की मुनि श्रावक आचरण पुनि।
करि स्व-पर भेद निर्णय सकल कर्म नाशि शिव लहत मुनि।।१।।

जिनवर की ध्वनि... भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर वीतरागदेव की ध्वनि **मेघध्वनिसम मुख तैं गरजे।** मेघ की भाँति नाद हो, ऐसी भगवान की वाणी समवसरण में इच्छा बिना, मुख-कण्ठ हिले बिना समवसरण में गर्जना होती है। तीर्थंकर केवलज्ञान पावे और मुख से अन्दर से गर्जना हो। ॐ ऐसी ध्वनि उठे। पूरे शरीर में से। समझ में आया? **जिनवर की ध्वनि...** निमित्त से बात तो ऐसी ही हो न? ध्वनि तो वाणी है परन्तु उसके निमित्त से उनकी वाणी, ऐसा कहलाता है न? वाणी तो वाणी की है। **जिनवर की ध्वनि मेघध्वनिसम...** मेघ की आवाज जैसे गाजे, कड़ाका बोलती। देखो न! इस साल

शुरुआत में पहले में बहुत कड़ाका बोला। बिजली का ऐसा धड़ाका बोलता था। आहाहा!

लड़के का मुर्दा निकला, कहते हैं। लाश। हाथ आया। चार-पाँच मील दूर। वह जवान लड़का था। बहुत बुद्धिशाली था, कच्छी। ऐसा है, स्थिति ऐसी है। आयुष्य पूरा उस समय में जिस प्रकार से, जिस प्रकार से, उस क्षेत्र में और उस काल में (होनेवाला है)। उसमें कहीं एक समय का फेरफार तीर्थंकर केवली करने को समर्थ नहीं है। वे परद्रव्य का क्या करे? समझ में आया? दुनिया को ऐसा लगे कि अर र र! ऐसा नहीं किया होता तो ऐसा होता, ऐसा नहीं किया होता (तो) ऐसा होता। उघाड़ा नहीं होता न... क्या कहलाता है वह? गटर खुला नहीं होता तो पानी वैसा हो गया होता। उघाड़े कौन? बापू! वह पर्याय उस काल में होनी है, उसे रोके कौन? और टाले कौन? आहाहा! समझ में आया?

जिनवर की ध्वनि मेघध्वनिसम... मेघध्वनिसम, ऐसा कहा है न? मेघ की गर्जना के जैसी वाणी मुख से गरजे। मुख से शब्द है। भाषा तो ऐसी ली जाए न? बाकी तो पूरे शरीर में से आती है। यह तो उसमें आता है न? पंचास्तिकाय (गाथा-२)। **'मुहुग्गदमट्ठं'** मुख से निकली, ऐसी ही आवे न भाषा?

गणधर के श्रुति भूमि... और गणधररूपी भूमि में वाणी पड़ी। आहाहा! गणधर चार ज्ञान के धनी, सन्त महा आनन्द में झूलनेवाले नग्न मुनि। उन रूपी भूमि में वह वाणी एकदम पड़ी। श्रुति-श्रुत पड़ा। **वरषि...** वर्षा पड़ी। **अक्षर पद सरजै ...** यह गणधरदेव अक्षर को-पद को रचे। अक्षर। समझ में आया? सहजात्मस्वरूप। स, ह यह अक्षर। पूरा पद—सहजात्म, वह पद। **अक्षर पद सरजै ...** गणधर उनकी वाणी को रचे—भगवान की वाणी। भगवान के मुख में से अर्थ निकले, उन्हें गणधर सूत्ररूप रचे। महाविदेह में भी तत्प्रमाण भगवान सीमन्धर परमात्मा की ध्वनि निकलती है। गणधररूपी भूमिका के कान में पड़ती है। श्रुति है न?

सकल तत्त्व परकास करै जगताप निवारै। सकल तत्त्व का भगवान की वाणी प्रकाश करती है। सत्य, असत्य, देव, गुरु, शास्त्र, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, मिथ्यादर्शन, अज्ञान, अचारित्र सब तत्त्वों का प्रकाश करती है। **जगताप निवारै।** जग के दुःख को, इच्छा को, आकुलता को निवारे, ऐसी वीतराग की वाणी है। वीतराग की वाणी अज्ञान और राग-द्वेष का नाश करावे, ऐसा कहते हैं। वह **जगताप निवारै।** देखा! उसके रागादि के

भाव को टलावे, नाश करावे। वह वाणी वीतराग की होती है। राग को उत्तेजन दे और राग को रखने का कहे, वह वाणी वीतराग की होगी ? आहाहा ! राग, शुभराग भी ताप है, कषाय है, अग्नि है, भट्ठी है। **जगताप निवारै।** वीतराग की वाणी जगत के ताप के कषायभाव को निवारण करती है। आहाहा !

हेय अहेय विधान... यह छोड़नेयोग्य है, आदरनेयोग्य है, इसका विधान करे। सब बतावे। समझ में आया ? ऐसा नहीं कि, नहीं, नहीं। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र भी सच्चे और यह भी सच्चे। कहो न, दूसरे को बुरा लगेगा। ऐसा नहीं। श्रीमद् का कहा नहीं था ? श्रीमद् का। 'आत्मज्ञान समदर्शिता', इसकी व्याख्या की न ? श्रीमद् ने। समदर्शी की व्याख्या तब की थी। समदर्शी की व्याख्या यह है कि कुदेव को कुदेवरूप से जाने और निषेध करे। कुगुरु को कुगुरुरूप से जानकर निषेध करे। कुशास्त्र को कुशास्त्र जानकर निषेध करे। इसका नाम समभाव है। समभाव की व्याख्या (ऐसी नहीं कि) अपन सब पर समभाव रखो, भाई ! अरे ! वह तो मिथ्याभाव, मूढभाव, मूर्खभाव है। समझ में आया ? श्रीमद् में यह आया है। पढ़ा था न तब ? नहीं ? बड़ी पुस्तक में है।

समदर्शी की यह व्याख्या। सत्य को सत्यरूप से स्थापित करे। समझ में आया ? असत्य को असत्यरूप से उत्थापित करे। नहीं तो अपने सब समान, सब समान रखो। नहीं तो विषमभाव हो जाएगा। सब समान रखो तो मिथ्यात्वभाव होगा। समझ में आया ? यह भी अच्छा, यह भी सच्चा, सब सच्चे। सब मोक्ष के मार्ग में हैं, ऐसा माननेवाले बड़े मूर्ख हैं, कहते हैं। उसमें लिखा है। बालतप और बालव्रत है न ? मूर्ख के व्रत और मूर्ख के तप हैं वे। जिसे भान नहीं... समयसार में आता है और इन्होंने भी लिखा है। अष्टपाहुड़ में। ऐसा कि आत्मा के भान बिना व्रत और तप है, समकित बिना के, वे मूर्ख के व्रत हैं, वे मूर्ख के व्रत हैं। वे मूर्ख के तप हैं। मूर्खाई से भरपूर व्रत और तप है। वे पागल के व्रत और तप हैं। समझ में आया ? सबको अच्छा लगाना और अपने को भी विषमभाव न हो। नहीं तो विषमभाव हो जाएगा, हों ! यह सच्चा, यह खोटा। यह साधु खोटे हैं, यह खोटी श्रद्धा है, यह शास्त्र खोटे (ऐसा कहें तो) दूसरे को दुःख होगा। तेरी मूर्खता है, कहते हैं। सच्चे-खोटे की प्ररूपणा, सत्य और असत्य न कहे तो लोग सत्य को समझ कैसे सकेंगे ? समझ में आया ? मोक्षमार्गप्रकाशक में टोडरमलजी ने बहुत लिया है।

हेय अहेय विधान... करे। **लोक नीकै मन धारै।** देखो! लोक नीके (अर्थात्) उनके मन में बराबर धारे, ऐसा हेय-अहेय का ज्ञान बतावे। वीतराग की वाणी, सन्तों की वाणी, सिद्धान्त वाणी। उसे सिद्धान्त कहते हैं। समझ में आया? आदरनेयोग्य और छोड़नेयोग्य, दोनों का ज्ञान करावे। छोड़नेयोग्य का ज्ञान किसलिए करावे? तब तो फिर यह सब खोटा कहें तो सब वे हो जायें। ३६३ पाखण्ड भगवान ने कहे हैं। नहीं कहे? क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी और ज्ञेयवादी। ऐसा अष्टपाहुड़ में आयेगा। ३६३ पाखण्ड है सब। क्रिया में धर्म माननेवाले, दया, दान, व्रत में (धर्म माननेवाले) वे सब पाखण्डी अज्ञानी हैं। ३६३ पाखण्ड में वे हैं, जैन में नहीं। स्पष्ट लिखेंगे इसमें। समझ में आया? ऐ... शान्तिभाई! क्या करना इसमें? इन शान्तिभाई ने बहुत बदल डाला। कहाँ थे, उसके बदले एकदम... किसी व्यक्ति के प्रति द्वेष नहीं। छोड़नेयोग्य हो, उसे छोड़नेयोग्य मनावे। यह सर्प छोड़नेयोग्य है, तो उसमें सर्प के प्रति कहीं द्वेष है? इसी प्रकार कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र, जिसने जगत को उल्टे रास्ते, विपरीत रास्ते चढ़ाया है। उसे बतावे कि वे छोड़नेयोग्य है। समझ में आया? और सच्चा वीतराग का मार्ग देव, गुरु, शास्त्र भगवान ने कहे, उन्होंने कहा हुआ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदरणीय है।

यह **लोक नीकै मन धारै।** सुननेवाले बराबर... बराबर समझ सके, मन में धार सके, इस प्रकार से कहे, ऐसा कहते हैं। ऐसी की ऐसी गड़बड़ करे और कुछ निर्णय न करे, (ऐसा नहीं है)। छनावट करके स्पष्ट करे। समझ में आया? क्या कहा? देखो! **हेय अहेय विधान लोक नीकै मन धारै।** लोक के प्राणी उनके हृदय के ज्ञान में बराबर हेय-उपादेय का ज्ञान करे, इस प्रकार से विधान भगवान की वाणी में आता है। **विधि पुण्य पाप अरु लोक की**... कहते हैं, पुण्य-पाप की विधि का अथवा कर्म और पुण्य-पाप, और लोक की क्रिया आदि मूढ़ता आदि सबको जाने। और **मुनि श्रावक आचरण पुनि।** और मुनि तथा श्रावक का आचरण मुनि के योग्य मुनि करे और श्रावक के योग्य श्रावक करे। **करि स्व-पर भेद निर्णय**... स्व-पर के भेद का वास्तविक निर्णय करके, सत्य-असत्य का निर्णय करके **सकल कर्म नाशि शिव लहत मुनि।**

मुमुक्षु : पुण्य-पाप तो विधि में गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : विधि—कर्म में गया। यह कर्म है न वह तो? कर्म है। और लोक

के—मूढ़ के आचरण कहे। वे सब लौकिक है न? लौकिक। लोक की रीति सब। आया था न लोकमूढ़ता? उस सब मूढ़ता को छोड़े। लोकमूढ़ता, देवमूढ़ता, क्या कहा? गुरुमूढ़ता। लोकमूढ़ता... वह क्या? नदी में नहावे और धर्म हो, जमुना में नहावे और अमुक हो, अमुक हो, यह सब लोकमूढ़ता है। पीपल में पानी डाले न... सब लोकमूढ़ है, कहते हैं। देवमूढ़ और धर्ममूढ़। इन सबको जाने और सबका ऐसा वीतराग के शास्त्र उनका कथन बतावे।

वर्द्धमान जिनके वचन वरतैं पंचमकाल। वर्धमान तीर्थंकरदेव, महावीर परमात्मा, जिनकी वाणी पंचम काल तक वर्तेगी, कहते हैं। ठेठ तक। वीर भगवान ने जो वाणी कही, सिद्धान्त रचे अथवा सिद्धान्त कहे और गणधर ने रचे, वे भगवान तीर्थंकरदेव महावीर परमात्मा, उनके वचन **वरतैं पंचमकाल।** यह सत्य सिद्धान्त पंचम काल में भी वर्तते हैं। **भव्य पाय शिवमग लहै...** योग्य प्राणी भगवान की वाणी समझकर और आत्मा का मोक्षमार्ग आदरे। आहाहा! भगवान आत्मा पुण्य-पाप के राग से रहित है, ऐसा आनन्द के स्वभाव सहित है, उसे भगवान ने कहा, तत्प्रमाण प्राप्त करके **शिवमग लहै...** शिव अर्थात् मोक्ष का मार्ग पावे। **नमूं तास गुणमाल।** कहते हैं कि ऐसे गुण के मालावाले धर्मात्मा, गुण की माला जिन्हें प्रगट हुई है। उन्हें मैं नमन करता हूँ। मोक्ष—शिवमग कहा न।

इति पण्डित जयचन्द्र छाबड़ा कृत देशभाषावचनिका के हिन्दी अनुवाद सहित श्रीकुन्दकुन्दस्वामि विरचित सूत्रपाहुड समाप्त। यह आठ पाहुड़ में से दो (पाहुड़) पूरे हुए।

चारित्रपाहुड़
-३-

(दोहा)

वीतराग सर्वज्ञ जिन वंदूं मन वच काय।
चारित धर्म बखानियो सांचो मोक्ष उपाय।।१।।

कुन्दकुन्द मुनिराजकृत चारितपाहुड ग्रन्थ।
प्राकृत गाथा बंध की करूँ वचनिका पंथ।।२।।

इस प्रकार मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करके अब चारित्रपाहुड प्राकृत गाथाबंध की देशभाषामय वचनिका का हिन्दी अनुवाद लिखा जाता है, श्री कुन्दकुन्द आचार्य प्रथम ही मंगल के लिए इष्टदेव को नमस्कार करके चारित्रपाहुड को कहने की प्रतिज्ञा करते हैं–

अब चारित्रपाहुड़। तीसरा। आठ है, आठ। पहला समकित पाहुड़ अथवा दर्शनमार्ग पाहुड़, उसमें भी समकित मुख्य। दूसरा सूत्रपाहुड़ और तीसरा चारित्रपाहुड़। सम्यग्दर्शन हो, उसे सम्यग्ज्ञान होता है, उसे सम्यक्चारित्र होता है। जिसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान का भान नहीं, उसे चारित्र–फारित्र, व्रत–फ्रत नहीं होते। समझ में आया ? इसलिए तीसरा चारित्रपाहुड़।

वीतराग सर्वज्ञ जिन वंदूं मन वच काय।
चारित धर्म बखानियो सांचो मोक्ष उपाय।।१।।

वीतराग सर्वज्ञदेव परमात्मा, तीर्थंकरदेव, जिनदेव को वन्दन करता हूँ, कहते हैं। मन, वचन और काया से नमन करता हूँ। **चारित धर्म बखानियो...** वीतराग देव ने आत्मा का चारित्र, स्वरूप में रमण, आनन्द में रमणता–चरना, आनन्दधाम भगवान का भान सम्यग्दर्शन में होने के पश्चात् स्वरूप में अन्दर रमना, उस आनन्द का अनुभव करना, अतीन्द्रिय आनन्द का, उसका नाम भगवान ने चारित्र कहा है। वह चारित्र बखानियो। चारित्रधर्म बखानियो। तीर्थंकरदेव परमेश्वर ने भी वह बखान किया है। **सांचो मोक्ष उपाय।** चारित्र ही सच्चा मोक्ष का उपाय है। आत्मा के सम्यग्दर्शनसहित, अनुभवसहित

आनन्द में रमणता, अतीन्द्रिय आनन्द में। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है। इच्छामात्र, वह तो सब दु:ख है। और यह धूल सब पैसा, स्त्री, पुत्र, सब दु:ख के निमित्त हैं। धूल-बूल हो न ? यह दो-पाँच करोड़ पैसा धूल और... यह सब तो दु:ख के निमित्त हैं। बराबर होगा ? समझ में आया ?

सुख का कारण तो चारित्र है। वह चारित्र तो आत्मा के आनन्द में रमणता, वह चारित्र है। वीतराग के मार्ग में जैन परमेश्वर ने केवलज्ञान से देखकर, जानकर कहा, उसमें चारित्र की महिमा की है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान का तो (किया) परन्तु चारित्र तो अलौकिक वस्तु है। **सांचो मोक्ष उपाय।** लो। **चारित धर्म बखानियो...** चरितं धम्मं, कहा है न ? चरित्त धम्मं। दंसण मूलो धम्मो। धर्म, वह चारित्र है और उसका मूल सम्यग्दर्शन है। वह चारित्र कौन सा ? अन्तर आत्मा के आनन्द में रमणता में लवलीन आनन्द में, उसका नाम चारित्र है। आहाहा! चारित्र में तो अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव का वेदन उग्ररूप से आवे, उसे भगवान त्रिलोकनाथ चारित्र कहते हैं। समझ में आया ? वह सच्चा मोक्ष का उपाय है। सिद्धपद होने का सच्चा उपाय चारित्र है। और वह चारित्र पहले सम्यग्दर्शन और ज्ञान होते हैं। सम्यग्दर्शन, ज्ञान न हो तो चारित्र नहीं हो सकता।

कुन्दकुन्द मुनिराजकृत चारितपाहुड ग्रन्थ।
प्राकृत गाथा बंध की करूँ वचनिका पंथ।।२।।

कुन्दकुन्द मुनिराज संवत् ४९ में दो हजार वर्ष पहले सन्त महा आनन्द में झूलते, उन्होंने यह चारित्रपाहुड़ ग्रन्थ किया। यह प्राकृत भाषा है। **करूँ वचनिका पंथ।** वचन का पन्थ अर्थात् वचन द्वारा इस बात को कहेंगे। यह कौन कहता है ? पण्डित जयचन्द्र।

इस प्रकार मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करके... अर्थकार ने यह तो अभी मांगलिक किया। **अब चारित्रपाहुड प्राकृत गाथाबंध की देशभाषामय...** प्रचलित भाषा में लिखूँगा। **श्री कुन्दकुन्द आचार्य प्रथम ही मंगल के लिए इष्टदेव को नमस्कार करके चारित्रपाहुड को कहने की प्रतिज्ञा करते हैं :-** चारित्र—आत्मा की शुद्धता, वीतरागता, अतीन्द्रिय आनन्द में लहर, मजा करता आत्मा, उसे यहाँ चारित्र कहा जाता है। चरना, रमना, जमना, लीन होना। अन्तर के आनन्द का भोजन लेना। आहाहा! समझ में आया ? उसे कहते हैं... देखो! उनका मांगलिक भी जोरदार है!

गाथा-१-२

सव्वण्हु सव्वदंसी णिम्मोहा वीयराय परमेट्ठी।
वंदित्तु तिजगवंदा अरहंता भव्वजीवेहिं।।१।।
णाणं दंसण सम्मं चारित्तं सोहिकारणं तेसिं।
मोक्खाराहणहेउं चारित्तं पाहुडं वोच्छे।।२।।युग्मम्।

सर्वज्ञान सर्वदर्शिनः निर्मोहान् वीतरागान् परमेष्ठिनः।
वंदित्वा त्रिजगद्वंदितान् अर्हतः भव्यजीवैः।।१।।
ज्ञानं दर्शनं सम्यक् चारित्रं शुद्धिकारणं तेषाम्।
मोक्षाराधनहेतुं चारित्रं प्राभृतं वक्ष्ये।।२।।युग्मम्।।

सर्वज्ञ सब-दर्शी विमोही वीतरागी पूज्य त्रय।
जग भव्य वंदित सयोगी अरहंत परमेष्ठी नमन।।१।।
कर मोक्ष आराधन निमित चारित्र दर्शन ज्ञान की।
सम्यक् सुशुद्धि-हेतु कहता चारित्र पाहुड़ मैं अभी।।२।। युग्म।।

अर्थ – आचार्य कहते हैं कि मैं अरहन्त पमरेष्ठी को नमस्कार करके चारित्रपाहुड को कहूंगा। अरहन्त परमेष्ठी कैसे हैं ? अरहन्त ऐसे प्राकृत अक्षर की अपेक्षा तो ऐसा अर्थ है – अकार आदि अक्षर से तो 'अरि' अर्थात् मोहकर्म, रकार आदि अक्षर की अपेक्षा रज अर्थात् ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्म, उसे ही रकार से रहस्य अर्थात् अन्तराय कर्म इस प्रकार से चार घातियाकर्मों का हनन घातना जिनके हुआ, वे अरहन्त हैं। संस्कृत की अपेक्षा 'अर्ह' ऐसा पूजा अर्थ में धातु है, उससे 'अर्हन्' ऐसा निष्पन्न हो, तब पूजायोग्य हो, उसको अर्हत् कहते हैं, वह भव्यजीवों से पूज्य है। परमेष्ठी कहने से परम इष्ट अर्थात् उत्कृष्ट पूज्य हो, उसे परमेष्ठी कहते हैं अथवा परम जो उत्कृष्ट पद में तिष्ठे, वह परमेष्ठी है। इस प्रकार इन्द्रादिक से पूज्य अरहन्त परमेष्ठी हैं।

सर्वज्ञ है, सब लोकालोकस्वरूप चराचर पदार्थों को प्रत्यक्ष जाने, वह सर्वज्ञ है। सर्वदर्शी अर्थात् सब पदार्थों को देखनेवाले हैं। निर्मोह हैं, मोहनीय नाम के कर्म की

प्रधान प्रकृति मिथ्यात्व है, उससे रहित हैं। वीतराग हैं, जिसके विशेषरूप से राग दूर हो गया हो, सो वीतराग है, उनके चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से (उदयवश) हो, ऐसा रागद्वेष भी नहीं है। त्रिजगद्वंद्य हैं, तीन जगत के प्राणी तथा उनके स्वामी इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्तियों से वन्दनेयोग्य हैं। इस प्रकार से अरहन्त पद को विशेष्य करके और अन्य पदों को विशेषण करके अर्थ किया है। सर्वज्ञ पद को विशेष्य करके और अन्य पदों को विशेषण करने पर इस प्रकार भी अर्थ होता है, परन्तु वहाँ अरहन्त भव्यजीवों से पूज्य हैं, इस प्रकार विशेषण होता है।

चारित्र कैसा है ? सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ये तीन आत्मा के परिणाम हैं, उनके शुद्धता का कारण है, चारित्र अंगीकार करने पर सम्यग्दर्शनादि परिणाम निर्दोष होता है। चारित्र मोक्ष के आराधन का कारण है, इस प्रकार चारित्र के पाहुड (प्राभृत) ग्रन्थ को कहूँगा, इस प्रकार आचार्य ने मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा की है।।१-२।।

गाथा-१-२ पर प्रवचन

सव्वण्हु सव्वदंसी णिम्मोहा वीयराय परमेट्ठी।
वंदित्तु तिजगवंदा अरहंता भव्वजीवेहिं।।१।।

देखो! चारित्रपाहुड़ कहने से पहले मांगलिक कहते हैं। क्योंकि सर्वज्ञ परमेश्वर ने चारित्र की व्याख्या की है। अज्ञानी उस चारित्र को जान नहीं सकते।

णाणं दंसण सम्मं चारित्तं सोहिकारणं तेसिं।
मोक्खाराहणहेउं चारित्तं पाहुडं वोच्छे।।२।।युग्मम्।

कहूँगा, ऐसा कहते हैं।

आचार्य कहते हैं कि मैं अरहन्त पमरेष्ठी को नमस्कार करके... अरिहन्त परमेश्वर वर्तमान में महाविदेह क्षेत्र में विराजते हैं। महावीर भगवान आदि तो सिद्धपद में विराज गये। वे तो सिद्ध हो गये। भगवान महावीर परमात्मा आदि चौबीस तीर्थंकर आदि अनन्त, वे तो सिद्धपद में विराजते हैं। अशरीरी। अरिहन्तपद में तो अभी महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धर भगवान, युगमन्धर भगवान... बीस विहरमान विद्यमान बीस तीर्थंकर विराजते

हैं। महाविदेह में मनुष्यदेह में पाँच सौ धनुष का देह है, करोड़ पूर्व का आयुष्य है। विराजते हैं। कहते हैं कि अरिहन्त को वन्दन करता हूँ। **अरहन्त पमरेष्ठी को नमस्कार करके चारित्रपाहुड को कहूंगा।** विनय करते हैं। परमेश्वर ने... उस ओर पीछे देंगे।

अरहन्त परमेष्ठी कैसे हैं? कैसे हैं अरिहन्त परमेष्ठी? **अरहन्त ऐसे प्राकृत अक्षर की अपेक्षा तो ऐसा अर्थ है – अकार आदि अक्षर से तो 'अरि'...** अरि, अरि। **'अरि' अर्थात् मोहकर्म,...** अरि। मोहरूपी कर्म, वह बैरी है। उसे जिसने घात डाला। अरि-हन्त, अरि-हन्त। समझ में आया? यहाँ तो णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं... करके पहाड़ा बोल जाए। अर्थ की खबर नहीं होती। जय भगवान! उसे कुछ लाभ नहीं होता। धूल भी वह। यहाँ तो भगवान क्या कहते हैं? भगवान कैसे हुए? और भगवान ने क्या कहा है, इसके ज्ञान बिना, उसे सच्चा लाभ नहीं होता। अरि अर्थात् मोहरूपी शत्रु।

रकार आदि अक्षर की अपेक्षा रज... अरि है न? उसमें 'र'। **अर्थात् ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्म,...** रज है न? ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, वह रज, कर्म है। उन्हें जिसने टला। हन्ता-घात किया है। **उसे ही रकार से...** ऐसे उस रकार में से। 'र' में से दूसरा निकाला। एक, दो निकाले, तीसरा यह निकाला। र... र... में से। **रकार से रहस अर्थात् अन्तराय कर्म इस प्रकार से चार घातियाकर्मों का हनन घातना जिनके हुआ,...** जिसने चार कर्म हनन कर डाले हैं। अभी चार कर्म बाकी है। आठ कर्म में अरिहन्त को चार कर्म घात किये होते हैं। चार कर्म बाकी हैं। आयुष्य, नाम, गोत्र,... समझ में आया? ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय और अन्तराय का नाश किया है। सिद्ध हुए, उन्हें आठ कर्म का नाश हुआ है। अरिहन्त भगवान विराजते हैं, उन्हें चार कर्म का नाश हुआ है। ऐसे अरिहन्तों को पहिचानकर और अरिहन्त ने—उन्होंने क्या किया? कि चार घातिकर्मों का नाश किया। आत्मा के स्वभाव के लक्ष्य से, आश्रय से। समझ में आया?

(चार कर्मों को घातना) **हुआ, वे अरहन्त हैं।** लो। हन्त अर्थात् हनना, घातना। कर्म से बात ली है। परन्तु वास्तव में तो अशुद्ध भाव टला है, उसे अशुद्ध भाव वही वास्तव में तो बैरी है। भगवान आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्यमूर्ति वीतराग परमात्मा को जो प्रगट हुआ, ऐसा ही यह आत्मा है। समझ में आया? ऐसे आत्मा में अन्तर शुद्धता, परिपूर्णता, आनन्द पड़ा है, उसे कहते हैं कि, उससे विरुद्ध जो मिथ्यात्व और राग-द्वेष के भाव, वे

अशुद्ध भाव, वे मलिन, वे वैरी है। निश्चय से वैरी इसका भाव होता है। आता है न? चिद्‌विलास में। चिद्‌विलास में लिया है, निश्चय से तो इसका भाव वैरी है, दूसरा वैरी नहीं होता। ऐसा लिया है। दीपचन्दजी ने लिया है। समझ में आया? निश्चय से तो इसका भाव वैरी होता है, परद्रव्य वैरी होगा? यह तो निमित्त से बात करते हैं। उसमें—चिद्‌विलास में लिखा है। समझ में आया? भगवान आत्मा आनन्द की मूर्ति प्रभु, वीतरागस्वभावी, उससे विरुद्ध मिथ्यात्व और राग-द्वेष भाव, वह इसका वैरी है। कर्म तो बेचारे जड़ हैं। परन्तु यहाँ निमित्त से कथन है न, इसलिए इन्होंने लिया। समझ में आया? उसमें आता है। खबर है? खबर नहीं होगी। ऐई! आता है न? निश्चय का अधिकार जहाँ है न? व्यवहार-निश्चय के दो बोल। आत्मावलोकन में, चिद्‌विलास में दो जगह है। निश्चय से स्वयं अपना भाव, वह वैरी होता है। दूसरे का भाव, वह वैरी नहीं हो सकता। समझ में आया? फिर आयेगा।

भगवान आत्मा पूर्णानन्द वीतराग की मूर्ति वह तो आत्मा है, वस्तु। अनन्त आनन्द और ज्ञान से भरपूर पदार्थ आत्मा है। उससे विरुद्ध राग वह मैं, पुण्य वह मैं, ऐसा स्वभाव वह मैं नहीं, ऐसी मिथ्या मान्यता ही आत्मा की शत्रु है। चिद्‌विलास। है कहीं है। मेरे में चिह्न किया है। निश्चय का अधिकार है न उसमें। मेरे में चिह्न होता है न। इसमें नहीं होगा...

यहाँ कहते हैं कि वास्तव में शत्रु तो आत्मा आनन्द की मूर्ति प्रभु से विरुद्ध की इच्छाएँ और मिथ्यात्वभाव, वह दुःखरूप है। इच्छा में राग-द्वेष आये और मिथ्यात्वभाव। उसे जिसने आत्मा के आनन्द के आश्रय से घात डाला है और केवलज्ञान प्रगट हुआ है, ऐसे भगवान को पहला वन्दन करके मैं चारित्रपाहुड़ कहूँगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-३५, गाथा-१ से ४, मंगलवार, आषाढ़ शुक्ल १०, दिनांक १४-०७-१९७०

अष्टपाहुड़ में चारित्रपाहुड़, तीसरा भाग है। पहली दो गाथा। अरिहन्त को वन्दन करते हैं। कुन्दकुन्दाचार्यदेव चारित्रपाहुड़ कहने के लिये मांगलिकरूप से अरिहन्त को और सर्वज्ञदेव को वन्दन करते हैं। वन्दन करके मैं ऐसा चारित्र, जिसका फल केवलज्ञान है, ऐसे परमात्मा को आदर करके चारित्र कहता हूँ, ऐसा कहते हैं। अरहन्त की व्याख्या की।

संस्कृत की अपेक्षा 'अर्ह' ऐसा पूजा अर्थ में धातु है,... अर्हंन्। 'र' में रज और 'र' में रहस्य। ऐसे दो अर्थ करके, जिसने अरि अर्थात् मोहकर्म 'र' अर्थात् ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी रज और 'र' अर्थात् रहस्य अन्तराय। नाश किया है। अर्थात् अस्ति थे, उन्हें नाश किया है। देखा! हन्त कहा है न? अरिहन्ता है न? हनन किया है। वे गये, इसलिए केवल (ज्ञान) हुआ है, ऐसा नहीं कहा। नष्ट किये हैं। अरिहन्त शब्द में ही यह है। ऐसे अरिहन्त, जिन्हें चार घाति कर्म का नाश हुआ है। उन्हें वन्दन करता हूँ। अथवा संस्कृत अपेक्षा से 'अर्हन्... अर्हन्' इसका शब्द है। **ऐसा पूजा अर्थ में धातु है,...** पूजा... पूजा के योग्य। अर्हम् अर्थात् पूजा के योग्य ऐसे भगवान।

'अर्हन्' ऐसा निष्पन्न हो तब पूजायोग्य हो, उसको अर्हत् कहते हैं,... जो पूजने के योग्य हो, ऐसी दशावन्त हों, उन्हें अरिहन्त कहा जाता है। अर्हन् कहने में आता है। **वह भव्यजीवों से पूज्य है।** 'भव्य जीवों से पूज्य है।' पाठ में यह शब्द है। **'भव्यजीवेहिं'**। अभव्य जीव भगवान को नहीं पूजते। क्योंकि जिसे राग की रुचि है, वह अन्तर में वीतराग को पूज्य नहीं मान सकता। जिसे राग की रुचि है, वह वीतराग-रागरहित है, उन्हें अन्तर से वन्दन नहीं कर सकता।

मुमुक्षु : अन्तर से अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर से अर्थात् बाह्य से तो भगवान को वन्दन करता है, ऐसा कहते हैं। परन्तु अन्तर में जिसे राग का प्रेम है, वह वीतराग ऐसे परमात्मा को वन्दन करने के योग्य नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में नहीं आया। अच्छा। बहुत अच्छा। ऐसा कहा कि अर्हम् पूजने योग्य है। किसे ? भव्य जीव को। जो भव्य जीव मोक्ष प्राप्त होने योग्य है, उसको पूजनेयोग्य है। अर्थात् कि जिसे राग का प्रेम, रुचि गयी है और स्वभाव की रुचि हुई है, ऐसे जीव को पूर्ण प्राप्त सर्वज्ञ को, अरिहन्त को पूजनेयोग्य वह मानता है। राग के प्रेमवाले वीतरागी भाव को, अत्यन्त किसी का कुछ करे नहीं, विकल्प उठे नहीं, ऐसे को राग के रसिया वीतराग को पूजनेयोग्य नहीं मान सकते। ऐ... सेठी ! समझ में आया ? समझ में आया ?

'भव्यजीवेहिं' पाठ है न मूल में ? **'भव्यजीवेहिं'**। ऐसे भगवान को पूजनेयोग्य है। **भव्यजीवों से पूज्य है।** समन्तभद्र आचार्य ने स्तुति में ऐसा कहा, चौबीस भगवान की स्तुति की है न ? हे परमात्मा !... जिसे राग की गाँठ है, ऐसे अभव्य जीव आपको नहीं मानते, आपको वन्दन नहीं करते। क्योंकि राग के प्रेमवाले (को), वीतराग की रुचि स्वभाव में जगी नहीं, इसलिए वीतराग पूर्ण कैसे होते हैं, यह उसे ख्याल में और प्रतीति में नहीं आता। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ख्याल में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : ख्याल में नहीं आते। वीतराग ऐसे होते हैं, ऐसा ख्याल कहाँ से आवे ? राग की रुचि टलकर ऐसा स्वभाव है, ऐसी पूर्णता वीतराग, उसे ख्याल में आवे। समकिती को ख्याल में आता है। समझ में आया ? ऐसी पूर्ण वीतरागता, वीतरागता का बिम्ब प्रभु आत्मा, की पर्याय में वीतरागता हो गयी। ऐसा उसे लक्ष्य में कब आवे ? कि राग की रुचि छूटकर आत्मा वीतराग की दृष्टि हुई हो, वह वीतराग पूर्ण दशा को पूजनेयोग्य मानता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

क्योंकि जिसे राग ही बहुमानपने में वर्तता हो, उसे रागरहित वीतरागता बहुमानपने में किस प्रकार आये ? ऐसा कहते हैं, मूल तो। आहाहा ! क्या वीतराग की शैली ! क्या सन्तों की कथन की पद्धति ! जिसे भगवान आत्मा अत्यन्त विकल्प और राग के भावरहित है,... समझ में आया ?

अभी... जामनगर का सुना था ? पढ़ा ? अभी लड़का लाया। आहाहा ! त्रास...

त्रास... त्रास... चौदह मर गये। अखबर लाया था। लड़का लाया था, सवेरे लाया था। त्रास... चूहे को कौवे खाते थे।... ऐसे त्रास, ऐसे जो जन्म-मरण के दु:ख, उन्हें टालने का उपाय तो अन्तर्मुख दृष्टि करना वह है। जिस तत्त्व में नहीं भव, नहीं भाव, नहीं आधि, नहीं व्याधि, नहीं दु:ख, नहीं शोक। जो भाव संयोग को चाहता नहीं। समझ में आया? ऐसा स्वभाव भगवान आत्मा का है कि वह संयोग को चाहता नहीं, संयोग से होता नहीं और संयोग के आधि, व्याधि आदि दु:ख उसमें है ही नहीं। भव नहीं और भव के भाव भी नहीं। आहाहा! उसे शरण किये बिना इस जगत में कोई उपाय नहीं है। समझ में आया? समझ में आया कुछ?

वे भव्य जीव को पूजनेयोग्य है, लो! पूज्य है, यहाँ तक आया। दो अर्थ हुए। एक—अर्हंत, एक—अर्हन्। अर्हंत—उसमें चार कर्मों का नाश किया, ऐसे अरिहन्त लिये। पश्चात् अर्हन् (अर्थात्) भव्य जीव से पूजनेयोग्य। ऐसे अर्हन् पूज्य धातु में से (अर्थ निकाला)। समझ में आया? आहाहा! तीसरी बात।

परमेष्ठी कहने से परम इष्ट अर्थात् उत्कृष्ट पूज्य हो, उसे परमेष्ठी कहते हैं... समझ में आया? अन्तिम शब्द परमेष्ठी है। पहले पद का अन्तिम शब्द। **परम इष्ट अर्थात् उत्कृष्ट पूज्य हो, उसे परमेष्ठी कहते हैं... परम इष्ट अर्थात् उत्कृष्ट पूज्य हो, उसे परमेष्ठी कहते हैं...** एक बात, एक बात यह। परमेष्ठी का एक अर्थ यह। परम इष्ट। परम पूजनेयोग्य वस्तु, वह परम इष्ट।

अथवा परम जो उत्कृष्ट पद में तिष्ठे, वह परमेष्ठी है। अपना परमपद वीतराग आनन्दमूर्ति में तिष्ठते हैं, वे परमेष्ठी हैं। समझ में आया? अपना स्वभाव अनाकुल आनन्द का धाम, पूर्ण स्वभाव परम तिष्ठ। तिष्ठ—स्थिर हो। उसमें स्थिर हो, रहे—तिष्ठे। ऐसे हों, वे परमेष्ठी हैं। पंच परमेष्ठी अरिहन्त आदि परम पद में रहे हैं, इसलिए परमेष्ठी हैं। ऐसे के ऐसे परमेष्ठी... परमेष्ठी करे, ऐसा नहीं। दो प्रकार से अर्थ किया। परम इष्ट अर्थात् परम पूजनेयोग्य हो, वे परमेष्ठी और जो स्वयं भी परम स्वभाव में रहे हों, इसलिए परमेष्ठी। दो बातें ली। परम पद में अर्थात् पूजनेयोग्य हैं, इसलिए परमेष्ठी और स्वयं भी परम पद में तिष्ठ हैं, इसलिए परमेष्ठी। समझ में आया? राग में और पुण्य में तिष्ठ तो अनादि अज्ञानी है।

जो परम भगवान आत्मा, अकेला ज्ञान का स्वभाव जिसमें विकल्प की, जिस भाव

से तीर्थंकरगोत्र बँधे, (ऐसे) विकल्प की जिसमें गन्ध नहीं, वास नहीं, वास नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा का स्वभाव, उसमें स्थित हैं। परमेष्ठी। उसमें स्थित, तिष्ठे हैं, इसलिए उन्हें परमेष्ठी का जाता है। **इस प्रकार इन्द्रादिक से पूज्य अरहन्त परमेष्ठी हैं। इस प्रकार इन्द्रादिक से...** धर्मात्मा जो महापुरुषों से **अरहन्त परमेष्ठी हैं।** और कैसे हैं सर्वज्ञ? अब सर्वज्ञ कहते हैं।

सर्वज्ञ है, सब लोकालोकस्वरूप चराचर पदार्थों को प्रत्यक्ष जाने, वह सर्वज्ञ है। ये अरिहन्त के विशेषण करके यह अभी वर्णन करते हैं। पश्चात् सर्वज्ञ के विशेषण गिनकर सब वर्णन करना हो तो भी वर्णन किया जा सकता है, ऐसा नीचे लेंगे। समझ में आया? यह अर्हंत का विशेषण। अरिहन्त ऐसे और वे अरिहन्त सर्वज्ञ होते हैं, ऐसा। **सर्वज्ञ है, सब लोकालोकस्वरूप चराचर...** चराचर (अर्थात्) गति और स्थिर (करनेवाले) सब पदार्थों को प्रत्यक्ष जानते हैं। पूर्ण **प्रत्यक्ष जाने, वह सर्वज्ञ है।** अरिहन्त वे सर्वज्ञ हैं। पूजनेयोग्य हैं, परमपद में स्थित हैं और सर्वज्ञ हैं। ऐसे परमात्मा को वन्दन करके मैं चारित्रपाहुड़ कहूँगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

कहते हैं, **सर्वदर्शी अर्थात् सब पदार्थों को देखनेवाले हैं।** अरिहन्त कैसे हैं? जाननेवाले हैं सर्व को, ऐसे देखनेवाले हैं। चैतन्य की सब कली पूरी खिल गयी है। सर्वदर्शी हो गये हैं। देखने में कुछ बाकी नहीं रहा। सामान्य (कहा)। पहले विशेष (कहा), पश्चात् सामान्य कहा। और कैसे हैं? **निर्मोह हैं,...** अरिहन्त परमेष्ठी निर्मोह हैं। **मोहनीय नाम के कर्म की प्रधान प्रकृति मिथ्यात्व है, उससे रहित हैं।** लो। निर्मोह की व्याख्या पहले की। दूसरी (करते हैं)। कैसे हैं? **वीतराग हैं,...** ऐसा शब्द है न उसमें? **'णिम्मोहा वीयराय'** इसका अर्थ करते हैं। निर्मोह में मिथ्यात्व रहित। वीतराग में चारित्रमोह के दोष रहित। समझ में आया? देखो! यह कुन्दकुन्दाचार्य के अपने वचन हैं। आहाहा! **मोहनीय नाम के कर्म की प्रधान प्रकृति मिथ्यात्व है, उससे रहित हैं।**

और कैसे हैं? **वीतराग हैं, जिसके विशेषरूप से राग दूर हो गया हो, सो वीतराग है,...** राग दूर हुआ हो, उसे द्वेष तो दूर हुआ होता ही है। इसलिए वीतराग मार्ग में राग-द्वेषरहित कहा। **उनके चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से (उदयवश) हो, ऐसा रागद्वेष भी नहीं है।** लो। वीतराग शब्द हुआ। और अरिहन्त भगवान कैसे हैं? **त्रिजगद्वंद्य**

हैं,... तीन जगत को पूजनेयोग्य हैं। और अज्ञानी न पूजे, ऐसा आया था न? परन्तु वह अज्ञानी गिनती में नहीं है। जगत के लोग जो उत्कृष्ट हैं, उनसे वे पूज्य हैं। वे सब इसमें आ गये। समझ में आया? क्योंकि साधारण प्राणी गरीब हो, वे धनवन्त को उत्कृष्ट मानते हैं; धनवन्त राजा को उत्कृष्ट मानते हैं; राजा इन्द्र को मानते हैं; इन्द्र भगवान को मानता है। कहो, समझ में आया? एकेन्द्रिय न माने, उसका कुछ नहीं। उसके स्वभाव में तो बहुमान होने का स्वभाव है ही नहीं आत्मा में। समझ में आया? कहते हैं, जगतवन्द्य है। **तीन जगत के प्राणी तथा उनके स्वामी...** देखो! तीन जगत के प्राणी और उनके स्वामी। **इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्तियों...** चक्रवर्ती मनुष्य में लिये हैं, इन्द्र विमान में बड़े लिये, धरणेन्द्र भवन में (लिये)। उसमें व्यन्तर आदि। इनसे **वन्दनेयोग्य हैं।** भगवान इनसे वन्दनेयोग्य है।

इस प्रकार से अरहन्त पद को विशेष्य करके... यह अरिहन्त पद का विशेष और यह सब उसके विशेषण। सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, निर्मोह, वीतराग, परमेष्ठी उनके विशेषण किये। अरिहन्त पद को लक्ष्य में लेकर इन सब विशेषणों से उन्हें नमस्कार किया। **सर्वज्ञ पद को विशेष्य करके और अन्य पदों को विशेषण करने पर इस प्रकार भी अर्थ होता है,...** यह क्या कहा? कहते हैं कि पहला पद जो सर्वज्ञ का था कि सर्वज्ञ कैसे होते हैं? कि सर्वदर्शी हों, निर्मोह हों, वीतराग हों, परमेष्ठी हों, तीन जगत के भव्य जीवों को वन्दनीय हों। इस प्रकार सिद्ध को सर्वज्ञ कहें तो भी यह सब विशेषण लागू पड़ते हैं। समझ में आया? क्या कहा यह?

मुमुक्षु : सर्वज्ञ को भी लागू पड़ते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थात्?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सिद्ध नहीं, सर्वज्ञ। सर्वज्ञ पद में। सिद्ध को नहीं। इतना खोटा हो गया।

अरिहन्त पद को यह सब विशेषण कहे। सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, निर्मोह, वीतरागी, परमेष्ठी। और सर्वज्ञ से लागू पड़े तो सर्वज्ञ कैसे? सर्वदर्शी, निर्मोह, वीतराग, परमेष्ठी, अरहन्त। वे भी अरिहन्त हैं। वे भव्य जीव को वन्दनीय हैं। समझ में आया या नहीं?

आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य के एक-एक शब्द में कितनी गम्भीरता है! देखो न! मुनि जंगल में रहकर ऐसे शास्त्र बन गये। जैनधर्म का पूरा रहस्य मूल मार्ग (प्रसिद्ध कर दिया)। एक पद की व्याख्या हुई।

वहाँ अरहन्त भव्यजीवों से पूज्य हैं, इस प्रकार विशेषण होता है। हुआ? और, **चारित्र कैसा है ?** अब चारित्र की व्याख्या आती है। दूसरे पद की। **सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ये तीन आत्मा के परिणाम हैं,...** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, यह आत्मा के निर्मल शुद्ध तीन परिणाम हैं। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र ये गुण नहीं। तीन परिणाम हैं, तीन पर्याय है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन आत्मा के अनुभव की, शुद्ध चैतन्यद्रव्य की प्रतीति, उसका ज्ञान और उसमें रमणता ऐसे जो चारित्र, तीन आत्मा के परिणाम हैं। तीनों आत्मा के वीतरागी परिणाम हैं। **उनके शुद्धता का कारण है,...** किसे कहते हैं? कि चारित्र जो है, वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र, तीनों की शुद्धता का कारण है। वीतरागी चारित्र जो है, मोक्ष के मार्ग का भाव वह चारित्र, सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र तीनों को शुद्धि का कारण है। सम्यग्दर्शन भी परम अवगाढ़ होता है। सम्यग्ज्ञान भी विशेष निर्मल होता है। चारित्र भी विशेष निर्मल होता है। समझ में आया? देखो! यह सम्यग्दर्शन, ज्ञान के बाद चारित्र होता है। उसकी यह व्याख्या है।...

चारित्र अंगीकार करने पर... वस्तु स्वरूप भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन में, भान में प्रतीति आने से और उसका ज्ञान होने से, चारित्र अर्थात् स्वरूप में लीनता अंगीकार करने से। **सम्यग्दर्शनादि परिणाम निर्दोष होता है।** लो। सम्यग्दर्शन तो निर्दोष है परन्तु उसे विशेष निर्दोषता का वीतरागी समकित कहा जाता है। पहला राग है इसलिए। समकित तो वीतरागी ही है। परन्तु राग है, तब तक व्यवहार से भी उसे सरागी समकित कहा जाता है। परन्तु जहाँ वीतराग चारित्र हुआ, वह समकित भी वीतराग चारित्र, यह अपेक्षा की बात है। समझ में आया? पर्याय ने पर्याय का जवाब दिया है। ऐसा स्वरूप सर्वज्ञ के अतिरिक्त नहीं होता।

कहते हैं कि आत्मा सम्यग्दर्शन पाया। पश्चात् सम्यग्ज्ञान पाया। दो अधिकार हुए न? पश्चात् जब चारित्र अर्थात् स्वरूप में रमणता अंगीकार करता है। जिसे प्रवचनसार में कहा न? साम्य अंगीकार करता हूँ। साम्य अर्थात् वीतरागी भाव, शुद्धोपयोग को अंगीकार

करता हूँ, वह चारित्र। पंच महाव्रत के विकल्प-फिकल्प, वह चारित्र नहीं। आहाहा! गजब बात। भारी विवाद। दूसरे तो कहे परन्तु वे भी कहते हैं, रतनचन्दजी। महाव्रत, वह संवर-निर्जरा है, चारित्र है। लीन हो, स्थिर हो, रमे, वीतरागी पर्याय प्रगट हो, वह चारित्र तीनों की शुद्धि का कारण है और इसलिए सम्यग्दर्शन आदि के परिणाम निर्दोष होते हैं। चारित्र के कारण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, चारित्र स्वयं तीनों निर्दोष होते हैं। समझ में आया?

और चारित्र कैसा है? इस दूसरी गाथा का यह अर्थ है। **चारित्र मोक्ष के आराधन का कारण है,...** आहाहा! पूर्ण वीतरागी केवलज्ञान। केवलज्ञान प्राप्त करने का हेतु चारित्र है। समझ में आया? स्वरूप चैतन्यमूर्ति भगवान में लीनता, वह मोक्ष के आराधन का हेतु है। वह मोक्ष का कारण है। इसलिए मोक्ष का आराधन, वह मोक्ष की सेवा करता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वीतरागी चारित्र जो मुनि अंगीकार करते हैं, वे मोक्ष को सेवन करते हैं, मोक्ष का आराधन करते हैं। आहाहा! समझ में आया?

इस प्रकार चारित्र के पाहुड (प्राभृत) ग्रन्थ को कहूँगा,... लो। इसका यह ग्रन्थ लिखूँगा, ऐसा कहते हैं। ऐसे चारित्र के भाव को वर्णन करने का शास्त्र मैं यह कहता हूँ। **इस प्रकार आचार्य ने मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा की है।** मांगलिकपूर्वक प्रतिज्ञा की है। मैं भगवान को वन्दन करके ऐसा चारित्र जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र को निर्मल करनेवाला है और मोक्ष का आराधन करनेवाला है, ऐसे चारित्र को मैं इस ग्रन्थ में, इस अधिकार में कहूँगा। समझ में आया?

गाथा-३

आगे सम्यग्दर्शनादि तीन भावों का स्वरूप कहते हैं –

जं जाणइ तं णाणं जं पेच्छइ तं च दंसणं भणियं।
णाणस्स णिच्छियस्स य समवण्णा होइ चारित्तं।।३।।

यज्जानाति तत् ज्ञानं यत् पश्यति तच्च दर्शनं भणितम्।
ज्ञानस्य दर्शनस्य च समापन्नात् भवति चारित्रम्।।३।।

जो जानता वह ज्ञान कहते देखता दर्शन सदा।
वे ज्ञान दर्शन समायोगी शुद्ध चारित्र हैं सदा।।३।।

अर्थ – **जो जानता है, वह ज्ञान है। जो देखता है, वह दर्शन है – ऐसे कहा है। ज्ञान और दर्शन के समायोग से चारित्र होता है।**

भावार्थ – **जाने, वह तो ज्ञान और देखे, श्रद्धान हो, वह दर्शन तथा दोनों एकरूप होकर स्थिर होना चारित्र है।।३।।**

गाथा-३ पर प्रवचन

आगे सम्यग्दर्शनादि तीन भावों का स्वरूप कहते हैं – अब तीन का स्वरूप कहते हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र।

जं जाणइ तं णाणं जं पेच्छइ तं च दंसणं भणियं।
णाणस्स णिच्छियस्स य समवण्णा होइ चारित्तं।।३।।

अर्थ – जो जानता है, वह ज्ञान है। कौन जानता है? आत्मा को जाने, वह ज्ञान। समझ में आया? आत्मा भगवान चिदानन्दस्वरूप को जाने, वह ज्ञान। हो गया, वह तो अन्तर्मुख हो गया। और **जो देखता है, वह दर्शन है...** देखे अर्थात् श्रद्धा करे। इस प्रकार से जैसा जाना, वैसी श्रद्धा करे, उसे समकित कहते हैं। समझ में आया? देखो! यह चारित्र की व्याख्या। कितने ही कहते हैं कि चारित्र का कथन तो यहाँ करते नहीं। दर्शन और समकित की ही बात करते हैं। तो यह क्या है? **ऐसे कहा है।**

ज्ञान और दर्शन के समायोग से... समझ में आया? दर्शन और ज्ञान की अन्दर में एकता की स्थिरता (होना), उसे चारित्र कहते हैं। महाव्रत आदि के विकल्प में स्थिरता, वह चारित्र नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा दर्शन और ज्ञान, ऐसी जो निर्मल पर्याय प्रगट हुई, उसके समायोग में एकत्व होना, एकत्व होना, इसका नाम भगवान चारित्र कहते हैं। नग्नपना या वस्त्र छोड़ दिये, इसलिए वह चारित्र (ऐसा) नहीं, अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प, वह चारित्र नहीं। आहाहा! दर्शन, ज्ञान ने जो आत्मा की श्रद्धा की, आत्मा को जाना... यह आगे कहेंगे, यह एक-एक गुण अनन्त है। गुण अर्थात् पर्याय। समझ में

आया? आत्मा की श्रद्धा की, वह भी अनन्त है, उसका ज्ञान किया, वह अनन्त है। पाररहित शक्ति है। पर्याय, हों! और स्वरूप में स्थिरता, वह पाररहित शक्ति है। पर्याय। समझ में आया? अनन्त गुण का समुद्र भगवान, उसे जिसने जाना, उस ज्ञान में अनन्तता आयी। ऐसे अनन्त को श्रद्धे, वह अनन्तता आयी। ऐसे अनन्त में स्थिरता हो, वह भी अनन्तता आयी। आहाहा! ऐसे प्रत्येक गुण की पर्याय में अनन्तता ले लेना। यहाँ तो तीन का अभी मोक्षमार्ग में काम है। समझ में आया?

भगवान आत्मा, उसकी कोई भी गुण की पर्याय वह अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र की साथ में रही है न? उन सबके लिये वीर्य आदि काम करते हैं न? वह सब अनन्त ही है। आहाहा! जिसकी पर्याय के अविभाग प्रतिच्छेद पार न आवे इतने हैं, कहते हैं। समझ में आया? उसमें एकत्वगत होना, वह चारित्र है।

भावार्थ – जाने वह तो ज्ञान और देखे, श्रद्धान हो, वह दर्शन तथा दोनों एकरूप होकर स्थिर होना चारित्र है। यह श्रद्धा और यह ज्ञान, ऐसा भेद नहीं रहकर स्वभाव में श्रद्धा, ज्ञान सहित में स्थिरता हो जाना, इसका नाम भगवान चारित्र कहते हैं। चारित्र की बात में भी विवाद। आहाहा! एक-एक तत्त्व में विवाद। एक में विवाद (इसलिए) सबमें विवाद। **एकरूप होकर स्थिर होना चारित्र है।** दर्शन-सच्चा सम्यक्; सम्यक् है न वह? और पद में है वह है न? उसमें देखो न! **'णाणं दंसणं समवण्णा होइ चरित्तं'** ऐसा है न दूसरा पद? **'समवण्णा'** अर्थात् सम्यक्चारित्र। तीसरी गाथा। ज्ञान, दर्शन, सम्यक्चारित्र...

जाने, वह तो ज्ञान और देखे — श्रद्धान हो, वह दर्शन तथा दोनों एकरूप होकर... इसका अर्थ क्या हुआ? कि जिस ज्ञान ने स्व को जाना, वह ज्ञान; जिस श्रद्धा ने स्व की श्रद्धा की वह ज्ञान, उसमें एकाग्र हुआ। अन्तर में एकाग्र हुआ है न? इसलिए वह दर्शन, ज्ञान भी अन्तर्मुख की पर्याय हुई। ऐसा। उसमें एकाग्रता वह चारित्र। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न? अनन्त-अनन्त गुण का भगवान स्वभाव सागर है,

उसका ज्ञान। उसका ज्ञान कब होगा? उसके सन्मुख और उसके अन्तर्मुख होवे तो (होगा)। उसके सन्मुख और उसके अन्तर्मुख हो तो (होगा)। श्रद्धा कब होगी? कि उसके सन्मुख और अन्तर्मुख हो तो (होगी)। चारित्र कब होगा? कि वे दर्शन, ज्ञान जो अन्तर्मुख हैं, उसमें स्थिर होना, तो अन्तर्मुख होवे तो (चारित्र होगा)। आहाहा! गजब बात है! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली साक्षात् भगवान की शैली जैसी है एकदम! सादृश्य इसके ख्याल में आ जाए इस प्रकार से। ऐसा संक्षिप्त और बहुत मिलता हुआ कथन है।

मुमुक्षु : समझाने की शैली भी ऐसी ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें है न! इसमें है। इसमें होता है न।

गाथा-४

आगे कहते हैं कि जो तीन भाव जीव के हैं उनकी शुद्धता के लिए चारित्र दो प्रकार का कहा है –

एए तिण्णि वि भावा हवंति जीवस्स अक्खयामेया।
तिण्हं पि सोहणत्थे जिणभणियं दुविहं चारित्तं।।४।।

एते त्रयोऽपि भावाः भवंति जीवस्य अक्षयाः अमेयाः।
त्रयाणामपि शोधनार्थं जिनभणितं द्विविधं चारित्रं।।४।।

ये भाव तीनों जीव के अक्षय अमेय रहें सदा।
तीनों के शोधन अर्थ चारित्र दुविध जिनवर ने कहा।।४।।

अर्थ **– ये ज्ञान आदिक तीन भाव कहे, ये अक्षय और अनन्त जीव के भाव हैं, इनको शोधने के लिए जिनदेव ने दो प्रकार का चारित्र कहा है।**

भावार्थ **– जानना, देखना और आचरण करना, ये तीन भाव जीव के अक्षयानन्त हैं, अक्षय अर्थात् जिसका नाश नहीं है, अमेय अर्थात् अनन्त जिसका पार नहीं है, सब लोकालोक को जाननेवाला ज्ञान है, इस प्रकार ही दर्शन है, इस प्रकार ही चारित्र है**

तथापि घातिकर्म के निमित्त से अशुद्ध हैं, जो ज्ञान दर्शन चारित्ररूप हैं, इसलिए श्रीजिनदेव ने इनको शुद्ध करने के लिए इनका चारित्र (आचरण करना) दो प्रकार का कहा है।।४।।

गाथा-४ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो तीन भाव जीव के हैं, उनकी शुद्धता के लिए चारित्र दो प्रकार का कहा है – क्या कहते हैं अब? ये तीन भाव जो (कहे), वे जीव के हैं। वे पुद्‌गल के नहीं, राग के नहीं। समझ में आया? आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति प्रभु का ज्ञान, दर्शन और चारित्र, ये तीनों भाव जीव के हैं। ऐसा कहकर कहते हैं कि पुद्‌गल के नहीं, राग के नहीं। समझ में आया? वीतरागस्वभाव आत्मा, उसके ये तीन परिणाम हैं, उसके ये तीन भाव हैं। समझ में आया? आहाहा! **उनकी शुद्धता के लिए चारित्र दो प्रकार का कहा है।** इन तीन की शुद्धता के लिये चारित्र के दो प्रकार का वर्णन करूँगा। एक—सम्यग्दर्शनचरण चारित्र। एक—चारित्रस्वरूप चारित्र। दो प्रकार के चारित्र। सम्यग्दर्शन का चारित्र और चारित्र का चारित्र। ऐसे दो प्रकार के (चारित्र) तीन की शुद्धि के लिये (कहेंगे)। तीनों की—दर्शन, ज्ञान, चारित्र की शुद्धि के लिये। देखो! सम्यक्‌चरण में ही आया। तीन की शुद्धि में आया या नहीं? ऐई! सम्यग्दर्शनचरण कहूँगा, वह भी दर्शन, ज्ञान, चारित्र की वहाँ शुद्धि है। चारित्र जो है, वह भी दर्शन, ज्ञान, चारित्र की शुद्धि है।

एए तिण्णि वि भावा हवंति जीवस्स अक्खयामेया।
तिण्हं पि सोहणत्थे जिणभणियं दुविहं चारित्तं।।४।।

आहा! डाला भगवान को। भगवान ने ऐसा कहा है। **'एए तिण्णि वि भावा'** भाव शब्द से यहाँ यह पर्याय है। भाव में द्रव्य भी आवे, गुण भी आवे, पर्याय भी आवे। यहाँ पर्याय के अर्थ में भाव है। **'एए तिण्णि वि भावा हवंति जीवस्स अक्खयामेया। तिण्हं पि सोहणत्थे'** दर्शन, ज्ञान, चारित्र की शोधना के लिये। शोधनार्थ। **'जिणभणियं'** जिन ने कहा है। **'दुविहं चारित्तं'** दो प्रकार का चारित्र, इन तीन की शुद्धि के लिये कहा है।

अर्थ – ये ज्ञान आदिक तीन भाव कहे,... भगवान आत्मा का ज्ञान, भगवान आत्मा की श्रद्धा और उसमें स्थिरता, ये तीन भाव कहे। **ये अक्षय...** है। कभी नाश हों, ऐसे नहीं। अविनाशी हैं, वह पर्याय अविनाशी है। समझ में आया ? अविनाशी के अवलम्बन से प्रगट हुई, वह अविनाशी है। समझ में आया ? रागादि तो सब नाशवान, विकल्प नाशवान है। भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु की अन्तर श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र तीनों अक्षय हैं। समझ में आया ?

अनन्त... है। **'अमेया'** मर्यादा नहीं। आहाहा ! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र **'अमेया'**—मर्यादा नहीं, कहते हैं। मर्यादारहित अनन्त है। आहाहा ! यह पैसा-बैसा अनन्त किसी के पास नहीं होता। समझ में आया ? यह तो एक-एक पर्याय अनन्त है। अनन्त को जाना है, अनन्त की श्रद्धा है और अनन्त में स्थिर है। समझ में आया ? यह अक्षय है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय अक्षय है। अनन्त है। वह **अनन्त जीव के भाव हैं,...** वह अनन्त जीव की पर्याय है। सम्यग्दर्शन अनन्त जीव की पर्याय है। सम्यग्ज्ञान अनन्त जीव की पर्याय है, स्वरूपचारित्र की रमणता अनन्त जीव की पर्याय है। समझ में आया ?

इनको शोधने के लिए... क्या कहते हैं ? इन तीनों की शुद्धि के लिये—शोधने के लिये **जिनदेव ने दो प्रकार का चारित्र कहा है।** त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव जिनदेव परमेश्वर ने इन तीन को शोधने के लिये—शुद्धि के लिये दो प्रकार का चारित्र कहा है। सरागचारित्र, वीतरागचारित्र, यह बात यहाँ नहीं है। यहाँ तो सम्यग्दर्शनचारित्र और चारित्र का चारित्र। सम्यग्दर्शनचरण चारित्र और एक चारित्र का चरण चारित्र। ऐसे दो प्रकार। सम्यग्दर्शनचरण चारित्र। स्पष्टीकरण आयेगा इसमें। ... यह फिर तुरन्त ही आयेगा। आठवीं गाथा। सम्यग्दर्शनचरण चारित्र। इसमें विवाद है न ? सम्यक्चरणचारित्र इसे कहते हैं। वे कहे, नहीं। यह तो निःशंक आदि बोल है। सुन न ! यह उनकी स्थिरता का अंग है। वहाँ अकेला दर्शन कहाँ है। निःशंक, निःकांक्षित में साथ में स्थिरता का अंश है।

मुमुक्षु : .... ज्ञान बिना चारित्र नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : है न। उसकी दर्शन के साथ निर्मल पर्याय साथ में है। निःशंक, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण यह सब उसकी निर्मल

पर्याय है। एक दर्शन, ज्ञान की पर्याय है ? साथ में चारित्र की पर्याय भी इकट्ठी है।

यहाँ तो कहा, दर्शन, ज्ञान, चारित्र की शुद्धि के लिये सम्यग्दर्शनचरण चारित्र और चारित्रचरण चारित्र, भगवान ने कहा है, ऐसा कहते हैं। अरे! मध्यस्थ से शान्ति से (सुने तो समझ में आये ऐसा है)। स्वयं ने पकड़ा हो और माना हो, वह उसे बदलना न हो। अब छोड़ दे न, बापू! अननत काल से पकड़ की है। जो हो, उसे ले न। आहाहा! चला जाएगा, भाई! कोई शरण नहीं। कोई साथ में नहीं आयेगा। सबको मनाया होगा कि देखो! ऐसा है, वैसा है, अमुक है। वह वहाँ शरण नहीं आवे। आहाहा! जहाँ विकल्प की शरण नहीं। अकेला भगवान आत्मा नजर डालने से निधान नजर में पड़े, ऐसा भगवान शरण है। पर्याय से शरण कहो तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र शरण है। समझ में आया ? तीनों में शुद्ध उपयोग है न! आहाहा!

'तिण्हं पि सोहणत्थे' देखो! **शोधने के लिए...** है न ? उसे शुद्ध करने के लिये, ऐसा कहा है न ? किसे ? दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो जीव के अरागी वीतरागी परिणाम हैं, उनकी शुद्धि (के लिये)। क्योंकि अशुद्धता है न ? वह शुद्धि करने के लिये इस चारित्र के दो प्रकार का वर्णन किया जाता है। समझ में आया ? **'तिण्हं पि सोहणत्थे जिणभणियं दुविहं चारित्तं'** सम्यग्दर्शनचारित्र भी दर्शन, ज्ञान, चारित्र की शुद्धि करता है। ऐसा हुआ या नहीं ? ऐई! है न, स्वरूपाचरणचारित्र स्थिरता, वह शुद्धि है। सम्यक्चरणचारित्र दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों की शुद्धि करता है, शुद्धि का करनेवाला है। है या नहीं पाठ ?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : भले... हो।... कहा न पहले। जो रागसहित कहने में आता था, वह निर्दोष होता है, इसलिए वीतराग। ऐसा।... समकित है, वीतरागता है। उसकी शुद्धि वह यह।

मुमुक्षु : उपचार...

पूज्य गुरुदेवश्री : उपचार... यह कहा न ? श्रुतकेवली को अवगाढ़ समकित है। केवली को परम अवगाढ़ है।

मुमुक्षु : अवगाढ़, परम अवगाढ़... होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपेक्षा लेकर ज्ञान की निर्मलता हुई और चारित्र की निर्मलता हुई। ज्ञान की निर्मलता विशेष हुई, उसे अवगाढ़ समकित कहा। चारित्र की निर्मलता पूरी हुई, उसे परम अवगाढ़ कहा। वह तो है, वह है। इस प्रकार उसकी शुद्धि का कारण कहा जाता है, ऐसा है।...क्षायिक है ही कहाँ फिर विशेष ? परन्तु शास्त्र में ऐसा कहा है या नहीं ? दस प्रकार के समकित।

मुमुक्षु : उपचार...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उपचार। परन्तु वह उपचार भी एक न्याय से उचित है। क्योंकि ज्ञान में स्पष्ट भासित हुआ। परोक्ष ज्ञान में प्रतीति में, अनुभव में आया था, वह ज्ञान विशेष होकर जहाँ भासित हुआ (तो उसे विशेष निर्मल कहा जाता है)।

मुमुक्षु : ज्ञान सुधरे वहाँ... अधिक सुधरते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अधिक सुधरता ही है, सुधरने का अर्थ यह समकित कहीं बढ़ता नहीं। वह तो पर्याय है। श्रीमद् में आता है। आता है न ? आता है न ? ... आता है। ... एक गाथा आती है। नहीं ?

मुमुक्षु : 'वर्धमान समकित थई...'

पूज्य गुरुदेवश्री : 'वर्धमान समकित थई...' यह। 'वर्धमान समकित थई, टाले मिथ्या भास।' यह आता है। कितनी गाथा है ? २९ में यह है। किसी को आता नहीं ? आत्मसिद्धि, श्रीमद् में 'वर्धमान समकित थई...' ११२।

वर्ते निज स्वभाव का, अनुभव लक्ष प्रतीत
वृत्ति वहे निज भाव में, परमार्थे समकित।

वर्धमान समकित। वह समकित बढ़ती जाती धारा से। 'वर्धमान समकित टाले मिथ्या भास।' शोकादि जो आत्मा में मिथ्याभास... हैं, वे टालेगा। ... वह तो यह अपेक्षा ली है। दस प्रकार के समकित। आत्मानुशासन। मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है। परम अवगाढ और अवगाढ। ज्ञान की निर्मलता श्रुतज्ञान की विशेष हुई तो उसे अवगाढ समकित कहा। साधक को केवलज्ञान हुआ (तो) परम अवगाढ (कहा)।

यहाँ कहते हैं, तीन की शुद्धि के लिये जिनदेव ने दो प्रकार का चारित्र कहा है।

भावार्थ – जानना देखना और आचरण करना ये तीन भाव जीव के अक्षयानन्त हैं,... भगवान आत्मा का ज्ञान। भले श्रुतज्ञान की पर्याय हो। उसकी बात है न। यहाँ कहाँ केवलज्ञान की बात है। जो ज्ञान पर्याय अनन्त है। अनन्त को जानता हुआ प्रगट हुआ, इसलिए अनन्त है। अनन्त गुण का समुदाय ऐसा द्रव्य, उसे जानता हुआ प्रगट हुआ तो ज्ञान की पर्याय भी अनन्त है। उस पर्याय का पार नहीं, ऐसा कहते हैं। केवलज्ञानी की तो क्या बात करना! आहाहा!

(ज्ञान) **जानना देखना और आचरण करना ये तीन भाव जीव के अक्षयानंत हैं, अक्षय अर्थात् जिसका नाश नहीं है,...** श्रद्धान, जिसका नाश नहीं है, चारित्र-स्वरूप का आचरण स्थिर जिसका नाश नहीं। देखो! पड़ जाता है और गिर जाता है। अब छोड़ ने बात। पड़ने-फड़ने की यहाँ कहाँ बात है। यह तो अक्षय और अमेय है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन, ज्ञानसहित जहाँ चारित्र प्रगट हुआ है, कहते हैं कि तीनों को अनन्तता लागू पड़ गयी और तीनों को अक्षयपना लागू पड़ता है। भगवान आत्मा जैसे अक्षय है, नाश न हो तो उसकी श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति की पर्याय भी अक्षय है, अविच्छिन्न है। नाश हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! वे कहते हैं कि कर्म का कठोर उदय आवे तो? अमुक आवे तो? तूने किसकी लगायी है? तुझे श्रद्धा किसकी है? कर्म की या आत्मा की? आत्मा की श्रद्धा हो तो आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड है। उसकी श्रद्धा में अनन्तता आनी चाहिए। अनन्तता आनी चाहिए। उसमें अन्त आवे, ऐसी श्रद्धा होती ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? किसे खबर है, ऐसा उदय आवे,... परन्तु किसे खबर है, ऐसा नहीं। मुझे खबर है कि मैं अनन्त आनन्द का कन्द हूँ। मैं अनन्त गुण का पिण्ड हूँ। उसकी श्रद्धा और ज्ञान मुझे है। इसलिए इसके पश्चात् उस श्रद्धा और ज्ञान में क्या होगा? क्या होगा, अनन्त वर्तमान हुई है और अनन्तता बढ़ती जाती है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य! समझ में आया?

जिसका नाश नहीं है,... इसके स्मरण में भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान हुआ और स्थिरता हुई, उसके स्मरण में ऐसा आता है कि कर्म का उदय कठोर आवे, ऐसा स्मरण आता है? उसने यह धारा है? धारा है तो यह। पूर्ण आनन्द और ज्ञान का स्वभाव, ऐसा जो अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा की थी, उसका स्मरण करे, तब तो ऐसा आत्मा है। वह नाश न हो, ऐसी मेरी पर्याय है, ऐसा स्मरण में आवे। ऐसा स्मरण में आवे

वहाँ ? तो आत्मा की श्रद्धा नहीं। समझ में आया ? ऐई ! चन्दुभाई ! धारणा किसकी की थी ? शुद्ध चैतन्य ज्ञानस्वरूप की श्रद्धा। ज्ञान में धारणा तो उसकी की थी कि यह ऐसा आत्मा है। उस धारणा का स्मरण आवे कि जो तेरी श्रद्धा में नहीं है, ऐसी बात (आवे) ? यह तो उसमें नास्ति है। उसकी श्रद्धा में तुझे आवे कि यह होगा तो ? तुझे श्रद्धा ही नहीं है। आत्मा वस्तु है, उसकी प्रतीति ही तुझे नहीं है। तुझे कर्म की प्रतीति है। यह तेरी श्रद्धा, ज्ञान सब खोटा है। समझ में आया ?

जानना-देखना और आचरण करना... यह आचरण अर्थात् स्वरूप का रमण, वह चारित्र, हों ! यह आचरण। क्रिया-क्रिया महाव्रत की और वस्त्र छोड़े, नग्न (हो गये, वह नहीं)। वह विकल्प भी नहीं वहाँ। यह तो जीव के परिणाम हैं न। जीव है, शुद्ध है। शुद्ध के परिणाम शुद्ध होते हैं। अशुद्ध परिणाम उसके होंगे ? आहाहा ! और **अक्षयानंत हैं, अक्षय अर्थात् जिसका नाश नहीं है,...** किसका ? पर्याय का। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की पर्याय ऐसी है कि जिसका नाश नहीं। द्रव्य का नाश और गुण का नाश हो तो इसका नाश हो। क्योंकि द्रव्य को, गुण को प्रतीति और ज्ञान में लिया है और उसमें रमता है। आहाहा ! समझ में आया ?

अमेय अर्थात् अनन्त... अमेय—मेय नहीं, मर्यादा नहीं जिसकी। **अनन्त जिसका पार नहीं है,...** आहाहा ! भगवान अनन्त गुण का जैसे पार नहीं, वैसे उसकी प्रतीति, ज्ञान और रमणता की पर्याय का पार नहीं। कहो ! जैसे आकाश के क्षेत्र के पार है कहीं ? कहाँ अन्त आयेगा ? कहाँ अन्त आयेगा ? है... है... है... है... उसे निश्चित करनेवाला, उसका जाननेवाला (कौन) ? वह तो क्षेत्र है और यह तो क्षेत्रज्ञ है। क्षेत्रज्ञ है। क्षेत्र और क्षेत्र में रहे हुए भाव का जाननेवाला है। ऐसा जो आत्मा, ऐसे अनन्त-अनन्त गुणों उसके हैं। उसका जहाँ ज्ञान हुआ, उसकी श्रद्धा हुई, उसकी लीनता हुई (तो कहते हैं, वह) अपार है। आहाहा ! उस अपार को ज्ञान ही पार समझे। बाकी वह अनन्त है, उसे अनन्त रीति से जाने। वह पर्याय ज्ञान अनन्त, श्रद्धा अनन्त, शान्ति अनन्त। उसे ज्ञान अनन्त है, उसे अनन्तरूप से जाने। समझ में आया ?

अस्ति... अस्ति... अस्ति। ऐसा जो स्वरूप, एक ज्ञान की पर्याय ऐसे अक्षय, क्षेत्र का अन्त कहीं नहीं, उसे निश्चित करती है, ऐसी जो ज्ञान की पर्याय, ऐसी अनन्त पर्याय

का पिण्ड एक गुण और ऐसे अनन्त गुणों का (एकरूप वह द्रव्य)। ऐसे द्रव्य की पर्याय की श्रद्धा पर्याय में हुई, ऐसे द्रव्य की पर्याय में श्रद्धा-ज्ञान हुआ और स्वरूपचारित्र हुआ, कहते हैं कि उसका पार नहीं। आहाहा! उसकी सम्पदा, उसकी ऋद्धि का पार नहीं, कहते हैं। समझ में आया? यह पर्याय की बात चलती है, हों! **'तिण्णि वि भावा'** ऐसा भगवान आत्मा, जिसके अनन्त एक-एक गुण में अनन्त सामर्थ्य। ऐसे अनन्त गुण के सामर्थ्यरूप तत्त्व एक। उसका जिसे ज्ञान, श्रद्धा, स्थिरता (हुए), कहते हैं कि उसका पार नहीं है। आहाहा! ऐसी मोक्ष के मार्ग की पर्याय है।

सब लोकालोक को जाननेवाला ज्ञान है... लो। **'सोहणत्थे'** की व्याख्या की है न। शोधने की व्याख्या की है न। **'अक्खयामेया'** अब। **'तिण्हं पि सोहणत्थे'** की व्याख्या की। तीन की शुद्धि के लिये, शुद्धि करने के लिये। आहाहा! **सब लोकालोक को जाननेवाला ज्ञान है, इस प्रकार ही दर्शन है, इस प्रकार ही चारित्र है...** इतना अधिक बड़ा चारित्र। **तथापि घातिकर्म के निमित्त से अशुद्ध हैं...** पर्याय। **ज्ञान दर्शन चारित्ररूप हैं,...** तीनों अशुद्ध हैं। लो। .... उपयोग का। यह भी जरा पूर्ण ज्ञान नहीं, इस अपेक्षा से अशुद्ध कहा जाता है, हों! है नहीं। सराग... सराग कहलाता है न? घातिकर्म के निमित्त से, हों! अशुद्धता तो अपनी अपने कारण से है, वह तो निमित्त है। **ज्ञान दर्शन चारित्ररूप हैं,...** अशुद्धता तीनों में है, हों!

इसलिए श्रीजिनदेव ने इनको शुद्ध करने के लिए... जिनेन्द्रदेव भगवान परमात्मा, इन तीनों को शुद्ध करने के लिये **इनका चारित्र (आचरण करना)...** उसका—चारित्र का आचरण करना, ऐसे दो प्रकार से कहेंगे। आहाहा! कहो, समझ में आया? चौथे में तीनों प्रगट हुए हैं, थोड़े। पाँचवें में अब शुद्धि के लिये चारित्र की व्याख्या की है। वीतरागता पर्याय में आवे, वह तीनों की शुद्धि करती है। आहाहा! यहाँ तो पर्याय में जरा अशुद्धता है, दर्शन-ज्ञान-चारित्र होने पर भी उसमें चारित्र की विशेष शुद्धि, इन तीन की, चारित्र के कारण से शुद्धि होती है। **इनका चारित्र (आचरण करना) दो प्रकार का कहा है।** भगवान जिनेन्द्रदेव कहेंगे। उसमें दो में पहला—समकितचरण चारित्र। भाषा देखो! समकितचरण चारित्र। यह चौथे गुणस्थान में। समझ में आया? इसकी व्याख्या करेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-५

आगे दो प्रकार का कहा सो कहते हैं -

जिणणाणदिट्ठिसुद्धं पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं।
बिदियं संजमचरणं जिणणाणसदेसियं तं पि।।५।।

जिनज्ञानदृष्टिशुद्धं प्रथमं सम्यक्त्वचरणचारित्रम्।
द्वितीयं संयमचरणं जिनज्ञानसंदेशितं तदपि।।५।।

जिन-ज्ञान-दर्शन शुद्ध सम्यक्त्वाचरण चारित्र प्रथम।
जिन-ज्ञान संदेशित वही संयम-चरण जानों द्वितीय।।५।।

***अर्थ* - प्रथम तो सम्यक्त्व का आचरणस्वरूप चारित्र है, वह जिनदेव के ज्ञान दर्शन श्रद्धान से किया हुआ शुद्ध है। दूसरा संयम का आचरणस्वरूप चारित्र है, वह भी जिनदेव के ज्ञान से दिखाया हुआ शुद्ध है।**

***भावार्थ* - चारित्र दो प्रकार का कहा है। प्रथम तो सम्यक्त्व का आचरण कहा, वह जो सर्वज्ञ के आगम में तत्त्वार्थ का स्वरूप कहा, उसको यथार्थ जानकर श्रद्धान करना और उसके शंकादि अतिचार मल दोष कहे, उनका परिहार करके शुद्ध करना तथा उसके निःशंकितादि गुणों का प्रगट होना, वह सम्यक्त्वचरण चारित्र है और जो महाव्रत आदि अंगीकार करके सर्वज्ञ के आगम में कहा, वैसे संयम का आचरण करना और उसके अतिचार आदि दोषों को दूर करना, संयमचरण चारित्र है, इस प्रकार संक्षेप से स्वरूप कहा।।५।।**

प्रवचन-३६, गाथा-५ से ६, बुधवार, आषाढ़ शुक्ल ११, दिनांक १५-०७-१९७०

चारित्रपाहुड़, पाँचवीं गाथा। भगवान ने चारित्र के दो प्रकार वर्णन किये। एक सम्यक्चरण चारित्र और एक संयमचरण चारित्र। देखो! यह चारित्र अधिकार है तो इसमें से दो प्रकार कहे। सम्यक्चरण चारित्र कहो या समकित का आचार कहो। ज्ञानाचार,

दर्शनाचार आता है न? वह दर्शनाचार समकितचरण चारित्र है। संयमाचरण, वह चारित्र का आचरण—संयमचरण चारित्र है। इसमें उसका वर्णन है।

जिणणाणदिट्ठिसुद्धं पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं।
बिदियं संजमचरणं जिणणाणसदेसियं तं पि।।५।।

अर्थ – **प्रथम तो सम्यक्त्व का आचरणस्वरूप चारित्र है,...** वह कैसा है? पहला तो समकित का चारित्र प्रगट होता है। इसके बिना संयम का चारित्र प्रगट नहीं होता। इसलिए पहला यह कहा है। संयमचारित्र के पहले भी समकितचारित्र का आचरण अन्दर आत्मा में प्रगट होता है, वह पहली श्रेणी का समकित दर्शनाचार, समकित आचार, समकितचरण चारित्र कहा जाता है।

वह कैसा है? **वह जिनदेव के ज्ञान दर्शन श्रद्धान से किया हुआ शुद्ध है।** जिनदेव वीतराग परमात्मा ने जो आत्मा का स्वरूप, पर का स्वरूप इत्यादि कहा, ऐसा जो 'जिन' ने कहा हुआ ज्ञान, जिनदेव का कहा हुआ ज्ञान, उनका कहा हुआ दर्शन और उन्होंने कही जो श्रद्धा, उससे समकितचरण चारित्र शुद्ध है। आता है धीरे-धीरे। सेठी ध्यान रखते हैं (कि) क्या कहा यह? धीरे-धीरे आता है।

जिनदेव ने कहा जो ज्ञान, सर्वज्ञपने में एक समय में तीन काल का ज्ञान हुआ, उस ज्ञान से जो ज्ञान की बात की। आत्मा का ज्ञान, वह आत्मा का ज्ञान, आत्मा का दर्शन, आत्मा की श्रद्धा, उसका शुद्ध करना, शुद्ध होना, इसका नाम समकितचरण चारित्र कहा जाता है, जो मोक्षमार्ग का पहला पाया (चरण) है। जिनदेव का कहा हुआ ज्ञान। **'जिणणाण'** है न? **'दिट्ठि'** नहीं। **'सुद्धं'।** उसका दर्शन और उसकी श्रद्धा, उससे जो शुद्ध है, वह समकितचरण चारित्र है। उसका विस्तार करेंगे।

यहाँ तो सवेरे पहला विचार क्या आया था? केवलज्ञान, जो एक समय में भगवान ने जाना, ऐसा जो केवलज्ञान, वह भी व्यवहार है। सद्भूतव्यवहार है न? परन्तु है व्यवहार न। उसकी श्रद्धा, उसकी श्रद्धा भी कब हो? क्योंकि वह तो व्यवहारश्रद्धा हुई। उस पर्यायबुद्धि को पर्याय का सामर्थ्य मात्र स्वीकार में आया। वह पर्याय का सामर्थ्य एक समय में त्रिकाल ज्ञानस्वभाव ही है, ऐसा श्रद्धा में कब आवे? जो द्रव्यस्वभाव है, ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड, वह गुण है और अनन्त गुण का एकरूप, वह द्रव्य है, ऐसा जो

ज्ञायकभाव त्रिकाल, उसकी अन्तर्मुख होकर श्रद्धा हो, तब उसे केवलज्ञान की पर्याय की व्यवहारश्रद्धा कहलाती है। समझ में आया? कहो, हीराभाई! सवेरे रास्ते में चलता था। द्रव्य की पर्याय, इतना सामर्थ्य जिसे अनन्त केवली जाने एक समय की पर्याय, उस पर्याय की भी श्रद्धा, वह व्यवहारश्रद्धा है। भेदवाली श्रद्धा हुई न वह? ऐसी अनन्त पर्याय का सागर भगवान गुण, एक नहीं, ऐसे अनन्त गुण। यहाँ तो कल अनन्त आया था न? ज्ञान अनन्त, दर्शन अनन्त, चारित्र अनन्त। अनन्त गुण की प्रत्येक पर्याय अनन्त है। एक आत्मा उसके जो अनन्त गुण, उसकी एक-एक पर्याय स्वयं अनन्त है, अपार है। भाव की पर्याय उसकी क्या बात करना! ऐसी जो एक-एक गुण की पर्याय है, ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड तो एक गुण है। भले उसके अविभाग प्रतिच्छेद समान हों, परन्तु गुण में शक्ति तो अनन्त पर्याय होने की है न? समझ में आया? ऐसा एक गुण नहीं परन्तु ऐसे अनन्त गुण का अस्तित्व, वस्तुस्वभाव उसकी प्रतीति अर्थात् कि क्या! वह यह समकितचरण चारित्र की व्याख्या चलती है।

उसका स्वभाव सन्मुख होकर पूरा भगवान पूर्ण, जिसे श्रद्धा में ज्ञेय करके, ज्ञान करके श्रद्धा में लेना, उसे दर्शनाचार, समकित आचार, समकितचरण चारित्र साथ में प्रगट होता है। अकेली श्रद्धा, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। श्रद्धा के साथ में आचरण होता है। यह नि:शंक आदि आयेंगे न? पश्चात् ही आयेंगे। सातवीं गाथा। यह सब आचरण हैं, वह समकितचरण चारित्र की व्याख्या है। अकेली श्रद्धा, ऐसा नहीं परन्तु श्रद्धा के साथ स्थिरता का अंशव भी अनन्तानुबन्धी के अभाव के कारण हुआ है। इसलिए सम्यग्दर्शन के जोर में भी इतनी प्रतीति आयी कि पूरा पूर्ण प्रभु भिन्न भगवान को देखा, ऐसी आत्मा के अन्दर श्रद्धा (होना), वह श्रद्धा कब कहलाती है? निमित्त, राग और एक समय की पर्याय की रुचि छोड़कर और ज्ञायकभाव त्रिकाल की दृष्टि करने से समकित प्रगट होने पर, उसके साथ उसका आचरण—चारित्र भी प्रगट होता है। समझ में आया?

दर्शन है, वह सामान्य प्रतीतिरूप है। उसके साथ विशेष आचरण स्थिरता का भी है। सामान्य स्वभाव की प्रतीति तो ठीक, परन्तु वह प्रतीति स्वयं सामान्य है। समझ में आया? और उसमें स्थिरता। अनन्तानुबन्धी का अभाव होने से जो स्थिरता हुई, वह सब इकट्ठा गिनकर समकितचरण चारित्र उसे कहा गया है। समझ में आया? पहला समकितचरण

चारित्र भाषा में, चारित्र अधिकार में दोनों को चारित्र कहा है। वे कहें, समकित में चारित्र नहीं होता। परन्तु इस जाति का तो होता है, ऐसा कहे न। यह चारित्र कहा है न इसे? भले नि:शंक, नि:कांक्षित आदि। पच्चीस बोल दोष के (उनसे) रहित, ऐसा जो समकित का आचरण है, वह दर्शनाचार है। समझ में आया? दर्शनाचार है। वह तो चारित्राचार हुआ। आहाहा!

झगड़ा न करे और लोग यदि वस्तु को समझना चाहे तब तो पता लगे। परन्तु मैंने माना है, तत्प्रमाण मान्य करना चाहिए, (ऐसा रखे) तो वस्तु हाथ नहीं आती। वस्तु कुछ अलग प्रकार की है, उसका भाव ही कोई अलौकिक है! निर्विकल्पस्वभाव द्रव्य, निर्विकल्प गुण, ऐसे स्वभाव का अपारपना। उसकी प्रतीति हुई, उसका अपारपना है। कहा न? **'अक्खयामेया'** आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली बहुत संक्षिप्त में बहुत-बहुत भर देते हैं।

यह भगवान आत्मा, उसके सन्मुख होकर ज्ञायकभाव को प्रतीति में लिया तो कहते हैं कि वह प्रतीति, उसकी पर्याय में अनन्तता है। उस पर्याय में अनन्तता है। समझ में आया? अनन्त को प्रतीति में लिया है न? भले अभेदरूप से परन्तु उसमें अनन्त गुण इकट्ठे आ जाते हैं। समझ में आया? इस चीज़ की महत्ता लोगों को नहीं आती न, इसलिए बाहर में यह व्रत और यह तप और यह क्रिया... सिरपच्ची में (पड़े हैं)। यह आगे कहेंगे, समकितचरण चारित्र बिना संयमचरण चारित्र नहीं हो सकता। समझ में आया? **किया हुआ शुद्ध है।**

दूसरा संयम का आचरणस्वरूप चारित्र है, वह भी जिनदेव के ज्ञान से दिखाया हुआ शुद्ध है। भगवान ने जानकर उस स्वरूप में रमणता का चारित्र, वीतरागी चारित्र (हो), उसे संयमचरण चारित्र कहा जाता है।

***भावार्थ* – चारित्र दो प्रकार का कहा है। प्रथम तो सम्यक्त्व का आचरण कहा...** देखो! समकित का आचरण। **कहा वह जो सर्वज्ञ के आगम में तत्त्वार्थ का स्वरूप कहा...** तत्त्वार्थ में आत्मा आया न? तत्त्वार्थ का स्वरूप भगवान ने जो ज्ञान से जानकर कहा, ऐसे भाव के अन्तर में जिस प्रकार अन्दर स्वभाव है, वैसी प्रतीति अनुभव होकर हुई अर्थात् उसका ज्ञान होकर, ऐसा। उसके ज्ञान बिना प्रतीति क्या? ज्ञान

में चीज़ आयी नहीं और श्रद्धा करना, इसका अर्थ क्या ? ऐसा। समझ में आया ? मार्ग ऐसा है, भाई !

कहते हैं, **सम्यक्त्व का आचरण कहा, वह जो सर्वज्ञ के आगम में तत्त्वार्थ का स्वरूप कहा, उसको यथार्थ जानकर...** आत्मा को यथार्थ जानकर, पर्याय को भी यथार्थ जानकर। **श्रद्धान करना...** परन्तु उस पर्याय का यथार्थ ज्ञान कब होता है ? कि वस्तु का ज्ञान हो, तब पर्याय का ज्ञान होता है। ऐसी बात है। समझ में आया ? अखण्ड वस्तु के ज्ञान बिना खण्ड ऐसी एक समय की पर्याय, उसका यथार्थ वास्तविक ज्ञान नहीं होता। यह सुनने, समझने जैसा है थोड़ा। यह ऐसी की ऐसी बात नहीं है। समझ में आया ? ऐसा इसका स्वभाव, उसे है वैसा जानना पड़ेगा न ? और है, वैसा जानकर श्रद्धा करनी पड़ेगी न ? श्रद्धा करनी पड़ेगी अर्थात् श्रद्धे न ! ऐसा। श्रद्धा करना पड़ेगी अर्थात् जोर देकर है ? समझ में आया ? आहाहा !

कहते हैं, जिसकी एक पर्याय में अनन्त केवली जिसकी चादर में समा गये, ऐसी तो एक समय की पर्याय। श्रुतज्ञान हो तो भी अनन्त केवली जाने। केवलज्ञान में भी यह है। आहाहा ! यह तो कुछ चीज़ है ! आहाहा ! ऐसा जो भगवान ने कहा, वैसा यह तत्त्वार्थ, ऐसा। भगवान के ज्ञान में तीन काल, तीन लोक आये। समय एक, कालत्रय। भाव का एक समय का अंश, तीन काल के भाव जानने में आवे। समझ में आया ? उस काल का एक समय का अंश, उसमें तीन काल जानने में आवे। भाव का अनन्तवें भाग का एक अंश, एक पर्याय वह अनन्त तीन काल के द्रव्य, गुणभाव को जाने। समझ में आया ? यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त ऐसी चीज़ कहीं नहीं होती। समझ में आया ?

वस्तु का स्वरूप ऐसा है। इसलिए पहले संवर का लिया था न ? सर्वज्ञ भगवान... वहाँ से शुरु किया। चारित्र अधिकार शुरु करने से पहले सर्वज्ञ भगवान, (ऐसा लिया)। सर्वज्ञ सर्वदर्शी वीतराग परमेष्ठी। समझ में आया ? आया था या नहीं ? **'सव्वण्हु सव्वदंसी णिम्मोहा वीयराय परमेट्ठी'** (गाथा-१)। **'वंदित्तु तिजगवंदा'।** तीन जग से वन्दनीय, उन्हें मैं वन्दन करता हूँ। तीन जगत के जीवों को वन्दनीय, उनको मैं वन्दन करता हूँ। आहाहा ! ऐसे भगवान ने कहे हुए तत्त्वार्थ का स्वरूप यथार्थ जानकर। यथार्थ जानकर।

जैसा आत्मा है वैसा, जैसे गुण हैं वैसे, जैसी पर्याय है वैसी और सामने द्रव्य। वह तो एक समय की अपनी पर्याय का यथार्थज्ञान हुआ तो उसमें छह द्रव्य का ज्ञान आ जाता है। और ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड प्रभु द्रव्य, उसका ज्ञान होने से उस पर्याय की प्रतीति और पर्याय का ज्ञान आ जाता है। समझ में आया?

यथार्थ जानकर श्रद्धान करना... यथार्थ जानकर श्रद्धान करना, ऐसा कहा है न? जाने बिना श्रद्धा किसकी? वस्तु ऐसी है, गुण ऐसे हैं, पर्याय ऐसी है-ऐसा जानकर श्रद्धा करना। **उसके शंकादि अतिचार मल दोष कहे,...** उसके जो शंका आदि अतिचार दोष कहे, **उनका परिहार करके शुद्ध करना...** ऊपर कहा था न? **जिनदेव के ज्ञान दर्शन श्रद्धान से किया हुआ शुद्ध है।** शंका आदि दोष टालकर उस समकित को शुद्ध करना। समकितचारित्र को शुद्ध करना। समझ में आया?

तथा उसके नि:शंकितादि गुणों का प्रगट होना... पहले नास्ति से बात की। दोष टालकर शुद्ध करना। **नि:शंकितादि गुणों का प्रगट होना...** अस्ति। नि:शंक, नि:कांक्ष आदि गुण की पर्याय प्रगट होना, इसका नाम समकितचरण चारित्र कहा जाता है। समझ में आया? श्वेताम्बर में यह बात नहीं है। चारित्र के दो प्रकार, समकितचरण चारित्र, यह बात है नहीं। समझ में आया? **नि:शंकितादि गुणों का प्रगट होना...** है तो यह आठों पर्याय, परन्त अवगुण का नाश होकर गुण-पर्याय प्रगट हुई, उसे गुण कहा जाता है।

वह सम्यक्त्वचरण चारित्र है... ऐसा सम्यक्त्वचरण चारित्र चौथे गुणस्थान में होता है। चन्दुभाई! यह चौथे से होता है। वे कहें, नहीं। चारित्र का अंश नहीं। यह तो अमुक है, अमुक है, अमुक है। पच्चीस दोष टालते हैं। परन्तु वह सब भगवान आचरण हो गया, उसका आचरण पर्याय में (हुआ)। ज्ञान की पर्याय निर्मल हुई, स्थिरता की आंशिक निर्मल हुई, वीर्य की भी निर्मल हुई। ऐसे अनन्त गुण की पर्याय, जहाँ श्रद्धा में आयी साथ में वह सब निर्मल हुई। आहाहा! मूल मार्ग ऐसा बदल डाला है न कि मूल मार्ग हाथ लगना जगत को कठिन। और मूल हाथ आये बिना सब पत्ते तोड़े, (वे) वापस पल्लवित हो जायेंगे। उसका मूल नहीं छेदा गया। यह समकित है, वह चारित्र का मूल है। सम्यक्त्वचरण चारित्र। **वह सम्यक्त्वचरण चारित्र है...**

और जो महाव्रत आदि अंगीकार करके... देखो! यहाँ महाव्रत का लिया है। इसका अर्थ है कि महाव्रत के जो विकल्प होते हैं, उसे अन्तर में स्थिरता कैसी होती है, ऐसा उसे ज्ञान यथार्थ होता ही है। ऐसा। समझ में आया? वे लोग ऐसा कहते हैं कि देखो! चारित्र में महाव्रत लिये। वह स्थिरता प्रगट हुई, वह महाव्रत, वही चारित्र है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐई! यह चारित्र नहीं। महाव्रत के विकल्प जो उठते हैं, उस भूमिका में महाव्रत का विकल्प होता है, वहाँ ऐसा चारित्र / स्थिरता होती ही है। समझ में आया? उसे चारित्र कहते हैं। इन्हें तो व्यवहारचारित्र कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

महाव्रत आदि अंगीकार करके... पाँच समिति, गुप्ति आदि व्यवहार। **सर्वज्ञ के आगम में कहा...** सर्वज्ञ के आगम में कहे। यहाँ तो वजन यह देना है एकदम। **'सव्वणहु' 'सव्वणह सव्वदंसी'** आता है? नमोत्थुणं किया था? मगनभाई! सामायिक में नमोत्थुणं किया था? भूल जाते हैं। उसमें आता था। नमोत्थुणं में आता था। **'सव्वणहु सव्वदंसी सिवमय...'** जादवजीभाई! किया था या नहीं नमोत्थुणं? **'सव्वणहु सव्वदंसी सिवमय...'** भगवान एक समय में पूर्ण जाने, ऐसी पर्याय के सामर्थ्यवाला तू ही है, ऐसा कहते हैं। और ऐसी-ऐसी अनन्त पर्याय के सामर्थ्यवाला भगवान आत्मा द्रव्य है। ऐसे द्रव्य को भगवान ने कहा, तत्प्रमाण अशुद्धता को टालकर ऐसे निःशंकतादि शुद्ध की पर्याय को प्रगट करना, इसका नाम सम्यक्चरण चारित्र कहा जाता है।

और जो महाव्रत आदि अंगीकार करके सर्वज्ञ के आगम में कहा वैसे संयम का... अज्ञानी ने कहा, वह नहीं। परमेश्वर जिन वीतरागदेव, जिनके ज्ञान में तीन काल-तीन लोक आये हैं, उन्होंने जो संयम का स्वरूप कहा, **वैसे संयम का आचरण करना और उसके अतिचार आदि दोषों को दूर करना...** लो। वह **संयमचरण चारित्र है, इस प्रकार संक्षेप से स्वरूप कहा।** दोनों का संक्षिप्त में स्वरूप कहा।

गाथा-६

आगे सम्यक्त्वचरण चारित्र के मल दोषों का परिहार करके आचरण करना कहते हैं–

एवं चिय णाऊण य सव्वे मिच्छत्तदोस संकाइ।
परिहर सम्मत्तमला जिणभणिया तिविहजोएण।।६।।

एवं चैव ज्ञात्वा च सर्वान् मिथ्यात्वदोषान् शंकादीन्।
परिहर सम्यक्त्वमलान् जिनभणितान् त्रिविधयोगेन।।६।।

यों जान जिनवर–कथित समकित–मलिन–कारक छोड़ दो।
मिथ्यात्व शंकादि सभी मन वचन तन से सदा को।।६।।

अर्थ – ऐसे पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्वाचरण चारित्र को जानकर मिथ्यात्व कर्म के उदय से हुए शंकादिक दोष सम्यक्त्व को अशुद्ध करनेवाले मल हैं, ऐसा जिनदेव ने कहा है, इनको मन, वचन, काय के तीनों योगों से छोड़ना।

भावार्थ – सम्यक्त्वाचरण चारित्र; शंकादिदोष सम्यक्त्व के मल हैं, उनको त्यागने पर शुद्ध होता है, इसलिए इनको त्याग करने का उपदेश जिनदेव ने किया है। वे दोष क्या हैं, वह कहते हैं – जिनवचन में वस्तु का स्वरूप कहा, उसमें संशय करना शंका दोष है, इसके होने पर सप्तभय के निमित्त से स्वरूप से चिग जाय, वह भी शंका है।

भोगों की अभिलाषा कांक्षा दोष है, इसके होने पर भोगों के लिए स्वरूप से भ्रष्ट हो जाता है।

वस्तु के स्वरूप अर्थात् धर्म में ग्लानि करना जुगुप्सा दोष है, इसके होने पर धर्मात्मा पुरुषों के पूर्व कर्म के उदय से बाह्य मलिनता देखकर मत से चिग जाना होता है।

देव, गुरु, धर्म तथा लौकिक कार्यों में मूढता अर्थात् यथार्थ स्वरूप को न जानना, सो मूढदृष्टि दोष है, इसके होने पर अन्य लौकिकजनों से माने हुए सरागी देव, हिंसाधर्म और सग्रन्थ गुरु तथा लोगों के बिना विचार किये ही माने गये अनेक

क्रियाविशेषों से विभवादिक की प्राप्ति के लिए प्रवृत्ति करने से यथार्थ मत भ्रष्ट हो जाता है।

धर्मात्मा पुरुषों में कर्म के उदय से कुछ दोष उत्पन्न हुआ देखकर उनकी अवज्ञा करना, सो अनुपगूहन दोष है, इसके होने पर धर्म से छूट जाना होता है।

धर्मात्मा पुरुषों को कर्म के उदय के वश से धर्म से चिगते देखकर उनकी स्थिरता न करना, अस्थितिकरण दोष है, इसके होने पर ज्ञात होता है कि इसको धर्म से अनुराग नहीं है और अनुराग का न होना सम्यक्त्व में दोष है।

धर्मात्मा पुरुषों से विशेष प्रीति न करना अवात्सल्य दोष है, इसके होने पर सम्यक्त्व का अभाव प्रगट सूचित होता है। धर्म का माहात्म्य शक्ति के अनुसार प्रगट न करना, अप्रभावना दोष है, इसके होने पर ज्ञात होता है कि इसके धर्म के माहात्म्य की श्रद्धा प्रगट नहीं हुई है।

इस प्रकार ये आठ दोष सम्यक्त्व के मिथ्यात्व के उदय से (उदय के वश होने से) होते हैं, जहाँ ये तीव्र हों, वहाँ तो मिथ्यात्व प्रकृति का उदय बताते हैं, सम्यक्त्व का अभाव बताते हैं और जहाँ कुछ मन्द अतिचाररूप हों तो सम्यक्त्व प्रकृति नामक मिथ्यात्व की प्रकृति के उदय से हो, वे अतिचार कहलाते हैं, वहाँ क्षायोपशमिक सम्यक्त्व का सद्भाव होता है, परमार्थ से विचार करें तो अतिचार त्यागने ही योग्य हैं।

इन दोषों के होने पर अन्य भी मल प्रगट होते हैं, वे तीन मूढताएँ हैं – १. देवमूढता, २. पाखण्डमूढता, ३. लोकमूढता। किसी वर की इच्छा से सरागी देवों की उपासना करना, उनकी पाषाणादि में स्थापना करके पूजना देवमूढता है।

ढोंगी गुरुओं में मूढता–परिग्रह, आरंभ, हिंसादि सहित पाखण्डी (ढोंगी) भेषधारियों का सत्कार पुरस्कार करना, पाखण्डमूढता है।

लोकमूढता–अन्यमतवालों के उपदेश से तथा स्वयं ही बिना विचारे कुछ प्रवृत्ति करने लग जाय, वह लोकमूढता है, जैसे सूर्य को अर्घ देना, ग्रहण में स्नान करना, संक्रांति में दान करना, अग्नि का सत्कार करना, देहली, घर, कुंआ पूजना, गाय की पूंछ को नमस्कार करना, गाय के मूत्र को पीना, रत्न, घोड़ा आदि वाहन, पृथ्वी, वृक्ष, शस्त्र, पर्वत आदिक की सेवा–पूजा करना, नदी–समुद्र आदि को तीर्थ मानकर उनमें स्नान करना, पर्वत से गिरना, अग्नि में प्रवेश करना इत्यादि जानना।

छह अनायतन हैं – कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र और इनके भक्त ऐसे छह हैं, इनको धर्म के स्थान जानकर इनकी मन से प्रशंसा करना, वचन से सराहना करना, काय से वंदना करना। ये धर्म के स्थान नहीं हैं, इसलिए इनको अनायतन कहते हैं।

जाति, लाभ, कुल, रूप, तप, बल, विद्या, ऐश्वर्य, इनका गर्व करना आठ मद हैं। जाति मातापक्ष है; लाभ धनादिक कर्म के उदय के आश्रय है; कुल पितापक्ष है; रूप कर्मोदयाश्रित है; तप अपने स्वरूप को साधने का साधन है; बल कर्मोदयाश्रित है; विद्या कर्म के क्षयोपशमाश्रित है; ऐश्वर्य कर्मोदयाश्रित है, इनका गर्व क्या? परद्रव्य के निमित्त से होनेवाले का गर्व करना सम्यक्त्व का अभाव बताता है अथवा मलिनता करता है। इस प्रकार ये पच्चीस सम्यक्त्व के मल दोष हैं, इनका त्याग करने पर सम्यक्त्व शुद्ध होता है, वही सम्यक्त्वाचरण चारित्र का अंग है।।६।।

गाथा-६ पर प्रवचन

आगे सम्यक्त्वचरण चारित्र के मल दोषों का परिहार करके आचरण करना कहते हैं – देखो! मल दोष का त्याग करके आचरण (करना)। यह समकित के आचरण की बात चलती है। छठवीं (गाथा)

एवं चिय णाऊण य सव्वे मिच्छत्तदोस संकाइ।
परिहर सम्मत्तमला जिणभणिया तिविहजोएण।।६।।

देखो! '**मिच्छत्तदोस संकाइ**'

अर्थ – **ऐसे पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्वाचरण चारित्र को जानकर...** पहले जाने तो सही न कि ऐसा समकितचारित्र (होता है), ऐसा कहते हैं। सम्यक्चरण चारित्र कैसा, ऐसा पहले जाने। ज्ञान करे, पहले ज्ञान। **जानकर मिथ्यात्व कर्म के उदय से हुए शंकादिक दोष...** मिथ्यात्वकर्म के उदय में जुड़ने से शंका आदि दोष **सम्यक्त्व को अशुद्ध करनेवाले मल हैं,...** समकित को मलिन करनेवाले हैं। **ऐसा जिनदेव ने कहा है, इनको...** भगवान ने कहा, उन दोषों को **मन, वचन, काय के तीनों योगों से छोड़ना।** मन, वचन और काया तीन से छोड़े। पहले काया से और वचन से छोड़े और मन

से न छोड़े, ऐसा भंग इसमें होता नहीं। समझ में आया ? छह कोटि और आठ कोटि का कहते हैं न ? चारित्र में ऐसा भी नहीं है। उसमें भी ऐसा नहीं है। सामायिक में यह छह कोटि और आठ कोटि, ऐसा होता ही नहीं। सामायिक अर्थात् स्वरूप की दृष्टि में स्थिर होना, उसमें और छह कोटि, दो कोटि पृथक् रखना और तीन कोटि ऐसे रखना, इसका क्या अर्थ ?

आत्मा ज्ञायकस्वरूप भगवान पूर्णानन्द के अन्दर दृष्टि होकर उसमें रमणतारूपी सामायिक, उसमें सामायिक में छह कोटि से करना और दो कोटि से, तीन कोटि से नहीं करना (इसका क्या अर्थ) ? ऐई ! तुम आठ कोटि में थे न ? आठ कोटि से करना और एक कोटि से न करना। समता एक कोटि से नहीं करना, इसकी व्याख्या क्या ?

मुमुक्षु : पूरी नहीं करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरी नहीं करना, इसका अर्थ। आहाहा ! नहीं तो समकितचरण चारित्र की बात है। यह तो चारित्र में ऐसा है। समझ में आया ?

स्वरूप में दृष्टि होकर वीतरागता प्रगटे हो, वह मन, वचन और काया के अपराध छूटकर प्रगट होती है। नौ–नौ कोटि के प्रकार छूटकर प्रगट होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? समकितचरण चारित्र, वह भी मन, वचन और काया, कृत कारित और अनुमोदन —नौ–नौ कोटि के त्याग से समकितचरण चारित्र प्रगट होता है। आहाहा ! भारी बात, भाई ! समझ में आया ? मन में और कुछ दोष रहे, कुगुरु, कुदेव को मानने का या मिथ्यात्व अंश का, वाणी में और कुछ ऐसी प्ररूपणा रहे और काया उससे पाले, ऐसा होगा ? ऐसे भंग होंगे ? ऐसा कहते हैं। इसलिए पाठ रखा है न ? **'तिविह जोएण'।** बहुत गम्भीरता !

आत्मा का शुद्ध स्वरूप ज्ञायकभाव, उसे जानकर प्रतीति करना, श्रद्धा करना, उसमें मन, वचन और काया से जितने दोष समकित सम्बन्धी (हों) वे सब छोड़ना। समझ में आया ? अरे ! भारी बातें ऐसी। कठिन पड़े। वह सरल पड़े। व्रत लिये और अपवास किये और महीने–महीने के अपवास होवे और पूरा हो, तब जरा सौंठ चुपड़े, दो–चार, पच्चीस–पचास सांजी करे। पैसा खर्च करे। तप किया और तप करके मनाया कहलाये। उसमें अता–पता हाथ आवे नहीं। हाथ आवे तो पता खा जाये, समाप्त ! आहाहा !

कहते हैं, **मन, वचन, काय के तीनों योगों से...** इन योग से सब मल छोड़ दे।

और अमुक काया से छोड़े और वाणी से छोड़े तथा मन से न छोड़े, ऐसा होगा? छोड़े ही कहाँ है उसमें? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भावार्थ – सम्यक्त्वचरण चारित्र,... देखो! चरण चारित्र। पाठ में है न यह तो? **'सम्मत्तचरणचारित्तं'** ऐसा शब्द है न? (गाथा-५) **'सम्मत्तचरणचारित्तं'** ऐसा शब्द पड़ा है। कुन्दकुन्दाचार्य का। **'सम्मत्तचरणचारित्तं'। शंकादिदोष सम्यक्त्व के मल हैं, उनको त्यागने पर शुद्ध होता है,...** यहाँ तो **'मिच्छत्तदोस संकाइ'** ऐसा लिखा है न? मिथ्यात्व के दोष के शंकावाला। शंका, वह मिथ्यात्व का दोष है। चारित्रदोष के थोड़े हों, उसकी बात (नहीं)। वह तो जरा शंका आदि होती है न समकिती को। वह भय, चारित्र –प्रकृति के उदय का, उसे नहीं गिनना। मात्र यह मिथ्यात्व सम्बन्धी की जो शंका आदि है, ऐसे मल को छोड़ दे। मन, वचन और काया से।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र किसका? किसका? समकित का या चारित्र का? दो का कहा न? समकितचरण चारित्र और चारित्रचरण का चारित्र। समकित के यह आठ आचार आदि जो है, वह समकितचरण का चारित्र है और महाव्रत आदि चारित्र का आचरण है। समझ में आया?

इनको त्याग करने का उपदेश जिनदेव ने किया है। लो। **सम्यक्त्वाचरण चारित्र, शंकादिदोष सम्यक्त्व के मल हैं, उनको त्यागने पर शुद्ध होता है; इसलिए इनको त्याग करने का उपदेश जिनदेव ने किया है। वे दोष क्या हैं, वह कहते हैं –**

जिनवचन में वस्तु का स्वरूप कहा, उसमें संशय करना... भगवान ने पूरा आत्मा—द्रव्य ज्ञायकभाव कहा। ऐसा ज्ञायकभाव होगा? समझ में आया? एक समय में परमात्मा पूर्ण प्रभु, अकेला ज्ञायकप्रभु, ज्ञायक परमात्मा, ऐसा आत्मा, ऐसा आत्मा? यह शंका मिथ्यात्व की शंका है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प उठे परन्तु शंका पड़ी, मूल तो शंका पड़े तो वस्तु खोटी हो गयी। जानने के लिये अलग बात है, परन्तु यहाँ तो वह बात नहीं लेनी। यहाँ तो

ज्ञायकभाव ऐसा ? समकित के दोष का त्याग है न। भगवान ने जो कहा... देखो !

जिनवचन में वस्तु का स्वरूप... अर्थात् आत्मा का अपने यहाँ तो लेना है। ऐई ! **उसमें संशय करना शंका दोष है,...** मूल वस्तु अखण्ड अभेद ज्ञायकभाव ध्रुव चैतन्य, वह इतना बड़ा ? इतना बड़ा ? एक समय की केवलज्ञान की पर्याय, ऐसी-ऐसी अनन्त पर्याय का एक गुण, ऐसे अनन्त गुण की एक वस्तु। जिसका—ज्ञायकभाव का अस्तित्व इतना बड़ा। उसमें शंका होती है, वह समकित का मैल है, यह तो दोष है। समकित को मलिन करे, वह मिथ्यात्व है। ऐसा। चारित्र के दोष में शंका आदि थोड़ी हो, (वह अलग बात है), यह तो मूल में विवाद है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? समकित में दोष नहीं होता, ऐसा सिद्ध करना है न ? समकित अर्थात् ज्ञायकभाव की पूर्ण जानकारी करके प्रतीति हुई है। ज्ञायक होकर प्रतीति हुई है। फिर उसमें ऐसा भाव होगा या नहीं होगा, यह प्रश्न नहीं रहता। आहाहा !

श्रद्धा ने और ज्ञान की पर्याय ने पूरे भगवान को झेला। इतना ही है वह। इतना ही है वह, ऐसा ही है वह। ऐसा प्रभु पूर्ण ज्ञायकभाव, वस्तु कही न ? वस्तु का स्वरूप। समझ में आया ? **वस्तु का स्वरूप कहा, उसमें संशय करना शंका दोष है,...** मूल वस्तु तो भगवान आत्मा है। समझ में आया ? यह अन्दर में उतारने जैसी, समझने जैसी चीज़ है। दूसरा जानपना हो, न हो, अलग बात है, परन्तु यह भगवान ऐसा ? बहुतों को तो अभी सर्वज्ञपर्याय में शंकायें। सर्वज्ञ तीन काल-तीन लोक जाने ? तो फिर मेरी अन्तिम पर्याय कह दे। सब जानते हों तो। अरे ! परन्तु अन्तिम पर्याय होती नहीं और क्या जाने ? ज्ञान खोटा है ? आहाहा ! भारी विवाद, मूल में विवाद। अभी तो सर्वज्ञ की पर्याय में विवाद, उसे द्रव्य में विवाद तो होगा ही। ऐसा कहते हैं। सेठी ! ऐसा मार्ग है।

यह तो भगवान के घर में जाने की बात है। पामर में पड़ा है, उसे प्रभु के घर में जाना है। ऐई ! चन्दुभाई ! प्रभु का घर उसका पीहर है, उसके घर में वहाँ जाना है। आहाहा ! महाप्रभु ज्ञायकभाव अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त की... अनन्त की अनन्तता ऐसे सामर्थ्यवाला एक समय में पूरा तत्त्व पड़ा है। भगवान ने ऐसा देखा, ऐसा वह है। आहाहा ! समझ में आया ? सर्वज्ञ के अतिरिक्त ऐसे आत्मा की बात कहीं अन्यत्र नहीं हो सकती और वह भी इन दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं हो सकती। समझ में आया ? सब

केवली के पथानुगामी हैं। आहाहा! पुकार करते हैं न! केवल (ज्ञान) लूँगा, केवल लूँगा, ऐसी पुकार करते हैं। केवली को, अनन्त केवलज्ञानी को पर्याय में माना परन्तु ऐसी अनन्त पर्याय, उसने द्रव्य को माना। हमने अनन्त केवलज्ञानी को कब्जे में किया, यह कब्जे में किया वह अन्दर प्रवाहरूप से प्रगट होकर ही रहेगा। **'अक्खयामेया'** ऊपर लेने के बाद यह ली है न! जो पर्याय प्रगटी, वह अब नाश होनेवाली नहीं है। जो पुत्र माँ से जन्मा, वह वापस पेट में नहीं जाता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

ऐसा भगवान आत्मा, जिसकी सम्यग्दर्शन पर्याय प्रजा अन्दर से प्रगटी, वह प्रजा हुई सो हुई, अब वापस नहीं जाएगी। समझ में आया? उपयोग का हरण नहीं होगा। अलिंगग्रहण के नौवें बोल में आया था। उसका हरण नहीं। अविनाशी भगवान को पकड़ा। वस्तु अविनाशी है तो पर्याय भी अविनाशी हो गयी। वस्तु अनन्त तो उसकी पर्याय में अनन्तता आ गयी। आहाहा! यह अन्दर भाव में आना चाहिए, हों! इसके लिये पुकार करते हैं। आहाहा! देखो न!

जिनदेव ने कहा, ऐसा **वस्तु का स्वरूप कहा,...** ऐसा जीवद्रव्य, ऐसा परमाणु इत्यादि। **उसमें संशय करना शंका दोष है, इसके होने पर सप्तभय के निमित्त से स्वरूप से चिग जाय...** देखो! शंका होने पर भय होता है। निर्भयरूप से आत्मा की प्रतीति नहीं कर सकते। समझ में आया? निःशंक और भय का आया था न? आया था न कल? शंका अर्थात् भय। नियमसार। अभी अपने व्याख्यान में भय और शंका का (आ गया)। ऐसी शंका। ऐसा अखण्ड ज्ञायकभाव, उसमें जिसे शंका पड़े, उसे भय उपजे बिना नहीं रहता। वह निर्भय नहीं हो सकता। यह ऐसा मार्ग है। अभी तो बाहर में सेवा करके धर्म साधना था।

मुमुक्षु : सेवा धर्म...

पूज्य गुरुदेवश्री : सेवा, वह कौन? वह आत्मा की सेवा। स-ऐव। भगवान आत्मा पूर्णानन्द का ज्ञायकभाव, उसकी श्रद्धा-ज्ञान, वह उसकी सेवा है। क्योंकि श्रद्धा-ज्ञान में ऐसा आत्मा निरोगस्वरूप है, ऐसा उसने स्वीकार किया है। ऐसी उसकी सेवा है। उसे हीन स्वीकार करना, वह असेवा है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! समझ में आया? जैसा भगवान ने ज्ञायकभाव कहा, वैसा स्वीकार करना, वह सेवा है। क्योंकि उसे ऐसा का ऐसा

रखा। और ऐसा न रखकर दूसरे प्रकार से माने, वह उसकी सेवा नहीं है, उसे घात कर डाला है। असेवा है। कहो, समझ में आया ? प्रकाशदासजी ! यह प्रकाश की बात चलती है यह।

ऐसा भगवान है, बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! ऐसा तीन लोक का नाथ, उसने अनन्त केवलज्ञान का पेटा पर्याय में अंगीकार किये है, ऐसी अनन्त पर्याय जिसने गुण में—पेट में रखी है, ऐसे अनन्त गुण को जिसने द्रव्य में रखा। आहाहा! ऐसा ज्ञायकभाव भगवान परमात्मा, वह साहेब का साहेब! समझ में आया ? साहेबजी, साहेबजी करते हैं न यह ... लोग ? उसे भी ... साहेब को भली मति होओ। ऐसा साहेब भगवान है, उसकी श्रद्धा तुझे होओ। समझ में आया ?

हमारे मामा था। वैसे हमारे मामा के काका के पुत्र (होते हैं)। सगे मामा थे। गृहस्थ व्यक्ति। पैसेवाले। मकान बहुत। परन्तु बाँझ मर गये। एक लड़का हुआ था, वह मर गया। फिर उदास हो गये थे, हों! उदास। दस वर्ष की उम्र में (मर गया)। उदास... उदास... मकान, बहुत मकान, नयी से विवाह किया। लड़का हुआ तो बारह वर्ष में लड़का मर गया। हो गया। ... बातें करते-करते.... ... मामा, यह क्या हुआ ? मुझे कुछ खबर नहीं। वे कहे, ... का अर्थ साहेब को भली मति होओ। यह साहेब तीन लोक का नाथ, इसे भली बुद्धि होओ कि ऐसा ज्ञायकभाव मैं हूँ। आहाहा!

नि:शंक, नि:शंक हो जा – ऐसा कहते हैं। शंका करना नहीं। भगवान परमात्मा के घर में आया, उसकी शंका क्या ? आहाहा! समझ में आया ? उसे अब भय क्या ? भवभय नहीं होता। वह तो निर्भय होकर परमात्मा हो जानेवाला है। आहाहा! जीत का नगाड़ा बजा। समझ में आया ? आता है न ? आनन्दघनजी में। नहीं ? 'मोहतिमिर भय भांग्युं' पहला क्या आता है ? 'वीरजी ने चरणे लागुं, वीरपणुं ते मागुं रे, वीरपणुं ते आतम ठाणे, जाण्युं तुमकी वाणी।' वहाँ तक रखा। 'वीरपणुं ते आतम ठाणे, जाण्युं तुमकी वाणी।' परन्तु आत्मा के ज्ञान से जाने, तब वीरपना ठाणे, ऐसा माना कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया ?

कहते हैं, वस्तु का स्वरूप कहा। भगवान ने ज्ञायकभाव जीव को कहा, ऐसा एक-एक परमात्मा, पूर्ण परमात्मा है। पर्यायदृष्टि छोड़ दो तो अनन्त भगवान लोक में ठसा-ठस

भरे हैं। भगवान बिना की कोई जगह खाली नहीं है। आहाहा! भगवान के ज्ञान में कोई बाकी नहीं, ऐसे लोक में कोई भगवान के बिना का बाकी नहीं। समझ में आया?

ऐसे वस्तु के स्वरूप में, भगवान ने कहा उसमें संशय करना, वह शंका है। इसलिए संशय करना नहीं। **सप्तभय के निमित्त से स्वरूप से चिग जाय...** शंका करे, तब तो वस्तु से भ्रष्ट हो जाए। **चिग जाय, वह भी शंका है।** एक बोल हुआ।

और, **भोगों की अभिलाषा, कांक्षा...** है। अर्थात् कि राग की अभिलाषा, वह कांक्षा है। स्वभाव में अभिलाषा स्वभाव की होती है। समझ में आया? आहाहा! राग की अभिलाषा, वह भोग की अभिलाषा है, आनन्द की अभिलाषा नहीं। आहाहा! समझ में आया? समकिती को राग की अभिलाषा नहीं, ऐसा कहते हैं। जैसे पूर्ण ज्ञायकभाव में प्रतीति में शंका नहीं, वह अस्ति से लिया और यहाँ पूर्ण आनन्द में उसे राग के भाव की भावना नहीं। राग की अभिलाषा कांक्षा नहीं। भाव, स्वभाव आत्मा जो निःशंकरूप से जाना है, उसमें वह स्थिर होना चाहता है, उसे राग की कांक्षा नहीं है।

भोगों की अभिलाषा कांक्षा दोष है, इसके होने पर भोगों के लिए...राग की रुचि का जहाँ भाव हो जाता है, वहाँ स्वरूप से च्युत होकर भ्रष्ट हो जाता है। समझ में आया? जहाँ कहीं भोग, संसार में मिठास आयी और राग के विकल्प शुभ की भी मिठास आयी, वह भोग में घुस गया, चैतन्य से भ्रष्ट हो गया। आहाहा! समझ में आया? सुजानमलजी! ऐसा मार्ग वीतराग का है। कहा श्री वीतराग। हमारे हरिभाई ने रचा है न। समझ में आया? सीमन्धर भगवान के समवसरण में... आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ही है, उसमें दूसरा प्रश्न क्या? कहते हैं। ऐसा ही है, इस प्रकार से तू मान और जान। उसमें कोई स्थान दूसरा है नहीं। ऐसा कहते हैं। जैसा है, वैसा कहा न? भगवान ने वस्तु का स्वरूप है, वैसा कहा। वैसा वह है।

उसमें भोग की अभिलाषा। अरे! राग के कण का भी प्रेम होना, वह भोग की ही अभिलाषा है। उसे आत्मा के आनन्द की भावना नहीं है। आहाहा! पल की खबर पड़ती है? देखो न! बेचारा वह विमानवाला जवान एक ही था, कहते हैं। विमान चलानेवाला।

अन्तिम स्थिति, पास होने की। हुआ पास। आहाहा! और वह माँस खानेवाले हों, नरक में जाये। समझे या नहीं? माँस नहीं खानेवाले पशु में जायें। .. आहाहा! यह पर्दा बड़ा, भगवान को देखे बिना के ऐसे पर्दे पड़ते हैं। समझ में आया?

भगवान तो भव और भाव के भाव रहित है। जिसने राग की भावना की, उसने भव की भावना भटकने की की है। आहाहा! समझ में आया? स्वर्ग के सुखों की भी जिसे इच्छा (रही), अरे! जिसे राग की इच्छा है, उसे स्वर्ग के सुख की ही इच्छा है। उसे आत्मा के आनन्द की रुचि भ्रष्ट हो जाती है। समझ में आया? अतीन्द्रिय आनन्द का जो प्रेम है, उस राग के प्रेम में जहाँ जाता है, वहाँ स्वर्ग आदि के सुख का प्रेम उसे जगता है। इसालिए आनन्द के प्रेम से च्युत हो जाता है। इसलिए ऐसे राग की कांक्षा को छोड़ना चाहिए। मूल पाठ तो **'मिच्छत्तदोस संकाइ'** है न। मिथ्यात्वदोष के शंका आदि लिये, पाठ में। अस्थिरता के साधारण, वह बात नहीं। इस मूल को छेद डाले, उन दोषों का वर्णन किया है। समझ में आया? आहाहा!

भोगों के लिए स्वरूप से भ्रष्ट हो जाता है। आत्मा के आनन्द का भोग जहाँ प्रतीति में आता है, आत्मा का अनुभव कहो या आत्मा का भोग कहो, वह जहाँ प्रतीति में—श्रद्धा में आता है, उसे राग का भोग कैसे रुचे? वह इन्द्राणी के विषय के समय भी समकिती को रुचता नहीं। आनन्द के समक्ष कहीं रुचि नहीं है। आहाहा! ऐसी भोग की कांक्षा... यहाँ क्या करे? स्थूल भोग। ऐसा नहीं, यहाँ तो राग है (उसका) भोग-अनुभव करना, वह स्थूल कांक्षा है। वह कांक्षा, ऐसी इच्छा धर्मी को नहीं होती। ऐसी करने जाए तो यहाँ शुद्ध स्वभाव से भ्रष्ट हो जाता है। आनन्द के प्रेम से च्युत हो जाता है। और भोग के प्रेम में चला जाता है। समझ में आया? दो बोल हुए।

वस्तु के स्वरूप अर्थात् धर्म में ग्लानि करना जुगुप्सा दोष है,... पहला तो वस्तु में ग्लानि करना। भगवान चैतन्य ज्ञायकमूर्ति परमानन्द का नाथ, उसमें ग्लानि (अर्थात्) ऊहुं... हुं... हुं... (निषेध होना), ऐसा वह होगा? उसका अनादर करना, ग्लानि करना, दुगंछा करना। इना बड़ा? ऐसा होगा? यह दुगंछा भी मिथ्यात्व का (दोष है)। उसे स्वभाव के प्रति दुगंछा हुई। आहाहा! समझ में आया? है इसमें अन्दर लेख है। प्रकाशदासजी! है या नहीं उसमें? थोड़ा-थोड़ा है? आहाहा! वस्तु के स्वरूप में ग्लानि। भगवान अतीन्द्रिय

आनन्द का साहेबा, उसमें ग्लानि उं... हुं... हुं... ऐसा वह होगा ? समझ में आया ? ऐसा करके उसके प्रति अनादर करना, दुगंछा हो, उसे मिथ्यात्व भाव कहा जाता है। ऐसा भाव समकिती को नहीं होता। आहाहा !

धर्मात्मा पुरुषों के... यह व्यवहार आया। ऐसा जहाँ निश्चय हो वहाँ, **धर्मात्मा पुरुषों के पूर्व कर्म के उदय से बाह्य मलिनता देखकर मत से चिग जाना होता है।** ऐसा कुछ देखकर मत से चलायमान हो जाए। मुनि पवित्रता के पिण्ड, उनका शरीर ऐसा ? शरीर भी सुधरा नहीं ? उसे रोग ? उन्हें यह सड़ा हुआ... ? शरीर सड़े। सात सौ (वर्ष) रोग। नहीं आया ? सात सौ वर्ष गलित कोढ़। सनतकुमार चक्रवर्ती। आहाहा ! वह तो जड़ के काम जड़ होते हैं। ऐसा देखकर ग्लानि हो... समझ में आया ? (वह) धर्म से च्युत हो जाए। अच्छे शरीर को निरोगी देखे... यदि, उसे कुछ धर्म का फल है। सुन न ! शरीर चाहे जैसा हो, उसके साथ आत्मा को क्या सम्बन्ध है ? ऐई ! साँढ जैसा मिथ्यादृष्टि का शरीर देखे... गजब भाई ! यह तो बड़ा पण्डित बाबा को मानता है न। उसके कारण। पैसेवाला और निरोगी रहता है। और यह लो, धर्मात्मा। शरीर में भी रोग रहे और मैल रहे, यह रहे। आहाहा ! ऐसी यदि ग्लानि सत्पुरुष की करे तो वह अपना सत् स्वभाव, उससे भ्रष्ट हो जाता है। कान्तिभाई ! यह तो वीतराग के सब सन्देश हैं। वीतराग के सन्देश अर्थात ? वीतराग की वाणी और वीतराग के वयन। पानी में प्रवाह होता है न ? उस ओर पानी बहुता है। यह वीतराग का प्रवाह है, वयन साथ में। अज्ञान और मिथ्यात्व के प्रवाह का व्हेण छूटकर यह सब वीतराग के व्हेण हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

पूर्व कर्म के उदय से बाह्य मलिनता देखकर मत से चिग जाना होता है। देखा ! स्वरूप की ग्लानि करे तो भी भ्रष्ट हो जाता है और धर्मात्मा के पूर्व पाप के उदय से, अघाति के कारण से शरीर में फेरफार, मैल, घृणा, आँख फूटी हुई हो, गले का क्या कहलाता है वह ? कण्ठमाल। केंसर हो। शरीर की पर्याय है, परन्तु उसमें आत्मा को क्या ? ऐसा देखकर जिसे अन्तर में स्वरूप चैतन्य का भान है, उसकी ग्लानि आवे तो उसके ऊपर ग्लानि हो जाती है। आहाहा ! समझ में आया ? तीन बोल हुए। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन-३७, गाथा-६- ७, गुरुवार, आषाढ़ शुक्ल १२, दिनांक १६-०७-१९७०

यह चारित्रपाहुड़, इसकी छठी गाथा। यहाँ आया है, देखो! चौथा बोल है। निःशंक, निःकांक्ष और निर्विचिकित्सा। ये तीन दोष वर्णन किये हैं। है गुण, परन्तु इनके दोष वर्णन किये हैं। पहला फिर से लेते हैं।

जिनवचन में वस्तु का स्वरूप कहा, उसमें संशय करना शंका दोष है,... भगवान ने ज्ञायकभाव ऐसा जो चैतन्यस्वभाव, वस्तु स्वभाव जो वर्णन किया, उसमें शंका करना, वह समकित के नाश का कारण है। मिथ्यात्व का दोष है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : शंका करना अर्थात ?

पूज्य गुरुदेवश्री : शंका अर्थात् ऐसा ज्ञायकभाव होगा या नहीं ? ऐसा त्रिकाली चैतन्य द्रव्य, अनन्त सामर्थ्य, इतने क्षेत्र में, इतने सत्त्व, तत्त्ववाला ऐसा ज्ञायकपना होगा या नहीं ? ऐसी शंका (होना, वह) मिथ्यात्व का दोष है।

मुमुक्षु : ... ऐसा विचार कि....

पूज्य गुरुदेवश्री : विचार नहीं। शंका आवे कि ऐसा है ? विचार आवे ज्ञान करने के लिये, वह अलग (बात है)। उसे शंका हो। यह समकित की बात चलती है न ? समकिती को यह दोष होता नहीं। होवे तो वह समकित रहता नहीं। ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? ऐसा है न ? देखो न!

'सम्मत्तमला जिणभणिया तिविह जोएण परिहरि' ऐसा है न ? भगवान ने जो आत्मा का स्वभाव कहा, उसमें से मन, वचन और काया द्वारा वस्तु के स्वरूप से विरुद्ध भाव का उसे त्याग है। मिथ्यात्व का भाव उसे नहीं होता। अखण्ड ज्ञायक चैतन्य वस्तु द्रव्यस्वभाव महा अनन्त आनन्द आदि स्वभाव की खान, वह आत्मा है। अनन्त-अनन्त ज्ञान का समुद्र आत्मा है। उसमें शंका होना, वह मिथ्यात्व का दोष है। उससे शंका होने पर, भय होता है, भय होने से स्वरूप से च्युत हो जाता है। यह पहली बात की।

दूसरी, भोग की अभिलाषा। राग है। राग की इच्छा। स्वरूप की अभिलाषा नहीं और राग का भाव या राग के फल का भाव, उसकी अभिलाषा (हो तो) वह स्वरूप से

च्युत होकर धर्म से भ्रष्ट होने का रास्ता है। समझ में आया ? तब (कोई) कहे, समकिती को भोग होते हैं न ? क्षायिक समकिती को भोग होते हैं। भोग से चिग जाए तो भ्रष्ट हो जाए। ऐसा कहा वह क्या ? अन्तर में आत्मा के आनन्द के समक्ष किसी भोग की वृत्ति में प्रेम और रुचि ज्ञानी को नहीं रहती। आत्मा के आनन्द का जिसने भान किया है, आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के धामस्वरूप है, ऐसा जहाँ सम्यक् हुआ है, उसे कोई इन्द्र आदि के भोग की भी इच्छा (नहीं है)। राग की ही इच्छा नहीं, यहाँ तो कहना है। और यदि राग की इच्छा हो तो सम्यक्त्व से भ्रष्ट हो जाता है। सेठी ! क्या है ? समझ में आया ?

मुमुक्षु : भोग की इच्छा से खाना-पीना...

पूज्य गुरुदेवश्री : खाना की यहाँ कहाँ बात है। क्या लिखा है ? देखो ! **भोगों की अभिलाषा कांक्षा...** भोग शब्द से आत्मा के आनन्द का अनुभव, ऐसा जो आत्मा का भोग,, उसे छोड़कर पाँच इन्द्रिय के विषय का कारण वह राग, उस राग की अभिलाषा है, वह मिथ्यात्व का लक्षण है। धर्मीजीव को आत्मा तो आनन्दस्वरूप है... प्रकाशदास गये लगते हैं। गये ? समझ में आया ?

एक ओर निःशंक पूर्ण ज्ञायकभाव है, यह अस्तिरूप की बात है। उसमें शंका पड़े कि ऐसी वस्तु नहीं। ऐसी शंका, वह मिथ्यात्वभाव है। अब ऐसा जो निःशंक ज्ञायकभाव, इसके अतिरिक्त राग की, पर की भी अभिलाषा रहे तो भी स्वभाव की भावना नहीं रहती। समझ में आया ? धर्मी को भोग की वृत्ति हो, आसक्ति हो परन्तु उसकी रुचि का रस नहीं है। अभिलाषा नहीं है। उसकी अभिलाषा नहीं। है, है, है, आकुलता है। निर्बलता के कारण आता है परन्तु उसका प्रेम नहीं। धर्मी को प्रेम नहीं। जहाँ आत्मा के आनन्द का स्वाद लिया है, आनन्द का अनुभव लिया है, उसे वह कोई इन्द्राणी क्या, तीन लोक का राज हो तो भी उसे जहर जैसा लगता है। राग की इच्छा, अभिलाषा धर्मी को नहीं होती। ऐसी बात है। फिर द्वेष नहीं होता, ऐसी मूल तो बात है। है न ?

वस्तु के स्वरूप अर्थात् धर्म में ग्लानि करना जुगुप्सा दोष है, इनके होने पर धर्मात्मा पुरुषों के... यह तो व्यवहार कहा। परन्तु अन्तर में ग्लानि अर्थात् ऐसा स्वभाव, उसके प्रति अरुचि हो जाना, राग की जो अभिलाषा है, ऐसे स्वभाव की अरुचि होना, वह जुगुप्सा है। यहाँ अभिलाषा होना और यहाँ जुगुप्सा होना अर्थात् मूल राग और द्वेष हुआ।

अखण्ड ज्ञायकभाव चैतन्य वस्तु के अस्ति की प्रतीति में शंका, यह पहला दोष कहा। और उसे छोड़कर किसी भी विकल्प की अभिलाषा (हो), वह वस्तु के स्वरूप से चिग जाए, भ्रष्ट होने का कारण है। और भगवान आत्मा ऐसा अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड, उसके प्रति ग्लानि हो जाना। ऐसा आत्मा होगा ? ऐसा आत्मा हो तो क्यों नहीं प्रगट होता है ? प्रगट तो प्रतीति, अनुभव कर तो होगा या अनुभव किये बिना होगा ? समझ में आया ? कहाँ था न हमारे भगवानजीभाई ने। भगवानजी वकील हैं। ऐसा धोया हुआ मूला जैसा बहुत महिमा करते हो तो गया कहाँ ? परन्तु है अन्दर में, उसका अन्तर्मुख होकर विश्वास नहीं और विश्वास नहीं, इसलिए उसकी प्रतीति में यह आत्मा ऐसा है, ऐसा आता नहीं। समझ में आया ? यह तो मुद्दे के रकम की बात है। यहाँ तो **'मिच्छत्तदोस संकाइ परिहरि सम्मत्तमला जिणभणिया तिविह जोएण'** आहाहा ! मन, वचन और काया से जिसे दोष छूट जाते हैं, और आत्मा अखण्ड आनन्दस्वरूप प्रतीति में, अनुभव में, ज्ञान में आवे, उसे सम्यग्दर्शन और उसे धर्म की शुरुआत कही जाती है। समझ में आया ? यह तीन तो कल आये थे।

और, **देव, गुरु, धर्म तथा लौकिक कार्यों में मूढ़ता...** समकित का दोष, यह मिथ्यात्व का भाव है। **यथार्थ स्वरूप को न जानना, सो मूढ़दृष्टिदोष है, इसके होने पर अन्य लौकिक जनों से माने हुए सरागीदेव...** लौकिक माने रागवाले देव, सर्वज्ञपद प्रगट हुआ नहीं, पूर्ण दशा जिसकी नहीं, रागवाले देव को देव माने (कि) यह भी एक देव है न ? महा पुण्यशाली आदि। वह मूढ़ है। समझ में आया ? **सरागीदेव, हिंसाधर्म...** राग में धर्म माने। राग के परिणाम है, वह हिंसा है। उसे धर्म माने। **सग्रन्थगुरु...** वस्त्र-पात्र सहित हो, उसे चारित्रवन्त माने। ये सब मिथ्यात्व के लक्षण हैं। सग्रन्थ है न ? उसे निर्ग्रन्थपना नहीं और सग्रन्थ—वस्त्र, पात्र आदि रखता है और मुनिपना मानता है, उसे जो चारित्रवन्त मुनि माने, वह मिथ्यात्व का दोष है, वह मूढ़ता है। उसे सत्य का भान नहीं है।

तथा लोगों से बिना विचार किये ही मानी हुई अनेक क्रियाविशेषों से विभवादिक की प्राप्ति के लिये... दुनिया में मुझे लक्ष्मी मिले, इज्जत मिले। यह जो मानते हैं न ? बाबा को और जोगी को, फकीर को... वह बाबा नहीं ? सांईबाबा, जलाराम।

सबको माने। पैसे मिलेंगे। उन्हें माने तो अपने को पैसे मिलेंगे। सब मूढ़ जीव है। धूल भी नहीं। समझ में आया? विभवादिक की प्राप्ति होगी। पुत्र की प्राप्ति होगी। पुत्रहीन हैं। साठ वर्ष हुए। पुत्र नहीं और पच्चीस-पचास लाख की पूँजी है। यह देव का पुत्र ले जाएगा, यदि अपने पुत्र नहीं होगा तो। होता है न? इसलिए किसी प्रकार लड़का हो। पीर पैगम्बर को मानते हैं, उसे मानते हैं। मूढ़ जीव है। पुण्य बिना कुछ होता होगा?

मुमुक्षु : होता है माने तो।

पूज्य गुरुदेवश्री : मानने से धूल में भी नहीं होता। मूढ़ मानता है। समझ में आया? ऐई! इसे लड़का नहीं कुछ, लो। और पैसे बहुत हैं। अब क्या करना?

मुमुक्षु : वह तो होनेवाला हो, वह होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : करेगा कुछ। इसके हाथ में है कुछ? घर की महिलाओं के हाथ में है। यह तो सौंप दिया, तुम करना। उपाधि कौन देगा? उपाधि नहीं आयेगी इत्यादि-इत्यादि बहुत अर्थ हैं इसमें। कहो, समझ में आया? पैसा है। दो-दो लाख के तीन तो बड़े बँगले हैं। लड़का नहीं। दो व्यक्ति हैं—पति-पत्नी। तथापि उसे कहीं मान्यता ऐसी नहीं। लो, अमुक लड़का... यह तो मान्यता करे कि इससे ... होगा तो लड़का होगा और फिर अपने... चढ़ायेंगे और इसमें कुछ चाँदी का छत्र चढ़ायेंगे। पत्थर की मूर्ति हो न इसकी मानी हुई। खोडियार या इत्यादि। चाँदी का सिर पर चढ़ायेंगे, चाँदी के घोडिया रखेंगे। सब मूढ़ ऐसे जीव। आहाहा! भगवान आत्मा अखण्डानन्द सम्पदा का धनी, वह भिखारी होकर जहाँ-तहाँ माँगे, मूढ़ है, कहते हैं। तुझे तेरा विश्वास नहीं। समझ में आया?

अनेक **विभवादिक की प्राप्ति के लिये...** वैभव आदि। पैसा, पुत्र, इज्जत इत्यादि-इत्यादि। **यथार्थ मत से भ्रष्ट हो जाता है।** ऐसी मान्यता करे तो सत्य दृष्टि नहीं रहती। भ्रष्ट हो जाता है। **धर्मात्मा पुरुषों में कर्म के उदय से कुछ दोष उत्पन्न हुआ देखकर उनकी अवज्ञा करना सो अनूपगूहन दोष है...** धर्मात्मा है, ज्ञानी है। कोई ऐसे कर्म के साधारण के लिये ऐसी कोई कल्पना आदि दोष, शरीर की क्रिया आदि हो गयी, उसे छुपावे नहीं और बाहर प्रसिद्ध करे तो स्वयं धर्म से भ्रष्ट हो जायेगा। समझ में आया? अनूपगूहन। छिपावे नहीं अर्थात् बाहर प्रसिद्ध करे। उसे अपने स्वभाव का भान नहीं है।

समझ में आया? **इसके होने पर धर्म से छूटा जाना होता है।** धर्म से छूट जाए। धर्मात्मा ज्ञानी है, कोई ऐसी प्रकृति की चेष्टा में ऐसा कोई दोष हो परन्तु मूल में दोष है नहीं। ऐसे दोष से जगत में प्रसिद्ध करके धर्म को हीलना करना, वह धर्म से भ्रष्ट होने के लक्षण हैं। समझ में आया?

धर्मात्मा पुरुषों को कर्म के उदय के वश से धर्म से चिगते देखकर... सम्यग्दृष्टि ज्ञानी धर्मात्मा है, कर्म के कारण से किसी निमित्त से भ्रष्ट होने का प्रसंग हो, उसे **स्थिरता न करनी...** स्थिरता न करे। बड़ा दोष है। **अस्थितिकरण दोष है, इसके होने पर ज्ञात होता है कि इसको धर्म से अनुराग नहीं है...** उसे धर्म का प्रेम नहीं। धर्म का प्रेम हो (तो) धर्मी जीव को अस्थिरता हुई हो तो स्थिरता करे। वास्तविक धर्म, हों! समझ में आया? ऐसा उसका भाव स्थितिकरण का होता है। और न हो तो स्वयं धर्म से भ्रष्ट होता है। ऐसा कि उसे धर्म का प्रेम नहीं है।

और **धर्मात्मा पुरुषों से विशेष प्रीति न करना...** लो। अनुराग नहीं। अनुराग ... पुस्तक देना। हिन्दी है न? हिन्दी। गुजराती लो। कहाँ से आये? दमोह। सम्यग्दृष्टि को ऐसे दोष नहीं होते, ऐसा वर्णन करते हैं। समझ में आया? मूल पाठ में है न यह? **'सम्मत्तमला'** आत्मा ज्ञायकस्वरूप है, ऐसी जिसे अन्तर अनुभव होकर प्रतीति हुई है, उसे ऐसे आठ दोष नहीं होते। **धर्मात्मा पुरुषों से विशेष प्रीति न करना...** सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा है, उसके ऊपर प्रीति न करे तो वह समकित से भ्रष्ट हो जाता है। समझ में आया? जिसे आत्मा समझ में आया है, अनुभव में आया है। ऐसे धर्मी, उनके प्रति जिसे प्रेम नहीं तो जानना कि उसे आत्मा के प्रति प्रेम नहीं है।

आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप, पुण्य के विकल्प का भी जिसे प्रेम छूट गया है, शुभभाव का प्रेम भी जिसे छूट गया है और आत्मा अनन्त आनन्द का कन्द प्रभु, निजानन्द की सम्पदा का भण्डार, उसका जिसे प्रेम जगा है, उसे धर्मात्मा के प्रति प्रेम होता है। ऐसे धर्मी को देखकर उसे द्वेष नहीं आता, अनादर नहीं आता। अनादर (आवे) और प्रीति न आवे (तो) समकित नहीं है। समझ में आया? **धर्मात्मा पुरुषों से प्रीति न करना अवात्सल्य दोष है, इसके होने पर सम्यक्त्व का अभाव प्रगट सूचित होता है।**

और, **धर्म का माहात्म्य शक्ति के अनुसार प्रगट न करना...** शक्तिप्रमाण धर्म

का माहात्म्य प्रगट करना। वीतरागदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा, जिन्होंने तीन काल-तीन लोक देखे हैं, उन्होंने आत्मा की जो बात की और धर्म की की, ऐसी बात तीन काल में कहीं है नहीं। वीतराग परमात्मा के अतिरिक्त सर्वज्ञदेव ने कहा हुआ वीतरागी धर्म, पुण्य और पाप के विकल्परहित, ऐसा जो आत्मधर्म, उसकी प्रभावना का भाव समकिती को होता है। प्रभावना का भाव न हो तो उसे धर्म का प्रेम नहीं है। समझ में आया?

इसके होने पर ज्ञात होता है कि इसके धर्म के माहात्म्य की श्रद्धा प्रगट नहीं हुई है। भगवान आत्मा अनन्त आनन्द और शान्ति का सागर प्रभु, ऐसी जिसे अन्तर अनुभव की दृष्टि हुई, ऐसे धर्म का माहात्म्य किये बिना रहता ही नहीं। बाहर प्रसिद्धि में प्ररूपणा में कथन में, अहो! धन्य मार्ग, भाई! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा, ऐसा जो आत्मधर्म वह तीन काल में दूसरा नहीं हो सकता। ऐसा उसकी प्रभावना का भाव होता है। प्रभावना का भाव न हो, अप्रभावना का हो तो वह समकित से च्युत हो जाता है। समकित से भ्रष्ट हो जाता है। समझ में आया?

इस प्रकार ये आठ दोष सम्यक्त्व के मिथ्यात्व के उदय से (उदय के वश होने से) होते हैं,... समकित के आठ दोष इस मिथ्यात्व के कारण से होते हैं। उग्र हो इसलिए। **जहाँ ये तीव्र हो वहाँ तो मिथ्यात्व प्रकृति का उदय बताते हैं...** आठों। नि:शंक में शंका होना। भगवान पूर्णानन्द प्रभु, ज्ञायकभाव अखण्ड आनन्द का कन्द प्रभु, उसमें शंका होना, वह मिथ्यात्व का उदय है। समझ में आया? उसे छोड़कर भगवान आत्मा की अन्तर एकाग्रता की भावना छोड़कर राग की भावना, इच्छा करे, वह समकित में मिथ्यात्व का कारण है। और द्वेष करे। भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड, उसके प्रति ग्लानि (करे कि) ऐसा आत्मा? एक समय में तीन काल-तीन लोक जाने? और ऐसी अनन्त अनन्त पर्यायवाला आत्मा? जिसे अरुचि हो, ऐसी चीज़ के प्रति अरुचि-द्वेष हो, उसे दुगंछा कहते हैं। वह मिथ्यात्व का दोष है। समझ में आया? इस प्रकार आठों मिथ्यात्व प्रकृति के कारण को बतलाते हैं। लो।

जहाँ कुछ मन्द अतिचाररूप हों तो सम्यक्त्व प्रकृति नामक मिथ्यात्व की प्रकृति के उदय से हो, वे अतिचार कहलाते हैं,... अतिचार हो वहाँ। उसे क्षयोपशम समकित रहे। परन्तु यह दोष तो टालने जैसा है। दोष रखने जैसा नहीं हो सकता। कहो।

वहाँ क्षयोपशमिक सम्यक्त्व का सद्भाव होता है, परमार्थ से विचार करें तो अतिचार त्यागने ही योग्य है। अतिचार तो छोड़नेयोग्य है, दोष है, पाप है। और भगवान आत्मा निर्मलानन्द प्रभु की दृष्टि होकर उसमें रमणता करनेयोग्य जीव है। बाकी कहीं राग में या पर में रमण करनेयोग्य है नहीं। ऐसे समकिती को ऐसे खोटे दोष नहीं हो सकते।

इन दोषों के होने पर अन्य भी मल प्रगट होते हैं, वे तीन मूढ़तायें हैं। १. देवमूढ़ता, २. पाखण्डमूढ़ता, ३. लोकमूढ़ता। किसी वर की इच्छा से सरागी देवों की उपासना करना... वर अर्थात् फल। कुछ फल माँगे। पुत्र का, पैसे का, इज्जत का, परलोक का। ऐसे वर की याचना से अर्थात् फल की वांछा से **सरागी देवों की उपासना करना...** रागवाले देव मिथ्यादृष्टि की सेवा करना, वह सब मिथ्यात्व के लक्षण हैं। समझ में आया? देखो न! यह अम्बाजी और शिकोतेर और भवानी और... ऐई! त्रम्बकभाई! तुम्हारे यहाँ बहुत है। जिस-तिस को मानते हैं। भ्रमणा... भ्रमणा... भ्रमणा। नाम धरावे जैन और माने अम्बाजी को, भवानी को, शिकोतेर और अमुक को। पाखण्ड है, पाखण्ड है। उसे मूढ़ता, देव में मूढ़ है। सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा के अतिरिक्त समकिती को कोई दूसरा देव नहीं हो सकता। समझ में आया? श्यामदासजी! आहाहा! व्यन्तर और फन्तर और देव नहीं होता, ऐसा कहते हैं। यह देवमूढ़ता।

उनकी पाषाणादि में स्थापना करके पूजना... यह मेरी देवी है और यह मारी कुलदेवी है और यह हमारे देव हैं, ऐसा करके पूजा के। आशा गहरी है कि इसमें से पैसा आवे, ऐसा हो, पुत्र रहे, नंगे-भूखे न रहें। यह सब मिथ्यात्व के लक्षण हैं, कहते हैं। समझ में आया?

ढोंगी पुरुषों में मूढ़ता-परिग्रह, आरम्भ, हिंसादि सहित पाखण्डी (ढोंगी)... वस्त्र-पात्र रखे, पैसा रखे (अपने को) मुनि माने, वे सब पाखण्डी हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐई! श्यामदासजी! ग्रन्थ देखो। **परिग्रह, आरम्भ, हिंसादि सहित पाखण्डी (ढोंगी)...** वेष धरा हो। कुलिंग। उसका **सत्कार पुरस्कार करना...** उसका मान और आदर करना, वह मिथ्यात्व का दोष है। समकित को मलिन करके नाश करने का दोष है। समझ में आया? सत्कार, पुरस्कार, आदर करना। राजा के बड़े मान्य हैं, बाबाजी हैं, अमुक

है, अमुक है, पीर है, पैगम्बर है, अमुक है—ऐसा करके कुछ आशा से मानना, दुनिया की लज्जा-भय से (मानना)। कहते हैं कि वह भी मिथ्यात्व है।

लोकमूढ़ता–अन्य मतवालों के उपदेश से तथा स्वयं ही... अपने आप **बिना विचारे कुछ प्रवृत्ति करने लग जाए, वह लोक मूढ़ता है, जैसे सूर्य को अर्घ्य देना,...** सूर्य को सवेरे अर्घ्य चढ़ाते हैं न! दाँतुन करके। सूर्य को वन्दन करे, पानी छिड़के। वह तो पत्थर के परमाणु हैं। वहाँ कहाँ देव था? सूर्य नारायण। यह सूर्य नारायण तो यहाँ रहा। यह चैतन्यनारायण भगवान यहाँ अन्दर में विराजता है। उसे छोड़कर ऐसे सूर्य की पूजा करना, वन्दन करना। सवेरे उठे... जय सूर्यनारायण।

मुमुक्षु : दाँतुन करके लगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : दाँतुन करके लगते हैं न। बहुत जीव दाँतुन करके लगते हैं। दाँतुन करके पानी छिड़के। यह मूढ़ के लक्षण हैं, कहते हैं। उसे आत्मा का भान नहीं। तीन लोक का नाथ देव का देव आत्मा विराजता है, ऐसे देव को छोड़कर ऐसे मिथ्या मूढ़ देव को माने, वह तो प्रत्यक्ष मिथ्यात्व के लक्षण हैं। आहाहा! विशेष इत्यादि आयेगा।

स्वयं बिना विचारे कुछ प्रवृत्ति करने लग जाए, वह लोकमूढ़ता है,... ग्रहण में स्नान करना... यह ग्रहण होता है न? ग्रहण। पूर्णिमा का और... उसमें स्नान करो, स्नान करो। परन्तु क्या बिगड़ गया? यह सब भ्रमणायें अज्ञानी की हैं। सब मिथ्यात्व के लक्षण हैं, कहते हैं। **संक्रान्ति में दान करना,...** यह संक्रान्ति है न? सूर्य बदले। दान दो। मकर संक्रान्ति पुण्य पर्व की, ऐसा कहते हैं या नहीं? मूढ़ है। पुण्य पर्व की करो पुण्य परवणो तो यहाँ रहा। अज्ञान टलकर भान हुआ और चक्कर खाकर केवलज्ञान लेगा, वह तो सब यहाँ है। बाहर में कहाँ है वहाँ? समझ में आया?

अग्नि का सत्कार करना... आहार के समय अग्नि रखे न थोड़ी? पहले उसे अनाज डाले। उसे देने के बाद खाये। अग्नि में डाले। थोड़ा खोटारो अग्नि करके उसमें डाले। चूरमा का टुकड़ा, रोटी का टुकड़ा... फिर खाय। यह सब मूढ़ जीव-मिथ्यादृष्टि के सब लक्षण हैं। जिसे आत्मा की श्रद्धा और भान हो, वह ऐसे को माने और पूजे नहीं। **देहली...** देहली पूछा था। ऐई! देहली अर्थात् क्या? देहली अर्थात् उंबरो। सुजानमलजी

को पूछा था। नहीं आता था। यह देहली–देहली को वन्दन करते हैं न! दुकान खोलकर... जय महादेव के भण्डार। लकड़ी को वन्दन करते हैं। आहाहा! मूढ़ जीवों के ऐसे सब (लक्षण हैं)। तीन लोक का नाथ प्रभु पूरा अन्दर चैतन्य प्रभु विराजता है, उसका विश्वास–श्रद्धा छोड़कर ऐसे दरवाजे की चोखट को पूजे। चोखट को पूजे। भगवान इसमें से कुछ दे देंगे। समझ में आया?

घर... घर को पूजे। घर अच्छा हो, उसे पूजे, जिससे घर अच्छा रहे। घर के कुएँ को पूजे। कान्तिलाल ने इसमें से देहली का शब्द निकाल डाला है। अर्थ नहीं आया इसलिए निकाल डाला। देहली का अर्थ ही निकाल डाला, देहली ही निकाल डाला। देहली (अर्थात्) मूल तो देहली है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : घर, कुआँ पूरा डाला है। घर, कुआँ पूरा शब्द डाला है। घर को पूजे, कुएँ को पूजे।

गाय की पूँछ को नमस्कार करना,... गाय की पूंछ को नमस्कार करे। उसमें ३३ करोड़ देव बसते हैं, कहते हैं न कुछ? धूल में भी नहीं। बेचारी को कसाई लोग मार डालते हैं, काट डालते हैं। देव होवे तो यह होगा? वह तो पशु है। ऐसी गाय की पूँछ को पूजना (वह मिथ्यात्व के लक्षण हैं)। **गाय के मूत्र को पीना,...** गाय का मूत्र पीवे। वह गाय तो महा पवित्र है। उसमें ३३ करोड़ देव बसते हैं। धूल में भी नहीं। वह तो माँस और चमड़ी है वहाँ तो। आहाहा!

रत्न, घोड़ा आदि... पूजे। रत्न को पूजे। वह कोडा आता है न? दक्षिण का कोड़ा होता है, उत्तराध्ययन का कोड़ा। पैसे को पूजे परन्तु एक दक्षिण का कोड़ा होता है। शंख... शंख। शंख आता है। मोती ... अपने है न? ...त्रिभुवन। राजकोट। मोरबीवाला। वह रखता है वहाँ और प्रतिदिन पूजता है।

मुमुक्षु : शंख आने के बाद उसे पैसे आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी पैसे आये नहीं। नोट तो पहले न हो। पुण्य का उदय हो तो दिखते हैं परन्तु उसमें आत्मा को क्या है?

मुमुक्षु : शंख आया, उस दिन से हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल शंख आया। शंख... मिट्टी और धूल है। ऐसे के ऐसे मूढ़ जीव। चैतन्य रत्न को छोड़कर ऐसों को पूजे और माने, मूढ़ के लक्षण हैं, कहते हैं। समझ में आया ?

घोड़ा... को पूजे। घोड़ा बड़ा ऊँचा हो, उसे पूजे। अश्वपूजा। क्या कहलाता है ? दशहरा, दशहरा। दशहरे के दिन अश्वपूजा करे। वृक्ष की पूजा करे। खीजड़ा की... खीजड़ा की। हथियार की पूजा करे। यह मूढ़ के वे कहीं गाँव अलग होंगे ? समझ में आया ? **वाहन,...** की पूजा करे। लो। उत्कृष्ट वाहन हो, उसकी पूजा (करे)। जब यह रेल नयी निकली न ? रेल नयी निकली तब 'खस' की एक कुम्हार की थी। कुम्हार की थी प्रायः। रेल नयी निकली तो ऐसे नणियों लेकर, अन्दर ... डाली... जय! हम निकले बराबर फिर। वहाँ कुछ पड़ा हुआ। हमारे जीवराजभाई साथ में थे न। कहे, पूजने आयी लगती है। नणियुं होती है न ? नणियुं। नणियुं समझते हो ? छापरे। छापरे के ऊपर नणिया रखे न। चवेलुं। चवेला में अग्नि डाले और ऐसे पूजती थी। यह रेल नयी निकली। बोटाद से खस। पहले नहीं थी न। अरे! ताबूत को पूजते थे, नारियल डालकर। दशाश्रीमाली बनिये स्थानकवासी (थे)। कलश भर पानी ताबूत में डाल आवे। ठण्डा... ठण्डा करो। ठण्डा।

मुमुक्षु : ऐसा करने के बाद पुत्र हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुत्र हो, धूल भी नहीं। ऐसे के ऐसे। भ्रमणायें। जिसे आत्मा वीतरागदेव कहते हैं, भगवान आत्मा जिसे सर्वज्ञदेव को मानना भी विकल्प है, राग है। वह पुण्यबन्ध का कारण है। आत्मदेव को अन्तर अनुभव करना और अन्तर समकित (होना), वह स्वयं देव है।

मुमुक्षु : ... लड़का न दे और यह लड़का दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिये लड़के। आहाहा! कहो, समझ में आया ?

पृथ्वी... को पूजे। मिट्टी का पिण्ड करे न ? शीतला। शीतला माँ, नहीं ? मिट्टी का बनावे। जय... माँ! लड़के को आँखें अच्छी हो, जीवे। ऐसी मूर्ख महिलायें बहुत होती हैं।

लड़के को लेकर वहाँ शीतला के पास जाये। ऐसे-ऐसे घुमावें जरा। जय माता! जय माताजी, जीवित रखना। परन्तु उसे अभी मार डालेगा। तेरे जाने के बाद दस बजे सो रहा होगा तो टुकड़े कर डालेंगे। आहाहा! जगत की भ्रमणा।

तीन लोक का नाथ चैतन्य भगवान, भगवान होने के योग्य, वह भिखारी होकर घूमता है। आहाहा! कहते हैं कि तुझे लज्जा नहीं आती ? ऐसे लक्षण में रहता है ? प्रभु! तेरी सम्पत्ति भगवान के पास नहीं। तेरी तो तेरी पास यहाँ अन्दर है। चित्चमत्कार चिदानन्द भगवान, उसकी अन्तर्दृष्टि और अनुभव कर, वह तो वस्तु तेरी, तेरी पास है। उसे छोड़कर ऐसी भ्रमणा में (रहता है)। कहते हैं कि वे मूढ़ जीव हैं।

वृक्ष... को पूजे। यह पीपल को पूजते हैं न? पीपल। पीपल में पानी डाले। **शस्त्र,...** को पूजे। हथियार। हथियार... हथियार। **पर्वत,...** को पूजे। लो। पर्वत को पूजे। **सेवा-पूजा करना, नदी-समुद्र आदि को तीर्थ मानकर...** समुद्र और नदी, वह तीर्थ है, ऐसा मानकर उसका **स्नान करना,...** वह मूढ़ता है। करते हैं न ? यह नर्मदा और तीन इकट्ठी होती हैं वहाँ। क्या कहलाता है ? त्रिवेणी। तीन नदियाँ इकट्ठी हों वहाँ स्नान करे। धूल में भी नहीं। वहाँ बेचारे पानी के जीव मरते हैं। एकेन्द्रिय जीव हैं पानी के। स्नान करने जाये। पानी का पाप है। ऐसी मिथ्यात्व भ्रमणा। ऐसे दोष समकिती को नहीं होते, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **तीर्थ मानकर उसमें स्नान करना,...**

पर्वत से गिरना... गिरते हैं न? हमारे राजा सहित... ऊपर से गिरावे। गिरनार में है न? भैरव। गिरता छोड़े। स्वर्ग मिलेगा या देव, राजा होऊँगा। अज्ञानी की भ्रमणा है, मूढ़ता है। समझ में आया? **अग्नि में प्रवेश करना...** कितने ही अग्नि में जलते हैं न? अग्नि में प्रवेश करो, अपना कल्याण हो जाएगा। भविष्य में कुछ मिलेगा। यह सब दोष है। यह समकिती को नहीं होते।

छह अनायतन है... छह अनायतन। **कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र और इनके भक्त...** यह छह। **इनको धर्म के स्थान जानकर इनकी मन से प्रशंसा करना,...** ये धर्म के स्थान हैं, ऐसा मानकर प्रशंसा करना, वह मिथ्यात्व के लक्षण हैं। ऐसे दोष समकिती को नहीं होते। कुदेव, कुगुरु और कुशास्त्र। देखो! वह शास्त्र नहीं। अज्ञानी ने कल्पित किये हुए शास्त्र हैं। ऐसी की पूजा करना, उसे माननेवाले के भक्त की भी प्रशंसा करना, वह सब

मिथ्यात्व के लक्षण हैं। **मन से प्रशंसा करना, वचन से सराहना करना,...** अनुमोदन देना। अच्छा करते हो, तुम ठीक करते हो, ठीक करते हो। सब मिथ्यात्व के लक्षण हैं। **काय से वंदना करना,...** कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को और उनके माननेवाले को काय से वन्दन करना। **ये धर्म के स्थान नहीं हैं,...** आयतन—धर्म के स्थान नहीं। **इसलिए इनको अनायतन कहते हैं।** अनायतन—अ-स्थान हैं। वे धर्म के अस्थान—अठिकाने हैं। उनकी प्रशंसा मन, वचन, काया से करना, वह सब मिथ्यात्व के दोष हैं।

जाति... जाति का अभिमान। आहाहा! आठ प्रकार के मद है न? जाति का अभिमान किसका? जाति कहाँ आत्मा की है? आत्मा तो आनन्दकन्द स्वरूप है, वह उसकी जाति है। माता के पक्ष की जाति ऊँची हो, उसका अभिमान करना, वह परद्रव्य की क्रिया का अभिमान है। आत्मा की श्रद्धा का भान नहीं। हमारी माता ऐसी रानी थी, बड़ी खानदानी थी। दिवान की बहिन थी। उसके हम पुत्र हैं। पुत्र था कब? सुन न। ऐई! कर्म के निमित्त से वह तो माता है। वह तो सब कर्म के फल हैं। उसके बदले 'मेरी माता ऊँची' इसका गर्व करना, वह कर्म को अधिक मानकर आत्मा को छोड़ देना है। आहाहा! यह जाति।

लाभ... लाभ मिले। पाँच-पच्चीस लड़के हों, पैसे पाँच-पच्चीस करोड़ मिले। सुन्दर रूप आदि वह तो रूप में आयेगा। उसका लाभ मिले और उसका गर्व (करे)। देखा, हमें यह लेना आता है। व्यापार करना हमें आता है। तुम मूढ़ जीव क्या धर्म... धर्म... धर्म करते हो? पचास-सौ रुपये भी कमा नहीं सकते। यहाँ तो लाख-लाख, दो-दो लाख एक दिन के कमाते हैं। ऐसे अभिमान कर्म के कमाने के, वे मिथ्यादृष्टि हैं। कहो, समझ में आया?

कुल... कुल। पिता का कुल। हमारे पिता बड़े राजा थे, ऐसे थे। उसका अभिमान। कौन परन्तु पिता तुझे नहीं होते न। आत्मा को शरीर नहीं होता। अरे! आत्मा को राग नहीं होता। राग तो आस्रवतत्त्व है। आत्मा को राग नहीं, वहाँ फिर पिता कहाँ से आये तुझे, कहते हैं। आहाहा! हमारे पिता ऐसे थे। यह साधारण हो तो इसके पिता का नाम ले। हमारे पिता ऐसे थे, हमारे पिता के पिता। उनके हम (पुत्र हैं)। गर्भश्रीमन्त हैं, ऐसा कहते हैं न? हम तो माता के गर्भ में आये, तब से हम श्रीमन्त हैं। गर्भ से। अरे! यह तो रंक भिखारी है। गर्भश्रीमन्त कहाँ से आया? भगवान आत्मा की लक्ष्मी को छोड़कर ऐसे पिता के कुल को अपना मानकर गर्व करना, वह मिथ्यात्व का लक्षण है। समझ में आया? स्पष्टीकरण करते हैं, हों!

जाति मातापक्ष है, लाभ धनादिक कर्म के उदय के आश्रय है,... लो, स्पष्टीकरण करते हैं। देखो! लाभ, धनादि तो कर्म के उदय के कारण से हैं। उसके बदले हम लाये, इसलिए पैसे इकट्ठे किये, ऐसा मानना (वह) विपरीत मान्यता है। समझ में आया? **कुल पितापक्ष है,...** पिता ही पर है। उसमें आत्मा को क्या? **रूप कर्मोदयाश्रित है,...** शरीर का सुन्दर रूप, वह कर्म के आश्रित है। उसमें आत्मा को क्या? जड़ के रूप का अभिमान करना, वह मिथ्यात्व के लक्षण हैं। आहाहा! बातें ऐसी है, बापू! चैतन्यस्वभाव भगवान आत्मा के सुन्दर अरूपी निर्विकारीरूप के अतिरिक्त जगत के शरीर के रूप जड़ मिट्टी के, कीड़े पड़े... क्या कहलाता है? शीतला निकले। उस माटी का गर्व करना, वह जड़ का गर्व। इसमेंचैतन्य का अभिमान छूट जाता है। चैतन्य की श्रद्धा नहीं रहती, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

तप अपने स्वरूप को साधने का साधन है,... तप तो साधना है। उसके बदले उसका अभिमान करे तो भी वह मिथ्यादृष्टि है। **बल कर्मोदयाश्रित है,...** इस शरीर का। शरीर का बल होता है न? मैं कितना बलवन्त हूँ! वह सब शरीर के बल का अभिमान, वह तो जड़ का अभिमान है। समझ में आया? **विद्या कर्म के क्षयोपशमाश्रित है,...** यह पठन-बठन का ख्याल आना, वकालात का, डॉक्टरी का, जगत के व्यापार-धन्धे का... समझ में आया? ... बहुत मस्तिष्क काम करे। इसका ऐसा हो और इसका ऐसा हो। यह हमें आता है, तुम्हें नहीं आता।

मुमुक्षु : क्षयोपशम है, इसलिए आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षयोपशम है, इसलिए आता है, इसका अभिमान क्या? कहते हैं। यहाँ तो अभिमान की बात है न। वह क्षयोपशम आश्रित है। वह कहीं तेरा स्वभाव नहीं है, ऐसा कहते हैं। तेरा स्वभाव नहीं है। उसे तू क्षयोपशम में ज्ञान में अभिमान करे कि हमें ऐसा आया। अभी तो तुम्हें बोलना भी कहाँ आता है। आहाहा! बोले कौन? भगवान! वह तो जड़ भाषा है। आत्मा तो मौन है, चैतन्यमूर्ति है। बोले अर्थात् बोलना आया, वह बड़ा, ऐसा जो मानता है, उसे चैतन्य की श्रद्धा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

ऐश्वर्य कर्मोदयाश्रित है,... कहीं महत्ता मिले, लो न। दीवान, राजा। पाँच-दस हजार की वेतन की बड़ी पदवी। क्या कहलाता है वह? बड़ा ऑफिसर। ऑफिसर हो बड़ा

लाख-दो लाख की आमदनीवाला। वह सब पूर्व के कर्म के उदय के कारण हैं। कर्म के फल को अपना मानना, वह जड़ को अपना मानने जैसा है। आहाहा! भारी कठिन काम। **इनका गर्व क्या?** इनका गर्व क्या? कण्ठ, वाणी, मुँह, शरीर वे सब जड़ हैं। उनका गर्व करना कि यह हमारे हैं और हमें आता है। तुमको कुछ नहीं आता। वह किसका गर्व करता है? भाई! यह सब तो बिखर जायेगा। बाहर की विद्या का उघाड़ मिथ्यादृष्टि को हो, वह अस्त हो जायेगा। निगोद में जायेगा। समझ में आया? वहाँ तेरी विद्या भी रहेगी नहीं।

भगवान आत्मा अन्तर ज्ञानस्वरूप प्रभु, निर्विकल्प निजानन्द का नाथ स्वयं, ऐसा आत्मा, उसकी अन्तर्दृष्टि करके उसे अनुभव करना, इसका नाम धर्म और समकित है। इसके अतिरिक्त इस सब लप को निकालकर... । समझ में आया?

परद्रव्य के निमित्त से होनेवाले का गर्व करना सम्यक्त्व का अभाव बताता है... आत्मा के अतिरिक्त परचीज़ का कहीं अधिकपना मानना, हमें पैसा रखना आता है, ब्याज उपजाना आता है... ऐ... सनतभाई! हमारे पास पैसे पाँच-पच्चीस लाख हैं परन्तु सब व्यवस्था कहाँ करना, वह हमें आता है। डेढ़-डेढ़ प्रतिशत का ब्याज उपजाना, अमुक करना, वह सब हमें आता है। ऐई! किराये पर किसे देना, किसे ऐसा करना... यह सब जानकारी हमें है। इसलिए ठीक से किराया (आता है)। भगवानजीभाई!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है तो उसके नाम के हैं न। कहो, समझ में आया? चौसठ लाख का तो इसको वर्ष का किराया आता है। मकान का। डाले नीचे। मेरा है... आहाहा! वह जड़ मेरा है और मुझे है, ऐसा माननेवाले आत्मा की श्रद्धा से भ्रष्ट हैं। आहाहा! समझ में आया?

परद्रव्य के निमित्त से होनेवाले का गर्व करना सम्यक्त्व का अभाव बताता है... यह तो सम्यग्दर्शन का अभाव बताता है, भाई! आहाहा! समझ में आया? हमें अपवास करना आता है। हमारा काम कितना करते हैं हम। परन्तु वह तो शरीर की क्रिया है। उसमें अभिमान किसका तेरा? समझ में आया? **मलिनता करता है।** या मिथ्यात्व करता है और या अतिचार आदि हो तो दोष करता है। ऐसे दो बातें ली हैं। दो डाले न।

इस प्रकार ये पच्चीस सम्यक्त्व के मल दोष हैं,... लो। यह समकित के पच्चीस

दोष हैं। **इनका त्याग करने पर सम्यक्त्व शुद्ध होता है,...** उन्हें छोड़े तो आत्मा की श्रद्धा और समकित शुद्ध हो। उन्हें रखे तो समकित की शुद्धता होती नहीं। **वही सम्यक्त्वचरण चारित्र का अंग है।** लो। इसका नाम समकितचरण चारित्र। समकितचरण का यह चारित्र है। संयमचरण चारित्र बाद में होगा। समकितचरण चारित्र प्रगट होने के पश्चात् संयमचारित्र पाँचवें गुणस्थान का, छठवें का मुनि का बाद में होगा। पहले यह समकितचरण चारित्र कहा। चारित्र के दो भेद। एक समकितचरण चारित्र, एक संयमचरण चारित्र। यह समकितचरण चारित्र की व्याख्या हुई।

मुमुक्षु : संयमचरण कहाँ आवे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पहला न हो तो कहाँ आवे ? चौथा पहले हो या छठवाँ पहले होगा ? पाँचवाँ, छठवाँ पहले होगा ? कहेंगे आगे।

यहाँ तो इस गाथा में समकितचरण चारित्र की शुरुआत की है, पाँचवीं गाथा में से। **'जिणणाणदिट्ठिसुद्धं पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं'।** दूसरा, संयमचरण वह पाँचवीं गाथा में। उसका इस छठी गाथा में स्पष्टीकरण किया। समझ में आया ?

चारित्र के दो भेद। एक समकितचरण चारित्र और एक संयमचरण चारित्र। समकितचरण चारित्र चौथे गुणस्थान में होता है। चौथे गुणस्थान में इतने दोष का अभाव होता है।

मुमुक्षु : संयमचरण होवे उसे यह होता ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : संयमचरण होवे, उसे यह होता ही है। इसमें क्या है ? सच्चा संयमचरण या खोटा संयमचरण ? उसे अन्तरस्वरूप की रमणता, चारित्र की रमणता जगी है, उसे यह समकितचरण चारित्र ऐकड़ा तो पहले होता ही है। बाहर से, आत्मा के समकित बिना व्रत और नियम और क्रिया लेते हैं, वह कहीं संयम नहीं है। वह तो सब मिथ्यात्व है।

इनका त्याग करने पर सम्यक्त्व शुद्ध होता है, वही सम्यक्त्वाचरण चारित्र... भाषा है, देखो ! समकित का आचार—आचरण, उसे भी चारित्र चौथे गुणस्थान में कहा जाता है। समकित का आचरण।

गाथा-७

आगे शंकादि दोष दूर होने पर सम्यक्त्व के आठ अंग प्रगट होते हैं, उनको कहते हैं–

णिस्संकिय णिक्कंखिय णिव्विदिगिंछा अमूढदिट्ठी य।
उवगूहण ठिदिकरणं वच्छल्ल पहावणा य ते अट्ठ।।७।।

निःशंकितं निःकांक्षितं निर्विचिकित्सा अमूढदृष्टी च।
उपगूहनं स्थितीकरणं वात्सल्यं प्रभावना च ते अष्टौ।।७।।

निश्शंकता निष्कांक्ष निर्विचिकित्सता अविमूढ़ता।
उपगूह स्थितिकरण वत्सलता प्रभावना अठ कहा।।७।।

अर्थ – निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना ये आठ अंग हैं।

भावार्थ – ये आठ अंग पहिले कहे हुए शंकादि दोषों के अभाव से प्रगट होते हैं, इनके उदाहरण पुराणों में हैं, उनकी कथा से जानना। निःशंकित अंग का अंजन चोर का उदाहरण है, जिसने जिनवचन में शंका न की, निर्भय हो छींके की लड़ काटकर के मन्त्र सिद्ध किया।

निःकांक्षित का सीता, अनन्तमती, सुतारा आदि का उदाहरण है, जिन्होंने भोगों के लिए धर्म को नहीं छोड़ा।

निर्विचिकित्सा का उद्दायन राजा का उदाहरण है, जिसने मुनि का शरीर अपवित्र देखकर भी ग्लानि नहीं की।

अमूढदृष्टि का रेवतीरानी का उदाहरण है, जिसको विद्याधर ने अनेक महिमा दिखाई तो भी श्रद्धान से शिथिल नहीं हुई।

उपगूहन का जिनेन्द्रभक्त सेठ का उदाहरण है, जिसने चोर, जिसने ब्रह्मचारी का भेष बनाकर छत्र की चोरी की, उसको ब्रह्मचर्यपद की निन्दा होती जानकर उसके दोष को छिपाया।

स्थितिकरण का वारिषेण का उदाहरण है, जिसने पुष्पदन्त ब्राह्मण को मुनिपद से शिथिल हुआ जानकर दृढ़ किया।

वात्सल्य का विष्णुकुमार का उदाहरण है, जिनने अकम्पन आदि मुनियों का उपसर्ग निवारण किया।

प्रभावना में वज्रकुमार मुनि का उदाहरण है, जिसने विद्याधर से सहायता पाकर धर्म की प्रभावना की। ऐसे आठ अंग प्रगट होने पर सम्यक्त्वाचरण चारित्र होता है, जैसे शरीर में हाथ-पैर होते हैं, वैसे ही ये सम्यक्त्व के अंग हैं, ये न हों तो विकलांग होता है।।७।।

गाथा-७ पर प्रवचन

आगे शंकादि दोष दूर होने पर सम्यक्त्व के आठ अंग प्रगट होते हैं,... लो। उन दोषों का नाश किया न ? तब अब शुद्ध हुआ।

णिस्संकिय णिक्कंखिय णिव्विदिगिंछा अमूढदिट्ठी य।
उवगूहण ठिदिकरणं वच्छल्ल पहावणा य ते अट्ठ।।७।।

यह आठ गुण के नाम हैं। समकित की आठ किरणें हैं। समकित के आठ आचार हैं। यह तो आता है। समकित के आठ आचार नहीं आते गाथा में ? यह समकित के आठ आचार हैं। चौथे गुणस्थान में। यह आठ नाम पहले लिये।

अर्थ - **निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना ये आठ अंग हैं।**

भावार्थ - **ये आठ अंग पहिले कहे हुए शंकादि दोषों के अभाव से प्रगट होते हैं, इनके उदाहरण पुराणों में हैं,...** इनका उदाहरण पुराण में है। **उनकी कथा से जानना। निःशंकित अंग का अंजन चोर का उदाहरण है,...** अंजन चोर। अंजन चोर था। वह उसका छींका था, छींका। निःशंकरूप से काट दिया।

मुमुक्षु : नमोकार गिनकर।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु नमोकार गिनकर। निःशंकता थी कि कटेगा और मैं जाऊँगा तीर्थ में। समझ में आया ? यह निःशंकता व्यवहार समकित का एक अंश है।

निश्चय का व्यवहार में आरोप किया और व्यवहार का एक अंश में आरोप करके जहाँ नि:शंक अंग का वर्णन किया है। वह अंजन चोर समकिती नहीं था। व्यवहार समकिती थी नहीं था। परन्तु एक अंग उसका ऐसा था। णमो अरिहंताणं। छींका छेद दिया। ... होगा या नहीं ? गिर जाऊँगा ? जाओ, उड़कर तीर्थ में। इतनी नि:शंकता। वह तो निश्चय समकित बिना, हों ! यह तो उसका दृष्टान्त दिया। समझ में आया ? निश्चय समकित की नि:शंकता तो अलौकिक ! यह तो निश्चय समकित का व्यवहार में आरोप किया और व्यवहार का आरोप उसके एक भाग में किया। ऐसा करके अंजन चोर का दृष्टान्त दिया। आहाहा !

अंजन चोर का उदाहरण है, जिसने जिनवचन में शंका न की, निर्भय हो छींके की लड़ काटकर के मन्त्र सिद्ध किया। मन्त्र सिद्ध किया। णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं... नाटक में आया है, नहीं ? मुम्बई। मुम्बई में आया था न ? राजकोट ? भावनगर ? एक बालक को चढ़ाया... नहीं ? अन्तरिक्ष में था, नहीं ? हाँ, अन्तरिक्ष में। एक बालक को... और मारना है उसे। क्या कहलाता है वह ? बलिदान। बलिदान करना था। उसके माँ-पिता ने बेच दिया। फिर उसने तलवार लेकर खड़ा। णमो अरिहंताणं। तलवार... अन्तरिक्ष में आता था नाटक। अन्तरिक्ष गये थे न हम ? वहाँ ? भारी दृष्टान्त। उस समय लड़का... णमो अरिहंताण ऐसा करके... दिखाव करता था न वह तो। ऐसा नि:शंकरूप से जहाँ हो, ऐसा पुण्य का उदय होवे तो ऐसा होता है।

कहते हैं कि ऐसी नि:शंकता धर्मी को अपने स्वभाव में दुनिया डोल जाए तो भी उसकी शंका उसे नहीं पड़ती। भगवान आत्मा अखण्ड ज्ञायकभाव का चैतन्यकन्द है। अनन्त केवलज्ञान जिसने पेट में रखे हैं, उसके ज्ञान के गर्भ में रखे हैं। ऐसा जो भगवान आत्मा शुद्ध पूर्ण का अनुभव है, उसकी दृष्टि हुई है, उसे ऐसी शंका नहीं हो सकती। वह नि:शंक संसार को छेदता है। जैसे वह छींका छेद दिया। राग को नि:शंकरूप से स्वभाव के आश्रय से राग को—भव के भाव को छेद डालता है अथवा छिद जाता है। समकित का भव भाव छिद जाता है। क्योंकि आत्मा भव, भावरहित देखा, जाना है; इसलिए उसे नि:शंकता में रहने से रागभाव में उसे अपनापन मानता नहीं और छूट जाता है। ऐसा नि:शंक धर्म समकिती को होता है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन-३८, गाथा-७ से ९, शुक्रवार, आषाढ़ शुक्ल १३, दिनांक १७-०७-१९७०

सातवीं गाथा। चारित्रपाहुड़। समकित के आठ आचार—गुण। आठ आचार कहो (या) गुण कहो। पहले आठ दोष आये थे। अब यह गुण कहते हैं।

सम्यग्दर्शन निश्चय से तो आत्मा का स्वभाव शुद्ध चैतन्य अखण्ड अभेद है, उसकी अनुभव दृष्टि होना, इसका नाम निश्चयसम्यग्दर्शन है। उसमें इसकी नि:शंकता। जैसा ज्ञायकभाव पूर्ण शुद्ध है, ऐसे स्वभाव की नि:शंकता, यह निश्चयसम्यग्दर्शन का निश्चय आचार है। व्यवहार आचार यह—अंजन चोर का दृष्टान्त। जिसे जिनवचन में शंका नहीं है। वह व्यवहार। वीतराग वाणी परमात्मा ने कही, उसमें शंका नहीं।

छींके की लड़ काटकर के मन्त्र सिद्ध किया। मन्त्र था। सेठ था, वह स्वयं मन्त्र साधकर भगवान की भक्ति करने बाहर जाता था। इसने वह मन्त्र साधकर वहाँ लब्धि से गया। ऐसी एक पुण्य की प्रकृति का उदय उस प्रकार से (होता है)। बात तो यहाँ नि:शंकता सिद्ध करनी है। निश्चय में नि:शंकता तो अखण्ड ज्ञायकभाव पूर्ण स्वभाव, उसका नि:शंकपना। व्यवहार में वीतराग की वाणी में शंका न हो। वह समकित का पहला आचार।

दूसरा, नि:कांक्षिता। निश्चय में नि:कांक्षिता आत्मा के आनन्द के अतिरिक्त राग की, पुण्य की भी इच्छा नहीं। अन्तर अनुभव की भावना के अतिरिक्त राग के भोग की, राग के अनुभव की भी कांक्षा नहीं, वह सम्यग्दर्शन का दूसरा नि:कांक्ष आचार है। व्यवहार में **सीता, अनन्तमती, सुतारा आदि का उदाहरण है,...** सीता की अग्नि परीक्षा हुई। रामचन्द्रजी ने कहा कि चलो, राज में। पटरानी बनायेंगे। (सीताजी कहती हैं), बस। संसार था, ऐसा ज्ञात हो गया है। जाना था परन्तु अभी उनकी वैराग्यदशा हो गयी। भोग की इच्छा नहीं थी। स्वयं बलदेव थे। तथापि इच्छा नहीं की। आर्यिका हो गयी। नि:कांक्ष, जिसे भोग की इच्छा नहीं होती। आत्मा के आनन्द की भावना के अतिरिक्त (दूसरी कोई) इच्छा नहीं होती। ऐसा दूसरा नि:कांक्ष गुण समकिती का होता है। अनन्तमती की बात है। अनन्तमती ने भी बालब्रह्मचारी रहकर विषय की वासना छोड़ी। उसके माता-पिता...

आता है, कथा में लम्बी बात आती है, तो भी उसने विवाह नहीं किया और स्वयं ब्रह्मचर्य पालन किया। इच्छा नहीं की। वह व्यवहार निःकांक्ष है। सुतारा कथा में (आता है)।

जिन्होंने भोगों के लिए धर्म को नहीं छोड़ा। भोग के लिये जिन्होंने आत्मा का अनुभव नहीं छोड़ा। आत्मा आनन्दस्वरूप का जो अनुभव सम्यग्दर्शन होने पर हुआ है, सम्यग्दर्शन होने पर आनन्द का अनुभव जो हुआ है, उस अनुभव में पर की कोई भी कांक्षा नहीं रही। उसका नाम निःकांक्ष आचार है।

निर्विचिकित्सा का उद्दायन राजा का उदाहरण है,... एक कपटी मुनि आया और बहुत उल्टी आदि करे, रोग दुर्गन्ध हो। राजा ने उसकी ग्लानि नहीं की। ऐसा व्यवहार निर्विचिकित्सा समकित का तीसरा आचार है। निश्चय आचार—अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसकी अरुचि नहीं होना। भगवान आत्मा पूर्ण स्वरूप वीतरागमूर्ति, इतना बड़ा आत्मा और ऐसा सामर्थ्यवाला! उसमें उसे अरुचि नहीं होती, ग्लानि नहीं होती। इसका नाम निर्विचिकित्सा विचिकित्सा का त्याग है। निर्विचिकित्सा गुण होता है। उद्दायन राजा।

अमूढदृष्टि का रेवतीरानी का... निश्चय से तो अमूढ़दृष्टि अपने स्वरूप में किसी भी प्रकार से अन्यमति के अनेक प्रकार से ठाठ-माठ देखे, इससे उसमें उलझन में नहीं आवे कि इसमें भी कुछ धर्म होगा। धर्म तो सर्वज्ञ वीतराग ने आत्मा का स्वभाव शुद्ध चैतन्यस्वरूप का अनुभव (कहा), उस धर्म के अतिरिक्त दूसरा कोई धर्म है नहीं। ऐसी उसकी अमूढ़दृष्टि चौथे आचार में होती है। व्यवहार में रेवती का दृष्टान्त है। रेवती महान समकिती थीं। उसे विद्याधर ने आकर बहुत रूप (बतलाये उसमें) तीर्थंकर का बताया। पच्चीसवें तीर्थंकर पधारे हों। विष्णु का रूप, वासुदेव का बताया। रुद्र का-शंकर का बताया, अन्त में तीर्थंकर का रूप बताया। लाखों लोग जाये, चलो, वहाँ। पच्चीसवें तीर्थंकर होते नहीं। बारह वासुदेव के अतिरिक्त तेरहवें नारायण होते नहीं। नौ वासुदेव के अतिरिक्त। समझ में आया? रुद्र भी जो हों, इतने उससे अधिक (होते नहीं)। सब रुद्र हो गये। नया रुद्र ऐसा कोई होता नहीं। शंका हुई नहीं। ऐसी रेवतीरानी अमूढ़दृष्टि—वह मूढ़ता में नहीं आयी। ऐसे जगत के मिथ्यादृष्टियों के ठाठमाठ आदर, सत्कार, बहुमान देखकर धर्मी उलझन में नहीं आता। यह तो प्रकृति का फल है। धर्म तो अन्तर आत्मा का स्वभाव

है। वीतरागमूर्ति वह धर्म। उसकी अन्दर में बाहर के पुण्य हो और सत्कार-बत्कार न भी हो। उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। समझ में आया?

पाँचवाँ **उपगूहन का जिनेन्द्रभक्त सेठ का उदाहरण है,...** जिनेन्द्रभक्त थे। उन्हें एक चोर ब्रह्मचर्य का वेश करके, प्रतिमा का एक महा उत्कृष्ट रत्न था, उसे चोर लिया। और रत्न लेकर भागता था। यह ब्रह्मचारी है। जैनदर्शन की निन्दा हो, इसलिए इसे प्रसिद्ध करना नहीं और गोपन किया। उसके दोष को ढँका। **जिसने ब्रह्मचारी का भेष बनाकर छत्र की चोरी की, उसको ब्रह्मचर्यपद की निन्दा होती जानकर उसके दोष को छिपाया।** यह सब व्यवहार डाले हैं, हों! अपने आत्मा को अन्तर में छिपाना, दोष न होने देना। अन्तर के आनन्द में उसे गोपन करना। वास्तव में तो यह बात है। समझ में आया?

स्थितिकरण का वारिषेण का उदाहरण है,... श्रेणिक राजा के पुत्र वारिषेण थे। उनके साथ एक मुनि हुए। मुनि होने के पश्चात् उसे स्त्री की वांछा रह गयी। उसे ठिकाने किया। स्थितिकरण (किया)। उन मुनि को स्थिर किया। यह देखो! राजपाट ये सब मुझे है, तुझे चाहिए? नहीं। फिर वैराग्य कराकर स्थिर किया। यह स्थितिकरण।

वात्सल्य का विष्णुकुमार का उदाहरण है,... विष्णुकुमार ने **अकम्पन आदि मुनियों का उपसर्ग निवारण किया।** प्रेम से। यह शुभ विकल्प है। अन्तर का प्रेम—वात्सल्य तो अन्तर के स्वरूप में अन्तर गुण में प्रेम। जिसका प्रेम राग भी ले जाए नहीं। भगवान की भक्ति का राग भी प्रेम न ले जाए। ऐसा अपने आत्मा के स्वभाव का शुद्ध चिदानन्द का प्रेम होता है। यह निश्चय वात्सल्य होता है। व्यवहार वात्सल्य मुनियों आदि का प्रेमपना होता है। इसका नाम व्यवहार वात्सल्य है।

प्रभावना में वज्रकुमार मुनि का उदाहरण है, जिसने विद्याधर से सहायता पाकर धर्म की प्रभावना की। धर्म की प्रभावना। बड़ी कथायें आती हैं। **ऐसे आठ अंग प्रगट होने पर सम्यक्त्वाचरण चारित्र होता है,...** ऐसे आठ गुण की पर्याय प्रगट हो, तब सम्यक्त्वचरणचारित्र वहाँ सम्भव है। उसे समकितचरणचारित्र कहते हैं। चारित्र नहीं है, अभी संयमचारित्र नहीं है। चौथे गुणस्थान में धर्मी होने पर आत्मा का अनुभव होकर सम्यग्दर्शन होने से उसे ऐसे आठ गुण की दशा होती है। उसे सम्यक्त्वचरणचारित्र कहा जाता है। समकित का चरणचारित्र। समझ में आया? **जैसे शरीर में हाथ-पैर होते हैं,**

वैसे ही ये सम्यक्त्व के अंग हैं,... यह सम्यग्दर्शन के अंग किरणें हैं। **ये न हों तो विकलांग होता है।** अंग विकलांग हो। अंग का विकल अंग अर्थात् अंग कम दिखायी दे। ऐसा नहीं। समकिती को आठों अंग निर्मल होते हैं।

गाथा-८

आगे कहते हैं कि इस प्रकार पहिला सम्यक्त्वाचरण चारित्र होता है –

तं चेव गुणविसुद्धं जिणसम्मत्तं सुमुक्खठाणाए।
जं चरइ णाणजुत्तं पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं।।८।।

तच्चैव गुणविशुद्धं जिनसम्यक्त्वं सुमोक्षस्थानाय।
तत् चरति ज्ञानयुक्तं प्रथमं सम्यक्त्वचरणचारित्रम्।।८।।

इन अष्ट गुण सुविशुद्ध जिन–सम्यक्त्व मोक्ष हितार्थ है।
वह ज्ञानयुत आचरण सम्यक्त्वाचरण चारित्र है।।८।।

अर्थ **– वह जिनसम्यक्त्व अर्थात् अरहंत जिनदेव की श्रद्धा निःशंकित आदि गुणों से विशुद्ध हो उसका यथार्थ ज्ञान के साथ आचरण करे वह प्रथम सम्यक्त्वचरण चारित्र है, वह मोक्ष स्थान के लिए होता है।**

भावार्थ **– सर्वज्ञभाषित तत्त्वार्थ की श्रद्धा निःशंकित आदि गुण सहित, पच्चीस मल दोष रहित, ज्ञानवान आचरण करे उसको सम्यक्त्वाचरण चारित्र कहते हैं। वह मोक्ष की प्राप्ति के लिए होता है, क्योंकि मोक्षमार्ग में पहिले सम्यग्दर्शन कहा है, इसलिए मोक्षमार्ग में प्रधान यह ही है।।८।।**

गाथा-८ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि इस प्रकार पहिला सम्यक्त्वाचरण चारित्र होता है – प्रथम में प्रथम धर्मी को सम्यक्चरणचारित्र होता है। इस सम्यक्चरणचारित्र के बिना

संयम और मुनिपने के, (श्रावक के) बारह व्रत का चारित्र उसे नहीं हो सकता। पहला मूल नहीं और फिर पत्ते ऊपर के कहाँ से आवे? ऐसा कहते हैं। आहाहा! सम्यक्चरणचारित्र पहले होता है।

तं चेव गुणविसुद्धं जिणसम्मत्तं सुमुक्खठाणाए।
जं चरइ णाणजुत्तं पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं।।८।।

अर्थ – वह जिनसम्यक्त्व अर्थात् अरहन्त जिनदेव की श्रद्धा... अरिहन्तदेव की श्रद्धा का अर्थ—सर्वज्ञ परमात्मा ने कहे हुए तत्त्वों में शंका नहीं। अपने स्वरूप का स्वभाव जो भाव है, उसमें भी शंका नहीं। ओहोहो! पूर्ण स्वरूप भगवान आत्मा। परमात्मा पूर्ण हुए, उनकी श्रद्धा का अर्थ कि उस पूर्ण पर्याय को प्राप्त, ऐसे-ऐसे पूर्ण गुण और पूर्ण पर्याय को प्राप्त यह भगवान आत्मा है। ऐसे आत्मा के अन्दर जिनदेव की श्रद्धा। यह जिनदेव अर्थात् वीतराग ने कहे हुए ऐसे पदार्थ की श्रद्धा। निश्चय से तो जिनदेव आत्मा है। आहाहा! जिसका स्वरूप वीतरागमूर्ति, त्रिकाल वीतरागस्वभाव, ऐसा जो जिनदेव, अपना देव, उसमें जरा भी शंका नहीं होना चाहिए। समझ में आया? इससे वह निर्मल होता है। ऐसे निःशंकित गुण से निर्मल होता है। समझ में आया?

जिनदेव सर्वज्ञ परमात्मा, वह तो एक समय की पर्यायवाले देव—भगवान है। जिनदेव है, वह तो एक समय की पर्यायवाले देव हैं। ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड जो आत्मा, वह जिनदेव है। निश्चय से जिनदेव तो अपना आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे वीतरागभाव स्वभाव आत्मा की मूर्ति, वह निःशंकरूप से अन्दर रहे, यह उसका पहला गुण यथार्थ विशुद्ध होता है।

उसका यथार्थ ज्ञान के साथ आचरण करे... ऐसा सम्यग्दर्शन निःशंक आदि और ज्ञान भी यथार्थ होता है। संशय, विपरीत आदि ज्ञान नहीं होता। संशय, विपरीत, अनध्यवसाय आदि दोष आते हैं न? निःसंशय, निःशंक। ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है, उसमें संशय क्या? उसमें ऐसा होगा या वैसा होगा? यह वस्तु की स्थिति जानी, उसमें डगमग क्यों हो? ऐसा जो भगवान आत्मा का यथार्थ ज्ञानसहित आचरण। सम्यग्दर्शनसहित और सम्यग्ज्ञानसहित आचरण। किसका? सम्यक्चरणचारित्र का। व्रत (वह) चारित्र नहीं। यह तो अभी सम्यग्दर्शन बिना वे हो नहीं सकते। समझ में आया? आचरण प्रथम

समकितचरणचारित्र है। देखो! कैसा समकितचरणचारित्र। चारित्र ना करते हैं न। चौथे गुणस्थान में सम्यक्‌चरणचारित्र है। संयमचरणचारित्र नहीं। ओहोहो! महा पुरुषार्थ है। संयमचरणचारित्र तो महान पुरुषार्थ। आत्मा में वीतरागी दशा की प्रगट दशा आंशिक भी विशेष स्थिरता होकर हो, वह संयमचरणचारित्र है। अभी कहेंगे, सम्यक्‌चरणचारित्र के बिना, ऐसा संयमचारित्र नहीं हो सकता। समझ में आया?

वह मोक्ष स्थान के लिये होता है। है न? **'सुमुक्खठाणाय'।** यहाँ तो कहते हैं कि यह समकितचरणचारित्र मोक्षस्थान के लिये है। उसे ऐसा कि चारित्र हो तो ही मोक्षस्थान के लिये है, ऐसा नहीं। सम्यक्‌चरणचारित्र, वह मोक्ष के स्थान के लिये है, ऐसा। वह मोक्ष का कारण है। सम्यक्‌चरणचारित्र भी मोक्ष का कारण है। चारित्र जो है, संयमचारित्र वह तो मोक्ष का कारण है, उसकी तो बात बहुत ऊँची, परन्तु यह सम्यक्‌चरणचारित्र भी **'सुमुक्खठाणाय'।** उस मोक्षस्थान के लिये होता है। अपना भगवान राग, विकल्प, दया, दान, व्रत के विकल्प से रहित है। ऐसे आत्मा की अन्दर सम्यग्दर्शन का चरण चारित्र वीतरागी पर्याय... देखो! यह चौथे गुणस्थान में वीतरागी पर्याय है। वे कहते हैं न शुभयोग ही चौथे गुणस्थान में होता है। शुद्धोपयोग नहीं होता। शुद्धता नहीं होती। शुभ में आंशिक अशुद्धता टली इतनी होती है। ऐसा नहीं है। यह सम्यक्‌चरणचारित्र मोक्ष के लिये ही चौथे गुणस्थान में होता है। समझ में आया? लोगों को इसकी कीमत नहीं। मिथ्यात्व का कितना हल्का फल है और सम्यक्त्व का कितना ऊँचा फल है, दो के बीच की कीमत ही कम हो गयी। बाहर के व्रत, नियम, खाना-पीना और उसके ऊपर सब चला गया। जिस बात में कुछ माल नहीं। इस विकल्प का कर्ता होकर करे, वह तो मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? व्रत का विकल्प होता है और उसका वह कर्ता होता है कि विकल्प मेरा कर्तव्य हो, (वह) मिथ्यादृष्टि है। उसे आत्मा रागरहित स्वरूप है, इसका भान नहीं है। आहाहा!

कहते हैं, ऐसा जो सम्यग्दर्शन नि:शंक और सम्यग्ज्ञानसहित का अन्तर आचरण— स्थिरता, देखो! तीनों लिये। चौथे गुणस्थान में तीनों लिये। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चरणचारित्र, तीन लिये या नहीं? आहाहा! चौथा गुणस्थान अर्थात्? साठवीं गाथा

में अन्दर अर्थ है ? सम्यक् आत्मा का भान, उस सहित सम्यग्ज्ञान और उसके सहित स्वरूप में एकाग्रता। सम्यक्‌चरणचारित्र। अनन्तानुबन्धी का अभाव होकर शान्ति... शान्ति... शान्ति... कहो, समझ में आया ?

मुमुक्षु : ऐसे तो वीतराग हों...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ख्याल है। ख्याल है परन्तु नहीं कहा था। जरा सा कोई दोष सहज हो। कोई-कोई साधारण। कोई साधारण आदि हो। वीतरागी। यह तो ख्याल है। उस समय ख्याल था परन्तु वह करने की आवश्यकता नहीं।

मुमुक्षु : ...क्या करना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करना। कहा है न ? मोक्षमार्गप्रकाशक में पीछे। बन्दर जैसा हो। हो कोई अन्तर व्यवहार में अन्तर। व्यवहार में, हों ! निश्चय में नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बराबर, समान, सबको समान हो।

मुमुक्षु : उसे आदर करने जाने पर...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। चौथे में ही यह होता है। इसके लिये तो यहाँ बात चलती है। समझ में आया ?

वस्तु पूर्ण आनन्द, उसकी जहाँ प्रतीति हुई वह तो सामान्य की प्रतीति हुई। अब वह प्रतीति हुई, उसमें उसका ज्ञान हुआ, वह ज्ञान। अब उसमें आंशिक स्थिर हुए बिना, उसमें स्थिर हुए बिना प्रतीति और ज्ञान हुआ किस प्रकार ? समझ में आया ? यह स्थिर हुआ है, वह अनन्तानुबन्धी का अभाव है। यह सब समकितचरणचारित्र है। सेठी ! सम्यक्‌चरणचारित्र चौथे गुणस्थान की बात है। पाँचवें, छठवें की नहीं। वह तो संयमचरणचारित्र है। यह तो कहेंगे अभी।

भगवान आत्मा ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि से परिपूर्ण एकरूप स्वभाव का पिण्ड है। अखण्ड, अभेद है। ऐसी जो अन्दर में ज्ञान होकर प्रतीति का अनुभव होना, अनुभव होकर प्रतीति होना, वह सम्यग्दर्शन और उसका सम्यक् ज्ञान हुआ, उसका नाम ज्ञान और

उसमें स्थिर होना वह सम्यक्चरणचारित्र। तीनों बोल चौथे में होते हैं। ऐ... वजुभाई!

मुमुक्षु : अनुभव होकर प्रतीति होना...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न। वस्तु जैसी है, वैसी अन्दर ज्ञान में अनुभव में आयी। अनु अर्थात् जैसा वस्तु का स्वभाव है, उसे अनुसरकर, उसे अनुसरकर भवना-होना, इसका नाम अनुभव। अनुभव हुआ, तब प्रतीति (हुई कि) ऐसा आत्मा है। शुद्धात्मा है, आनन्द आत्मा है, पूर्ण ज्ञान आत्मा है, ऐसी प्रतीति, ज्ञान हुआ तो ऐसी प्रतीति हुई, ऐसा। ज्ञान बिना प्रतीति कैसी? वस्तु का ख्याल ही नहीं आया। ज्ञान में उस वस्तु का ज्ञेयरूप भास नहीं हुआ तो प्रतीति किसकी करना? समझ में आया? समयसार १७-१८ गाथा में आ गया। समयसार।

'जिणसम्मत्तं सुमुक्खठाणाए। जं चरइ णाणजुत्तं' यह समकित भी सम्यग्ज्ञान-सहित है। **'पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं।'** पहले में पहला सम्यग्दर्शनचरण चारित्र कहा जाता है। आहाहा! वस्तु भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ पूर्ण सर्वज्ञपदी, सर्वज्ञपदी आत्मा, सर्वज्ञपदवाला आत्मा, सर्वदर्शपदवाला आत्मा, पूर्ण आनन्दवाला आत्मा। यह विश्वास अन्तर ज्ञान में भास बिना उसका विश्वास नहीं आता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! चाहे तो राग के दोष अनेक प्रकार के हों, चारित्रदोष हो, परन्तु सम्यक्चरण चारित्र दोष में उसे बिल्कुल दोष नहीं होता, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया?

भरत चक्रवर्ती। छियानवें हजार स्त्रियाँ। उनके भोग का विकल्प उसे होता है, तथापि वह समकितचरण चारित्र सहित है। परन्तु वस्तु ऐसी है। दो गुण पृथक् है न। दो गुण पृथक् हैं तो दो के दोष भी पृथक् हैं। यहाँ तो प्रथम यह जोर देते हैं, यह वस्तु ऐसी है कि जिसकी पर्याय में चारित्र के दोष राग के अनेक हों - ऐसा चरण चारित्र नहीं, ऐसा कहना है न? तथापि सम्यक्चरण चारित्र तो अन्दर अडिग रीति से पड़ा है। चाहे तो युद्ध में खड़ा हो, चाहे तो विषय के विकल्प में खड़ा हो। खड़ा हो अर्थात् दिखायी दे, हों! खड़ा नहीं वहाँ। दृष्टि तो ज्ञायक चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... जहाँ अनुभव में यह आनन्द है, यह शुद्ध है, द्रव्य है - ऐसा जो भाव हुआ, वह भान कभी हटता नहीं। निरन्तर चौबीस घण्टे और सादि-अनन्त (ऐसा का ऐसा रहता है)।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : समकित चारित्र कहा न। समकितचरण यह चारित्र। निःशंक आदि गुण होना, पच्चीस मल टलना और अखण्ड अभेद चैतन्य का जो अनुभव होकर समकित हुआ, उसमें आंशिक स्थिरता हुई, पच्चीस दोष टलकर और निःशंकता आदि गुण की पर्याय हुई, उसे समकितचरण चारित्र कहा। समझ में आया? नयी बात लगती है।

मुमुक्षु : समकितचरण चारित्र ही नया...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं।

मुमुक्षु : सम्प्रदाय में...

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्प्रदाय में है ही नहीं। श्वेताम्बर में यह बात है ही नहीं। दिगम्बर में इस जगह ही है। है न ... यह तो पाठ है। कुन्दकुन्दाचार्य ने यहाँ स्पष्ट किया। गृहस्थाश्रमवाले ने तो बहुतों ने, दीपचन्दजी आदि बहुतों ने डाला है। बनारसीदास की चिट्ठी में आता है। चिट्ठी में आता है। परमार्थ वचनिका में। स्वरूपाचरणचारित्र, स्वरूपाचरणचारित्र।

मुमुक्षु : कणिका जगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कणिका जगी, कहा न। यहाँ तो आचार्य स्वयं पाठ में कहते हैं। **'सम्मत्तचरणचारित्त'।** पहले भी आया था। देखो! पाँचवीं गाथा। **'जिणणाणदिट्ठिसुद्धं'** जिनवर ने कहा हुआ ज्ञान वीतरागी ज्ञान आत्मा का अन्दर का। उसका जो शुद्धपना और उसकी प्रतीति, वह **'पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं'।** पश्चात् संयमचरण है। फिर दूसरा संयमचारित्र होता है। यह एकड़ा नहीं, वहाँ फिर शून्य और दोकड़ा आया कहाँ से? कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल यह चीज़ है, वहाँ से शुरुआत होती है। आहाहा! अन्दर में राग के विकल्प में सुखबुद्धि रहे, पुण्य परिणाम में हितबुद्धि रहे, तब तक मिथ्यादृष्टि है। क्योंकि ऐसी वस्तु है नहीं। ऐसा है। आहाहा! समझ में आया?

वीतरागमूर्ति प्रभु, उसमें आनन्द है। कल एक लड़के को पूछा था कि आत्मा में सुख है या उसमें? (तो कहा), आत्मा में। तो खाता किसलिए है? कहा, वह आया है या

नहीं ? वह प्रदीप। तेरा भाई आयेगा तब पूछूँगा। आत्मा में आनन्द है या शरीर में ? तो कहे, आत्मा में है। बराबर है। यदि आत्मा में आनन्द हो तो खाने का भाव करता है किसलिए ? उसमें सुख मानता है न। ऐई ! वह लड़का, बेचारे ने जवाब नहीं दिया। बड़े भी थोड़े उलझे। ऐई ! खाने का भाव करता है, उसमें सुखबुद्धि माने बिना खाने का भाव करे ? नवनीतभाई ! शाम को ऐसा प्रश्न किया।

भाई ! यह अलग बात है, खाने का भाव अलग बात है और उसमें हर्ष आना कि यह सुखरूप है, वह अलग बात है। समझ में आया ? यह हर्ष से खाता है, प्रेम से खाता है, वह अलग बात है। खाता है अर्थात् राग। क्रिया तो कहाँ होती है ? वह तो जड़ की है। शरीर की खाने-पीने की क्रिया, वह तो जड़ की क्रिया है, आत्मा की नहीं। मात्र उसमें खाने का जो विकल्प, राग आवे, उसमें यदि सुखबुद्धि रहे कि आहा... इसमें मजा आता है, वह मूढ़ है-मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ? ऐसी दृष्टि में जहाँ सुखबुद्धि सबसे उड़ गयी है और आत्मा में सुखबुद्धि की श्रद्धा, ज्ञान और आचरण हुआ है। आहाहा ! इतना आनन्द भी प्रगट हुआ है। आहाहा ! वीतरागमार्ग अर्थात् इसका स्वभाव मार्ग अलौकिक है। समझ में आया ?

अपना भगवान आनन्द के स्वभाव से लबालब भरा हुआ, ऐसे स्वभाव की श्रद्धा और ज्ञान हुआ, उसमें निःशंक आदि गुण की पर्याय हुई, उसे यहाँ चारित्र कहा जाता है। समकितचरण का चारित्र। आहाहा ! समझ में आया ? करोड़ों, अरबों रुपये के धन्धे में दिखायी दे। समकिती हो, जहाज का धन्धा करता हो। करता हो, ऐसा दिखायी दे, करे कौन ? विकल्प होता है परन्तु विकल्प में मिठास नहीं। समझ में आया ? उसमें हितबुद्धि नहीं है। हितबुद्धि कहो या उसके मोक्ष का मार्ग कहो या उसमें ठीकबुद्धि कहो, वह सब (बुद्धि) मिथ्यात्वभाव है। आहाहा ! व्यवहार विकल्प को सच्चा मोक्षमार्ग कहो, वह भी मिथ्यात्व है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। क्योंकि राग विकल्प है। भगवान आत्मा तो रागरहित चीज़ है। राग तो आस्रवतत्त्व है, आत्मा तो अणास्रवी तत्त्व भिन्न है। ऐस अणास्रवी आत्मा की जिसे श्रद्धा, ज्ञान हुए, उसे आस्रव में प्रेम नहीं रहता। शुभ में प्रेम नहीं रहता तो अशुभ में रहे ही किसका ? ऐसी बात है। इतनी आचरण दशा समकित में भी स्थिरता की प्रगट हुई है, ऐसा कहना है। समझ में आया ? भगवानजीभाई ! ऐसा मार्ग है, भाई ! आहाहा ! बहुत अलौकिक ! जिसका फल आनन्द। देखो ! क्या कहना है यहाँ ?

'सुमुक्खठाणाए'। समकितचरण चारित्र, यह मोक्ष के स्थान के लिये है। मोक्ष की प्राप्ति के लिये है। आहाहा! अनन्त-अनन्त आनन्द। एक समय की पर्याय में अनन्त-अनन्त आनन्द। केवलज्ञानी के अनन्त आनन्द, एक समय में अनन्त आनन्द! ऐसा अनन्त अपने यहाँ आ गया। सम्यग्दर्शन में, यह सम्यग्दर्शन की एक समय की पर्याय भी अनन्त है। सम्यग्दर्शन की एक समय की पर्याय अनन्त है। एक समय का ज्ञान सम्यग्दृष्टि का अनन्त है। एक समय की स्थिरता की पर्याय भी अनन्त है। आहाहा! समझ में आया? अनन्त की खान में तो अनन्त ही होवे न! भगवान अपार शक्ति का धनी, ऐसे भगवान की प्रतीति... आहाहा! अनन्त भगवान, सिद्ध भगवान, अनन्त अरिहन्त पद, अनन्त सिद्ध पद, आचार्य, उपाध्याय और साधु पद, ऐसे निर्विकारी पद जिसके गर्भ में अन्दर पड़े हैं, जिसके गर्भ में, जिसके गुण में पड़े हैं। जादवजीभाई! आहाहा! ऐसे अनन्त अरिहन्तों को प्रतीति में लेना, अनन्त सिद्धों को, अनन्त आचार्य, उपाध्याय, साधु की निर्विकारीदशा का धारक भगवान आत्मा। समझ में आया?

अरिहन्त की श्रद्धा, वह तो केवलज्ञानी की पर्याय है। परन्तु पर्याय की श्रद्धा तो व्यवहार श्रद्धा हुई। व्यवहारनय की श्रद्धा हुई, निश्चय की नहीं हुई। समझ में आया? क्योंकि अरिहन्त तो एक समय की पर्याय है। अनन्त अरिहन्त और अनन्त सिद्धों को माने तो भी वह तो पर्याय तो मानता है। पर्याय तो सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। पूरा निश्चय का विषय रह जाता है। समझ में आया? अन्दर में ऐसा जो भगवान आत्मा, अनन्त-अनन्त सिद्धपद का धारक है। ये पाँच पद, वह आत्मा ही है। इसमें आगे आयेगा। समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा पूर्ण की प्रतीति में भी पूर्णता और अनन्तता प्रतीति में आती है। ऐसे पूर्ण का सम्यग्ज्ञान का अंश भी पूरा और अनन्तपना उसमें आता है। ऐसे स्वभाव में स्थिरता का अंश है, और वह भी अनन्त है। चौथे गुणस्थान में चरणचारित्र भी अनन्त है। आहाहा!

मुमुक्षु : !

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न। अनन्त... अनन्त... अनन्त गुण। बेहद। जिसकी पर्याय का पार नहीं होता। ऐसी शक्तियाँ और ऐसी शक्तियों का समूह भगवान है। ऐसी अनन्त प्रतीति की पर्याय में अनन्त ही आता है। ऐसे अनन्त भगवान आत्मा की ज्ञान की

पर्याय में अनन्त ही आता है। अनन्त को चाहे जितना भाग करो तो उसमें अनन्त ही आता है। आहाहा! उसमें स्वरूपाचरणचारित्र की पर्याय भी, अनन्त अनुबन्ध गया, अनन्त अचारित्र गया उस प्रकार का, तो यहाँ अनन्त आया। समझ में आया? आहाहा! अनन्तानुबन्धी में अनन्त अस्थिरता थी। वह जहाँ आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान में आया, इतनी स्थिरता भी अनन्त इकट्ठी आयी। समझ में आया? भाई! यह तो अन्तर समझने के लिये बात है। यह कहीं वादविवाद और चर्चा का विषय करना चाहे तो यह नहीं है, अन्तर का विषय है। समझ में आया?

यहाँ तो जरा यह आया न? '**जिणसम्मत्तं सुमुक्खठाणाए**'। ऐसा समकित, ऐसा जो ज्ञान और स्वरूपचरणचारित्र, वह मोक्ष के लिये है, वह मोक्ष का कारण है। समझ में आया? ऐसे तो चारित्र मोक्ष का कारण कहा। पंचास्तिकाय में। चारित्र मोक्ष का कारण। यहाँ तो एकदम सीधा समकितचरणचारित्र स्वयं मोक्ष के स्थान का कारण है। अनन्त जिसमें उछला है आत्मा और उसके फलरूप से अनन्त आनन्द आदि मोक्षदशा, जिसके परिणाम के फलरूप से आवे, उसे यहाँ समकितचरणचारित्र को मोक्ष का कारण कहा है। आहाहा! चन्दुभाई! बहुत भारी काम परन्तु। बातें बड़ी। भगवान भी बड़ा है न!

अरे! उसके ज्ञान में... इसके ज्ञान में, श्रद्धा में उसकी महत्ता आवे, इसलिए उसमें स्थिरता की महिमा भी अनन्त साथ में आती है। भले चौथा गुणस्थान हो, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह धर्म की शुरुआत की दशा यह है। बाकी सब बातें हैं। धर्म करे और धर्म करे और यात्रा करके धर्म हो गया, भगवान की भक्ति करके धर्म हो गया, दस मन्दिर बनाये और धर्म हो गया, पचास लाख खर्च किये... धूल भी धर्म नहीं। यह कठिन लगे ऐसा है। शत्रुंजय जा आये और धर्म हो गया। धूल में भी धर्म नहीं। वहाँ तो गया तो शुभराग हो। भगवान की भक्ति के प्रति का शुभराग। वह कहीं धर्म नहीं। ऐई! सम्मेदशिखर जा आया। पन्द्रह बार जा आया, बीस बार जा आया। वह क्या है परन्तु अब? सम्मेदशिखर तो परवस्तु है, परद्रव्य है। उस पर जा आया तो शुभराग होता है। पन्द्रह बार गया तो पन्द्रह बार होता है। धर्म-बरम हो, वह नहीं। भगवान पूरा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु पड़ा है। यह सम्मेदशिखर तो आत्मा है। इस पर चढ़ और जा। यात्रा हुई, वह हुई, इसके जन्म-मरण मिट गये। समझ में आया? ऐसा है, बापू!

यहाँ तो **'सुमुक्खठाणाय'** लो। मोक्ष **'ठाणाय'। 'सु'।** और **'सु'** शब्द प्रयोग किया है। **'सुमुक्खठाणाय'** सुमोक्ष ऐसा। सच्चा मोक्ष। सु शब्द प्रयोग किया है न।

मुमुक्षु : सुस्थान, मोक्ष का सुस्थान।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, मोक्ष का सुस्थान। यह तो मोक्ष का सुस्थान अर्थात् दूसरा कोई कुस्थान होगा? मोक्ष का सुस्थान (अर्थात्) निर्मल पर्याय, वह मोक्ष का सुस्थान है। समझ में आया? मुक्तिशिला पर जाना, वह कहीं सुस्थान नहीं। वह तो पत्थर है। आत्मा अपने परमानन्द की दशा में बराबर अपनी पर्याय के क्षेत्र में—स्थान में पूर्ण में आवे, उसका कारण यह समकितचरण चारित्र है। कहो, समझ में आया?

भावार्थ – सर्वज्ञभाषित तत्त्वार्थ की श्रद्धा... भगवान ने कहे तत्त्वार्थ की श्रद्धा, उसमें आत्मा आया। आत्मा आया या नहीं तत्त्वार्थ में—तत्त्व में? उसके बिना चले ऐसा कहाँ है वह हांके? जीवतत्त्व, अजीवतत्त्व, पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। उसमें भगवान ने कहा हुआ यह आत्मा। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव वीतराग भगवान, जिन्हें तीन काल-तीन लोक का ज्ञान है, उन्होंने कहे हुए तत्त्वार्थ, उन्होंने कहे हुए आत्मा की श्रद्धा।

निःशंकित आदि गुण सहित,... निःशंक गुण से सहित। शंका को स्थान कहाँ हो? समझ में आया? **पच्चीस मल दोष रहित,...** आहाहा! **पच्चीस मल दोष रहित,...** पच्चीस मल दोष आ गये हैं न। छह आयतन और यह सब कहे न। वे पच्चीस दोष। तीन मूढ़ता, आठ... **पच्चीस मल दोष रहित, ज्ञानवान आचरण करे...** भाषा यह ली है। ज्ञान लिया है न वहाँ? **'जं चरइ णाणजुत्तं'।** तीसरा पद है न? ऐसे दोषरहित समकित और ज्ञानवान आचरण करे, देखो! आत्मा का ज्ञान, उस आत्मा के ज्ञानसहित आचरण करे। देखो! **दोष रहित, ज्ञानवान आचरण करे...** ऐसा है। **उसको सम्यक्त्वाचरणचारित्र कहते हैं।** उसे भगवान कुन्दकुन्दाचार्य आदि सन्त और केवली सम्यक्चरणचारित्र कहते हैं। आहाहा! दुनिया की महत्ता टले नहीं और इसे स्व की महत्ता दिखायी दे नहीं। कहीं भी दूसरे की ऋद्धि चक्रवर्ती की (ऋद्धि) देखकर, सुनकर आहा.. हो जाये। मर गया, वहाँ कहाँ आ..हा.. था? सुन न! समझ में आया? उसे वह अधिक

भासित हुआ। परन्तु भगवान उससे अधिक ज्ञानानन्द स्वभाव, उसमें अनन्त सम्पदा सिद्ध की पड़ी है। उसका जिसे अधिकपना भासित हो, उसे प्रतीतिसहित ज्ञान का आचरण होता है, उसे समकितचरण -चारित्र कहते हैं। समझ में आया?

वह मोक्ष की प्राप्ति के लिए होता है,... लो, अर्थ किया। यह मोक्ष की प्राप्ति के लिये समकितचरणचारित्र है। कोई कहे कि समकित हुआ, उसमें मोक्ष का कारण कहाँ आया? चारित्र बिना मोक्ष होता ही नहीं। सुन न! वह तो चारित्र प्रतीति में आ गया है कि ऐसी स्वरूप रमणता होगी, तब मेरी दशा मोक्ष होगी। यहाँ तो समकितचरणचारित्र ही मोक्ष की प्राप्ति के लिये कहा है। समकित को हीन करने के लिये चारित्र, इस व्रत की क्रिया को बहुत स्थापित करते हैं। आहाहा! अरे! भगवान! तुझे नुकसान है, भाई! यह कहीं दुनिया के लिये यह बात नहीं है। अकेला जन्म-मरण करके भटकता है। चौरासी के अवतार में दु:खी होकर (भटकता है)। इसका कोई धनी-धोरी नहीं है। समझ में आया? भरे भण्डार मकानों में पचास-पचास लाख, करोड़, पाँच करोड़ रुपये पड़े हों, स्त्री-पुत्र हो, उसमें अन्दर से शूल उठे, कौन शरण है? बापू! कहाँ नजर डालेगा? वे सब हैं, वे तो पड़े हैं। यह एकत्वबुद्धि जो दु:ख की है, उसे टालने का उपाय अन्दर स्वभाव की एकत्वबुद्धि करना। वहाँ शरण है। समझ में आया? डॉक्टर आवे और इंजेक्शन दे और अमुक दे। वह इंजेक्शन देनेवाले डॉक्टर भी मर गये। आहाहा!

जामनगर में देखो न! यह हुआ उसमें चिल्लाहट मचा गये। बेचारे निश्चिन्तता से सो रहे थे, वहाँ आया चद्दर। टुकड़े। हाथ टूट गया। टूटनेयोग्य ही टूटता है। भगवान टूटता है? अखण्डानन्द प्रभु नित्य शाश्वत् मूर्ति प्रभु, उसे कोई स्पर्श करे और तोड़े? भगवानजीभाई! लोग चिल्लाहट मचाते हैं। आहाहा! कोई कहे, पन्द्रह लोग मर गये, कोई कहे चालीस मर गये। नवलभाई कहते थे। नहीं? मर गये बेचारे, उस समय क्या होता होगा? हाय... हाय..! यह कहाँ आया? आ पड़ा नहीं, नया नहीं। उस काल में वैसी दशा होने की। उसका तू जाननेवाला है। उसे करनेवाला या बदलनेवाला और आगे—दूर करनेवाला तू है नहीं। आहाहा! ऐसी जिसे श्रद्धा और भान नहीं, वह फिर एकत्वबुद्धि से पीड़ित हो जाएगा। समझ में आया?

क्योंकि मोक्षमार्ग में पहिले सम्यग्दर्शन कहा है,... लो! जिससे मोक्षमार्ग में भगवान ने पहला सम्यग्दर्शन कहा है। मुख्य तो यह। यह तो पहली सीढ़ी। **इसलिए मोक्षमार्ग में प्रधान यह ही है।** सम्यग्दर्शन, वही मुख्य मोक्षमार्ग में पहली सीढ़ी है। इसकी तो खबर नहीं होती।

गाथा-९

आगे कहते हैं कि जो इस प्रकार सम्यक्त्वाचरणचारित्र को अंगीकार करके संयमचरणचारित्र को अंगीकार करे तो शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त करता है –

सम्मत्तचरणसुद्धा संजमचरणस्स जइ व सुपसिद्धा।
णाणी अमूढदिट्ठी अचिरे पावंति णिव्वाणं।।९।।

सम्यक्त्वचरणशुद्धाः संयमचरणस्य यदि वा सुप्रसिद्धाः।
ज्ञानिनः अमूढदृष्टयः अचिरं प्राप्नुवंति निर्वाणम्।।९।।

अमूढ़दृष्टि शुद्ध समकित चरण युत ज्ञानी यदी।
संयम-चरण से शुद्ध हों तो शीघ्र पाते मोक्ष ही।।९।।

अर्थ – **जो ज्ञानी होते हुए अमूढदृष्टि होकर सम्यक्त्वाचरणचारित्र से शुद्ध होता है और जो संयमचरणचारित्र से सम्यक् प्रकार शुद्ध हो तो शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त होता है।**

भावार्थ – **जो पदार्थों के यथार्थज्ञान से मूढदृष्टिरहित विशुद्ध सम्यग्दृष्टि होकर सम्यक्चारित्रस्वरूप संयम का आचरण करे तो शीघ्र ही मोक्ष को पावे, संयम अंगीकार करने पर स्वरूप के साधनरूप एकाग्र धर्मध्यान के बल से सातिशय अप्रमत्त गुणस्थानरूप हो श्रेणी चढ़ अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान उत्पन्न कर अघातिकर्म का नाश करके मोक्ष प्राप्त करता है, यह सम्यक्त्वचरणचारित्र का ही माहात्म्य है।।९।।**

गाथा-९ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो इस प्रकार सम्यक्त्वाचरण चारित्र को अंगीकार करके संयमचरण चारित्र को अंगीकार करे तो शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त करता है – आहाहा! ऐसे सम्यक्चरणचारित्र सहित, ऐसे समकितचरणचारित्र सहित संयमचरणचारित्र—वीतरागी पर्याय प्रगट करे **तो शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त करता है।** शीघ्र। उसमें साधारण लिया था। पहले में साधारण मोक्ष का स्थान कहा था। और यहाँ **'अचिरे'** अर्थात् बढ़ाया। चारित्र....

सम्मत्तचरणसुद्धा संजमचरणस्स जइ व सुपसिद्धा।
णाणी अमूढदिट्ठी अचिरे पावंति णिव्वाणं।।९।।

उसमें **'सुमुक्खठाणाय'** था। मोक्ष का कारण। यहाँ **'अचिरे'** (कहा है)। आहाहा! सम्यक्चरणचारित्र सहित वीतरागीचारित्र प्रगट करे, वह तो अल्पकाल में केवलज्ञान को पाता है। दोनों पूरे हो गये। दर्शन भी पूरा और चारित्र भी पूरा। उसका फल पूरा केवलज्ञान मोक्ष ही होता है।

अर्थ – जो ज्ञानी होते हुए... सम्यग्दृष्टि और ज्ञानी होने पर भी **अमूढदृष्टि होकर...** देखा? यह डाला। **'अमूढदिट्ठी'।** कहीं न जाये वह। उलझन का स्थान ही आत्मा में नहीं। अमूढ़स्वभावी भगवान आत्मा विचिक्षण है, वह तो। समझ में आया? विचिक्षण ऐसा भगवान आत्मा। विचिक्षण कहा है वहाँ। विचिक्षण और पण्डित। बहुत जगह आता है। **सम्यक्त्वाचरणचारित्र से शुद्ध होता है... ज्ञानी होते हुए...** आत्मा का वास्तविक अन्तर ज्ञान होते हुए अमूढ़दृष्टि होता है। यह एक बड़ा गुण वर्णन किया। पूरी दुनिया चाहे जिस प्रकार से मानती हो और चाहे जिस प्रकार हो, परन्तु वस्तु तो यह है। समझ में आया?

रजनीश का कल वे भाई कहते थे न? .... चालीस मिनिट तक। परन्तु यह क्या है? वह तो जड़ है। ऐसे में भी लोग बेचारे सम्मिलित हो जाते हैं। भानरहित। कुछ खबर नहीं होती। वीतराग परमेश्वर सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ ने कौन से तत्त्व कहे, इसकी खबर बिना भर जाते हैं। दो-दो, तीन-तीन हजार लोग जाते हैं। जोर से लो। परन्तु श्वास कौन ले?

वह तो जड़ है। बहुत ले तो ऐसा एकाकार हो जाए न। मानों कुछ हो जाए, ऐसा अन्दर लगता है। पागल जैसा लगता है। आहाहा! यहाँ तो श्वास की क्रिया उसके कारण से चलती है और विकल्प जो होता है, वह भी उसके कारण से (चलता है), मुझमें नहीं। ऐसी आत्मा में श्रद्धा की एकाग्रता (हो), वहाँ से धर्म की शुरुआत होती है। वहाँ धर्म रहता है। धर्म बाहर में कहाँ था? तेरे श्वास में और धूल में।

ज्ञानी होते हुए अमूढदृष्टि होकर सम्यक्त्वाचरणचारित्र से शुद्ध होता है... ऐसा। ज्ञान, समकित और आचार, तीन। **और जो संयमचरणचारित्र से सम्यक् प्रकार शुद्ध हो...** ऐसा जीव यदि चारित्र अंगीकार करे—वीतरागी पर्याय प्रगट करे **तो शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त होता है। 'अचिरे'** सम्यग्दर्शन के चारित्रसहित वीतरागचारित्र अंगीकार करे तो अल्प काल में मोक्ष हो, शीघ्र मोक्ष हो। लो, मावाणी! इसमें क्रमबद्ध कहाँ रहा? यह क्रमबद्ध में ऐसा आया इसमें। जिसे आत्मा पर दृष्टि है, वह क्रम से होती पर्याय का जाननेवाला हो जाता है। जाननेवाला होने पर उसमें स्थिर होता है, इसलिए स्थिर होनेवाले को अल्पकाल में केवलज्ञान आयेगा, लम्बा काल नहीं है। ऐसी उसकी मर्यादा होती है। समझ में आया? ऐसी सिरपच्ची कौन करे? संसार के पठन के लिये सिरपच्ची करे एम.ए. और एल.एल.बी की डिग्रियाँ लगाने के लिये। ऐई! यह एल.एल.बी. रहे। यह बी.ए.। उसमें बहुत वर्ष व्यतीत करे। कितने वर्ष? एक हमारा मित्र भागीदार था। वेणीलाल। डॉक्टर। हमारे साथ पढ़ता था। कितने वर्ष बाद मैं भावनगर गया था। मैंने कहा, क्या करता है? तो कहे, अभी पढ़ता हूँ। परन्तु कितने वर्ष तक? हिम्मतलाल डॉक्टर थे। बहुत वर्ष की बात है। (संवत्) १९५७-५८। उनका पुत्र था। साथ में पढ़ते थे। पालेज गये थे। कितने वर्ष में हम आये। रास्ते में मिला। ऐ... क्या करता है? अभी तो मैं पढ़ता हूँ। चलो घर। फिर घर गये। कोई नहीं और मैं अकेला हूँ और पढ़ता हूँ। परन्तु कितने वर्ष हुए? अट्ठाईस वर्ष तक पढ़ता था। उसमें मर जाए तो? हो गया।

वह अभी बेचारा मर नहीं गया? अमेरिकावाला। अमेरिका पढ़कर आया। अट्ठाईस वर्ष की उम्र। दो, तीन, चार महीने विवाह हुआ। वह मुम्बई गया वहाँ शरीर के दो टुकड़े हो गये। रेल में। रेल के नीचे आ गया। दो टुकड़े। आहाहा! कितनी ममता होगी! अभी तो करूँगा, अभी तो कमाऊँगा। ऐसी की ऐसी जिन्दगियाँ अनन्त काल में गँवा दी है।

उसकी बात नहीं, हों! यह प्रकार तो सब जीव को अनन्त बार हो चुके। बापू! अनादि काल का है, भाई! अरे! तुझे तेरी दया नहीं और पर की दया करने निकल पड़ा, पर का उद्धार करने निकल पड़ा। अपने उद्धार की खबर नहीं होती कि मेरा उद्धार कैसे होगा?

यहाँ भगवान कहते हैं, अरे! जिसे आत्मा के स्वभाव का अनुभव, प्रतीति और स्थिरता अंश इतना चारित्र जगा, वह जीव यदि चारित्र—वीतरागी दशा अंगीकार करे, छठवें-सातवें गुणस्थान की दशा, अल्प काल में उसे केवलज्ञान आता है। समझ में आया?

भावार्थ – जो पदार्थों के यथार्थज्ञान से मूढदृष्टिरहित विशुद्ध सम्यग्दृष्टि होकर... जो आत्मा का, पुण्य-पाप का वास्तविक जैसा स्वरूप है, इस जड़ का। जड़ का स्वरूप ऐसा है। यह तो मिट्टी है। सड़न, गलन, विध्वंसन जैसा मिट्टी का पिण्ड। खोखरूँ। क्षण में होगा खोखरूं। खोयरूं समझे न? छाण होती है न? पत्थर लगे वहाँ दरार पड़ जाती है। खोखरूं हो जाता है। इसी प्रकार जरा कुछ (हो)... वह तो मिट्टी है, भाई! धूल है। इसमें जिसे प्रेम वर्ते उसे भगवान आत्मा के प्रति प्रेम नहीं है। आहाहा! समझ में आया? उसे पदार्थ का ज्ञान हो तो जड़ है, वह जड़रूप परिणमता है। रोग हो, सड़न, ... समझ में आया?

मूढदृष्टिरहित विशुद्ध सम्यग्दृष्टि... बिल्कुल दोष अन्दर शंका न हो। **सम्यक्चारित्र स्वरूप संयम का आचरण करे...** ऐसा सम्यक्चारित्रस्वरूप संयम यदि वीतरागीदशा अंगीकार करे। ... समझ में आया? संयमचारित्र अंगीकार करे, वस्तु के भानसहित, सम्यग्दर्शन प्रतीति और सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरण चारित्र, तदुपरान्त जो वीतरागचारित्र अंगीकार करे, (उसकी) अल्प काल में मुक्ति होती है। **स्वरूप के साधनरूप एकाग्र धर्मध्यान के बल से...** देखो! परन्तु साधन यह। जो शुद्ध स्वरूप जैसा प्रतीति में-अनुभव में लिया था, उसका साधन करे—एकाग्रता। **स्वरूप के साधनरूप एकाग्र धर्मध्यान के बल से सातिशय अप्रमत्त गुणस्थानरूप हो, श्रेणी चढ़ अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान उत्पन्न कर अघातिकर्म का नाश करके मोक्ष प्राप्त करता है, यह सम्यक्त्वचरण चारित्र का ही माहात्म्य है।** वापस यह माहात्म्य सम्यक्चरण चारित्र का है। वह चारित्र जो वीतरागता आयी, परन्तु पहला सम्यक्चरण चारित्र था तो वीतरागता आयी। सम्यक्चरण चारित्र न हो और वीतरागता आवे, ऐसा तीन काल में नहीं होता। आहाहा! ऐसा सम्यक् चारित्र का फल है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-३९, गाथा-१० से १३, रविवार, आषाढ़ (गुजराती) कृष्ण १, दिनांक १९-०७-१९७०

आज भगवान की दिव्यध्वनि का दिन है। भगवान महावीर परमात्मा, उन्हें वैशाख शुक्ल दसवीं को केवलज्ञान हुआ परन्तु दिव्यध्वनि नहीं निकली। ६६ दिन में आज श्रावण कृष्ण १ है, शास्त्र की। आज महीना लगता है। चातुर्मास का महीना, श्रावण का महीना, युग का महीना पहला यह है। पहला दिन है। उस दिन भगवान की वाणी विपुलाचल पर्वत पर (खिरी)।

भगवान को केवलज्ञान तो वैशाख शुक्ल १०वीं को हुआ था परन्तु दिव्यध्वनि नहीं थी और और सुननेवाले उस जाति के पात्र भी नहीं थे। दोनों नहीं था। उन भगवान को दो महीने छह दिन, ६६ दिन में गौतमस्वामी आये और यहाँ वाणी निकलने का योग था, दिव्यध्वनि। राजगृही के विपुलाचल पर्वत पर परमात्मा की दिव्यध्वनि खिरी। ॐध्वनि निकली। उसे सुनकर गणधरदेव ने बारह अंग और चौदह पूर्व रचे। यह रचना शास्त्र की चली आती है। उसमें के धवल, जयधवल आदि है। मूल पाठ 'षट् खण्डागम'। वह भगवान की वाणी में से आये हैं। उनकी रचना पूर्ण तो ज्येष्ठ शुक्ल-पंचमी (को हुई)। परन्तु वह सब परमात्मा भगवान ने जो वाणी कही थी, उसकी परम्परा की वह वाणी है। समयसार आदि में भी यह भगवान की जो वाणी थी, वह परम्परा सन्तों की मिली हुई। वह ज्ञान, वैभव और वाणी निमित्त। वह परम्परा से मिली हुई वाणी कुन्दकुन्दाचार्य महाराज को स्वयं को विकल्प आया, वह वाणी गूँट गयी। समझ में आया ? उसमें का यह अष्टपाहुड़ ग्रन्थ है।

भगवान ने तो भावश्रुतज्ञान द्वारा प्ररूपणा की थी। केवलज्ञान द्वारा केवलज्ञान सहित तो निकले नहीं कुछ। भावश्रुत से प्ररूपणा की और श्रोता-गणधर आदि को भावश्रुतरूप परिणमा। मूल अर्थ के कर्ता भगवान 'महावीर' तीर्थंकर और सूत्र के कर्ता गणधर। द्रव्यसूत्र के कर्ता गणधर। भाव अर्थ के कर्ता तीर्थंकरदेव। वह वाणी परम्परा अभी तक चली आती है। समझ में आया ? उस वाणी में यह अष्टपाहुड़ (शास्त्र) अपने चलता है।

कुन्दकुन्दाचार्यदेव लगभग संवत् ४९ में हुए। उन्होंने यहाँ से परम्परा से भी प्राप्त

और बाकी भगवान के पास गये। सीमन्धर भगवान अभी महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। वहाँ भी वे ही थे और अभी तो अरबों वर्ष रहनेवाले हैं। वहाँ गये, आठ दिन रहे और वहाँ से आकर इस शास्त्र की रचना की है। उसमें यहाँ अष्टपाहुड़ में अपने चारित्रपाहुड़ चलता है। उसकी दसवीं गाथा। दसवीं गाथा। देखो! उपोद्‌घात क्या है?

गाथा-१०

आगे कहते हैं कि जो सम्यक्त्व के आचरण से भ्रष्ट हैं और वे संयम का आचरण करते हैं तो भी मोक्ष नहीं पाते हैं –

सम्मत्तचरणभट्ठा संजमचरणं चरंति जे वि णरा।
अण्णाणणाणमूढा तह वि ण पावंति णिव्वाणं।।१०।।

सम्यक्त्वचरणभ्रष्टाः संयमचरणं चरन्ति येऽपि नराः।
अज्ञानज्ञानमूढाः तथाऽपि न प्राप्नुवंति निर्वाणम्।।१०।।

संयम-चरण आचरें पर समकित चरण से भ्रष्ट हैं।
अज्ञान-ज्ञान-विमूढ़ वे निर्वाण-प्राप्ति नहीं करें।।१०।।

अर्थ – **जो पुरुष सम्यक्त्वाचरण चारित्र से भ्रष्ट है और संयम का आचरण करते हैं तो भी वे अज्ञान से मूढ़दृष्टि होते हुए निर्वाण को नहीं पाते हैं।**

भावार्थ – **सम्यक्त्वाचरण चारित्र के बिना संयमचरण चारित्र निर्वाण का कारण नहीं है, क्योंकि सम्यग्ज्ञान के बिना तो ज्ञान मिथ्या कहलाता है सो इस प्रकार सम्यक्त्व के बिना चारित्र के भी मिथ्यापना आता है।।१०।।**

गाथा-१० पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो सम्यक्त्व के आचरण से भ्रष्ट हैं और वे संयम का आचरण करते हैं तो भी मोक्ष नहीं पाते हैं – भगवान के शास्त्र में ऐसा आया कि यह

आत्मा भगवान ने जो कहा, ऐसा शुद्ध चैतन्यद्रव्य, उसका अन्दर जिसे सम्यग्दर्शन और ज्ञान नहीं, उससे जो भ्रष्ट है, ऐसे सम्यग्दर्शनरहित प्राणी चाहे तो बारह व्रत या पाँच महाव्रत आदि पालन करे परन्तु वह सब भ्रष्ट है। समझ में आया? समकितचरणचारित्र बिना संयमचरणचारित्र होता नहीं, ऐसा सिद्ध करते हैं। है?

सम्यक्त्व के आचरण से भ्रष्ट हैं... समकित का आचरण। आत्मा अखण्ड शुद्ध चैतन्य निर्मल आनन्द ध्रुव, उसे—ध्रुव को ध्येय बनाकर जो सम्यक् निर्विकल्प अनुभव होता है, उसमें पच्चीस दोष का त्याग होता है। समझ में आया? और निःशंक आदि आठ गुण की प्राप्ति होती है। ऐसा समकितआचरण चारित्र है तो उसे संयमचरणचारित्र फिर हो सकता है। परन्तु ऐसा जिसे नहीं, उसे संयम और चारित्र नहीं हो सकता। गाथा।

सम्मत्तचरणभट्ठा संजमचरणं चरंति जे वि णरा।
अण्णाणणाणमूढा तह वि ण पावंति णिव्वाणं।।१०।।

अर्थ – जो पुरुष सम्यक्त्वाचरणचारित्र से भ्रष्ट है... जिसे निर्विकल्प आत्मा भगवान सर्वज्ञदेव तीर्थंकरदेव परमात्मा ने कहा, ऐसा जिसे अन्तर में निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होकर जिसे वह आत्मा ज्ञात नहीं हुआ, ऐसे सम्यग्दर्शनचारित्र के आचरण बिना अर्थात् उससे भ्रष्ट है, वह संयम आचरण करे। दया, व्रत, दान, भक्ति, पूजा, तप करे **तो भी वे अज्ञान से मूढ़दृष्टि होते हुए...** अज्ञानी है। दृष्टि मूढ़ और मिथ्यात्व है। **निर्वाण को नहीं पाते हैं।** उसे मोक्ष नहीं होता। कहो, समझ में आया? पहली भूमिका न हो, वहाँ फिर वृक्ष कहाँ उगे? ऐसा कहते हैं।

आत्मा, परमात्मा तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी परमात्मा ने अन्दर शुद्ध आनन्द का कन्द, अतीन्द्रिय चैतन्य की मूर्ति (देखी)। ऐसा जिसे अन्तर में स्वसन्मुख होकर राग और निमित्त से विमुख होकर भेद आदि से भी विमुख होकर अभेद स्वभाव की दृष्टि सम्यक्चरण-चारित्र नहीं, उसे संयमचरणचारित्र नहीं होता। कहो, यह वजन देते हैं समकित पर। समझ में आया?

भावार्थ – सम्यक्त्वाचरणचारित्र के बिना संयमचरणचारित्र निर्वाण का कारण नहीं है,... एक ऐकड़ा ही नहीं, बाद के सब चारित्र आदि व्रत आदि ले, वे सब

शून्य हैं। ऐकड़ा (अंक) रहित के शून्य। समझ में आया? सम्यक्चरणचारित्र बिना, भगवान शुद्ध चैतन्य के अन्तर्दृष्टि के, अन्तर ज्ञान के, अन्तर आचरण के बिना, निर्वाण संयमचरण चारित्र से पाता नहीं। यह व्रत आदि पाले, तप करे, उससे कुछ धर्म नहीं होता।

क्योंकि सम्यग्ज्ञान के बिना तो ज्ञान मिथ्या कहलाता है... चैतन्य भगवान आत्मा, चैतन्य का पिण्ड, उसका जिसे अन्तर ज्ञान नहीं है, उस ज्ञानरहित शास्त्रज्ञान भी सब मिथ्याज्ञान है। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा की जाति चैतन्य निर्विकल्प आनन्द, उसका जिसे ज्ञान नहीं, उसका दूसरा सब ज्ञान मिथ्याज्ञान है। समझ में आया? लौकिक के पठन में तो मिथ्याज्ञान है परन्तु शास्त्र के पठन ग्यारह अंग और नौ पूर्व पढ़ा हो, परन्तु आत्मा का अन्तर ज्ञान, सम्यक्ज्ञान, स्वरूपज्ञान, अनुभवज्ञान, स्वसंवेदनज्ञान नहीं, उसके ज्ञान बिना वे दूसरे सब ज्ञान निरर्थक है। समझ में आया?

सम्यग्ज्ञान के बिना तो ज्ञान मिथ्या कहलाता है... मिथ्या कहे जाते हैं। **सो इस प्रकार सम्यक्त्व के बिना चारित्र के भी मिथ्यापना आता है।** सम्यग्ज्ञान बिना सब ज्ञान मिथ्या है, ऐसे समकित बिना सब चारित्र मिथ्या है। समझ में आया? है न दो? **'अण्णाणणाणमूढा तह वि ण पावंति णिव्वाणं'।** प्रभु स्वयं आत्मा ही परमात्मस्वरूप है। जैसा सिद्ध का स्वरूप है, वैसा ही उसका वस्तु का—आत्मा का स्वरूप है। उसका जिसे ज्ञान और उसकी जिसे श्रद्धा अन्तर्मुख के स्वभाव-सन्मुख होकर हुई नहीं, उसे बहिर्मुख की जितनी व्रत आदि की क्रियायें हैं, बहिर्मुख के शास्त्र आदि के ज्ञान सब मिथ्या है। समझ में आया? फल दे तो संसार फलेगा उसमें। निर्वाण नहीं पायेगा, ऐसा कहा न? बस, निर्वाण नहीं पाये इसका अर्थ (यह कि) संसार फलेगा उसमें। निर्वाण नहीं पायेगा ऐसा कहा है न? बस, निर्वाण नहीं पाये, इसका अर्थ संसार फलेगा। समझ में आया? उसमें इतना कहा है न, निर्वाण नहीं पायेगा? अर्थात् क्या? संसार पायेगा। आहाहा!

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान, आत्मा का अनुभव, आत्मा का निर्विकल्प वेदन और निर्विकल्प स्वरूप की अन्तर में भान सहित अनुभव में प्रतीति, ऐसा जो समकितचरण चारित्र जहाँ नहीं, वहाँ दूसरे ज्ञान और चारित्र मिथ्या संसार फलदायक हैं। निर्वाण फलदायक नहीं, अर्थात् संसार फलदायक है। समझ में आया?

मुमुक्षु : परन्तु दु:खदायक उसमें क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु संसार फलदायक का अर्थ क्या हुआ? ऐ.. ...भाई! वकील है न, इसलिए प्रश्न करे न। वह दु:खदायक है। सम्यक् आत्मा पूर्णानन्द का नाथ स्वयं सच्चिदानन्दस्वरूप, अन्तर अनन्त गुण का साहेबा, ऐसे साहेब चैतन्य भगवान की अन्तर में अनुभव की प्रतीति और ज्ञान नहीं, (उसके) दूसरे ज्ञान और चारित्र दु:खदायक है। लो। ...भाई!

इस प्रकार सम्यक्त्व के बिना चारित्र... भगवान आत्मा, जिसमें स्थिर होना है, ऐसा चारित्र, स्थिरता जिसमें है, उसका जहाँ भान हुआ नहीं, जिसमें चारित्र करके रमना है, उस चीज़ की अन्तर्दृष्टि हुई नहीं, उसका ज्ञान हुआ नहीं, ऐसे स्वभाव को ज्ञेय बनाकर चैतन्य को ज्ञेय बनाकर ज्ञान हुआ नहीं, वह दूसरे ज्ञेय बनाकर ज्ञान हो, वह सब मिथ्यात्व है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा को ध्येय बनाकर जहाँ सम्यग्दर्शन हुआ नहीं, उसके दूसरे सब ध्येय मिथ्याचारित्र है। आहाहा! यह दसवीं गाथा।

समकितचरणचारित्र बिना ऐकड़ा (अंक) बिना के सब शून्य हैं। लोगों को उसकी कीमत नहीं। वस्तु क्या है और उसकी श्रद्धा तथा अन्तर ज्ञान क्या चीज़ है, उसकी लोगों को कीमत नहीं। कीमत यह बाहर में बाह्य त्याग किया और राग कुछ मन्द किया हो, उसकी बाह्य क्रिया जो है, उसका उसे माहात्म्य है, वह माहात्म्य मिथ्यादृष्टिपने का है। समझ में आया? अपने अन्तर्मुख के माहात्म्य के भान बिना अन्तर्मुख के आनन्द के ज्ञान की शक्ति की प्रगटता बिना सब वह मिथ्या क्रियाकाण्ड दु:खदायक और चार गति में भटकने के लिये है। क्योंकि ऐसा तो अनन्त बार किया है। उसका फल तो गति मिली। उसका फल कहीं आत्मा मिलेगा नहीं। अब ग्यारहवीं (गाथा)।

गाथा-११-१२

आगे प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस प्रकार सम्यक्त्वाचरण चारित्र के चिह्न क्या हैं, जिनसे उसको जाने, इसके उत्तरस्वरूप गाथा में सम्यक्त्व के चिह्न कहते हैं –

वच्छल्लं विणएण य अणुकंपाए सुदाणदच्छाए।
मग्गगुणसंसणाए अवगूहण रक्खणाए य।।११।।

एएहिं लक्खणेहिं य लक्खिज्जइ अज्जवेहिं भावेहिं।
जीवो आराहंतो जिणसम्मत्तं अमोहेण।।१२।।

वात्सल्यं विनयेन च अनुकंपया सुदान दक्षया।
मार्गगुणशंसनया उपगूहनं रक्षणेन च।।११।।
एतैः लक्षणैः च लक्ष्यते आर्जवैः भावैः।
जीवः आराधयन् जिनसम्यक्त्वं अमोहेन।।१२।।

वात्सल्य सविनय सानुकंपा दक्षता सद्दान में।
है मार्ग-गुण का प्रशंसक उपगूह स्थितिकरण से।।११।।

निर्मोह जिन-सम्यक्त्व आराधक सरलता भाव से।
इत्यादि लक्षण से सुलक्षित समकिती आचरण ये।।१२।।

अर्थ - जिनदेव की श्रद्धा सम्यक्त्व को मोह अर्थात् मिथ्यात्व रहित आराधना करता हुआ जीव इन लक्षणों से अर्थात् चिह्नों से पहिचाना जाता है - प्रथम तो धर्मात्मा पुरुषों से जिसके वात्सल्यभाव हो जैसे तत्काल की प्रसूतिवान गाय के बच्चे से प्रीति होती है, वैसी धर्मात्मा से प्रीति हो, एक तो यह चिह्न है।

सम्यक्त्वादि गुणों से अधिक हो उसका विनय सत्कारादिक जिसके अधिक हो, ऐसा विनय, एक यह चिह्न है, दुखी प्राणी देखकर करुणा भाव स्वरूप अनुकम्पा जिसके हो, यह एक चिह्न है, अनुकम्पा कैसी हो ? भले प्रकार दान से योग्य हो। निर्ग्रन्थस्वरूप मोक्षमार्ग की प्रशंसा सहित हो, एक यह चिह्न है, जो मार्ग की प्रशंसा न करता हो तो जानो कि इसके मार्ग की दृढ श्रद्धा नहीं है। धर्मात्मा पुरुषों के कर्म के उदय से (उदयवश) दोष उत्पन्न हो उसको विख्यात न करे इसप्रकार उपगूहन भाव हो, एक यह चिह्न है। धर्मात्मा को मार्ग से चिगता जानकर उसकी स्थिरता करे ऐसा रक्षण नाम का चिह्न है; इसको स्थितिकरण भी कहते हैं। इन सब चिह्नों को, सत्यार्थ करनेवाला एक आर्जवभाव है, क्योंकि निष्कपट परिणाम से सब चिह्न प्रगट होते हैं, सत्यार्थ होते हैं, इतने लक्षणों से सम्यग्दृष्टि को जान सकते हैं।

भावार्थ - सम्यक्त्वभाव मिथ्यात्व कर्म के अभाव से जीवों का निजभाव प्रगट होता है सो वह भाव तो सूक्ष्म है, छद्मस्थ के ज्ञानगोचर नहीं है और उसके बाह्य चिह्न

सम्यग्दृष्टि के प्रगट होते हैं, उनसे सम्यक्त्व हुआ जाना जाता है। जो वात्सल्य आदि भाव कहे वे आपके तो अपने अनुभवगोचर होते हैं और अन्य के उसकी वचन काय की क्रिया से जाने जाते हैं, उनकी परीक्षा जैसे अपने क्रियाविशेष से होती है, वैसे अन्य की भी क्रियाविशेष से परीक्षा होती है, इस प्रकार व्यवहार है, यदि ऐसा न हो तो सम्यक्त्व व्यवहार मार्ग का लोप हो इसलिए व्यवहारी प्राणी को व्यवहार का ही आश्रय कहा है, परमार्थ को सर्वज्ञ जानता है।।११-१२।।

गाथा-११-१२ पर प्रवचन

आगे प्रश्न उत्पन्न होता है कि... प्रश्न उत्पन्न होता है कि **इस प्रकार सम्यक्त्वाचरण चारित्र के चिह्न क्या हैं,...** उसका चिह्न क्या? चिह्न—लक्षण। समकित वस्तु का स्वरूप, उसका भान, उसकी प्रतीति, उसका आचरण पच्चीस दोषरहित, उसका लक्षण क्या? ऐसा पूछता है, उसका उत्तर कहा जाता है।

वच्छल्लं विणएण य अणुकंपाए सुदाणदच्छाए।
मग्गगुणसंसणाए अवगूहण रक्खणाए य।।११।।
एएहिं लक्खणेहिं य लक्खिज्जइ अज्जवेहिं भावेहिं।
जीवो आराहंतो जिणसम्मत्तं अमोहेण।।१२।।

'**अज्जवेहिं**' पर वजन है इसमें और '**अमोहेण**'। दो पर वजन है।

अर्थ – जिनदेव की श्रद्धा... वीतराग परमात्मा ने कही हुई श्रद्धा। **सम्यक्त्व को मोह अर्थात् मिथ्यात्व रहित आराधना करता हुआ जीव...** भगवान परमेश्वर तीर्थंकरदेव की श्रद्धा अर्थात्? अर्थात् कि परमात्मा ने कहा हुआ आत्मा, उसकी श्रद्धा, वह जिनदेव की श्रद्धा कही जाती है। आहाहा! समझ में आया? जिनदेव स्वयं जिनदेव है। अन्तर का स्वभाव भगवान आत्मा का, जिन वीतराग दिव्य शक्ति का भण्डार है। उसकी श्रद्धा मोह—मिथ्यात्वरहित। भ्रमणा और पर में कुछ ठीक है, पर्यायबुद्धि रखकर समकित करना चाहे तो नहीं हो सकता। कहते हैं कि वह मिथ्यात्व पर्यायबुद्धि छोड़कर जो आत्मा के स्वरूप के आराधते जीव। भगवान आत्मा पूर्णानन्द, उसका आराधन। आराधन अर्थात्

स्वरूप की सेवना। स्वरूप जो परमात्मा स्वयं शुद्ध चैतन्य द्रव्य है, उसके सन्मुख की दृष्टि, वह आत्मा की सेवना है। और उससे विमुख रागादि की दृष्टि, वह राग की सेवना है। वहाँ प्रभु आत्मा की सेवना का अभाव है। आहाहा! समझ में आया?

जिनदेव की श्रद्धा... लो। पाठ है सही न? '**जिणसम्मत्तं**' ऐसा शब्द है न? दूसरी गाथा में। '**जिणसम्मत्तं अमोहेण**' ऐसा शब्द पड़ा है। दूसरी गाथा का अन्तिम पद। '**जिणसम्मत्तं**' जिन का समकित, वीतराग का समकित। अर्थात्? वीतराग परमात्मा ने कहा हुआ, यह वीतरागस्वरूप जो आत्मा, उसका समकित। समझ में आया? भगवान को माने, भगवान की वाणी को माने, तब तक तो सब विकल्प है। विकल्प है। परन्तु '**जिणसम्मत्तं**' वीतराग ने जो आत्मा को राग और विकल्परहित देखा और कहा, ऐसा जो आज्ञावाला आत्मा, आज्ञा में आया ऐसा। '**जिणसम्मत्तं**' देखो! जिनसमकित कहकर व्यवहार समकित को उड़ाया है। भाई! व्यवहार... व्यवहार समकित कहते हैं न लोग? व्यवहार तो राग है। वह समकित नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? बहुत जोर देते हैं। व्यवहार समकित बिना निश्चय होगा नहीं। व्यवहार बिना निश्चय होता नहीं। राग बिना वीतरागता होती नहीं, इसका अर्थ यह हुआ।

यहाँ तो '**जिणसम्मत्तं**' वीतरागता! सर्वज्ञ परमात्मा ने वीतरागता प्रगट की। ऐसा ही आत्मा वीतरागस्वरूप है, उसका समकित, वह जिन का समकित कहा जाता है। समझ में आया? **मिथ्यात्व रहित आराधना करता हुआ जीव...** लो। है न? '**आराहंतो**'। दूसरी (गाथा)। '**जीवो आराहंतो जिणसम्मत्तं अमोहेण**' मोह अर्थात् मिथ्यात्वरहित, ऐसा। जिनसमकित आत्मा का जो स्वरूप है, उसकी अन्तर में प्रतीति का आराधन करनेवाला जीव। आहाहा! समझ में आया? यह देवी, देवला को नहीं आराधते मूढ़ जीव? जहाँ-तहाँ देव में भटके और यहाँ से पैसा मिलेगा और यहाँ से देंगे, पीर और पैगम्बर, और अम्बाजी और शीकोतेर... सब मूढ़ के लक्षण हैं, मिथ्यात्व के। ऐसे माननेवाले के तो पूर्व का पुण्य घट जाये और पाप बढ़ जाता है। समझ में आया? इस आत्मा का आराधन, जिसमें निर्मलता बढ़े और पुण्य बढ़ जाये और पाप घट जाये, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दर्शन की भूमिका में शुद्धता और अन्दर उसके पुण्य का बन्धन भी विशेष होता है। समझ में आया? इसलिए समकित बिना मिथ्यादृष्टि को पुण्य ऐसा नहीं होता। तीर्थंकरपना, बलदेवपना,

इन्द्रपदपना, गणधरपदपना इत्यादि। समकित स्वरूप का, चैतन्य महा भगवान के माहात्म्य की श्रद्धा करके आराधन करे, उसकी तो पवित्रता भी बहुत होती है और उसका पुण्य भी अलग होता है। विपरीत देव को माननेवाले, उसके अपवित्रता मिथ्यात्व का जोर है और पाप बढ़ता है और पुण्य घटता है। समझ में आया? इसलिए कहेंगे आगे। उत्साह। बाद की ही गाथा में आता है न? उत्साह। पर में उत्साह। स्व में उत्साह। ऐसा।

इन लक्षणों से अर्थात् चिह्नों से पहिचाना जाता है... अर्थात् जानते हैं। **प्रथम तो धर्मात्मा पुरुषों से जिसके वात्सल्यभाव हो, जैसे तत्काल की प्रसूतिवान गाय के बच्चे से प्रीति होती है,...** गाय को जब बछड़े का जन्म होता है, उसे-गाय को बछड़े पर सहज-सहज ऐसा प्रेम होता है (कि) जन्मे वहाँ उसे चाटती है और ऐसे करे... प्रेम... प्रेम... प्रेम। अब कहीं का आया और कहीं का शरीर। परन्तु गाय को बछड़े के प्रति प्रसूति के समय बछड़े के प्रति प्रेम, बहुत प्रेम होता है। इसी प्रकार **धर्मात्मा पुरुषों से जिसके वात्सल्यभाव हो...** ऐसा सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा हो, उसके प्रति समकिती को वात्सल्य-प्रेम होता है, उसका द्वेष नहीं होता। समझ में आया?

धर्मात्मा पुरुषों से जिसके वात्सल्यभाव हो, जैसे तत्काल की प्रसूतिवान गाय... देखो! तत्काल की। उस समय उसे बहुत लगता है। **गाय के बच्चे से प्रीति होती है, वैसी धर्मात्मा से प्रीति हो, एक तो यह चिह्न है।** अपने आनन्दस्वभाव का जिसे प्रेम जागृत हुआ है, समकिती अर्थात् आत्मा आनन्दमय, उसका प्रेम जागृत हुआ है। पर में प्रेम उड़ गया है। चाहे तो ९६ हजार स्त्रियाँ हों या इन्द्रपद हो, समकिती को पर में सुखबुद्धि उड़ गयी है। सुखबुद्धि उड़ गयी है। आहाहा! इससे जिसे सुखबुद्धि आत्मा में है और पर में से सुखबुद्धि उड़ गयी, ऐसे धर्मात्मा के प्रति उसे प्रेम हुए बिना नहीं रहता। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अपनी जो प्रेमवाली चीज़ है, ऐसी चीज़ जहाँ दूसरे को देखे तो प्रेम हुए बिना नहीं रहता। ओ..हो..! धन्य अवतार! समझ में आया? आत्मा का निर्विकल्प सम्यग्दर्शन और वह सम्यक् स्वसंवेदनज्ञान, कहते हैं कि जिसे प्रगट हुआ है उसे, जिसे प्रगट हो उसके प्रति वात्सल्य और प्रेम ही होता है। गाय को बछड़े के प्रति होता है वैसे। समझ में आया? देखो! यह कुन्दकुन्दाचार्य ने एक वर्णन किया।

और, **सम्यक्त्वादि गुणों से अधिक हो, उसका विनय सत्कारादिक जिसके**

अधिक हो, ऐसा विनय, एक यह चिह्न है,... लो! जिसे धर्म प्रगट हुआ है, ऐसे धर्मी को, धर्म प्रगट हुए के प्रति विनय और सत्कार बहुत होता है। **सम्यक्त्वादि गुणों से अधिक हो...** उनका विनय, बहुमान, सत्कार, आदर अधिक होता है, **ऐसा विनय, एक यह चिह्न है,...** समझ में आया?

'अणुकंपाए सुदाणदच्छाए' इसके इन्होंने दो अर्थ किये। **दुःखी प्राणी देखकर करुणा भाव स्वरूप अनुकम्पा जिसके हो,...** अकषायभाव परिणमित हुआ है, इसलिए दुःखी देखकर, उसकी दीनता देखकर उसका द्वेष न आवे। दुःखी हो, उसके प्रति (अनुकम्पा आवे)। आहाहा! वास्तव में तो जन्म-मरण में भटकता है, इसका उसे—समकिती को वैराग्य आता है। समझ में आया? अरे! यह भवभ्रमण में भटक रहा है, दुःखी होकर (भटक रहा है)। जिसे भवभ्रमण मिटा है और आत्मा के आनन्द का भान है, ऐसे जीव, ऐसे भवभ्रमणी दुःखी प्राणी देखकर तिरस्कार नहीं करता। अरे! दुःखी है। चार गति में मिथ्यात्वभाव से, अज्ञान से वह दुःखी है। समझ में आया? इसकी उसे अनुकम्पा होती है। समझ में आया? वीतराग का मार्ग पूरी दुनिया से अलग प्रकार का है, भाई! समझ में आया? वे कहे, अपने उसकी दया पालने का भाव अनुकम्पा। वह दूसरी वस्तु है।... वह तो विकल्प। यह तो ऐसा भाव जिसे, उसे दुःखी देखकर... आहाहा! अरे! यह दुःखी है। समझ में आया? अपने आनन्द के प्रति जिसे प्रेम है, उसे दुःखी के प्रति द्वेष नही आता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उसकी इसे दया और लगन, करुणा होती है। आहाहा!

और, **अनुकम्पा कैसी हो ? भले प्रकार दान से योग्य हो।** जिसे कुछ दान आदि की योग्यता हो, ऐसा दान देने का भाव आवे। दुःखी को देखकर इत्यादि प्राणी को ऐसा भाव आवे। योग्यदान, हों! वास्तविक दान देने का भाव धर्मी को आवे। पाठ है न? **'सुदाणदच्छाए'** है न? **'सुदाणदच्छाए'** सुदान, हों! ज्ञान का दान दे, श्रद्धा का दे इत्यादि-इत्यादि उसके योग्य हो, वैसा दे, ऐसा कहते हैं न। **भले प्रकार दान से योग्य हो।**

और, **निर्ग्रन्थस्वरूप मोक्षमार्ग की प्रशंसा सहित हो,...** धर्मी कैसा होता है? जिसे आत्मा, निर्ग्रन्थ अर्थात् ग्रन्थरहित आत्मा का भान हुआ है, उसे ग्रन्थरहित निर्ग्रन्थ मार्ग वीतराग का, उसके प्रति उसे उल्लसित बुद्धि आती है। ओ..हो..! धन्य अवतार! वीतराग मार्ग है, ऐसा मार्ग अन्यत्र है नहीं। ऐसी उसे प्रशंसा आती है। जिसे निर्ग्रन्थता,

समकितपना, वह भी एक निर्ग्रन्थपना है। मिथ्यात्व की गाँठ से निकला हुआ ऐसा जो निर्ग्रन्थ स्वभावी आत्मा, उसका जिसे प्रेम और भान है, वह निर्ग्रन्थ मार्ग की प्रशंसा करता है। समझ में आया ? वीतराग मार्ग, मुनि नग्न दिगम्बर। धन्य अवतार ! जिसने ऐसी दशा प्रगट की। जिसने अन्तर वीतरागता के ल्हावा लेकर वीतरागता का आनन्द जो अनुभवते हैं, ऐसे मुनियों की उसे प्रशंसा होती है।

उसे अरुचि नहीं होती। ऐसे नग्न मुनि, नग्न हुए, निर्लज्ज हैं। यह सब मिथ्यादृष्टि के लक्षण हैं। समझ में आया ? ऐसा कहते हैं। रुचे नहीं। नंगे—नग्न। यह क्या है ? कालभेद से तो नग्नपना हो ही नहीं सकता। वस्त्र रखकर ही मुनिपने रहा जाता है, ऐसा माननेवाले निर्ग्रन्थपने की निन्दा करते हैं, प्रशंसा नहीं करते। ऐसा कहते हैं। नटुभाई ! आहाहा ! एक व्यक्ति कहता था। काल बदल गया, अभी यह नहीं होता। पहले भले ऐसा निर्ग्रन्थपना होगा, अभी ऐसा नहीं होता। परन्तु न हो तो ऐसे को, नहीं जिसमें निर्ग्रन्थपना, उसे मुनिपना मानना ? यह निर्ग्रन्थपने की प्रशंसा नहीं है। समझ में आया ? ऐसा मार्ग है, भाई ! इसे निर्ग्रन्थदशा पसन्द है। आहाहा ! धन्य अवतार ! जिसने निर्ग्रन्थ वीतरागदशा अंगीकार की है और बाह्य में नग्नपने हुए है, ऐसा मार्ग वीतराग का अनादि सनातन है। समझ में आया ? उसकी इसे प्रशंसा होती है। समझ में आया ?

ऐसा करके कहते हैं कि यह नग्नपना है और अन्तर की वीतरागदशा जिसे सुहाती नहीं, वे सब मिथ्यादृष्टि हैं। समझ में आया ? आहाहा ! जिसे स्वयं को भी रागरहित होना है, निर्ग्रन्थदशा का कामी है। समकिती मिथ्यात्व से रहित हुआ परन्तु रागरहित होने का तो कामी है। ऐसी रागरहित दशा जिसे प्रगटी हो, निर्ग्रन्थदशा, बाह्य में नग्नपना, उसकी वह प्रशंसा करे, उसका वह तिरस्कार करे नहीं। ऐसा मार्ग अन्तर में उसे प्रगट हुआ होता है। समझ में आया ? आहाहा !

जो मार्ग की प्रशंसा न करता हो तो जानो कि इसके मार्ग की दृढ़ श्रद्धा नहीं है। क्या कहना चाहते हैं ? जिसे वीतरागता प्रगट हुई है और बाह्य में एकदम नग्नदशा शरीर की हो गयी है। सहज (हो गयी है)। ऐसा जिसे पसन्द नहीं पड़ता, उसे वीतरागमार्ग की रुचि नहीं है। समझ में आया ? ऐसा मार्ग है, भाई ! समझ में आया ? जैसा माता से जन्मा, वैसी दशा बाहर हो जाये, तब अन्तर की वीतरागता की उग्रता बताते हैं कि ऐसी

उग्रता वहाँ होती है। ऐसी बात है। अकेला नग्नपना हो, उसकी बात नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : राज्य विरुद्ध होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : राजविरुद्ध किसका होता होगा? राजविरुद्ध। राजविरुद्ध। राजा पागल हो, मूर्ख हो तो उसके द्वारा होता होगा? राजा कोई ऐसा हो न कि नग्न हो उसे वह करे। समझ में आया? राजा तो आदर करे, ओहोहो! धन्य अवतार! जिसने वीतरागता को प्रगट करके केवलज्ञान में निकटता वर्तती है। बाह्य परिग्रह का वस्त्र का धागा भी नहीं। ऐसी निर्ग्रन्थदशा में रमनेवाले, (उनकी) राजा भी प्रशंसा करते हैं। समझ में आया? परन्तु वह भाव वीतरागता सम्यग्दर्शनसहित हो, उसकी यहाँ बात है। मात्र नग्न हो, वह कोई चीज नहीं है। वह निर्ग्रन्थपना नहीं हुआ। बाहर की नग्नदशा है और अन्दर भाव निर्ग्रन्थ नहीं, तब तक निर्ग्रन्थ नहीं कहलाते। आहाहा! एक राग का कण हो, आवे और उसका कर्ता नहीं, ऐसी वीतरागदशा निर्ग्रन्थ जहाँ प्रगटी है, ऐसा ही मोक्ष का मार्ग है। वीतराग परमात्मा केवलज्ञानी का अनादि का यह मार्ग है। समझ में आया? ऐसे मार्ग की प्रशंसा सहित होता है।

जो मार्ग की प्रशंसा न करता हो तो जानो कि इसके मार्ग की दृढ श्रद्धा नहीं है। अन्दर कुछ गड़बड़ करता है। आहाहा! वीतरागपना जिसे अन्तर आनन्दकन्द... उछल निकला है। मुनि अर्थात् आनन्द का समुद्र अन्दर उछल निकला है। जिसकी पर्याय के किनारे आनन्द का उफान, ज्वार... क्या कहलाता है? ज्वार आता है। आहाहा! उसे मुनि कहते हैं और ऐसी मुनिदशा जहाँ हो, वहाँ निर्ग्रन्थ नग्नपना ही होता है। वहाँ दूसरा नहीं हो सकता। उसकी यहाँ बात है। ऐसा जिसे नहीं रुचता, उसकी जो प्रशंसा नहीं करता, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

निर्ग्रन्थस्वरूप मोक्षमार्ग की प्रशंसा सहित हो,... देखो! आहाहा! '**मग्गगुण**' यह न? '**मग्गगुण**' इतना शब्द है। पहली गाथा का दूसरा पद। मार्ग के गुण की प्रशंसा। ऐसा। आहाहा! जिसे अपना भी रागरहित निर्ग्रन्थ मुनिपना अंगीकार करने को समकिती का भाव है। वह तो पुरुषार्थ की जागृति न हो... समझ में आया? छहढाला में नहीं आता? चारित्र (मोह) के उदय के वश 'लेश न संयम' तथापि 'सुरनाथ जजै हैं।' जिसे चारित्रमोह

के निमित्त में वश हो गया है। अभी इतनी दशा वीतरागता अन्दर करनी थी, वह दशा नहीं है। हों! बाहर से दिया, वह कोई वस्तु नहीं। अन्दर में आनन्दकन्द को उछालकर जिसे अतीन्द्रिय आनन्द के उफान का ज्वार आया है, ऐसी निर्ग्रन्थदशा को तो नग्नदशा ही हो सकती है। ऐसा देखकर जिसे प्रशंसा नहीं आती, वह खोटी श्रद्धा है।

मुमुक्षु : उसे मार्ग नहीं रुचता।

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग नहीं रुचता। ओहोहो! धन्य अवतार! मार्ग गुण है वह। मार्ग का गुण तो वह है। मोक्षमार्ग वहाँ पूरा होता है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग का गुण वहाँ मोक्ष के पन्थ में चलनेवाले को उस पन्थ की वहाँ आगे दशा, सम्यग्दर्शन, ज्ञान और वीतरागता का चारित्र वहाँ छठवें-सातवें में आता है। वह मार्ग के गुण हैं। उसके कारण के उपाय के गुण हैं। उसकी जिसे प्रशंसा नहीं, उसे वह मार्ग रुचता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

चक्रवर्ती जैसे, चौरासी लाख हाथी, छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द का स्वामी कहलाये, परन्तु वह समकिती ऐसे हाथी के हौदे निकला हो, लश्कर देखो तो करोड़ों का लश्कर, एक मुनि बबूल के नीचे आनन्द के ध्यान में प्रशमरस में झूल रहे हों... आहाहा! ऊपर बबूल के काँटे पड़ते हों, नीचे खुली जमीन हो। प्रचण्ड धूप पड़ती हो, पसीना निकला हो, मैल हो, वह भी चक्रवर्ती निकले और नीचे उतरकर... धन्य महाराज! धन्य प्रभु! धन्य अवतार! जिसने मनुष्यपना सफल किया। अहो! मोक्ष के निकट नाथ! आपका आत्मा वर्तता है। ऐसी प्रशंसा करे। वह मेरी ऋद्धि वैभव यह नहीं, (यह तो) धूल का वैभव है। प्रभु! आपको वैभव प्रगट हुआ। समझ में आया?

अन्तर के चैतन्य के उछाले मारता आत्मा... समुद्र में आता है न? ज्वार... ज्वार। ज्वार समझते हो? बाढ़... बाढ़। उसे (गुजराती भाषा में) भरती कहते हैं। पानी की बाढ़ आती है। वैसे अन्तर में वीतरागस्वभाव से भरपूर भगवान जहाँ एकाकार होकर जहाँ जोर देता है, (वहाँ) पर्याय में वीतरागता की बाढ़ आती है। वीतरागता की हिलोरें उठती हैं। समझ में आया? वीतरागता के झूले में झूलते सन्त मुनि की दशा अत्यन्त नग्नदशा ही होती है। उन्हें वस्त्र का धागा भी नहीं हो सकता। आहाहा! ऐसे मुनि की प्रशंसा समकिती को वर्तती है। उसकी उसे अरुचि नहीं होती, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

और, **धर्मात्मा पुरुषों के कर्म के उदय से...** अब ढाँकता है। पहले प्रशंसा थी। कोई धर्मात्मा पुरुष को कर्म के उदय से दोष उपजे, साधारण कोई दोष हो जाये तो **उसको विख्यात न करे...** साधारण कोई ऐसा दोष लगा, मूल समकित और ज्ञान में नहीं परन्तु चारित्र में कोई साधारण दोष, कषाय का ऐसा प्रकार होवे तो धर्मी जीव-समकिती उसे प्रसिद्ध नहीं करता। प्रसिद्ध करने से सत् का अपमान हो जाता है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन है, सम्यग्ज्ञान है, अनुभव है और चारित्र है। तो भी कोई ऐसी प्रकृति के उसमें जुड़ने से सहज हास्य आदि कोई ऐसे प्रकार के हुए हों तो ऐसे दोष को समकिती बाहर प्रसिद्ध नहीं करता। समझ में आया? आहाहा! उसे **उपगूहन भाव हो, एक यह चिह्न है।** लो।

धर्मात्मा को मार्ग से चिगता जानकर उसकी स्थिरता करे... यह तो उन चिह्न में आ गया। **ऐसा रक्षण नाम का चिह्न है; इसको स्थितिकरण भी कहते हैं।** लो। है न रक्षण? समझ में आया? **'रक्खणाए'** शब्द है न? रक्षण का स्थितिकरण (अर्थ) किया। स्थितिकरण आता है न आठ गुण में? सच्चे धर्मात्मा कोई श्रद्धा में से, ज्ञान में से स्थिरता में से डिगते हों, उन्हें स्थिति करे, स्थिर करे। अरे! महात्मा! आपको यह शोभा देता है? आप किस रास्ते चढ़े हो? कहाँ हो? भगवान के परम निर्ग्रन्थ मार्ग में बसनेवाले आपको यह नहीं शोभा देता। ऐसा करके उसे स्थिरता करे। जिसे गुण रुचे, उसे गुण में स्थिर करे। उसे आत्मा के गुण रुचे, उसके गुण की जो स्थिरता, उसमें वापस दृढ़ करे। ऐसा कहते हैं।

और, **इन सब चिह्नों को, सत्यार्थ करनेवाला एक आर्जवभाव...** सरल भाव। आहाहा! है न? **'एएहिं लक्खणेहिं य लक्खिज्जइ अज्जवेहिं भावेहिं'** ऐसा कहते हैं। सरलता... सरलता... सरलता। बिल्कुल उसमें दोष हो तो लक्ष्य में रहे। (ऐसा न करे कि) नहीं, नहीं। हमारे में बिल्कुल नहीं है। सरल... सरल... सरल। समझ में आया? **'एएहिं लक्खणेहिं य लक्खिज्जइ अज्जवेहिं भावेहिं'** ऐसा शब्द है। ऐसे लक्षण से जानने में सरलभाव से आवे, ऐसा कहते हैं। सरलता हो धर्मात्मा को। समझ में आया? अपने दोष को छिपाना और ढाँकना ऐसी कुछ वक्रता नहीं होती। आहाहा! जाना कहाँ, बापू! तुझे? पूर्णानन्द की प्राप्ति करनी हो, उसे ऐसे छुपावे, ऐसा कैसे हो? आहाहा!

स्थिर होकर अन्दर पिण्ड हो जाना है, स्वरूप में उपशमरस के ढाले में ढलकर जिसे वीतरागता प्रगट करनी है, उसे माया और कपट, कुटिलता नहीं होती। आहाहा! आर्जवभाव।

इन सब चिह्नों को, सत्यार्थ करनेवाला एक आर्जवभाव है, क्योंकि निष्कपट परिणाम से सब चिह्न प्रगट होते हैं,... लो। सरलता से उसके सब गुणों का भान यथार्थ होता है। **इतने लक्षणों से सम्यग्दृष्टि को जान सकते हैं।** लो। ऐसे लक्षण से सम्यग्दर्शन को पहिचाना जाता है।

भावार्थ – सम्यक्त्वभाव मिथ्यात्व कर्म के अभाव से जीवों का निजभाव प्रगट होता है... क्या कहते हैं? समकित, वह निज भाव है, निज पर्याय है। मिथ्यात्व कर्म के निमित्त का अभाव अर्थात् कि मिथ्यात्वभाव का अभाव और आत्मा के नित्य स्वभाव की पर्याय की प्राप्ति, वह निज भाव है। सम्यग्दर्शन वह निज आत्मा की सम्पदा की पर्याय है। **सो वह भाव तो सूक्ष्म है, छद्मस्थ के ज्ञानगोचर नहीं है...** ऐसे प्रत्यक्ष नहीं, ऐसा। छद्मस्थ के ज्ञान में ऐसे ख्याल में आवे, (ऐसा नहीं है)। **और उसके बाह्य चिह्न सम्यग्दृष्टि के प्रगट होते हैं, उनसे सम्यक्त्व हुआ जाना जाता है।**

जो वात्सल्य आदि भाव कहे, वे आपके तो अपने अनुभवगोचर होते हैं... अपने तो अनुभवगम्य पर्याय में होते हैं कि यह भाव ऐसे ही होते हैं, बराबर है। समझ में आया? **और अन्य के उसकी वचन काय की क्रिया से जाने जाते हैं,...** उसे दूसरे की वचन और काय की क्रिया से ज्ञात होते हैं। **उनकी परीक्षा जैसे अपने क्रियाविशेष से होती है,...** अपनी भी क्रिया जिस जाति की वाणी, शरीरादि की हो, उस स्थान में, ऐसे प्रकार दूसरे में देखे। **वैसे अन्य की भी क्रियाविशेष से परीक्षा होती है, इस प्रकार व्यवहार है,...** ज्ञान से श्रद्धा को परखना, वह व्यवहार है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **यदि ऐसा न हो तो सम्यक्त्व व्यवहार मार्ग का लोप हो...** तब तो समकित किसी को है ही नहीं, ऐसा हो जाये। परीक्षा की ऐसी एक पद्धति यह है।

व्यवहारी प्राणी को व्यवहार का ही आश्रय कहा है,... ज्ञान से पर को पहिचानना, यह व्यवहार, ऐसा कहते हैं। अपनी श्रद्धा को भी ज्ञान से जानना, यह व्यवहार और अपने ज्ञान में जो आवे—भासित हो, तत्प्रमाण सामनेवाले का ज्ञान होता है, यह भी एक व्यवहार हुआ न? यह व्यवहार, हों!

मुमुक्षु : शुभराग वह व्यवहार नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यहाँ प्रश्न कहाँ है ? शुभराग की बात भी नहीं और भेद की बात भी नहीं। यह तो ज्ञान अपना अपने गुण को जाने, यह व्यवहार हो गया। एक गुण दूसरे गुण को जाने, उसका नाम व्यवहार हो गया। ऐसे यह ज्ञान पर को जानने में, परचीज़ है न ? उसे जानने का ज्ञान, ज्ञान को, ज्ञान जाने, यह व्यवहार हो गया। सामनेवाले के ज्ञान को, श्रद्धा को ज्ञान जाने, वह भी व्यवहार हो गया। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा कि सम्यग्दर्शन होता है न ? तो सम्यग्ज्ञान से उसका भान होता है। सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन दो चीज़ भिन्न है, तो एक गुण की पर्याय से दूसरे गुण का निर्णय करना, वह व्यवहार। वह व्यवहार और दूसरे के ज्ञान का निर्णय करना, वह दूसरे का ज्ञान है न ? अपना निर्णय करना स्वनिश्चय है, पर का निर्णय करना व्यवहार है। समझ में आया ? इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं तो दूसरा उपाय नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

परमार्थ को सर्वज्ञ जानता है। सूक्ष्म बात की पर्याय हो, वह तो केवलज्ञानी जाने।

गाथा-१३

आगे कहते हैं कि जो ऐसे कारण सहित हो तो सम्यक्त्व छोड़ता है –

उच्छाहभावणासंपसंससेवा कुदंसणे सद्धा।
अण्णाणमोहमग्गे कुव्वंतो जहदि जिणसम्मं।।१३।।

उत्साहभावना शंप्रशंसासेवा कुदर्शने श्रद्धा।
अज्ञानमोहमार्गे कुर्वन् जहाति जिनसम्यक्त्वम्।।१३।।

अज्ञान–मोहित मग कुदर्शन में प्रशंसा भावना।
उत्साह सेवा सुश्रद्धा से जिन–सम्यक्त्व को छोड़ता।।१३।।

_अर्थ_ – कुदर्शन अर्थात् नैयायिक, वैशेषिक, सांख्यमत, मीमांसकमत, वेदान्तमत, बौद्धमत, चार्वाकमत, शून्यवाद के मत इनके भेष तथा इनके भाषित पदार्थ और श्वेताम्बरादिक जैनाभास इनमें श्रद्धा, उत्साह, भावना, प्रशंसा और इनकी उपासना व सेवा जो पुरुष करता है, वह जिनमत की श्रद्धारूप सम्यक्त्व को छोड़ता है, वह कुदर्शन, अज्ञान और मिथ्यात्व का मार्ग है।

_भावार्थ_ – अनादिकाल से मिथ्यात्वकर्म के उदय से (उदयवश) यह जीव संसार में भ्रमण करता है सो कोई भाग्य के उदय से जिनमार्ग की श्रद्धा हुई हो और मिथ्यामत के प्रसंग से मिथ्यामत में कुछ कारण से उत्साह, भावना, प्रशंसा, सेवा, श्रद्धा उत्पन्न हो तो सम्यक्त्व का अभाव हो जाय, क्योंकि जिनमत के सिवाय अन्य मतों में छद्मस्थ अज्ञानियों द्वारा प्ररूपित मिथ्या पदार्थ तथा मिथ्या प्रवृत्तिरूप मार्ग है, उसकी श्रद्धा आवे तब जिनमत की श्रद्धा जाती रहे, इसलिए मिथ्यादृष्टियों का संसर्ग ही नहीं करना, इस प्रकार भावार्थ जानना।।१३।।

गाथा-१३ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो ऐसे कारण सहित हो तो सम्यक्त्व छोड़ता है – उसे समकित हो नहीं सकता।

उच्छाहभावणासंपसंससेवा कुदंसणे सद्धा।
अण्णाणमोहमग्गे कुव्वंतो जहदि जिणसम्मं।।१३।।

देखो! '**जिणसम्मं**' ऐसा शब्द है। उसमें भी ऐसा था, '**जिणसम्मं**'। '**जिणसम्मं**'। गजब बात।

अर्थ – कुदर्शन अर्थात् नैयायिक,... वीतरागमार्ग के अतिरिक्त, सर्वज्ञ परमेश्वर के मार्ग के अतिरिक्त जितने नैयायिक मार्ग, है न अन्यमति के? **वैशेषिक, सांख्यमत, मीमांसकमत, वेदान्तमत, बौद्धमत, चार्वाकमत, शून्यवाद के मत इनके भेष तथा इनके भाषित पदार्थ...** उनके वेश और उनके कहे हुए पदार्थ में यदि उत्साह है (तो) वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? सूक्ष्म मार्ग है, भगवान! आहाहा! भगवान सर्वज्ञदेव

परमात्मा तीर्थंकरदेव का कहा हुआ परम्परा मार्ग, उससे यह सब वेदान्त आदि एक ही आत्मा के माननेवाले इत्यादि मत को, उनका वेश और उनका भासित पदार्थ, उसका यदि उत्साह रहे तो मिथ्यात्व का लक्षण है। अब यह जरा थोड़ा कठिन है। मार्ग ऐसा कठिन है, भाई! क्या हो? जैसा हो, वैसा तो आवे; आये बिना रहे नहीं।

परमात्मा तो ऐसा कहते हैं, यह श्वेताम्बर आदि जैनाभास है, जैन नहीं। परमात्मा का अनादि सनातन मार्ग था, उसमें से भगवान के पश्चात् ६०० वर्ष में अलग पड़े। वस्त्र–पात्रसहित मुनिपना मनाया, वह सब वीतराग का मार्ग नहीं है। कहो, समझ में आया? शान्ति से समझनेयोग्य बात है, बापू!

वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा की वाणी में निर्ग्रन्थ मोक्ष का मार्ग आया है। निर्ग्रन्थ किसे कहते हैं? जिसे राग तो बहुत अल्प रह गया, बहुत राग टलकर वीतरागता प्रगट हुई। अब उसे बाह्य दशा में वस्त्र–पात्र का राग हो, उसे मुनि मानना, कहते हैं कि वह तो मिथ्यादृष्टिपना है। ऐई! भीखाभाई! मार्ग ऐसा है, बापू! ऐई! श्वेताम्बर, स्थानकवासी वे सब सम्यग्दर्शन से विरुद्ध होकर निकले हुए पन्थ हैं।

मुमुक्षु : एक नय से सत्य नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक नय से सत्य वह खोटा। दूसरे नय से खोटा, इसलिए खोटी नय। कठिन बात है, भगवान! ए... मलूकचन्दभाई! वीतराग का मार्ग अनादि का तो मूल निर्ग्रन्थ था। उसे वस्त्र–पात्र कभी तीन काल में नहीं थे। महाविदेहक्षेत्र में भी यही मार्ग वर्तता है। सीमन्धर भगवान परमात्मा विराजते हैं। समझ में आया? सीमन्धर परमात्मा के निकट तो महाविदेह में मार्ग एक ही है। यहाँ भगवान के बाद ६०० वर्ष में यह पन्थ दो अलग पड़ गये, भाई! और उसमें से स्थानकवासी तो अभी ५०० वर्ष पहले निकले हैं। उन श्वेताम्बर में से निकले। ऐ... नटुभाई! ऐसा कठोर पड़े वैसा है। तुम्हारे भाई के लिये तो भारी कठिन पड़े। कान्तिभाई इनके भाई। आहाहा!

यहाँ तो वस्तु सत्य तो यह है। आहाहा! वीतराग परमेश्वर ने कहा हुआ समकित, वह तो वीतरागी आत्मा की अन्तर प्रतीति सहित का भाव, उसमें ऐसी निर्ग्रन्थ दशा मुनि की होती है, ऐसी उसे प्रतीति आ जाती है। समझ में आया? इसलिए ऐसे मार्ग के

अतिरिक्त दूसरा मार्ग हो, उसका उसके प्रति उत्साह नहीं आता। उत्साह आवे तो वह समकित से भ्रष्ट हो जाता है। बहुत कठिन, यहाँ तक बात की दिक्कत नहीं थी परन्तु यह अन्दर में भेद का विवाद। आहाहा!

मुमुक्षु : वह बाहर था।

पूज्य गुरुदेवश्री : घर में गर्म पानी आया। घर में बाढ़ आवे तो बाधा आवे। एक बार नदी चलती थी। निंगाले मास्टर बैठे थे। निंगाला। वह नदी है न? बहती जाये। परन्तु उसमें से पानी इतना आया, इतना पानी आया कि वह स्वयं स्टेशन में बैठे थे, वहाँ तक पानी आया। वहाँ कभी आवे नहीं। आया और एकदम जोरदार... आहाहा! बहुत ऊपर आया। जैसा आया वैसा वापस तुरन्त चला गया। क्योंकि वहाँ कोई जगह नहीं थी। एक साथ इकट्ठा हुआ तो सब भड़के। बहुत वर्ष की बात है। ३०-४०वर्ष पहले। निंगाणे। स्टेशन तक पानी। नहीं तो कहाँ नदी और कहाँ स्टेशन। क्या हुआ यह? समुद्र फटा कहीं से यह।

यहाँ वीतराग कहते हैं, घर में जहाँ पानी का प्रवाह आवे, वह कठिन लगे। वीतराग का मार्ग यह है, प्रभु! बहुत चर्चा या वाद-विवाद करे तो भी वस्तु तो यह है। समझ में आया? अनादि तीर्थंकर केवलज्ञानी परमात्मा का मार्ग तो मुनि का अनादि से नग्नदशा, वह भाव, वीतराग, हों! अन्दर। मात्र नग्नदशा नहीं। अन्तर वीतरागता और बाह्य वीतरागपने के कारण राग का चिह्न बाहर हो नहीं। ऐसा मार्ग अनादि का मुनि का परमात्मा ने कहा हुआ है। यह कठिन काम भारी, भाई! यह तो जंगल में आ गये। मार्ग तो यह है, बापू! इसके लिये तो यह परिवर्तन हुआ। आहाहा!

कहते हैं, श्वेताम्बर, स्थानकवासी आदि जैनाभास हैं। वे जैन नहीं हैं। गजब बात है, हों! कठिन काम पड़े। बापू! वह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है, हों! जिसने राग से धर्म मनवाया और राग की तीव्रता रहने पर भी मुनिपना मनवाया, बहुत तत्त्व के मार्ग से विरुद्ध पड़ा। समझ में आया? **श्रद्धा, उत्साह, भावना, प्रशंसा और इनकी उपासना व सेवा जो पुरुष करता है, वह जिनमत की श्रद्धारूप सम्यक्त्व को छोड़ता है,...** कैसा है कुदर्शन? **अज्ञान और मिथ्यात्व का मार्ग है।** उल्टी श्रद्धा और उल्टे ज्ञान का मार्ग, भगवान! उसका नाम है।

मुमुक्षु : ...जैनों में भी आत्मज्ञान बिना हो तो जैनाभास है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह और नहीं, अभी वह नहीं, यहाँ नहीं। वह तो मिथ्यादृष्टि हो अन्दर में, तो वह अन्तर निश्चय जैनाभास है। यह तो व्यवहार जैनाभास है। वीतराग का मार्ग ऐसा है, भाई! सर्वज्ञ का कहा हुआ केवलज्ञानी के मार्ग में भगवान सीमन्धर परमात्मा विराजते हैं, उनकी वाणी में और महावीर भगवान की वाणी में यह आया था। पश्चात् सब बाद से सब फेरफार किया है। इसके लिये उसे श्रद्धा का विचार करना पड़ेगा। विशेष आयेगा, लो... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-४०, गाथा-१३ से १६, सोमवार, आषाढ़ (गुजराती) कृष्ण २, दिनांक २०-०७-१९७०

१३वीं गाथा का भावार्थ। **अनादिकाल से मिथ्यात्वकर्म के उदय से (उदयवश) यह जीव संसार में भ्रमण करता है...** कहते हैं कि अपने परिणाम मिथ्यात्व के होने पर दर्शनमोहनीयकर्म उसमें निमित्त है। ऐसी मिथ्याश्रद्धा के कारण अनादि काल से संसार में चौरासी में भ्रमण करता है। **सो कोई भाग्य के उदय से...** भाग्य अर्थात् पुरुषार्थ। कोई महान पुरुषार्थ स्वरूप के सन्मुख का होने से **जिनमार्ग की श्रद्धा हुई हो...** वीतरागमार्ग की श्रद्धा हुई हो। **और मिथ्यामत के प्रसंग से...** परन्तु यदि मिथ्याश्रद्धा के सेवन करनेवालों का संग करके, प्रसंग करके **मिथ्यामत में कुछ कारण से...** किसी कारण से—महत्ता में, मान में, संग में अनेक प्रकार से आने पर **उत्साह, भावना, प्रशंसा, सेवा, श्रद्धा उत्पन्न हो...** ऐसी कुश्रद्धावाले जीवों की अथवा कुमार्ग की। उसमें उत्साह बढ़े। भावना, प्रशंसा, सेवा, श्रद्धा (होवे तो) **तो सम्यक्त्व का अभाव हो जाय,...** समझ में आया?

वीतराग का मार्ग मुनि निर्ग्रन्थदशा, जैनमार्ग का अर्थ निर्ग्रन्थ मुनि की दशा और अन्तर वीतरागदशा। यह सुदर्शन है, यह जैनधर्म है, यह जैनमार्ग है। उसकी श्रद्धा किसी पुरुषार्थ के कारण हुई हो, तथापि फिर कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र के संग में जाने से उनकी सेवा, उत्साह, प्रशंसा बढ़े तो मिथ्यात्व में आ जाये। समझ में आया? चाहे तो जैन के

अतिरिक्त अन्यमत की प्रशंसा आदि हो या चाहे तो जैन में रहे हुए श्वेताम्बर, स्थानकवासी और मन्दिरमार्गी (हो), वे सब जैनाभास अन्यदर्शनी हैं, जैन नहीं। उसमें कोई सगे-सम्बन्धी के कारण, परिवार के कारण, अमुक के कारण... पोपटभाई! कहते हैं, ऐसे कुदर्शनी के प्रति जरा उत्साह बढ़ जाये, प्रेम हो, भावना हो जाये, प्रशंसा हो जाये तो वह श्रद्धा से भ्रष्ट हो जाता है। वीतराग का मार्ग तो अनादि का निर्ग्रन्थ वीतराग नग्न मुद्रा, अन्तर की वीतराग निर्लेप, निर्लोभ और आशारहित की वीतरागदशा। उसे यहाँ सुदर्शन कहते हैं। उससे विरुद्ध को कुदर्शन कहते हैं। समझ में आया?

ऐसा कुदर्शन की सेवा आदि हो तो **सम्यक्त्व का अभाव हो जाय, क्योंकि जिनमत के सिवाय अन्य मतों में...** वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा ने दिगम्बर मार्ग में जो जैनधर्म का स्वरूप कहा, वह अनादि सनातन जैनदर्शन की स्थिति है। समझ में आया? उससे अन्य। जिनमत के अतिरिक्त अन्य मत। **छद्मस्थ अज्ञानियों द्वारा प्ररूपित मिथ्या पदार्थ...** का स्वरूप है। उसमें अज्ञानी ने अपनी मिथ्या कल्पना से शास्त्र रचे, पदार्थ का विपरीत स्वरूप कहा। मार्ग यह है। बहुत सूक्ष्म, भाई!

मिथ्या पदार्थ तथा मिथ्या प्रवृत्तिरूप मार्ग... प्रवृत्ति मिथ्या। समझ में आया? **उसकी (मिथ्यात्व की) श्रद्धा आवे, तब जिनमत की श्रद्धा जाती रहे,...** उसकी कुछ भी रुचि हो जाये कि यह भी ठीक है। किसी कारण से, ऐसा इसमें लिखा है न? **कुछ कारण से...** सगे-सम्बन्धी, कुटुम्बी, पूर्व के संस्कार इत्यादि कारण से फिर वापस उसकी श्रद्धा होवे तो मिथ्यामार्ग की श्रद्धा होने से सम्यक् मार्ग से भ्रष्ट हो जाता है।

इसलिए मिथ्यादृष्टियों का संसर्ग ही नहीं करना,... समझ में आया? वीतराग मार्ग के अतिरिक्त अन्यमति के मार्ग और जैन में यह दो—स्थानकवासी और श्वेताम्बर, दोनों अन्यमत है। जैनमत नहीं। ऐसों का संसर्ग नहीं करना। **इस प्रकार भावार्थ जानना।** कहो, समझ में आया? यह तो कुन्दकुन्दाचार्य श्वेताम्बर पन्थ निकलने के पश्चात् १०० वर्ष में हुए। इससे स्पष्ट किया है। बापू! मार्ग ऐसा है। अनादि का वीतराग मार्ग मुनि, मुनिमार्ग वह नग्नमुद्रा, अचेलपना, अन्दर में वीतरागदशा ऐसा अनादि का मार्ग था। उसमें से दुष्काल में भ्रष्ट हुए। बारह-बारह (वर्ष के) दुष्काल पड़े। इसलिए उसमें से यह श्वेताम्बर पन्थ निकला। यह सब मत वीतराग की आज्ञा प्रमाण से यह सब मार्ग... है। ऐ...

मावाणी ! ऐसा कठिन पड़े ऐसा है। पहले थोड़ा आ गया है, इसलिए अब दिक्कत नहीं।

मुमुक्षु : आपकी कृपा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग तो ऐसा है, भाई! सर्वज्ञ ने कहा हुआ वीतरागमार्ग कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा हुआ दिगम्बर मार्ग एक ही जैनधर्म है, दूसरा कोई जैनधर्म नहीं। समझ में आया ? ऐसे मार्ग की श्रद्धा करो, कहते हैं। भले मार्गपना—चारित्रपना आदि प्राप्त न हो, परन्तु यह मार्ग—वीतरागी मार्ग ऐसा है, (ऐसी श्रद्धा करो)। केवली ने कहा हुआ कुन्दकुन्दाचार्य महाराज महा दिगम्बर सन्त-मुनि, परमेश्वर के परम्परा में पके हुए और परमेश्वर के निकट गये हुए। बापू! मार्ग यह है। दिगम्बर जैनधर्म अर्थात् मुनिपने का जो मार्ग, वह जैनदर्शन है। इसके अतिरिक्त कोई भी वस्त्रसहित मुनिपना माने, मनावे, शास्त्र में लिखा हो तो वह सब मार्ग भगवान का नहीं है। समझ में आया? आहाहा! ऐसे मिथ्यादृष्टि का संसर्ग नहीं करना, परिचय नहीं करना, उसका सुनना नहीं, संगति में नहीं जाना। ऐसा कहते हैं।

गाथा-१४

आगे कहते हैं कि जो ये ही उत्साह भावनादिक कहे, वे सुदर्शन में हों तो जिनमत की श्रद्धारूप सम्यक्त्व को नहीं छोड़ता है -

उच्छाहभावणासंपसंससेवा सुदंसणे सद्धा।
ण जहदि जिणसम्मत्तं कुव्वंतो णाणमग्गेण।।१४।।

उत्साहभावना शंप्रशंससेवा: सुदर्शने श्रद्धां।
न जहाति जिनसम्यक्त्वं कुर्वन् ज्ञानमार्गेण।।१४।।

जो ज्ञान-मग से सुदर्शन में भावना उत्साह से।
श्रद्धान सेवा प्रशंसा कर जिन-सम्यक्त्व नहीं तजे।।१४।।

अर्थ **– सुदर्शन अर्थात् सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र स्वरूप सम्यक्मार्ग में उत्साहभावना अर्थात् ग्रहण करने का उत्साह करके बारम्बार चिन्तवनरूप भाव और प्रशंसा अर्थात् मन वचन काय से भला जानकर स्तुति करना, सेवा अर्थात् उपासना, पूजनादिक करना और श्रद्धा करना, इसप्रकार जो पुरुष ज्ञानमार्ग से यथार्थ जानकर करता है, वह जिनमत की श्रद्धारूप सम्यक्त्व को नहीं छोड़ता है।**

भावार्थ **– जिनमत में उत्साह, भावना, प्रशंसा, सेवा, श्रद्धा जिसके हो वह सम्यक्त्व से च्युत नहीं होता है।।१४।।**

गाथा-१४ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो ये ही उत्साह भावनादिक कहे, वे सुदर्शन में हों... पाठ में इतना अन्तर है। पहला '**कुदंसणे सद्धा**' था, यह '**सुदंसणे सद्धा**' है। कुदर्शन और सुदर्शन की व्याख्या—वीतरागमार्ग के अतिरिक्त जितने मार्ग हैं, वे सब कुदर्शन हैं और सुदर्शन की व्याख्या देखो! कहते हैं।

उच्छाहभावणासंपसंससेवा सुदंसणे सद्धा।
ण जहदि जिणसम्मत्तं कुव्वंतो णाणमग्गेण।।१४।।

देखा? '**कुव्वंतो**' ज्ञानमार्ग से।

अर्थ – सुदर्शन अर्थात् सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र स्वरूप सम्यक्मार्ग... देखो! सुदर्शन की व्याख्या सम्यग्दर्शन अकेला नहीं।... आता है न? सुदर्शन अर्थात् सम्यग्दर्शन, आत्मा के अनुभव की प्रतीति, उसका ज्ञान और अन्तर तीन कषाय के अभाव का चारित्र। तथा बाह्य में जिसका नग्न दिगम्बर लिंग और बाह्य में बहुत हो तो अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प। समझ में आया? उसे यहाँ सुदर्शन कहा गया है। सुदर्शन अर्थात् भला सम्यग्दर्शन, ऐसा नहीं। सुदर्शन अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान और वीतरागता प्रगटी है और बाह्य में नग्न दिगम्बरदशा है, उसे यहाँ सुदर्शन कहते हैं। ऐसे मार्ग की श्रद्धा अन्दर आत्मा का आश्रय करके निर्विकल्प करना और इसके अतिरिक्त के मार्ग की श्रद्धा छोड़ना, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? देखो!

सुदर्शन अर्थात् सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र स्वरूप सम्यक्मार्ग... सच्चा मार्ग। वीतराग परमात्मा अनन्त तीर्थंकर, केवलियों ने कहा हुआ। सीमन्धर भगवान भी महाविदेहक्षेत्र में यही मार्ग कहते हैं और यही मार्ग है। ऐसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र—ऐसा जो जैनदर्शन, जैनलिंग, अन्तर का और बाह्य का, ऐसे मार्ग के प्रति **उत्साहभावना अर्थात् ग्रहण करने का उत्साह...** ओ...हो..! यह मार्ग ही अलौकिक है। भव के अन्त लाने का यही मार्ग है। समझ में आया? **'णाणमग्गेण'** है न इसमें? ज्ञानमार्ग से यथार्थ जानकर। ज्ञान से उसे यथार्थ जानना चाहिए, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भले चारित्र निर्ग्रन्थदशा न हो सके परन्तु निर्ग्रन्थ मुनिदशा तीन कषाय का अभाव और जिसमें वस्त्र के धागे का भी त्याग, ऐसी वीतरागदशा की मुद्रा, उसका उसे उत्साह और भावना होनी चाहिए। समझ में आया? है इसमें? देखो! लिखा है। इसमें है? क्या है? सुदर्शन की व्याख्या क्या है?

तीनों होकर सुदर्शन कहा। अकेले सम्यग्दर्शन को सुदर्शन नहीं। यहाँ तो पूरा वीतरागी मार्ग निर्ग्रन्थ मुनि, निर्ग्रन्थ वीतरागी दशा और बाह्य वेश नग्न दिगम्बर अचेल, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन हो, उसे सुदर्शन कहा जाता है। और उसकी श्रद्धा—ऐसा ही मार्ग वीतराग का है, दूसरा मार्ग है नहीं। समझ में आया? ऐसी अन्दर श्रद्धा स्वरूप का आश्रय करके विकल्प रहित आत्मा की श्रद्धा, उसे यहाँ सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया?

अब उत्साह। **बारम्बार चिन्तवनरूप भाव...** भाव की व्याख्या की न? उत्साह, भावना, स्वरूप भाव, बारम्बार भाव। ओहो! वीतरागी मुनि की दशा जैनमार्ग वह है। वीतराग मार्ग। जिसमें एक वस्त्र के धागे का भी परिग्रह मुनि को होता नहीं। एक वस्त्र का धागा रखकर भी जिसने मुनिपना माना, मनाया, मानते हुए को भला जाना, वह निगोद गच्छई। श्रद्धा का पूरा अन्तर किया है, कहते हैं। निगोद में जायेगा। मार्ग ऐसा है। समझ में आया? बारम्बार उसका चिन्तवन करना कि, ओहो..! वीतरागी दृष्टि और वीतरागी चारित्र। ऐसा होता है वीतराग का मार्ग, उसकी श्रद्धा करके बारम्बार उसका चिन्तवन (करना)।

प्रशंसा... 'पसंस' उसकी प्रशंसा मन, वचन, काया से करके। मन से प्रशंसा, वचन से स्तुति, काय से स्पर्शना। अथवा अन्दर भावना काया द्वारा भी यही रखना।

वीतरागमार्ग यह है। समझ में आया ? कुन्दकुन्दाचार्य महाराज स्वयं साक्षात् परमात्मा के पास गये थे, आठ दिन रहे थे। बापू! यह मार्ग फेरफार हो गया। जैनमार्ग के विभाजन हो गये। दुष्काल के कारण सच्चा मार्ग रख नहीं सके। इसलिए कहते हैं, मन, वचन, काया से ऐसे वीतरागमार्ग की प्रशंसा, स्तुति और काया द्वारा भी उसका ही अनुमोदन करना।

स्तुति करना,... भला जानकर स्तुति करना, सेवा अर्थात् उपासना,... उस मार्ग की सेवा, पूजना, सत्कार, आदर भी उस मार्ग का करना, कहते हैं। **और श्रद्धा करना,...** उस मार्ग की श्रद्धा। **इस प्रकार ज्ञानमार्ग से...** ज्ञान में ऐसा स्वरूप वीतरागी निर्ग्रन्थ मुनि का होता है, जैनदर्शन का ऐसा ज्ञान में निर्णय करके श्रद्धा करना। समझ में आया ? कहते हैं कि ज्ञान में तुलना करना। वीतराग का अनादि सनातन मार्ग कैसा है, उसका ज्ञान द्वारा निर्णय करना। ज्ञान में उसे लक्ष्य में लेना। समझ में आया ? ऐसे बिना भान के मानना, ऐसा नहीं। इसके ज्ञान में आना चाहिए। ओहो! सर्वज्ञ का कहा हुआ मोक्षमार्ग अर्थात् मुनिमार्ग। मुनिमार्ग अर्थात् जैनदर्शन। जैनदर्शन अर्थात् वीतरागी पर्याय सहित की जिनमुद्रा। ज्ञानमार्ग में इसका निर्णय करना कि मार्ग यह है। भगवानजीभाई! भारी बात।

वे जैनशासनवाले लिखते हैं कि यह सब करके फिर इन्हें ढूँढिया बनायेंगे। अररर! क्या करता है तू यह ? फिर मन्दिर के उपाश्रय बना देंगे। फिर इस मानस्तम्भ का क्या करेंगे ? अरे! गजब करता है न! ऐई! कहाँ गये ? भोगीभाई! तुम्हारे लिखते हैं वहाँ से। हिम्मतनगर से। वह कोटडिया है न ? आहाहा! अरे! भगवान! ऐसा कि इन लोगों को पहले ऐसा करके फिर सबको स्थानकवासी बनायेंगे। अरे! भगवान! स्थानकवासी धर्म ही यहाँ तो कुमत कहते हैं न! समझ में आया ? ढूँढिया का धर्म और श्वेताम्बर का धर्म ही दोनों कुमत है। जैनमत है नहीं। समझ में आया ? बापू! मार्ग यह है। कोई पक्ष से मान ले वह बात है नहीं।

इस प्रकार जो पुरुष ज्ञानमार्ग से यथार्थ जानकर करता है, वह जिनमत की श्रद्धारूप सम्यक्त्व को नहीं छोड़ता है। वीतराग मार्ग ऐसा है, इसकी उसे श्रद्धा हुई हो, वह ऐसे ही मार्ग की सेवा, प्रशंसा, सेवा और स्तुति करे तो उसका समकित जाता नहीं, परन्तु समकित की रक्षा होती है। ऐई! नेमिचन्दभाई! क्या है यह ? ऐसा मार्ग है, बापू! यह भी सच्चा और यह भी सच्चा, ऐसा खिंचड़ा वह वीतराग मार्ग में नहीं चलता। उसमें भी

कुछ होगा और इसमें भी कुछ होगा। ऐई! नवलचन्दभाई! वे आये थे न तुम्हारे? अब ढीला करके कहते हैं, धीरे-धीरे। दोपहर में फिर अच्छा आया था। मार्ग तो ऐसा है।

स्थानकवासी में तो हमें प्रभुरूप से मानते थे। बहुमान था। तीन-तीन हजार लोग तब, हों! (संवत्) १९८९ में। राजकोट। कहा, यह सब भागेंगे जहाँ परिवर्तन करूँगा... यह तो एक बात है। तब तो, आहाहा! तीन-तीन हजार लोग। सुरेन्द्रनगर थे न पहले? तीन-तीन हजार लोग। इतने लोग धर्मशाला में बाहर समाये नहीं। मोरबीवाले वे भाई थे न? मनसुखभाई न? जैन के ऊपरी नहीं थे? लम्बे, ऊँचे। वे आये तो बैठने की जगह नहीं मिले। इतने लोग। बाहर धर्मशाला है न? भोजनशाला में रखा था। भोजनशाला में रखा था। तीन हजार लोग। बड़े पतासा और बड़ी भेंट। चौंतीस तो आर्यिका, बड़ा समवसरण दिखाई दे। मैंने जादवजीभाई को कहा था, हों! जादवजीभाई को तब मैंने कहा था। पहले ९९ तक रहे फिर बदल गये। जादवजीभाई को कहा था, देखो! यह सब ठाठ-बाट है, वह सब बदल जानेवाला है। ... आहाहा! मार डाले जगत को। दुनिया की महत्ता देखने से, मान देखने से जीव मर गया। स्वयं वस्तु वीतराग मार्ग महा सन्तों ने, केवलियों ने कहा हुआ, उससे विरुद्ध वह तो उसका अनादर और शत्रुता होती है। कुन्दकुन्दाचार्य जैसे मुनि भावलिंगी सन्त, वे पुकार करते हैं, ऐसे देखो! समझ में आया? दिगम्बर जैनधर्म के अतिरिक्त कोई धर्म है नहीं। दिगम्बर अर्थात् अन्दर के भानवाला, हों! बाहर के सम्प्रदाय की नहीं।

मुमुक्षु : भाव दिगम्बर की ही बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव दिगम्बर। आहाहा! जिसे अन्दर में वृत्ति के वस्त्र नहीं, वृत्ति नहीं जिसे। वीतराग... वीतराग... वीतराग... आता है न उसमें? आत्मावलोकन। मुनि वीतराग... वीतराग... वीतराग की ही बात करे। मार्ग वीतराग है, भाई! बीच में दया, दान, व्रत के परिणाम आवें, वह तो राग है, वह कहीं मार्ग नहीं है। ऐसा आत्मावलोकन में श्लोक है। मूहु... मूहु... वीतराग। बारम्बार वीतराग। विकल्प के रागरहित समकित, रागरहित का ज्ञान, रागरहित का चारित्र। ऐसे मुनि तो वीतराग का ही उपदेश दें। वीतरागभाव का उपदेश दें। राग रखने का उपदेश दें नहीं। समझ में आया?

आत्मावलोकन है न? दीपचन्दजी कृत। दीपचन्दजी। यह चिद्विलास, अनुभव

प्रकाश बनाया हुआ। उनका बनाया हुआ है। मूहु... मूहु... वीतराग। पुण्य और पाप के विकल्परूपी राग, उससे रहित आत्मा की दृष्टि, उनसे रहित आत्मा का ज्ञान, उनसे रहित आत्मा की रमणतारूप चारित्र—वीतरागदशा। ऐसी प्ररूपणा में मुनि वीतरागभाव को प्ररूपित करते हैं। रागभाव को बतलाते हैं, परन्तु राग आदरणीय है और उसके कारण से आगे बढ़ा जायेगा, यह बात वीतराग मार्ग के अन्दर है नहीं। समझ में आया?

वह जिनमत की श्रद्धारूप सम्यक्त्व को नहीं छोड़ता है।

भावार्थ – जिनमत में उत्साह, भावना, प्रशंसा, सेवा, श्रद्धा जिसके हो, वह सम्यक्त्व से च्युत नहीं होता है। तो वह श्रद्धा-समकित से भ्रष्ट नहीं होता। और यदि उसके अतिरिक्त दूसरे मत के अभिप्राय की प्रशंसा की, यह भी चीज़ है (तो) समकित से भ्रष्ट हो जायेगा। समझ में आया? चौदह (गाथा पूरी) हुई। १५।

गाथा-१५

आगे अज्ञान मिथ्यात्व कुचारित्र के त्याग का उपदेश करते हैं –

अण्णाणं मिच्छत्तं वज्जह णाणे विसुद्धसम्मत्ते।
अह मोहं सारंभं परिहर धम्मे अहिंसाए।।१५।।

अज्ञानं मिथ्यात्वं वर्जय ज्ञाने विशुद्धसम्यक्त्वे।
अथ मोहं सारंभं परिहर धर्मे अहिंसायाम्।।१५।।

अज्ञान तज सुज्ञान मिथ्या छोड़ समकित शुद्ध में।
सारंभ मोह तजो सदा सब अहिंसामय धर्म में।।१५।।

अर्थ – **आचार्य कहते हैं कि हे भव्य ! तू ज्ञान के होने पर तो अज्ञान का त्याग कर, विशुद्ध सम्यक्त्व के होने पर मिथ्यात्व का त्याग कर और अहिंसा लक्षण धर्म के होने पर आरंभसहित मोह को छोड़।**

भावार्थ – **सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की प्राप्ति होने पर फिर मिथ्यादर्शन 'ज्ञान, चारित्र में मत प्रवर्तो, इसप्रकार उपदेश है।।१५।।**

गाथा-१५ पर प्रवचन

आगे अज्ञान मिथ्यात्व कुचारित्र के त्याग का उपदेश करते हैं –

अण्णाणं मिच्छत्तं वज्जह णाणे विसुद्धसम्मत्ते।
अह मोहं सारंभं परिहर धम्मे अहिंसाए।।१५।।

अर्थ – आचार्य कहते हैं कि हे भव्य ! तू ज्ञान के होने पर तो अज्ञान का त्याग कर,... आत्मा का सम्यग्ज्ञान करके अज्ञान को छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। आत्मा पवित्र आनन्द का धाम, शुद्ध चैतन्य परमात्मा, ऐसा निजात्मा का ज्ञान कर, अज्ञान छोड़ दे। **त्याग कर,...** देखो! यह पहले ज्ञान करके अज्ञान का त्याग कर, (ऐसा कहते हैं)। अभी अज्ञान का त्याग नहीं होता, ज्ञान का भान नहीं होता, उसे बाहर का त्याग सच्चा कहाँ से आवे? ऐसा कहते हैं। देखो! **अज्ञान का त्याग कर,...** समझ में आया?

विशुद्ध सम्यक्त्व के होने पर मिथ्यात्व का त्याग कर... आहाहा! मिथ्या शल्य, अन्दर झूठी मान्यता, वह आत्मा का सम्यग्दर्शन ग्रहण करके मिथ्या शल्य को छोड़। उसका पहला त्याग चाहिए। अज्ञान और मिथ्यात्व का त्याग, ज्ञान और समकित का ग्रहण। समझ में आया? पहली यह दशा है। पश्चात् **अहिंसा लक्षण धर्म के होने पर आरंभसहित मोह को छोड़।** चारित्र। ऐसा कहते हैं। अहिंसा लक्षण धर्म। रागभाव की उत्पत्ति वह हिंसा है। राग की उत्पत्ति, वह हिंसा है। उस राग की उत्पत्तिरहित आत्मा की अरागी दशा की उत्पत्ति होना, वह अहिंसा है। समझ में आया? अहिंसा लक्षण धर्म।

राग, चाहे तो शुभराग हो, है तो वह हिंसा। आहाहा! अहिंसा परमो धर्म। वह राग की उत्पत्ति नहीं और वीतरागपने की उत्पत्ति, उसे यहाँ अहिंसा कहते हैं। उस अहिंसा को अंगीकार करके सारम्भ हिंसा आदि के भाव को छोड़, इसका नाम चारित्र। समझ में आया? अहिंसा लक्षण धर्म, वीतरागी लक्षण धर्म। **आरंभसहित मोह को छोड़।** आरम्भ अर्थात् राग की प्रवृत्ति को छोड़। चारित्र अंगीकार कर। समझ में आया? राग के त्याग का भाव और चारित्र का ग्रहण, इसका नाम संयम। **आरंभसहित मोह को छोड़।** है न पाठ में? **'मोहं सारंभं'** वास्तविक आरम्भ तो अन्दर राग-द्वेष की प्रवृत्ति होना, वही आरम्भ

है। आत्मा में राग–द्वेष का उत्पन्न होना, वही आरम्भ है। वह राग–द्वेष की उत्पत्ति न होकर वीतराग की उत्पत्ति करना, वह अनारम्भी चारित्र प्रव्रज्या है। समझ में आया? वह अनारम्भी प्रव्रज्या—चारित्र।

भावार्थ – सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की प्राप्ति होने पर फिर मिथ्यादर्शन 'ज्ञान, चारित्र में मत प्रवर्तो, इसप्रकार उपदेश है। चारित्र... है न? मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र में न प्रवर्त। वस्तु के स्वरूप की दृष्टि, स्वरूप का ज्ञान और रागरहित वीतरागी अहिंसा को अंगीकार करके और फिर मिथ्या आदि में प्रवर्ते नहीं। मिथ्याश्रद्धा, ज्ञान में न प्रवर्ते।

गाथा-१६

आगे फिर उपदेश करते हैं –

पव्वज्ज संगचाए पयट्ट सुतवे सुसंजमे भावे।
होइ सुविसुद्धझाणं णिम्मोहे वीयरायत्ते।।१६।।

प्रव्रज्यायां संगत्यागे प्रवर्त्तस्व सुतपसि सुसंयमेभावे।
भवति सुविशुद्धध्यानं निर्मोहे वीतरागत्वे।।१६।।

नित प्रवर्तो अपरिग्रही दीक्षा सुतप संयममई।
निर्मोह–युत वैराग्य में सुविशुद्ध ध्यान सधे सभी।।१६।।

अर्थ – **हे भव्य ! तू संग अर्थात् परिग्रह का त्याग जिसमें हो ऐसी दीक्षा ग्रहण कर और भले प्रकार संयमस्वरूप भाव होने पर सम्यक् प्रकार तप में प्रवर्तन कर जिससे तेरे मोहरहित वीतरागपना होने पर निर्मल धर्म शुक्लध्यान हो।**

भावार्थ – **निर्ग्रन्थ हो दीक्षा लेकर संयमभाव से भले प्रकार तप में प्रवर्तन करे, तब संसार का मोह दूर होकर वीतरागपना हो, फिर निर्मल धर्मध्यान शुक्लध्यान होते हैं, इस प्रकार ध्यान से केवलज्ञान उत्पन्न करके मोक्ष प्राप्त होता है, इसलिए इस प्रकार उपदेश है।।१६।।**

गाथा-१६ पर प्रवचन

अब फिर कहेंगे, देखो! **आगे फिर उपदेश करते हैं :– 'पव्वज्ज संगचाए'** छूटक दोहे में आता है। छूटे दोहे नहीं आते? ऐई! छूटे दोहे पहले थे न? प्रव्रज्या... क्या? आरम्भे नहीं दया... फिर कुछ (आता है)। भूल गये सब? प्रव्रज्या संग... ऐसा करके कुछ शब्द आता है।

पव्वज्ज संगचाए पयट्ट सुतवे सुसंजमे भावे।
होइ सुविसुद्धझाणं णिम्मोहे वीयरायत्ते।।१६।।

अर्थ – **हे भव्य ! तू संग अर्थात् परिग्रह का त्याग जिसमें हो, ऐसी दीक्षा ग्रहण कर...** जिसमें वस्त्र का भी त्याग हो, ऐसी दीक्षा को ग्रहण कर, ऐसा कहते हैं। आत्मा के भान और स्थिरतासहित की बात है, हों! और उस दीक्षा बिना तेरा कल्याण कभी है नहीं। आहाहा! **तू संग अर्थात् परिग्रह का त्याग जिसमें हो, ऐसी दीक्षा ग्रहण कर...** शब्द आता अवश्य है। प्रव्रज्या। आरम्भे नहीं दया... ऐसा करके छूटक दोहे आते हैं न? **ऐसी दीक्षा ग्रहण कर...** दीक्षा इसे कहते हैं वीतराग मार्ग में कि जहाँ अन्तर में वीतरागदशा है, बाह्य में वस्त्र का एक टुकड़े का भी परिग्रह नहीं होता। समझ में आया? उसे वीतराग मार्ग में दीक्षा कहा जाता है। यह सब वस्त्र सहित मुनिपना लेते हैं, वह सब दीक्षा नहीं है, वह मिथ्यात्व की दीक्षा है। मिथ्यात्व को गाढ़ करना, पुष्टि करना, उसकी वह दीक्षा है। तुम्हारी लड़कियों ने—भतीजियों ने ली है न? दीक्षा ली है न? तुमने नहीं किया होगा कुछ? आहाहा! वह दीक्षा नहीं है। समझ में आया? स्थानकवासी, श्वेताम्बर धर्म ही जैनधर्म नहीं। उसमें दीक्षा, वह तो दख्या है। दु:ख को अंगीकार करता है। ऐसा मार्ग है। क्या हो? किसी पक्षवाले को दु:ख लगे। परन्तु सत्य इसके अतिरिक्त कैसे कहा जाये? और सबको चैन पड़े, ऐसा सत्य तो कहाँ से होगा? समझ में आया?

कहते हैं कि हे भव्य! **'पयट्ट... पयट्ट'** है न? प्रवर्त। प्रवर्त, ऐसा हुक्म किया। आज्ञा की।... हे भव्य! दीक्षा अंगीकार कर तो ऐसी कर। कहो, नेमिदासभाई! किसी को दी है या नहीं? कौन जाने और सेठिया कहलाये वे। पड़े हों सम्प्रदाय में। वह भी वापस आये हैं, हों! वास्तव में तो घर से महिलायें पहले आती थीं। यह तो फिर भटकते-भटकते

आये हैं। बहिन पहले ९६ में अमरेली आयी थीं। ९६ की बात है। तब तुम्हारा कोई अभी ठिकाना नहीं था। ऐसा था। ९६ में थे। अमरेली। बाहर व्याख्यान पढ़ते थे न, वहाँ ९६ के वर्ष, गये तीस।

कहते हैं कि ऐसी दीक्षा ग्रहण कर कि भगवान वीतराग ने कही वह। जिसमें वस्त्र का परिग्रह नहीं, पात्र का परिग्रह नहीं, जिसमें उसके लिये बनाये हुए मकान में रहना नहीं। समझ में आया? उसके लिये आहार-पानी बनाये हों, उसके लेने का त्याग हो। ऐसी दीक्षा, नग्नपना-मुनिपना वीतराग, ऐसी दीक्षा ग्रहण कर, भाई! नहीं तो दूसरी दीक्षा नहीं है।

और भले प्रकार संयमस्वरूप भाव होने पर सम्यक् प्रकार तप में प्रवर्तन कर... कहते हैं, **भले प्रकार संयम...** छह काय की हिंसा का त्याग, पंच इन्द्रिय और छठे मन के विषय का त्याग, ऐसा संयम। आहाहा! बारह प्रकार का संयम आता है न? छह काय का छह, पाँच और इन्द्रिय और तथा मन, इनका संयम कर। इनके ऊपर से दृष्टि उठा ले, विकल्प छोड़ दे। निर्विकल्प आत्मा का संयम। पाँच इन्द्रिय, छह काय से छूटकर अतीन्द्रिय, अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द में लीन होना, उसे संयम कहा जाता है। समझ में आया? ऐसे संयमसहित **होने पर सम्यक् प्रकार तप में...** ऐसे संयमसहित हो और फिर इच्छा निरोध का तप हो तो वह सच्चा। परन्तु अभी तो सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं, संयम का ठिकाना नहीं और अपवास करे और निर्जरा, तपस्या हो जाए। यह सब मार्ग उल्टा है, ऐसा कहते हैं। दीक्षा ग्रहण कर तो जिसमें वस्त्र आदि परिग्रह न हो ऐसी। और संयम ऐसा अंगीकार कर कि जिसमें किसी प्रकार की अतीन्द्रिय ज्ञान, आनन्द के अतिरिक्त दूसरी इच्छामात्र न हो। ऐसे संयमभावसहित तप कर। इच्छा का निरोध करके अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद ले, वह तप। समझ में आया?

जिससे तेरे मोहरहित वीतरागपना होने पर... देखो! जिससे तुझे मोहरहित वीतरागपना हो। आहाहा! ...परन्तु किस प्रकार का? पुण्य-पाप का विकल्प जो है न? दया, दान का वह विकल्प भी हिंसा है। आहाहा! उसके अभाव की वीतरागदशा, संयम सहित में, इच्छा का निरोध अर्थात् उत्पत्ति न हो और आनन्द की उत्पत्ति अरागी, वीतरागी की हो, ऐसे तप को अंगीकार कर। समझ में आया? उसे तप कहते हैं। इसलिए कहा न?

भले प्रकार संयमस्वरूप भाव होने पर सम्यक् प्रकार तप में प्रवर्तन कर... ऐसा। संयम बिना का अकेला तप और सम्यग्दर्शन बिना का तप, वह तप नहीं है। वह तो लंघन है और मिथ्यात्व का पोषण है। समझ में आया?

मोहरहित वीतरागपना होने पर... वीतराग धर्म है न यह? वीतराग धर्म तो वीतरागी दृष्टि से उत्पन्न होता है। वीतरागी दृष्टि, वह सम्यक्; वीतरागी ज्ञान, वह ज्ञान और वीतरागी भाव, वह चारित्र। उसमें कोई राग की अपेक्षा जिसे है नहीं, ऐसा निरपेक्ष मार्ग निश्चय है। समझ में आया? मार्ग अंगीकार करना हो तो उसकी बात है। परन्तु अब हम तो बड़े पाप के पोटले में पड़े हैं, अभी पाप के परिणाम तो छुड़ाओ, इसके बिना यह सब पुण्य-पाप भिन्न परन्तु पहली दृष्टि हुए बिना पाप के परिणाम... मिथ्यात्व पाप नहीं? अज्ञान पा नहीं? असंयम, अचारित्र पाप नहीं? यह तीनों पाप हैं। उसमें मिथ्यात्व पाप छूटे बिना अज्ञान छूटेगा किस प्रकार? और अज्ञान छूटे बिना अचारित्र छूटेगा किस प्रकार? समझ में आया? मार्ग ऐसा है, बापू! आहाहा!

इन्द्र और गणधर जो बात सुनते होंगे, वह कैसी बात होगी? इन्द्र तीन ज्ञान के धनी, एकावतारी—एक भव में मोक्ष जानेवाले, शकेन्द्र, ईशानेन्द्र, वे भगवान की सभा में वीतराग-कथा सुनते होंगे... आहाहा! तीन ज्ञान का धनी तो शकेन्द्र स्वयं है। एकावतारी है, एक भव में मोक्ष जानेवाला है। वह ऐसी साधारण बात होगी कि इसकी दया पालो और व्रत ऐसे करो और तपस्या करो और अपवास करो, ऐसी बातें वहाँ होंगी? ऐसी बात तो कुम्हार भी करता है। समझ में आया?

पहले था न? श्रावण महीने में कुम्हार निभाड़ा नहीं करता। तेली घानी नहीं चलाता। बनिये का नाम था इतना। हमारे उमराला में बहुत नाम था। महीने पहले सेठिया सुपारी लेकर जाये। ...उस महीने घानी नहीं चलते। जादवजीभाई! ऐसा था पहले। वे लोग न चलावे, मुसलमान न चलावे। श्रावण के महीने घानी नहीं। ऐसी बात तो साधारण है। बापू! यह तो राग में आत्मा पिलता है, घानी, उसे छोड़ – ऐसा कहते हैं। समझ में आया? स्वरूप ही जहाँ वीतरागी चिदानन्दस्वरूप है, उसमें विकल्पमात्र का उत्पन्न होना, चाहे तो महाव्रत का विकल्प हो, वह हिंसा है, इसलिए कहते हैं, देखो!

वीतरागपना होने पर निर्मल धर्म-शुक्लध्यान हो। लो, भाई! उस धर्मध्यान

को शुभभाव कहते हैं न? यहाँ तो कहते हैं, **वीतरागपना होने पर निर्मल धर्म–शुक्लध्यान हो।** है न? **'सुविसुद्धझाणं'** कहो।... होगा? धर्मध्यान तो शुभ उपयोग ही धर्मध्यान। यहाँ तो **'सुविसुद्धझाणं'**। इसका अर्थ फिर ध्यान के दो अर्थ किये। धर्मध्यान और शुक्लध्यान। समझ में आया? वे लोग अभी पण्डित बहुत कितने ही (कहते हैं), शुभभाव, वह धर्मध्यान और शुद्धभाव, वह शुक्लध्यान। शुभभाव तो आर्तध्यान है, वह तो राग है। समझ में आया?

मोहरहित वीतरागपना होने पर... ऐसा है न? देखा? **'सुविसुद्धझाणं णिम्मोहे वीयरायत्ते'** अन्दर वीतरागदशा मोहरहित होने पर उसे धर्मध्यान और शुक्लध्यान होता है। समझ में आया? शुक्लध्यान तो अभी है नहीं। तब अकेले शुक्लध्यान की बात है इसमें? यह डाला, बराबर स्थान में डाला है। समझ में आया? धर्मध्यान अर्थात् शुभ–अशुभ, दया, दान, व्रत के विकल्प रहित आत्मा शुद्ध चैतन्य वीतरागमूर्ति का ध्यान, उसे धर्मध्यान कहते हैं। वह धर्मध्यान शुभरागरूप नहीं है। मोहरहित वीतरागभावरूप वह धर्मध्यान है। समझ में आया?

भावार्थ :- ... ऊपर... होई **'सुविसुद्धझाणं सुविशुद्धध्यानं निर्मोहे'** सूत्रकलश... इसका स्पष्टीकरण किया है, बात सत्य है। क्योंकि अभी तो धर्मध्यान है न, शुक्लध्यान नहीं। यह कहना चाहते हैं **'सुविसुद्धझाणं'** मोहरहित वीतरागभाव, वह धर्मध्यान है, ऐसा यहाँ कहना चाहते हैं। समझ में आया?

भावार्थ – निर्ग्रन्थ हो दीक्षा लेकर... निर्ग्रन्थ होकर दीक्षा ले। **संयमभाव से भले प्रकार तप में प्रवर्तन करे,...** ऐसा। फिर संयमसहित इन्द्रियदमन, अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन में रहकर संयमपना (आदरे)। उसमें **तप में प्रवर्तन करे, तब संसार का मोह दूर होकर...** तब अन्दर का राग दूर हो। **तब वीतरागपना हो,...** जब रागरहित अन्तर की दृष्टि, ज्ञान, स्थिरता—चारित्र हो, **फिर निर्मल धर्मध्यान–शुक्लध्यान होते हैं,...** समझ में आया? वे तो एक ही कहते हैं कि धर्मध्यान अर्थात् शुभभाव, बस! अभी शुक्लध्यान नहीं है अर्थात् शुद्धभाव नहीं है। अभी शुद्ध उपयोग नहीं होता, जाओ! यहाँ तो आचार्य कहते हैं कि यह हम कहते हैं कि ऐसा कर, प्रवर्त। प्रवर्त कहते हैं। पंचम काल के प्राणी को प्रवर्त कहते हैं। ऐसा है न? **'पयट्ट'** प्रवर्त। तू सुविशुद्ध ध्यान में प्रवर्त

और वह ध्यान कैसा है ? कि मोहरहित वीतरागपना है वह। अब उसमें क्या कहना है ? समझ में आया ? सीधे कठिन पकड़े कठिन, कोई आधार है कहीं ? ऐसा प्रश्न हो। उसका आधार यह। राग का भी आधार नहीं, ऐसा मार्ग है। उसका निर्णय तो सच्चा करे। आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान को पकड़ने के लिये विकल्प का आश्रय भी जहाँ आवश्यक नहीं। ऐसा मार्ग निरपेक्ष परमात्मा का स्वभाव है।

एकदम ऐसा कहे कि आत्मा यह है, पकड़ में न आता हो तो पहला कुछ आधार ? विकल्प आवे पहले कि ऐसा हूँ, ऐसा हूँ। परन्तु वह विकल्प है, इसलिए निर्विकल्प हो, ऐसा नहीं है। मार्ग ऐसा है, भाई ! समझ में आया ? पहले विकल्प आवे कि मैं शुद्ध हूँ, ध्रुव हूँ, परिपूर्ण हूँ, आनन्द हूँ, अक्रिय हूँ, ऐसा विकल्प आवे, परन्तु वह विकल्प है, वह अन्दर निर्मल होने का साधन है, ऐसा नहीं है। आत्मा को पकड़ने का वह विकल्प साधन नहीं है। ऐसा उसका निरपेक्षरूप से निर्णय तो करे। जिसे राग की अपेक्षा नहीं, जिसे व्यवहार की अपेक्षा नहीं, ऐसा भगवान आत्मा सीधे श्रद्धा और ज्ञान में ज्ञात होता है। ज्ञान और श्रद्धा में अनुभव में आता है। ऐसा आत्मा का स्वरूप है। प्रत्यक्ष ज्ञाता स्वभाव। है न ? अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। अलिंगग्रहण, छठवाँ बोल। छठवाँ बोल है न ?

कैसा है आत्मा ? कि अपने स्वभाव से ज्ञात हो ऐसा। विभाव से, विकल्प से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। अरे... गजब मार्ग। कैसा है आत्मा ? अलिंगग्रहण के बीस बोल में छठवाँ बोल। अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। सत्य बात है। जिसे विकल्प की भी अपेक्षा नहीं, ऐसा अपने शुद्ध स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा है। राग और मन की अपेक्षा रखे बिना प्रत्यक्ष ज्ञात हो, ऐसा आत्मा है। प्रत्यक्ष ज्ञाता है, ऐसा आत्मा है। उसे दूसरे प्रकार से कल्पित करना कि यह विकल्प करें, इससे मिलेगा, ऐसा आत्मा है नहीं। ऐसा आत्मा नहीं है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : विकल्प में ख्याल में आया हो, वह सब पानी में गया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प का निर्णय, वह निर्णय ही नहीं है। विकल्प में, राग में कहाँ ताकत थी ? चेतन बिना का विकल्प, उससे निर्णय ? वह निर्णय नहीं। ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान का निर्णय ज्ञान से निर्णय। ऐसा ही उसका स्वभाव है, भगवान कहते हैं। इस प्रकार दूसरे प्रकार से माने तो तू आत्मा है, ऐसा तू जानता ही नहीं। समझ में आया ?

प्रवचनसार में अलिंगग्रहण के बीस बोल हैं। अलिंगग्रहण, बीस बोल। उसमें छठवाँ बोल यह है।

भगवान आत्मा अपने स्वभाव से ही ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। परोक्ष रहे, ऐसा उसका स्वभाव नहीं। आहाहा! समझ में आया? प्रत्यक्ष ज्ञाता ही है। वस्तु ही ऐसी है। क्योंकि उसमें एक प्रकाश नाम का गुण पड़ा है। कि जो प्रत्यक्ष हो, वह उसका गुण है। प्रत्यक्ष रहे, ऐसा कोई गुण उसमें नहीं है। पर्याय में राग की एकता से खड़ा किया हुआ है। समझ में आया? वस्तु चैतन्यनाथ वीतरागस्वभाव से भरपूर, वह अपने स्वभाव से वीतरागभाव से ज्ञात हो, ऐसा कहते हैं। राग उसका स्वभाव नहीं कि राग ज्ञात हो तो राग से ज्ञात हो। ओहोहो! व्यवहार से निश्चय ज्ञात हो, यह बात तो कहीं उड़ा दी। लोगों को अपना स्वरूप कैसा है, उसका माहात्म्य नहीं आता। इसलिए यहाँ से होगा, यहाँ से होगा। कहीं से होगा, ऐसा नहीं है। स्व का आश्रय लिये बिना सब थोथा-थोथा है।

मुमुक्षु : थोथा-थोथा है अर्थात?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अज्ञान वह मिथ्यात्व है, संसार है। अज्ञान, मिथ्यात्व क्या होगा? दुःख का पर्वत है।

वस्तु चैतन्यस्वभावी वीतरागभावी, वर्तमान है। उसे अपने को जानने के लिये दूसरे राग और मन की अपेक्षा नहीं है, ऐसा उसका स्वरूप है। और वह भी प्रत्यक्ष ज्ञाता उसका स्वरूप है। आहाहा! मति-श्रुतज्ञान में भी प्रत्यक्ष हो, ऐसा ही उसका स्वभाव है। आहाहा! गजब बात की। ऐसी बात दिगम्बर सन्तों के बिना कहीं नहीं मिलती। यह बात कहीं है ही नहीं। लोग विचारते नहीं। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, आत्मा परमेश्वर वीतरागदेव ने जो आत्मा कहा, वह यह आत्मा ज्ञान और आनन्द के स्वभाव से भरपूर पदार्थ है। उसे भगवान ने आत्मा कहा। यह शरीर, वाणी, मन तो जड़, मिट्टी, धूल है। अन्दर में पुण्य और पाप, शुभ और अशुभ, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा का भाव (आवे), वह शुभराग है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग का भाव (आवे), वह पापराग है। इन दोनों राग से भिन्न भगवान है। भगवान ने कहा हुआ, परमेश्वर ने कहा हुआ आत्मा, तीर्थंकरदेव केवलज्ञान में देखा वह आत्मा तो ज्ञान, शान्ति, आनन्द,

और वीतरागभाव से भरपूर आत्मा है। वह वीतरागभाव से ज्ञात हो, ऐसा आत्मा है। भारी कठिन जगत को। समझ में आया?

अपने स्वभाव से (ज्ञात हो ऐसा है)। अपना स्वभाव अर्थात् कौन सा? ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीतरागस्वभाव, इसका (आत्मा का) स्वभाव है। अपने स्वभाव से ज्ञात हो ऐसा है। यह विभाव अर्थात् पुण्य और पाप के विकल्प के राग से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! भारी कठिन। जाना कहाँ है? यह कौन है, इसकी खबर नहीं होती। बाहर में भटका भटक (करे)। अन्दर में चिदानन्द का महा निधान पड़ा है। अकेला आनन्द का धाम और ज्ञान का पिण्ड प्रभु चैतन्य है। ऐसा चैतन्य अपने को जानने के लिये, अपना स्वभाव कारण है। धर्म होने के लिये कहते हैं कि स्वभाव कारण है। आहाहा! समझ में आया? परमेश्वर वीतरागदेव त्रिलोकनाथ ऐसा कहते हैं। भाई! तू प्रभु! तेरे ज्ञान से भरपूर स्वभाव है न तेरा। यह शरीर-बरीर तो जड़, मिट्टी, धूल है। यह पुण्य-पाप के भाव हों, वे तो अन्दर में विचार और विकल्प और राग है। उनसे तू खाली और तेरे ज्ञान और आनन्द के स्वभाव और वीतरागभाव से भरपूर है। कैसे जँचे? कभी नजर नहीं की, सुना नहीं। आहाहा! समझ में आया?

त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव की इन्द्र और गणधर की उपस्थिति में परमात्मा ऐसा प्रसिद्ध करते थे। भाई! तू प्रभु है न! आहाहा! पामर को प्रभु कहकर बुलाते हैं। पामर नहीं, भगवान! आहाहा! जितने भगवान परमात्मा हुए, वे कहाँ से हुए? यह परमात्मपना बाहर से आता है? अरिहन्तपना वह अन्दर में पड़ा है, वह बाहर आया। आहाहा! ऐसा आत्मा वीतरागभाव से ज्ञात होता है। उसका धर्म वीतरागभाव से होता है। राग भाव से और संयोगभाव से नहीं होता। यह बात विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-१७

आगे कहते हैं कि यह जीव अज्ञान और मिथ्यात्व के दोष से मिथ्यामार्ग में प्रवर्तन करता है।

मिच्छादंसणमग्गे मलिणे अण्णाणमोहदोसेहिं।
वज्झंति मूढजीवा [1]मिच्छत्ताबुद्धिउदएण।।१७।।

मिथ्यादर्शनमार्गे मलिने अज्ञानमोहदोषैः।
बध्यन्ते मूढजीवाः मिथ्यात्वाबुद्ध्युदयेन।।१७।।

अज्ञान-मोहित दोष से नित मलिन मिथ्या-मार्ग में।
मिथ्यात्व-बुद्धि उदय से ये मूढ वर्तें नित बँधें।।१७।।

अर्थ **– मूढ जीव अज्ञान और मोह अर्थात् मिथ्यात्व के दोषों से मलिन जो मिथ्यादर्शन अर्थात् कुमत के मार्ग में मिथ्यात्व और अबुद्धि अर्थात् अज्ञान के उदय से प्रवृत्ति करते हैं।**

भावार्थ **– ये मूढजीव मिथ्यात्व और अज्ञान के उदय से मिथ्यामार्ग में प्रवर्तते हैं, इसलिए मिथ्यात्व अज्ञान का नाश करना यह उपदेश है।।१७।।**

प्रवचन-४१, गाथा-१७ से १९, मंगलवार, आषाढ़ (गुजराती) कृष्ण ३, दिनांक २१-०७-१९७०

भावार्थ – ये मूढजीव मिथ्यात्व और अज्ञान के उदय से... है न? **'मिच्छत्ताबुद्धिउदएण'** अबुद्धि का अर्थ अज्ञान। जिसे आत्मा क्या है ? देव-गुरु-शास्त्र क्या है ? धर्म किसे कहना ? उसका जहाँ भान नहीं, ऐसे कुमत के मार्ग में अनादि से मिथ्यात्व और अज्ञान के कारण प्रवर्त रहा है, इसलिए वह संसार में भटक रहा है। **अज्ञान के उदय से मिथ्यामार्ग में प्रवर्तते हैं,...** समझ में आया ? मार्ग मिथ्या और सच्चा, दो मार्ग हैं या नहीं ? या सभी समान ? समन्वय करे न ? समन्वय।

---

१. पाठान्तर – मिच्छत्ता बुद्धिदोसेण।

मुमुक्षु : सर्व धर्म समन्वय।

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्व धर्म समन्वय। इनकार करते हैं। सर्व धर्म समन्वय है नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है। अष्टपाहुड़ में जहाँ हो वहाँ **'मिच्छादंसणमग्गे'**। मिथ्याश्रद्धा के मार्ग से जैन सम्प्रदाय में भी अलग प्रणालिका करके मिथ्यामार्ग में प्रवृत्ति की है, उसने मार्ग में मिथ्यात्व और अज्ञान के कारण अज्ञानी प्रवर्तता है। मूल तो ऐसा कहते हैं। समझ में आया? मुनिमार्ग निर्ग्रन्थमार्ग अनादि का दिगम्बर नग्न मुनिदशा और अन्तर में वीतरागी दशा, ऐसा जो मार्ग सम्यक् अनादि का सत्य है, उससे विरुद्ध होकर जितने मार्ग हैं, वे सब मिथ्यात्व के उदय से माने जाते हैं। कहो, बराबर है? इसमें सबको समान लगे, ऐसा नहीं रहता। मिथ्या को मिथ्या और सच्चे को सच्चा, दो मार्ग है। दोनों सच्चे हैं, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

मूढ़ जीव वीतराग का-सर्वज्ञ परमेश्वर का, देव-गुरु और धर्म का तथा अन्तर स्वरूप के आश्रय का जो मार्ग कहा, उससे मूढ़ जीव विपरीत दृष्टि से मिथ्यात्व और अज्ञान के उदय द्वारा, उदय अर्थात् उसका भाव, हों! कर्म का उदय निमित्त नहीं। इसके विपरीत भाव को प्रगट करके मिथ्या मार्ग में प्रवर्तता है। **इसलिए मिथ्यात्व अज्ञान का नाश करना यह उपदेश है।** इसलिए विपरीत मार्ग की श्रद्धा अज्ञान से जो करता हो, उसका नाश करनेयोग्य है। कहो, समझ में आया?

गाथा-१८

आगे कहते हैं कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-श्रद्धान से चारित्र के दोष दूर होते हैं -

सम्मद्दंसण पस्सदि जाणदि णाणेण दव्वपज्जाया।
सम्मेण य सद्दहदि य परिहरदि चरित्तजे दोसे।।१८।।

सम्यग्दर्शनेन पश्यति जानाति ज्ञानेन द्रव्यपर्यायान्।
सम्यक्त्वेन च श्रद्दधाति च परिहरति चारित्रजान् दोषान्।।१८।।

सद्दर्श देखें द्रव्य–पर्यय ज्ञान से जो जानता।
सम्यक्त्व से श्रद्धान करता दोष चारित्र छोड़ता।।१८।।

अर्थ – यह आत्मा सम्यग्दर्शन से तो सत्तामात्र वस्तु को देखता है, सम्यग्ज्ञान से द्रव्य और पर्यायों को जानता है, सम्यक्त्व से द्रव्य–पर्याय स्वरूप सत्तामयी वस्तु का श्रद्धान करता है और इस प्रकार देखना, जानना व श्रद्धान होता है, तब चारित्र अर्थात् आचरण में उत्पन्न हुए दोषों को छोड़ता है।

भावार्थ – वस्तु का स्वरूप द्रव्य–पर्यायात्मक सत्तास्वरूप है, सो जैसा है, वैसा देखे–जाने श्रद्धान करे, तब आचरण शुद्ध करे, सो सर्वज्ञ के आगम से वस्तु का निश्चय करके आचरण करना। वस्तु है, वह द्रव्यपर्याय स्वरूप है। द्रव्य का सत्तालक्षण है तथा गुणपर्यायवान् को द्रव्य कहते हैं। पर्याय दो प्रकार की हैं, सहवर्ती और क्रमवर्ती। सहवर्ती को गुण कहते हैं और क्रमवर्ती को पर्याय कहते हैं। द्रव्य सामान्यरूप से एक है तो भी विशेषरूप से छह हैं, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल।

जीव के दर्शन–ज्ञानमयी चेतना तो गुण है और अचक्षु आदि दर्शन, मति आदिक ज्ञान तथा क्रोध, मान, माया, लोभ आदि व नर, नारकादि विभाव पर्याय है, स्वभावपर्याय अगुरुलघुगुण के द्वारा हानि–वृद्धि का परिणमन है। पुद्गलद्रव्य के स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णरूप मूर्तिकपना तो गुण है और स्पर्श, रस, गन्ध वर्ण का भेदरूप परिणमन तथा अणु से स्कन्धरूप होना तथा शब्द, बन्ध आदिरूप होना इत्यादि पर्याय है। धर्म, अधर्मद्रव्य के गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्वपना तो गुण है और इस गुण के जीव–पुद्गल के गति–स्थिति के भेदों से भेद होते हैं, वे पर्याय हैं तथा अगुरुलघुगुण के द्वारा हानि–वृद्धि का परिणमन होता है जो स्वभाव पर्याय है।

आकाश का अवगाहना गुण है और जीव–पुद्गल आदि के निमित्त से प्रदेशभेद कल्पना किये जाते हैं, वे पर्याय हैं तथा हानि–वृद्धि का परिणमन, वह स्वभाव पर्याय है। कालद्रव्य का वर्तना तो गुण है और जीव और पुद्गल के निमित्त से समय आदि कल्पना, सो पर्याय है, इसको व्यवहार काल भी कहते हैं तथा हानि–वृद्धि का परिणमन वह स्वभावपर्याय है इत्यादि। इनका स्वरूप जिन आगम से जानकर देखना, जानना, श्रद्धान करना, इससे चारित्र शुद्ध होता है। बिना ज्ञान, श्रद्धान के आचरण शुद्ध नहीं होता है, इस प्रकार जानना।।१८।।

गाथा-१८ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि सम्यग्दर्शन ज्ञान श्रद्धान से चारित्र दोष दूर होते हैं:- लो। चारित्रपाहुड़ है न? जहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान नहीं, वहाँ चारित्र नहीं होता। सम्यग्दर्शन और ज्ञान द्वारा ही चारित्र के दोष दूर हो सकते हैं अथवा चारित्र हो सकता है, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दर्शन और ज्ञान द्वारा चारित्र होता है। परन्तु जहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान ही नहीं, वहाँ चारित्र नहीं होता। फिर पंच महाव्रत पालता हो और वह क्रिया दिखती हो, वह सब कुचारित्र है, ऐसा सिद्ध करते हैं।

सम्मद्दंसण पस्सदि जाणदि णाणेण दव्वपज्जाया।
सम्मेण य सद्दहदि य परिहरदि चरित्तजे दोसे।।१८।।

चारित्र जान। चारित्र जान क्यों कहा? चारित्र से उत्पन्न होते।

अर्थ - यह आत्मा सम्यग्दर्शन से... सम्यग्दर्शन अर्थात् दर्शन उपयोग। पहले में दर्शन उपयोग है। सम्यग्दर्शन अर्थात् सच्चा उपयोग। उसके द्वारा **सत्तामात्र वस्तु को देखता है,...** वस्तु भगवान आत्मा और सब सत्ता है, है। सामान्य सत्ता का अवलोकन, वह दर्शन उपयोग की व्याख्या है। सम्यग्दर्शन नहीं, परन्तु सम्यक् देखना, उपयोग में। जैसी सत्ता सर्व की है, वैसी उसे मानना, उपयोग में अवलोकन। भेद नहीं। यह आत्मा है या यह जड़ है, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : उपयोग की श्रद्धा?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। श्रद्धा नहीं। उपयोग ही। श्रद्धा बाद में आयेगी। उपयोग में सब 'है', ऐसा सत्ता अवलोकन, इसका नाम दर्शन उपयोग है। समझ में आया? अनन्त आत्मायें हैं और अनन्त परमाणु हैं, ऐसा भेद नहीं। सामान्य सब है। ऐसा दर्शन उपयोग में अवलोकन, उसे यहाँ भगवान सच्चा उपयोग कहा जाता है। समझ में आया?

सम्यग्ज्ञान से द्रव्य और पर्यायों को जानता है,... लो।

मुमुक्षु : दोनों को जाने?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों को जाने। सब जाने नहीं? जाने किसे नहीं? समझ में

आया ? सम्यग्ज्ञान से आत्मा त्रिकाली ध्रुव है, उसे जाने और वर्तमान पर्याय है, उसे भी जाने। ज्ञान तो दोनों को जानता है। पहले दर्शन उपयोग में तो सब है, इतना; भेद नहीं। सामान्य अवलोकन उसका नाम दर्शनोपयोग। यहाँ सम्यग्दर्शन की व्याख्या नहीं है। सम्यग्दर्शन की व्याख्या तीसरे में आयेगी। समझ में आया ?

मुमुक्षु : समकित हो, उसे दर्शनोपयोग सम्यक् और मिथ्या ऐसे दो होंगे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : समकितवाले को सम्यक् उपयोग सच्चा ही होता है।

मुमुक्षु : दर्शन उपयोग ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दर्शन उपयोग सच्चा ही होता है।

मुमुक्षु : पहले को मिथ्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसको मिथ्या कहलाता है, हाँ।

मुमुक्षु : ज्ञान में जैसे सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञान... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। है। उसका उपयोग मिथ्या है। उसमें भेद कहाँ है ? उपयोग खोटा है। महासत्ता का ध्यान यथार्थ नहीं। परमात्मप्रकाश में लिया है न ? सम्यग्दर्शन में अचक्षुदर्शन का उपयोग बराबर है। सामान्य। सम्यग्दर्शन में, भाई ! परमात्मप्रकाश में आता है। अचक्षुदर्शन उपयोग। सब है। दो जगह। सम्यग्दर्शन में यह अचक्षु अर्थात् सामान्य सब है, ऐसा उसका बराबर उपयोग सच्चा होता है। मिथ्यादर्शन का उपयोग क्या ? भेद नहीं। परन्तु उसे विपरीत उपयोग है। समझ में आया ?

सम्यग्ज्ञान से भगवान ने कहे हुए **द्रव्य और पर्यायों (दोनों) को जानता है, सम्यक्त्व से द्रव्य-पर्याय स्वरूप सत्तामयी वस्तु का श्रद्धान करता है...** दोनों लिया। इकट्ठा है न ऐसा ? है तो श्रद्धा द्रव्य की परन्तु उसमें पर्याय है, ऐसी श्रद्धा साथ में आती है। **सम्यक्त्व से...** यह सम्यग्दर्शन—श्रद्धा। यह श्रद्धा है। और पहले सम्यग्दर्शन (कहा), वह उपयोग है। यह क्या कहते हैं ? ऐसी व्याख्या, ऐसा स्वरूप सर्वज्ञ परमेश्वर जो अनादि से चले आये हैं, उनके विषय में ऐसा मार्ग होता है। ऐसा मार्ग दूसरे कल्पित हुए और अज्ञानियों ने खड़े किये मार्गों में यह बात नहीं होती। समझ में आया ?

दर्शन उपयोग, लो, समझ में आया ? श्वेताम्बर में भी केवली को दर्शन उपयोग

पहला और ज्ञानउपयोग बाद में कहते हैं। यह मिथ्या बात है। समझ में आया? केवली को ऐसा नहीं हो सकता। छद्मस्थ को होता है। छद्मस्थ को दर्शनपूर्वक ज्ञान (होता है)। यह तो पहला दर्शन उपयोग हो, फिर ज्ञानोपयोग होता है। छद्मस्थ को। केवली को नहीं। केवली को एक समय में दर्शन और ज्ञानोपयोग दोनों एक साथ होते हैं। समझ में आया? यह वस्तु का पूरा मार्ग बदल डाला है। अन्य में तो नहीं परन्तु यह जैन में सम्प्रदाय खड़ा हुआ, पूरा मार्ग बदल डाला। एक-एक बात में मूल तो वह कहना चाहते हैं अन्दर। समझ में आया? यह बात लोगों को ऐसी लगे कि यह पक्ष है। पक्ष नहीं, वस्तु का ऐसा स्वरूप ही है। समझ में आया? दिगम्बर धर्म, वह वीतराग का धर्म, वह जैनदर्शन धर्म अनादि का यह है। यह कोई पक्ष की बात नहीं, यह तो वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। यह दूसरे के साथ कहीं मिलान करना चाहे (तो) दूसरे के साथ कहीं मिले ऐसा नहीं है। विश्वधर्म। विश्वधर्म तो यह दिगम्बर धर्म विश्वधर्म है। विश्व अर्थात् समस्त वस्तु की सत्यता प्रसिद्ध करनेवाला।

एक वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर, जिसे अनादि से सनातन धर्म परम्परा से चला आता है। कुन्दकुन्दाचार्य ने उसे स्पष्ट किया। यह मार्ग है, भाई! भारी कठिन काम पड़े। विचार करने का कठिन पड़े। जिसमें जन्मा हो, उसमें से निकलना (कठिन पड़े)।

मुमुक्षु : जन्मा है ही कहाँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : जन्मा उसमें, यह मेरा पिता और यह मेरी माँ। ऐसा माना है न? हमारे माता-पिता का धर्म यह। एक व्यक्ति कहता था। माता-पिता का धर्म छोड़ते हो? कौन कहता था अभी कोई? कोई कहता था, यहाँ व्यक्ति (था)। माता-पिता का धर्म छोड़ा जाये? चाहे जैसा हो नहीं। अपने माता-पिता का धर्म है। कहते हैं न। कहते हैं। परन्तु माता-पिता का धर्म... माता-पिता गये हों नरक में तो तुझे नरक में जाना है?

यहाँ तो वीतराग परमेश्वर निर्ग्रन्थ मार्ग मुनि का, वह जैनदर्शन यहाँ तो सिद्ध करते हैं। समझ में आया? पहला **'मिच्छादंसणमग्गे'** ऐसा था न उसमें? वह दूसरा मार्ग मिथ्यादर्शन का है। ऐसी बात है, भाई! १७वीं गाथा में कहा। कुन्दकुन्दाचार्य मूल तो यह स्पष्ट करना चाहते हैं। समझ में आया? अच्छा लगे, न लगे, इससे कहीं सत्य कहीं छुपाया नहीं जाता। सत्य तो सत्य रहेगा। वह कहीं किसी के द्वारा ढाँका नहीं ढँकेगा। मार्ग तो यह है, भाई!

अन्दर सम्यग्दर्शन में उसे यह श्रद्धा आनी चाहिए कि मुनिमार्ग अर्थात् मोक्ष का मार्ग अन्तर अनुभव का दर्शन, उसका स्वसंवेदनज्ञान और वीतरागी चारित्र तथा बाह्य मुद्रा नग्न, यह ही मार्ग अनादि का जैनदर्शन है। उसमें कुछ भी फेरफार (हो), वह जैनदर्शन नहीं है। कहो, समझ में आया? कठिन लगे, भाई! कितने ही भगवान की भक्ति (किया करे)। अपने तो भक्ति करो, भक्ति से निर्जरा हो जायेगी। वह वीतराग का मार्ग नहीं है। वह जैनमार्ग से अन्य मार्ग है। समझ में आया? पर की भक्ति, भगवान की, मूर्ति की, परमात्मा की भक्ति, वह शुभभाव है, वह कहीं निर्जरा और संवर है, ऐसा नहीं। दया का भाव जैसे शुभभाव है, वह धर्म नहीं; उसी प्रकार भक्ति का भाव शुभ है, वह धर्म नहीं। उसे धर्म मनाता है, वह जैनदर्शन नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यहाँ तो (कहते हैं) **सम्यक्त्व से द्रव्य-पर्याय स्वरूप सत्तामयी वस्तु का श्रद्धान करता है...** मूल तो सम्यग्दर्शन का विषय तो ध्रुव है, ध्रुव। समझ में आया? अकेला द्रव्य अभेद अखण्ड परन्तु यह श्रद्धती है पर्याय कि जिस पर्याय की भी उसमें श्रद्धा है, ऐसा कहा जाता है। श्रद्धा करती है पर्याय, ध्रुव को श्रद्धती है तो पर्याय न? कार्य तो पर्याय में है न? परन्तु वह पर्याय है और द्रव्य-ध्रुव है, ऐसा श्रद्धा में होता है। उसका विषय तो द्रव्य है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .... विषय तो द्रव्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य है परन्तु श्रद्धा में ख्याल में है न उसके ज्ञान से। पर्याय है, वह ख्याल सहित द्रव्य की श्रद्धा की है। ऐसा। समझ में आया? पर्याय है और पर्याय उसे श्रद्धती है। द्रव्य की श्रद्धा द्रव्य नहीं करता। समझ में आया इसमें? ज्ञानप्रधान कथन किया है। उसमें नहीं कहा? कथंचित् पर्याय है, उसे लक्ष्य रखकर द्रव्य की दृष्टि करना। आता है न भावार्थ में? समयसार में। व्यवहार भी है, पर्याय भी है। अकेला द्रव्य ही है, ऐसी श्रद्धा करे तो पर्याय का लक्ष्य चला जाए तो वह श्रद्धा सच्ची नहीं है। पर्याय नहीं, ऐसा नहीं है। है, आता है। भावार्थ में नहीं आता? आवे न, आवे। बात तो जैसी है, वैसी आवे तो सही न। उससे क्या? सम्यग्दर्शन का विषय पर्याय है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? परन्तु आत्मा वस्तु है, पूर्ण ध्रुव नित्यानन्द और उसकी पर्याय। वह पर्याय द्रव्य को स्वीकारती है। परन्तु वह पर्याय है, ऐसा उसकी श्रद्धा में ज्ञानप्रधान कथन में उसे आना चाहिए। ऐसा

कहते हैं। है न, कथन नहीं आता? समयसार में आता है। इससे उसका—दर्शन का विषय पर्याय है, ऐसा नहीं है। उसके लक्ष्य में होना चाहिए कि पर्याय है, राग है, तथापि मेरी श्रद्धा का विषय तो द्रव्य है। समझ में आया? भारी कठिन काम।

मुमुक्षु : जवाबदारीवाला काम...

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ऐसी है वहाँ उसमें दूसरा क्या हो? कहीं भगवान ने की है? भगवान ने कुछ किया है? है, वैसा बतलाया है। समझ में आया? पर्याय को गौण करके, उसे अभूतार्थ-झूठा कह दिया है। अभाव करके कहीं झूठा नहीं कहा। समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभाव करके... परन्तु स्वयं पर्याय, श्रद्धा करती है पर्याय। अब अभाव किसका करना? आहाहा! कहो, कान्तिभाई! वस्तु तो ऐसी है, भाई!

सम्यक्त्व से द्रव्य-पर्याय स्वरूप सत्तामयी वस्तु का श्रद्धान करता है और इस प्रकार देखना... पहले कहा वह उपयोग। **जानना व श्रद्धान होता है...** ऐसी श्रद्धा होती है, ऐसा देखना होता है, ऐसा ज्ञान होता है, **तब चारित्र अर्थात् आचरण में उत्पन्न हुए दोषों को छोड़ता है।** तो चारित्र के दोष छूटते हैं। ऐसा श्रद्धा, ज्ञान न हो तो चारित्र के दोष नहीं छूटते अर्थात् कि चारित्र होता नहीं। ऐसा। मार्ग ऐसा है। कहते हैं, उसका देखना, जानना और श्रद्धान हो तो चारित्र के दोष अर्थात् अस्थिरता छूटे और स्थिरता प्रगट हो। आहाहा!

भावार्थ - वस्तु का स्वरूप द्रव्य-पर्यायात्मक सत्ता स्वरूप है... प्रत्येक आत्मा और छहों द्रव्य भगवान ने देखे, परमात्मा केवली ने छहों द्रव्य देखे, वह सब स्वरूप द्रव्य और पर्याय, सामान्य और विशेष, उसरूप से सत्तास्वरूप है। **सो जैसा है, वैसा देखे जाने श्रद्धान करे...** देखो! जैसा है, वैसा देखे, जाने, श्रद्धान करे। देखा? उसमें दोनों भंग आ गये। द्रव्य-पर्यायस्वरूप। दोनों आ गये न इकट्ठे साथ में? डाला है न इनने? मूल में तो **'णाणेण दव्वपज्जाया सम्मेण य सद्दहदि'** इसके साथ मिलाया। **'सम्मेण य सद्दहदि'** उन सबके साथ मिलाया। कहो, समझ में आया?

वस्तु का स्वरूप द्रव्य... द्रव्य अर्थात् ध्रुवता और पर्याय अर्थात् विशेष अवस्था।

ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है। इस प्रकार **जैसा है, वैसा देखे...** उपयोग में। जैसा है, वैसा उपयोग में जाने। जैसा है, वैसा श्रद्धान करे। **तब आचरण शुद्ध करे...** वस्तु का स्वरूप श्रद्धा, ज्ञान और देखने में यदि भूल हो तो उसे चारित्र-फारित्र नहीं हो सकता, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? जिसकी वस्तु की श्रद्धा में ही भूल है, जानने में ही भूल है, देखने में भूल है। उसे तो चारित्र हो नहीं सकता। कहते हैं न कि हमने चारित्र लिया है, यह पंच महाव्रत पालते हैं। वह चारित्र-फारित्र नहीं। श्रद्धा और ज्ञान में जहाँ भूल है, उसे चारित्र व्यवहार या निश्चय एक भी नहीं होता। समझ में आया? **आचरण शुद्ध करे...**

सो सर्वज्ञ के आगम से वस्तु का निश्चय करके आचरण करना। सर्वज्ञ भगवान परमात्मा ने कहे हुए आगम से वस्तु का निश्चय करे।

मुमुक्षु : आगम तो परपदार्थ है, उससे निश्चय... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह क्या कहते हैं, ऐसा निर्णय करने में तो निमित्त है न! निर्णय तो स्वयं को करना है। भाव आगम है न अन्दर अपना! कहो, समझ में आया? भाव आगम अर्थात् ज्ञान में स्वयं ऐसा निर्णय करना। जैसा है, वैसा वस्तु का स्वरूप। समझ में आया? **वस्तु का निश्चय करके आचरण करना।** ऐसा कहते हैं। वस्तु का निर्णय करके फिर चारित्र अंगीकार करना। यहाँ किसकी बात चलती है यह?

मुमुक्षु : चारित्र की।

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र की नहीं, सम्यक्चरण चारित्र की, सम्यक्चरण चारित्र की। अभी संयमचरण चारित्र की बाद में लेंगे। यहाँ तो सम्यक्चरण चारित्र ऐसा पहले हो तो फिर संयमचरण चारित्र होता है। समझ में आया? उसे अभी वास्तविक पदार्थ में ही भूल है, द्रव्य-पर्याय में ही भूल है। समझ में आया? उसकी श्रद्धा में तो सच्चा जहाँ नहीं, उसे चारित्र कैसा? समझ में आया? उसे व्यवहार से व्रत होते नहीं। आहाहा! मूल में जिसकी भूल, सब पत्तों में भूल हो। मूल तो यह कहना चाहते हैं। जैसा द्रव्य का स्वरूप सर्वज्ञ दिगम्बर दर्शन में जो अनादि से चला आता है। वैसा स्वरूप अन्यत्र कहीं है नहीं। समझ में आया?

'वस्तु है, वह द्रव्य-पर्याय स्वरूप है। द्रव्य का सत्ता लक्षण है... अब द्रव्य

की व्याख्या करते हैं। सत् द्रव्य लक्षणं, आता है न? सत् द्रव्य लक्षणं। तत्त्वार्थसूत्र। **तथा गुण-पर्यायवान को द्रव्य कहते हैं।** गुणपर्ययवत् द्रव्यं। दो बोल लिये। सत् द्रव्य लक्षणं। है सत्ता, वह द्रव्य का लक्षण है। है अर्थात् वह अपने से है, यह द्रव्य का लक्षण। किसी के कारण से है, ऐसा है नहीं। कोई ईश्वरकर्ता है, (ऐसा नहीं है)। लो! समझ में आया? है, है उसे करे कौन? है, उसका लक्षण ही सत्ता। द्रव्य लक्षण, ऐसा कहा। द्रव्य का लक्षण 'है', वह उसका लक्षण कहा। नहीं था और किया, ऐसा द्रव्य का लक्षण नहीं हो सकता। समझ में आया?

द्रव्य का सत्ता लक्षण है... 'है' लक्षण। देखो न! कितनी बात करते हैं! 'है' यह द्रव्य का लक्षण अर्थात्? यह द्रव्य नहीं था और किसी ने किया और नया हुआ, यह द्रव्य का लक्षण ही नहीं है, ऐसा कहते हैं। है... सत्ता लक्षण। 'है', यह लक्षण द्रव्य का है। है, यह वापस इसका लक्षण उत्पादव्ययध्रुव लक्षण सत् है। समझ में आया? 'है' यह द्रव्य का लक्षण है। हुआ? है अर्थात् किसी दिन नहीं था, ऐसा नहीं है। किसी दिन नहीं था, अर्थात् उसका कोई कर्ता है, ऐसा नहीं है। और है, वह द्रव्य का लक्षण और है, वह उत्पादव्ययध्रुव का लक्षण। उत्पादव्ययध्रुवयुक्त सत्। समझ में आया? आहाहा! समय-समय में नयी अवस्था उपजे, पुरानी अवस्था जाये और ध्रुवपने रहे, वह उत्पादव्ययध्रुव सत् का लक्षण है। सत् द्रव्य का लक्षण है। आहाहा! देखो न! कितना डाला है! तत्त्वार्थसूत्र के संक्षिप्त सूत्र हैं। समझ में आया? यह है, वह स्वयं अपनी नयी अवस्था से उपजे, पुरानी अवस्था से जाये, ध्रुवपने है, वह स्वयं यह हो ऐसा। यह उत्पादव्ययध्रुव सत् का लक्षण है। क्या कहा? द्रव्य में जो पर्याय नयी होती है, वह सत् का लक्षण है। उसका सत् है, उसका लक्षण है। यह उत्पन्न होता है, वह पर के कारण उत्पन्न होता है, निमित्त के कारण उत्पन्न होता है, ऐसा नहीं - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भीखाभाई!

मुमुक्षु : आत्मा कहने में क्या कमी...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कमी वस्तु में नहीं, ऐसा कहते हैं। क्या आया मस्तिष्क में, समझ में आया?

वस्तु है, वह 'है', वह इसका लक्षण है। 'है'—सत्ता अर्थात् अस्तित्व उसका लक्षण है। आहाहा! और उस अस्तित्व का लक्षण उत्पादव्ययध्रुव लक्षण। आहाहा!

इसलिए अस्तित्ववाला पदार्थ नयी–नयी अवस्था से उपजे, वह उसके लक्षण से उपजता है। पर के कारण नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : स्व–पर दोनों कारण ऐसा लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो व्यवहार से बात करते हैं, ज्ञान कराने को। वस्तु तो निश्चय तो यह है।

मुमुक्षु : परन्तु इसी गाथा की टीका में लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस गाथा की टीका में भले कहा। दूसरी चीज़ एक बतलानी है, निमित्त है, इतना। क्योंकि ज्ञान का स्वभाव स्व–परप्रकाशक है न। ज्ञान का स्वभाव स्व–पर को स्वत: ज्ञानगुण स्व–पर प्रकाशक पर्याय उत्पन्न होती है न? क्या कहा?

मुमुक्षु : परन्तु यह तो छहों द्रव्यों को लागू पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : छहों द्रव्यों को (भले लागू पड़े) परन्तु अपने तो यहाँ आत्मा की बात सिद्ध करनी है न। आत्मा निर्णय करता है न सबका? सबका निर्णय तो यह करनेवाला है न? समझ में आया? पर को जाने वह वास्तव में तो स्व–पर ज्ञानस्वभाव है, इसलिए पर को जानता है कि पर चीज़ है इतना। वह चीज़ इस सत्ता से है। और वह चीज़ उसके उत्पादव्ययध्रुव के लक्षण उसकी सत्ता है। इसके उत्पाद के कारण उसका उत्पाद और उसके उत्पाद के कारण इसका उत्पाद, ऐसा वस्तु का लक्षण नहीं है। समझ में आया? आहाहा! वीतराग मार्ग ऐसा है, बापू! अलौकिक बात है। इसलिए कहा न? सर्वज्ञ के आगम से वस्तु का निश्चय कर। समझ में आया? दूसरों ने तो कल्पित आगम बनाये हैं। समझ में आया? यह तो परमागम भगवान की वाणी है। अनन्त तीर्थंकरों का कथन, वह कुन्दकुन्दाचार्य का कथन है। समझ में आया?

कोई पूछते थे, यह किसका है? यह आगम है। कहा, नहीं। यह तो परमागम है। यह तो दूसरी बात है। बहुता पूछे। आगम है, वहाँ वह यहाँ है न? ऐसा यहाँ होगा न? कहा, ऐसा नहीं है। यह तो परमागम। भगवान की वाणी जो परमागम अनादि की सर्वज्ञ की है। कुन्दकुन्दाचार्य ने कही, वह अनादि की वाणी है, भगवान की वाणी है। समझ में आया? यह परमागम होगा न? इसलिए बहुत पूछते हैं। उसमें है न वहाँ? इसलिए यहाँ 'परमागम'

नाम दिया है। किसने दिया है ? किसी ने दिया है। हिम्मतभाई ने ? वजुभाई ने ? किसने दिया किसे खबर है। उसमें लिखा है। यह है न नमूना। नमूना के नीचे ऐसा है, उसमें लिखा है। परमागम मन्दिर। परमागम मन्दिर तो यहाँ (अन्दर) है। परमागम मन्दिर तो आत्मा की वीतरागी पर्याय का ज्ञान, वह परमागम मन्दिर है। परन्तु उसके निमित्तरूप से बताया जाता है कि देखो ! यह बात है। भगवान तो भगवान है। वे भगवान कहीं प्रतिमा में नहीं आते। प्रतिबिम्ब है, प्रतिकृति है यह। ऐसे भगवान थे, ऐसे भगवान थे। समझ में आया ? क्या आया था अभी कुछ ? प्रतिकृति न... आया था अभी कुछ अर्थ में। प्रतिकृति शब्द अपने यहाँ कहीं आया था। प्रतिबिम्ब की जगह प्रतिकृति, ऐसा कुछ आया था। भूल गये ? यहाँ व्याख्यान में आया था।

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर के ज्ञान में जो छह द्रव्य परमात्मा ने देखे, वे आगम में कहे हैं। उसे द्रव्य का लक्षण सत्ता और गुणपर्यायवान द्रव्य कहते हैं। गुणपर्यायरूप द्रव्य है। दो लक्षण हुए न ये ? गुण अर्थात् सहवर्ती, पर्याय अर्थात् क्रमवर्ती। उसका स्वरूप वह द्रव्य है।

पर्याय दो प्रकार की है,... पर्याय के दो प्रकार। थोड़ा-थोड़ा वर्णन करे न ? **सहवर्ती और क्रमवर्ती। सहवर्ती को गुण कहते हैं...** सहवर्ती—साथ में रहनेवाले अनन्त गुण। आत्मा में ज्ञान, दर्शन, आनन्द अनन्त गुण साथ में रहते हैं। परमाणु में रंग, गन्ध, रस, स्पर्श (आदि) अनन्त गुण साथ में रहते हैं। वह सहवर्ती पर्याय अर्थात् भेद कहे जाते हैं। क्रमवर्ती पर्याय। क्रम-क्रम से अवस्था हो। क्रम से हो, एक साथ सभी न हो। एक साथ होवे, उसे गुण कहते हैं; क्रम-क्रम से हो, उसे पर्याय कहते हैं। समझ में आया ?

द्रव्य सामान्यरूप से एक है... वस्तुरूप से, है रूप से एक है, सब है। पूरा लोकालोक सब है, वह है रूप से तो एक है। **तो भी विशेषरूप से छह है,...** भाग करो तो छह वस्तु जगत में है। जाति से। संख्या से अनन्त हैं। जीव अनन्त हैं, पुद्गल अनन्त हैं, एक धर्मास्ति नाम का अरूपी पदार्थ है, अधर्मास्ति है, आकाश है और काल है। ऐसा छह हैं।

जीव के दर्शनमयी चेतना तो गुण है... सहवर्ती , क्रमवर्ती की व्याख्या की। जीव का देखना और जानना ऐसी चेतना, दर्शनमयी चेतना तो गुण है। यह दर्शन और ज्ञान

इकट्ठा (लेना)। समझ में आया? आत्मा में जानने-देखनेरूपी चेतना, चेतना, यह चेतन आत्मा, चेतन द्रव्य, इसकी चेतना जानना-देखना यह चेतना उसका गुण। और **मति आदिक ज्ञान...** उसकी पर्याय। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, केवलज्ञान यह उसकी पर्याय। केवलज्ञान भी उसकी पर्याय। समझ में आया? चेतनागुण की केवलज्ञान पर्याय। जिसमें तीन काल-तीन लोक ज्ञात हो। वह पर्याय भी एक समय की एक हालत—दशा है। वह कहीं गुण नहीं। गजब!

ऐसे, **क्रोध, मान, माया, लोभ...** यह भी एक विकारी पर्याय है। और **नर, नारकादि...** (वह) अर्थपर्याय, यह व्यंजनपर्याय। **नर, नारकादि विभाव पर्याय है,...** आत्मा के प्रदेश में मनुष्य के आकार, नारकीय के आकार, ढोर के आकार प्रदेश होते हैं, वह इसकी विभावपर्याय है। **स्वभावपर्याय अगुरुलघु...** पुस्तक नहीं? भाई! समझ में आया? यह मनुष्यपना, देवपना, उनका यह शरीर नहीं। उनकी पर्याय में आकृति वह विभावपर्याय है, विकारी। और **स्वभावपर्याय अगुरुलघुगुण के द्वारा हानि-वृद्धि का परिणमन है।** प्रत्येक द्रव्य में अगुरुलघुगुण के कारण क्षण-क्षण में एक समय में षट्गुणहानिवृद्धिरूप परिणमन (होता है), वह स्वभावपर्याय है। अरे! वस्तु ऐसी है। इससे विरुद्ध कोई कहे, वह वस्तु को समझता नहीं। और वस्तु को जाने बिना धर्म होता नहीं, ऐसा कहते हैं।

स्वयं कौन है, कैसे है, पर कैसे है, कौन है—इसकी खबर बिना भेदज्ञान किस प्रकार करेगा? और अपने में भी द्रव्य-पर्याय दो है, उसके बिना पर्याय से भिन्न द्रव्य, ऐसा भेद किस प्रकार करेगा? समझ में आया? ऊपर-ऊपर से कूटे, दाने कहाँ से निकलेंगे? छिलके कूटे। ऐसा समझे वस्तु कि यह तो आत्मा है, कायम रहनेवाला है। उसके साथ सहवर्ती गुण भी कायम रहनेवाले हैं। साथ में अर्थात् गुण साथ में, हों! द्रव्य साथ में नहीं। और उसकी क्षण-क्षण में ज्ञान की, क्रोधादि की पर्याय होती है। ऐसा मनुष्य, देव आदि की पर्याय विभाविक है। कहो, समझ में आया? यह सब विभावपर्याय में डाले, ऐई! मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान, केवलज्ञान, क्रोध, मान, माया, लोभ विभावपर्याय। सब होकर विभावपर्याय।

मुमुक्षु : नियमसार में लिया है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : है, विभावपर्याय इकट्ठी है। केवलज्ञान को भी एक न्याय से विभाव कहा है न? अपेक्षित है न? समझ में आया? कर्म के निमित्त के अभाव की अपेक्षा गिनकर। ऐसा लिया है न? चार भाव विभावभाव गिने हैं। सूक्ष्म बहुत। क्षायिकभाव भी विभावभाव गिना है। क्योंकि उसे निमित्त के अभाव की अपेक्षा आती है न। वस्तु का त्रिकाली स्वभाव, वह पारिणामिकभाव, वह स्वभाव। यहाँ पर्याय में केवलज्ञान को विभावपर्याय कहा, क्रोध को विभाव कहा, मनुष्य, देव आदि की आकृति को विभाव कहा। तब अगुरुलघुपर्याय को स्वभावपर्याय कहा। समझ में आया?

मुमुक्षु : एक बार फिर से कहिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा में केवलज्ञान आदि पर्याय, क्रोध आदि पर्याय और मनुष्य की देह आदि नहीं परन्तु मनुष्य की गति आदि का अन्दर आकार, उन सबको विभावपर्याय कहा। तब अगुरुलघु की षट्गुणहानिवृद्धि पर्याय को स्वभावपर्याय कहा। इन्हें विभाव कहा था तो उसे स्वभाव कहा। पर्याय की बात चलती है न? समझ में आया? अभ्यास न हो न लोगों को। वास्तविक तत्त्व ऐसा है, ऐसा इसके ज्ञान में न आवे तो इसकी श्रद्धा करेगा किस प्रकार? और श्रद्धा हुए बिना चारित्र होगा कहाँ से? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उसमें तो करो भक्ति, करो भगवान की, जाओ! वे दे देंगे, अपने भगवान को पकड़ो। उद्धार करने का आधार भगवान को है। वह अपना हाथ पकड़ेंगे।

मुमुक्षु : भगवान समझावे तो सही न।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं कि समझावे नहीं, हाथ पकड़े नहीं। यह समझणवाला समझे स्वयं। यहाँ आया न? स्वभाविक पर्याय का उत्पाद, वह लक्षण है सत्ता का और सत्ता लक्षण है द्रव्य का। अर्थात् उत्पाद का लक्षण वह उत्पादसत्ता से उत्पाद होता है। उसके अस्तित्व में उत्पाद होता है। दूसरे के अस्तित्व के कारण उत्पाद होता है, ऐसा नहीं है। ऐसा मार्ग है।

यह जीव की बात की। जीव के गुण और जीव की पर्याय, दो की बात की। गुण में क्या लिया? कि चेतनागुण। द्रव्य क्या? जीव। आत्मा, वह द्रव्य वस्तु। उसका चेतना वह गुण। मतिज्ञान आदि पर्याय, क्रोधादि अवस्था, नरकादि व्यंजन अवस्था। वह सब विभावपर्याय। स्वभावपर्याय अगुरुलघु। कितना याद रखना इसमें? इसमें क्या याद रखना

था ? दुकान के धन्धे में कितना याद रखता है। हैरान होने के रास्ते में। यह टाईल्स में यह भात पाड़ना और इस टाईल्स में यह भात पाड़ना। अमुक यह करना। कितनी भात (प्रकार) देखे थे, हों ! वहाँ जामनगर। है न एक ? है न कोई वढवाण का ? बाहर है, बाहर। बाहर दो बार उतरे थे। दो-तीन बार। अभी भी वहाँ उतरे थे। टाईल्स की भात होती है। आहाहा ! यह सब याद रखते हैं या नहीं ? बंगड़ी-बंगड़ी का याद रखते हैं या नहीं ?

यह तो तू एक शाश्वत चीज़ है। एक। और वह चीज़ है गुणवाली। उसमें चेतनागुण है। अब वह गुण है, उसमें वर्तमान परिणमन होता है। परिणमना अर्थात् बदलना होता है। एक ज्ञान का बदलना और एक विकार का बदलना और नर, नारकी आदि व्यंजन (पर्याय), यह बदलना होता है, उसे यहाँ विभावपर्याय कहते हैं। विशेष पर्याय में ऐसी जाति की। और अगुरुलघु स्वभाविक (पर्याय) है। उसे स्वभाविक पर्याय कहते हैं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : क्षायिकभाव-केवलज्ञान की पर्याय भी...

पूज्य गुरुदेवश्री : केवलज्ञान भी विभावपर्याय। निमित्त की अपेक्षा आयी न ? कर्म के निमित्त का अभाव। केवलज्ञानावरणी का अभाव। अपेक्षित बात है न। चार भाव को ही विभावभाव कहे हैं। आहाहा ! एक त्रिकाल ज्ञायकभाव। ध्रुव भगवान स्वभाव। वह एक स्वभावभाव है। पर्याय में अगुरुलघु की स्वभावपर्याय गिनी है। समझ में आया ? है, थोड़ा-थोड़ा इसमें है। षट्पाहुड़ में। उसमें से लिया है। सूक्ष्म स्वभावपर्याय। वह सूक्ष्म स्वभावपर्याय भगवान के ज्ञानगम्य है। एक समय में षट् प्रकार का परिणमन। ऐसी बात सर्वज्ञ ने देखे हुए तत्त्व में होती है, परन्तु दूसरे ने देखा नहीं, इसलिए उसके तत्त्व में यह बात नहीं हो सकती और जिसे सर्वज्ञ होना है, उसे ऐसे तत्त्व की श्रद्धा और ज्ञान पहले करना चाहिए। और श्रद्धा-ज्ञान करने के पश्चात् उसमें स्थिरता की क्रिया हो, उसे चारित्र कहा जाता है। चारित्र हो तो सर्वज्ञ होता है।

ऐसे घर में मजा करना और कमाना, खाना-पीना और केवलज्ञान हो, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। माने न स्त्री, पुत्र इकट्ठे रहे, बड़े महल-मकान बनावे। आहाहा ! वह तो सब उपाधि का विकल्प है, कहते हैं। वह विकल्प भी मैल है और विकारी पर्याय है। उसके साथ गुण त्रिकाली चेतनागुण है और उसके साथ उसका धारक द्रव्य चैतन्य है। उसकी

दृष्टि द्रव्य पर न जाये तो उसे सच्ची श्रद्धा कभी हो नहीं। सच्ची श्रद्धा बिना किसमें स्थिर होना, इस चीज़ की तो श्रद्धा हुई नहीं। जिसमें स्थिर होना है, चारित्र, उस चीज़ की तो खबर नहीं। तो चारित्र कहाँ से आयेगा? यह चारित्रपाहुड़ है। इसमें सम्यग्दर्शनचरण चारित्र की व्याख्या मुख्य है। समझ में आया?

बारह महीने यह पढ़ने की मेहनत की हो, अनुत्तीर्ण हो फिर ऐसी अरुचि आवे। दो-तीन महीने पढ़ना तो पढ़ता होगा न वापस उत्तीर्ण होने के लिये? छह महीने? वहाँ स्कूल में या घर में? कहो, उसे ऐसा लगे अन्दर। आहाहा! इतने महीने मेहनत की, माँ-पिता के पैसे खर्च कराये पुस्तकें के। थोकड़ा के। अब यह छह महीने मुँह वीलुं-भीनुं करके... आहाहा! वापस पास होने के लिये छह महीने पढ़ना पड़े, मेहनत करके। समझ में आया? उसमें इसे उकताहट आवे। यह तो अलौकिक बात है। जो पढ़ा वह पढ़ा, वापस बदले नहीं। अनुत्तीर्ण ही न हो, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उपयोग घात ही न हो।

यह जीव की बात की। अब पुद्गल। यह शरीर, शरीर। मिट्टी यह पुद्गल, इसकी व्याख्या करते हैं। यह रजकण पुद्गलद्रव्य है। इनके **स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णरूप मूर्तिकपना तो गुण है...** रंग, गन्ध, रस और स्पर्श यह परमाणु इस मिट्टी का-जड़ का गुण है। **और स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण का भेदरूप परिणमन...** काली, सफेद आदि अवस्था भेदरूप हुई न? वह गुण अभेद है। **भेदरूप परिणमन तथा अणु से स्कन्धरूप होना...** व्यंजन। व्यंजन कहना था न? **अणु से स्कन्धरूप होना तथा शब्द, बन्ध आदिरूप होना इत्यादि पर्याय है।** यह शब्द, वह जड़ की पर्याय है। वाणी वह शब्द की-जड़ की पर्याय है, आत्मा की नहीं। समझ में आया? पुद्गलद्रव्य के स्पर्श, रस, गन्ध, रंग-वर्ण वह रंग, मूर्तिकपना तो गुण है और स्पर्श, रस, गन्ध का भेदरूप परिणमन, इस स्पर्श का शीत-उष्ण परिणमन; गन्ध का सुगन्ध-दुर्गन्ध परिणमन; रस का मीठा, कड़वा परिणमन, यह सब पर्याय है। और एक रजकण से यह स्कन्ध इकट्ठा हो, वह भी पर्याय विभाविक है। देखो! पुद्गल की यह। बहुत रजकण इकट्ठे होकर यह जड़, मिट्टी अँगुली हुई है। सब रजकण इकट्ठे होकर लड्डू हुआ है। वह सब पर्याय है। कायम टिके वह चीज़ नहीं। समझ में आया? **तथा शब्द, बन्ध आदिरूप होना इत्यादि पर्याय है।** शब्द होना, बन्ध होना, कर्म की पर्याय बँधे, छूटे।

और **धर्म, अधर्म द्रव्य के गतिहेतुत्व,...** अब जरा सूक्ष्म बात है। धर्मास्ति, अधर्मास्ति दो भिन्न द्रव्य-पदार्थ है। उस द्रव्य का गतिहेतु, स्थितिहेतुपना गुण है। **और इस गुण के जीव-पुद्‌गल के गति-स्थिति के भेदों से...** अर्थात् पर्याय है। वह अपना परिणमन है, वह पर्याय है। निमित्त से बात की। भेद कहा है न? **पुद्‌गल के गति-स्थिति के भेदों से भेद होते हैं...** गति, स्थिति का गुण त्रिकाली है, उसका भेदरूप वर्तमान परिणमन, वह पर्याय है। **अगुरुलघुगुण के द्वारा हानि-वृद्धि का परिणमन होता है, जो स्वभाव पर्याय है।** पुद्‌गल में भी। यह धर्मास्ति, अधर्मास्ति। समझ में आया?

और **आकाश का अवगाहना गुण है...** आकाश नाम का पदार्थ है, उसका अवगाहना गुण है। **जीव-पुद्‌गल आदि के निमित्त से प्रदेशभेद कल्पना किये जाते हैं, वे पर्याय हैं...** द्रव्य, व्यंजनपर्याय कही वह।

मुमुक्षु : उसमें अगुरुलघु की ही बात ली।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ? भेदरूप पर्याय वह अगुरुलघु। उसकी अपनी पर्याय है न। धर्मास्ति, अधर्मास्ति **भेदों से भेद होते हैं, वे पर्याय हैं तथा अगुरुलघु...** दोनों पर्याय है। एक अगुरुलघु है और एक गुण की पर्याय होती है न वर्तमान? उसे पर्याय कही। अगुरुलघु तो सामान्य सबको है। उसकी-गुण की पर्याय होती है न? उसे पर्याय कही। दो कही न, दो कही है। विभाव नहीं, ऐसा। दोनों स्वाभाविक है। धर्मास्ति, अधर्मास्तिकाय में उसके गुण का परिणमन होता है न, वह पर्याय है, तथा अगुरुलघु की पर्याय, दो। विभावपर्याय नहीं। ऐसा।

आकाश का अवगाहना गुण है और जीव-पुद्‌गल आदि के निमित्त से प्रदेशभेद कल्पना किये जाते हैं, वे पर्याय हैं तथा हानि-वृद्धि का परिणमन, वह स्वभाव पर्याय है। वह स्वभावपर्याय है और वह पर्याय स्वभाव है। वहाँ कहीं कोई विभाव है नहीं। **कालद्रव्य का वर्तना तो गुण है...** थोड़ा-थोड़ा तो डालना चाहिए न, पाठ में डाला है तो। **जीव और पुद्‌गल के निमित्त से समय आदि कल्पना सो पर्याय है,...** उसकी अवस्था वह पर्याय। वह स्वभाव पर्याय। देखा? **हानि-वृद्धि का परिणमन वह स्वभावपर्याय है इत्यादि।** लो। वह पर्याय काल कहलाती है, उसका व्यवहार। एक समय की अवस्था है न, वह व्यवहार।

इत्यादि, **इनका स्वरूप जिन आगम से जानकर...** लो। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहे हुए आगम से जानकर **देखना, जानना, श्रद्धान करना, इससे चारित्र शुद्ध होता है।** यह यदि न हो तो चारित्र नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं। तो चारित्र शुद्ध होता है। **बिना ज्ञान, श्रद्धान के आचरण शुद्ध नहीं होता है,...** लो। सच्चा ज्ञान, सच्ची श्रद्धा और आचरण **शुद्ध नहीं होता है,...** बिना ज्ञान, श्रद्धान आचरण शुद्ध नहीं होता। ऐसा कहते हैं। सच्चे ज्ञान और सच्चे श्रद्धान बिना चारित्र शुद्ध नहीं होता। चारित्र खोटा होता है, ऐसा। समझ में आया? अरे! ऐसा मार्ग समझना भारी, भाई! परन्तु समय निकालना कहाँ से? चौबीस घण्टे में यह संसार का करना या हमारे यह करना? बापू! वह तो संसार के तो विकल्प किया ही करता है। वे कहीं नये नहीं हैं। वह तो अनादि से (किया ही करता है)। विकल्प, हों! क्रिया नहीं। किया ही करे। संकल्प, विकल्प... संकल्प, विकल्प... संकल्प, विकल्प... सत्ता के स्वभाव का भान नहीं। यह क्या है उसका ज्ञान, श्रद्धान सच्चा न हो तो उसका आचरण / चारित्र वर्तन सच्चा नहीं हो सकता। ऐसा। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न। यह तो उसकी बात की।

मुमुक्षु : विस्तार...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विस्तार हो गया न, इतना सब लिया।

आत्मा संसार के संकल्प-विकल्प तो अनादि से करता आया है। संकल्प-विकल्प, हों! बाकी कुछ करता नहीं। अब यह संकल्प-विकल्प किया करता है, वह तो दुःख के पन्थ में अनादि का पड़ा है। अब उन संकल्प, विकल्प से पार कोई दूसरी चीज़ है या नहीं? उस चीज़ का इसे बराबर ज्ञान करना चाहिए, सामान्य-विशेष का। उसकी श्रद्धा करनी चाहिए, उसका उपयोग करना चाहिए। ऐसी शुद्ध श्रद्धा यदि हो तो फिर आचरण—चारित्र शुद्ध होता है। नहीं तो यह चारित्र नहीं हो सकता। जिसके ज्ञान और श्रद्धा की शुद्धता का ठिकाना नहीं, इकाई का ठिकाना नहीं, उसके चारित्र और व्रत कभी नहीं हो सकते, ऐसा कहते हैं।

चारित्रपाहुड़ है, परन्तु इसमें सम्यग्दर्शनचरण चारित्र पहला है, ऐसा सिद्ध करना

है। नींव के बिना मकान किसके ऊपर लेना? चारित्र का अधिकार है तो यह लिया। कल भाई ने लिया था। सम्यक्चरण चारित्र, वह स्वरूपाचरण चारित्र है। भाई ने कल लिया था। पण्डितजी मुन्नालाल। मुन्नालाल। ऐसा कि यह सम्यक्चरण चारित्र है, वह ही स्वरूपाचरण चारित्र है। न करो तो आगम से विरोध होगा। अनन्तानुबन्धी जाने के पश्चात् स्वरूप में कुछ स्थिरता नहीं आवे तो फिर अनन्तानुबन्धी का अभाव हुआ, उसका फल क्या? आहाहा! उन्होंने लिखा है। चर्चा चलती है, चर्चा चले। क्या करे?

मुमुक्षु : ...वह खोटा?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह खोटा। आधार आचार्य का नहीं। रतनचन्दजी ऐसा लिखते हैं। पण्डितों और पण्डितों में विरोध चला है। अभी तक पड़े थे। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, जहाँ आत्मा परिपूर्ण वस्तु है, उसकी श्रद्धा और उसका ज्ञान जहाँ सच्चा नहीं है, उसके आचरण और चारित्र कभी सच्चे नहीं हो सकते। उसके दोष नहीं टलते और निर्दोषता प्रगट नहीं होती। **बिना ज्ञान, श्रद्धान के आचरण शुद्ध नहीं होता है, इस प्रकार जानना।** लो।

गाथा-१९

आगे कहते हैं कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन भाव मोहरहित जीव के होते हैं, इनका आचरण करता हुआ शीघ्र मोक्ष पाता है -

एए तिण्णि वि भावा हवंति जीवस्स मोहरहियस्स।
णियगुणमाराहंतो अचिरेण य कम्म परिहरइ।।१९।।

एते त्रयोऽपि भावाः भवंति जीवस्य मोहरहितस्य।
निजगुणमाराधयन् अचिरेण च कर्म परिहरति।।१९।।

इस मोह-विरहित जीव के त्रय भाव ये होते सदा।
निज-गुणों को आराधता सब कर्म शीघ्र तजे सदा।।१९।।

अर्थ – ये पूर्वोक्त सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र तीन भाव हैं, ये निश्चय से मोह अर्थात् मिथ्यात्व रहित जीव के होते हैं, तब यह जीव अपना निजगुण जो शुद्ध दर्शन ज्ञानमयी चेतना की आराधना करता हुआ थोड़े ही काल में कर्म का नाश करता है।

भावार्थ – निजगुण के ध्यान से शीघ्र ही केवलज्ञान उत्पन्न करके मोक्ष पाता है।।१९।।

गाथा-१९ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र तीन भाव मोहरहित जीव के होते हैं,... देखो! अब ये तीनों रागरहित और विकाररहित तीन दशा है, ऐसा सिद्ध करना है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र तीन प्रकार की पर्याय है। वह मोहरहित जीव को होती है। मिथ्यादर्शन रहित ऐसे जीव को वे तीन भाव हो सकते हैं। जिसे मिथ्यादर्शन है, उसे यह तीन पर्याय निर्मल नहीं हो सकती। विशेष बात करेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-२०

आगे इस सम्यक्त्वाचरण चारित्र के कथन का संकोच करते हैं –

संखिज्जमसंखिज्जगुणं च संसारिमेरुमत्ता[१] णं।
सम्मत्तमणुचरंता करेंति दुक्खक्खयं धीरा।।२०।।

संख्येयामसंख्येयगुणां संसारिमेरुमात्रा णं।
सम्यक्त्वमनुचरंतः कुर्वन्ति दुःखक्षयं धीराः।।२०।।

संसार–सीमित कर असंख्य रु संख्य गुण निर्जरा से।
सम्यक्त्व का आचरण करते धीर दुख का क्षय करें।।२०।।

१. 'संसारिमेरुमता' 'सासारि मेरुमित्ता' इसका सटीक संस्कृत प्रति में सर्षपमेरुमात्रां इस प्रकार है।

_अर्थ_ – सम्यक्त्व का आचरण करते हुए धीर पुरुष संख्यातगुणी तथा असंख्यातगुणी कर्मों की निर्जरा करते हैं और कर्मों के उदय से हुए संसार के दुःख का नाश करते हैं। कर्म कैसे हैं ? संसारी जीवों के मेरु अर्थात् मर्यादा मात्र हैं और सिद्ध होने के बाद कर्म नहीं हैं।

_भावार्थ_ – इस सम्यक्त्व का आचरण होने पर प्रथम काल में तो गुणश्रेणी निर्जरा होती है, वह असंख्यात के गुणाकाररूप है। पीछे जबतक संयम का आचरण नहीं होता है, तबतक गुणश्रेणी निर्जरा नहीं होती है। वहाँ संख्यात के गुणाकाररूप होती है इसलिए संख्यातगुण और असंख्यातगुण इस प्रकार दोनों वचन कहे। कर्म तो संसार अवस्था है, जबतक है, उसमें दुःख का कारण मोहकर्म है, उसमें मिथ्यात्व कर्म प्रधान है। सम्यक्त्व के होने पर मिथ्यात्व का तो अभाव ही हुआ और चारित्रमोह दुःख का कारण है, सो यह भी जबतक है, तबतक उसकी निर्जरा करता है, इस प्रकार अनुक्रम से दुःख का क्षय होता है। संयमाचरण के होने पर सब दुःखों का क्षय होवेगा ही। सम्यक्त्व का माहात्म्य इस प्रकार है कि सम्यक्त्वाचरण होने पर संयमाचरण भी शीघ्र ही होता है, इसलिए सम्यक्त्व को मोक्षमार्ग में प्रधान जानकर इस ही का वर्णन पहिले किया है।।२०।।

प्रवचन-४२, गाथा-२० से २३, बुधवार, आषाढ़ (गुजराती) कृष्ण ४, दिनांक २२-०७-१९७०

अष्टपाहुड़ में चारित्रपाहुड़। २०वीं गाथा। सम्यक्चरण चारित्र की यह अन्तिम गाथा है। चारित्र के दो भेद हैं। पहला सम्यक्चरण चारित्र। वह होवे तो फिर संयमचरण चारित्र होता है। इसलिए पहली बात यह कही।

आगे इस सम्यक्त्वाचरण चारित्र के कथन का संकोच करते हैं –

संखिज्जमसंखिज्जगुणं च संसारिमेरुमत्ता णं।
सम्मत्तमणुचरंता करेंति दुक्खक्खयं धीरा।।२०।।

_अर्थ_ – सम्यक्त्व का आचरण करते हुए धीर पुरुष... सम्यक्त्व का आचरण करते हुए... अर्थात्? आ गया है। शुद्ध चैतन्यद्रव्य की आराधन दृष्टि होकर सम्यक्चरण में पच्चीस दोष आदि का त्याग, निःशंक आदि पर्याय की उत्पत्ति, पूर्ण भगवान आत्मा का स्वभाव, उसमें निःशंका, निःकांक्ष आदि की दशा हो, उसे सम्यक्चरण

चारित्र कहा जाता है। **सम्यक्त्व का आचरण करते हुए धीर पुरुष...** समकित आचार है या नहीं? दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार। पहला समकित का आचार होता है। फिर चारित्र का आचार होता है। इसलिए यहाँ पहला वर्णन यह है। धीर पुरुष है। भाषा है न? **'धीरा'** धीर। क्या है अर्थ? धी—बुद्धि प्रेरे। ध्रुव की ओर धी—बुद्धि जाये। समझ में आया? अर्थ सही किया है। २०वीं चारित्रपाहुड़। आता है कहीं। धीर... प्रेरे... बुद्धि को ध्येय के ऊपर प्रेरे, वह धी। धीर। धीर है। पृष्ठ-१५६। **'ध्येयं प्रति धीयं बुद्धि इर्यति प्रेरयति इति व्युत्पत्ति'** १५६ पृष्ठ है। वहाँ भी धीर शब्द है। ४३ गाथा है, भावप्राभृत।

भावविमुत्तो मुत्तो ण य मुत्तो बंधवाइमित्तेण।
इय भाविऊण उज्झसु गंधं अब्भंतरं धीर।।४३।।

गन्ध छोड़ दे राग की। **'अब्भंतरं धीर'** धीरं। ध्येय के प्रति **'धीयं बुद्धि इर्यति प्रेरयति इति धीर।'** धीर उसे कहा जाता है कि जो ध्रुव चैतन्य वस्तु, उसमें धी—बुद्धि को प्रेरे, उसे धीर और बुद्धिवन्त कहा जाता है। कहो, समझ में आया? जो बुद्धि इस जगत के जानपने में प्रेरे, वह बुद्धि नहीं है, ऐसा कहते हैं। ध्येय पूर्ण स्वरूप, द्रव्य स्वरूप अखण्ड अभेद, उसके प्रति बुद्धि, धी—बुद्धि प्रेरति, ध्येय के प्रति जाये। जो बुद्धि ध्येय ध्रुव के प्रति जाये, उसे बुद्धि और उसे धीर कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, **धीर पुरुष संख्यातगुणी तथा असंख्यातगुणी कर्मों की निर्जरा करते हैं...** सम्यग्दृष्टि स्वरूप का आचरण, दृष्टि, स्वरूप के आचार दृष्टि स्वरूप के निःशंक आदि लक्षणवाली दृष्टिवन्त संख्यातगुण और असंख्यातगुणी निर्जरा करता है। यह स्पष्टीकरण नीचे करेंगे। **कर्मों के उदय से हुए संसार के दुःख का नाश करते हैं।** यह उदय है, वह दुःख है। सम्यग्दर्शन स्वरूप सन्मुख के आचरणवाला भाव, वह ऐसे कर्म के उदयरूप दुःख को नाश करता है।

कर्म कैसे हैं? संसारी जीवों के मेरु अर्थात् मर्यादा मात्र हैं... उसमें सांसारिक कहा। सरसव प्रेम। ... थोड़ा। सरसव जैसा थोड़ा कर्म है। समकिती को थोड़े कर्म हैं। समझ में आया? मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी आदि महाभाव, महामेल, महाघात करनेवाले दुःख का था, आनन्द का घात करनेवाली दुःख का तो नाश किया है। अब तो एक सरसव जैसा-दाने जितने थोड़े कर्म रहे हैं। कहो, समझ में आया? उसे वह नाश करता है। स्वभाव

सन्मुख की दृष्टि हुई और स्वभाव में राग और कर्म है नहीं। इसलिए स्वभाव के सावधानीवाला जीव, स्वभाव से विरुद्ध भाव विकार और कर्म दोनों का नाश करता है अर्थात् नाश प्राप्त हो जाते हैं। समझ में आया? कर्मों का नाश करता है। उसमें आया कि राग का नाश करना, वह परमार्थ से आत्मा में नहीं है। यह भी कथन तो क्या आवे? समयसार में आया कि राग का विकल्प है, उसका त्याग करूँ, नाश करूँ, यह वस्तु के स्वरूप में नहीं है। समझ में आया?

यह तो राजुल को देखकर ... हुआ। कोई अनजाने हो न ... राजुल को देखा है? राजुल। जातिस्मरण है। नया आया है। लड़की आयी न, उसे जातिस्मरण हुआ है। यह दूसरे कितने ही कहते थे कि हमारे जैसी है। ... वह देखी है? नहीं? ढाई वर्ष की। जातिस्मरण हुआ न! अभी दस वर्ष की है।

यहाँ कहते हैं, वस्तु भगवान आत्मा जिसे पक्ष में चढ़ा, अन्तर के स्वभाव के पक्ष में चढ़ा, उसके पक्ष में नहीं, ऐसे विकार और कर्म का वह नाश करता है—ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। अरे! वास्तव में तो नाश नहीं करता। नाश करूँ, ऐसा स्वभाव जीव में नहीं है। राग का नाश करूँ, त्याग करूँ, ऐसा स्वभाव जीव में नहीं है। स्वभाव तो अपने में जानना-देखना, उसमें रहने से उसकी उत्पत्ति नहीं होती। इसलिए उसका (राग का) नाश किया ऐसा कहा जाता है। समझ में आया?

कर्म कैसे हैं? संसारी जीवों के मेरु अर्थात् मर्यादा मात्र हैं... अर्थात् थोड़े हैं। इतना। इन्होंने भी अर्थ थोड़ा किया है। सरसव जितना थोड़ा। **सिद्ध होने के बाद कर्म नहीं हैं।** मोक्ष होने में फिर कर्म है नहीं।

भावार्थ – इस सम्यक्त्व का आचरण होने पर प्रथम काल में तो गुणश्रेणी निर्जरा होती है,... देखो! गुणश्रेणी निर्जरा असंख्यातगुणी। असंख्यात के गुणाकार में कर्म की निर्जरा होती है। प्रथम सम्यग्दर्शन होने पर गुणश्रेणी अर्थात् कर्म की असंख्यातगुणी निर्जरा होती है। समकित के कारण से ऐसी इतनी तो निर्जरा होती है। आहाहा! वह समकित बिना चाहे जितने ऐसे व्रत और तप आदि करे, निर्जरा जरा भी (होती) नहीं और वे व्रत, तप मेरे हैं विकल्प—ऐसा माने, उसे मिथ्यात्व का बन्धन होता है। भारी कठिन।

समझ में आया ? सम्यग्दर्शन वस्तु स्वभाव, उसे भान में लेने से, उसका आचरण होने से पहले ही काल में गुणश्रेणी निर्जरा होती है।

वह असंख्यात के गुणाकाररूप है। पीछे जबतक संयम का आचरण नहीं होता है,... पश्चात् जब तक वह संयम का आचरण न करे, तब तक उसे गुणश्रेणी निर्जरा इतनी नहीं होती। संख्यात गुणाकाररूप से होती है। गुणश्रेणी निर्जरा जो बहुत कहलाती है, वह नहीं होती। संख्यात गुणश्रेणी निर्जरा हुआ ही करती है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले से। ठीक प्रश्न है। पहले की बात है, शुरुआत की।

वहाँ संख्यात के गुणाकाररूप होती है, इसलिए संख्यातगुण और असंख्यातगुण इस प्रकार दोनों वचन कहे। कर्म तो संसार अवस्था है, जबतक है, उसमें दु:ख का कारण मोहकर्म है, उसमें मिथ्यात्व कर्म प्रधान है। मोह में भी मिथ्यात्व, वह उसका मुख्य दीवान है, मुख्य। प्रधान अर्थात् दीवान, ऐसा नहीं, हों! प्रधान अर्थात् मुख्य। राजा दूसरा और प्रधान दूसरा, ऐसा यहाँ नहीं है। प्रधान अर्थात् मुख्य। **सम्यक्त्व के होने पर मिथ्यात्व का तो अभाव ही हुआ...** आत्मा का ज्ञान और आत्मा का भान शुद्ध चैतन्यद्रव्य का होने पर... समझ में आया ? मिथ्यात्व का तो अभाव हुआ।

चारित्रमोह दु:ख का कारण है,... अब चारित्रमोह का राग-द्वेष समकिति को भी रहा, वह भी उतना दु:ख है, जितना राग-द्वेष है उतना। **सो यह भी जबतक है, तबतक उसकी निर्जरा करता है,...** उतनी थोड़ी-थोड़ी निर्जरा होती ही है। **इस प्रकार अनुक्रम से दु:ख का क्षय होता है।** लो! अनुक्रम से समकितचरण चारित्र के पश्चात् संयमचरण चारित्र होकर... देखो! **संयमाचरण के होने पर सब दु:खों का क्षय होवेगा ही।** समकित में क्रम-क्रम से निर्जरा हो और संयमचरण चारित्र से सर्व दु:खों का क्षय होता है। स्वरूप में चारित्र की लीनता ऐसी वीतरागता (होने पर) उस समय तो सर्व कर्म का क्षय होता ही है।

सम्यक्त्व का माहात्म्य इस प्रकार है कि सम्यक्त्वाचरण होने पर संयमाचरण भी शीघ्र ही होता है,... समकित आचरण होने पर संयम आचरण भी थोड़े काल में

होता है। **इसलिए सम्यक्त्व को मोक्षमार्ग में प्रधान जानकर इस ही का वर्णन पहिले किया है।** समझ में आया? इसलिए समकित को मोक्षमार्ग में मुख्य जानकर उसका वर्णन पहले किया। अब संयमचरण चारित्र। समझ में आया?

पर्याय में जरा निर्बलता रही। रोग होता है न, निरोगता होने के पश्चात् थोड़ी निर्बलता रहती है। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन होने पर निरोग हो गया। पश्चात् थोड़ी निर्बलता रही। वह निर्बलता धीरे-धीरे जाती है। रोग टल गया है, इसलिए अब उसे निर्बलता नहीं रहेगी। समझ में आया? जब तक रोग है, तब तक निर्बलता घटे किसकी? ऐसा कहते हैं। निरोग हुआ। सम्यग्दर्शन हुआ अर्थात् वह निरोग हो गया। समझ में आया? पश्चात् थोड़ी निर्बलता रही, वह खुराक खाते-खाते उसकी निर्बलता जाएगी, इसी प्रकार यहाँ भी स्थिर होते-होते उसकी निर्बलता जायेगी और सर्वथा कर्म का नाश करके मोक्ष पायेगा। यह अत्यन्त निरोग अवस्था। सबल सहित की निरोग अवस्था। आहाहा! समझ में आया?

गाथा-२१

आगे संयमाचरण चारित्र को कहते हैं –

दुविहं संजमचरणं सायारं तह हवे णिरायारं।
सायारं [१]सग्गंथे परिग्गहा रहिय खलु णिरायारं।।२१।।

द्विविधं संयमचरणं सागारं तथा भवेत् निरागारं।
सागारं सग्रन्थे परिग्रहाद्रहिते खलु निरागारम्।।२१।।

संयम-चरण सागार अन-आगार इन दो भेद युत।
सग्रंथ हैं सागार हैं अनगार परिग्रह से रहित।।२१।।

अर्थ – **संयमचरण चारित्र दो प्रकार का है, सागार और निरागार। सागार तो परिग्रह सहित श्रावक के होता है और निरागार परिग्रह से रहित मुनि के होता है, यह निश्चय है।।२१।।**

१. पाठान्तरः – संग्गंथं।

गाथा-२१ पर प्रवचन

आगे संयमाचरण चारित्र को कहते हैं – संयमाचरण चारित्र को...

दुविहं संजमचरणं सायारं तह हवे णिरायारं।
सायारं [2]सग्गंथे परिग्गहा रहिय खलु णिरायारं।।२१।।

अर्थ – संयमचरण चारित्र दो प्रकार का है,... संयमचारित्र सम्यग्दर्शन के पश्चात् होता है, उसके दो प्रकार। **सागार और निरागार। सागार तो परिग्रह सहित...** है। गृहस्थाश्रम में। गृहस्थ है न, उसे श्रावक के व्रत होते हैं परन्तु वह परिग्रहसहित है, परिग्रहरहित नहीं है। गृहस्थाश्रम में है न। और मुनि हैं, वे निरागार हैं। उन्हें परिग्रह बिल्कुल वस्त्र का धागा भी नहीं होता, वहाँ दूसरा परिग्रह तो किसका होगा? इसलिए मुनि हैं, वे तो निरागार–परिग्रहरहित हैं। गृहस्थाश्रम में समकिती को परिग्रह होता है। परिग्रह होने पर भी वह मोक्षमार्गी है। समझ में आया? और परिग्रह थोड़ा भी रखकर मुनि मनावे, वह मोक्षमार्ग में नहीं है। वह मिथ्यामार्ग में है। समझ में आया? **परिग्रह से रहित मुनि के होता है, यह निश्चय है।**

गाथा-२२

आगे सागार संयमाचरण को कहते हैं –

दंसण वय सामाइय पोसह सचित्त रायभत्ते य।
बंभारंभापरिग्गह अणुमण उद्दिट्ठ देसविरदो य।।२२।।

दर्शनं व्रतं सामायिकं प्रोषधं सचित्तं रात्रिभुक्तिश्च।
ब्रह्म आरंभः परिग्रहः अनुमतिः उद्दिष्ट देशविरतश्च।।२२।।

दर्शन व्रतिक सामायिकी प्रोषध सचित्त–निशि–भुक्ति–बिन।
ब्रह्मचर्य आरंभ–परिग्रह–अनुमती–उद्दिष्ट से विरत।।२२।।

अर्थ – दर्शन, व्रत, सामायिक और प्रोषध आदि का नाम एकदेश है और नाम

ऐसे कहे हैं, प्रोषधोपवास, सचित्तत्याग, रात्रिभुक्तित्याग, ब्रह्मचर्य, आरम्भत्याग, परिग्रहत्याग, अनुमतित्याग और उद्दिष्टत्याग, इस प्रकार ग्यारह प्रकार देशविरत है।

भावार्थ **– ये सागार संयमाचरण के ग्यारह स्थान हैं, इनको प्रतिमा भी कहते हैं।।२२।।**

गाथा-२२ पर प्रवचन

आगे सागार संयमाचरण को कहते हैं – ग्यारह प्रतिमा के नाम देते हैं। यह संयमाचरण के ग्यारह भेद हैं। बारह व्रत बाद में कहेंगे।

दंसण वय सामाइय पोसह सचित्त रायभत्ते य।
बंभारंभापरिग्गह अणुमण उद्दिट्ठ देसविरदो य।।२२।।

पहली दर्शनप्रतिमा, दूसरी व्रतप्रतिमा, तीसरी सामायिक, यह सब पंचम गुणस्थान की बात है। दर्शनप्रतिमा भी पाँचवें गुणस्थान में है। उसे अणुव्रत होते हैं परन्तु अतिचार सहित होते हैं, इसलिए उन्हें व्रत में नहीं गिना है। वास्तव में तो निरतिचार व्रत हों, उसे व्रत प्रतिमा में गिनने में आया है। क्या कहा, समझ में आया? सम्यग्दर्शन, उसके उपरान्त पहली प्रतिमा में पाँच अणुव्रत होते हैं, परन्तु अतिचारसहित हैं, इसलिए उन्हें अणुव्रत होने पर भी व्रत में गिनने में नहीं आया। व्रत की प्रतिमा में गिनने में नहीं आया। देखो! एक शैली। समझ में आया? और दूसरी प्रतिमा में अणुव्रत अतिचाररहित पालता है; इसलिए उसे व्रती गिनने में आता है। समझ में आया इसमें?

यहाँ तो ऐसा कहा कि जैसे अखण्ड वस्तु, पूर्ण वस्तु की श्रद्धा, वह समकित है; वैसे पूर्ण निरतिचार व्रत, वह व्रती है। भाई! समझ में आया इसमें कुछ? पूर्ण निरतिचार व्रत है, वह व्रती है। जैसे यहाँ अखण्ड द्रव्य पर दृष्टि हुई, तब समकित कहलाया, तब उसे समकिती कहा जाता है; उसी प्रकार व्रत के अतिचार रहित निरतिचार करे, उसे व्रती कहा जाता है। समकित (दर्शन) प्रतिमा है अणुव्रत परन्तु उसे व्रती नहीं कहा। क्योंकि निरतिचार नहीं है। कैसी शैली है, देखो न! समझ में आया? वस्तु की स्थिति की मर्यादा का वर्णन करते हैं।

दूसरी प्रतिमा, दूसरी व्रत प्रतिमा। आगे स्पष्टीकरण करेंगे, हों! अकेले नाम ही दिये हैं। फिर स्पष्टीकरण २३वीं गाथा में देंगे। व्रतप्रतिमा, सामायिकप्रतिमा। सम्यग्दर्शन जहाँ अनुभव हुआ है, तदुपरान्त जब निरतिचार व्रत में आया है, तत्पश्चात् तीसरी प्रतिमा में वह सवेरे, दोपहर, सायंकाल सामायिक करता है। समझ में आया? वैसे तो सब सामायिक करते थे न? थोथा न? सामायिक कहाँ थी? वह तो आत्मा के पूर्ण स्वरूप... आहाहा! समझ में आया?

कहाँ इसके परिणाम हैं, राग तो आत्मा में है ही नहीं, उसके जो परिणाम निर्मल हैं, वे भी वस्तु की दृष्टि से तो अभूतार्थ है। रात्रि में कहा था। समझ में आया? पुण्य-पाप के विकल्प हैं, वे तो धर्मी की पर्याय में नहीं। भाई! क्या कहा? धर्मी की पर्याय में नहीं। वे भिन्न रह जाते हैं। समझ में आया? परन्तु धर्म के जो परिणाम हैं, उसे भी अभूतार्थ कहा है। क्योंकि उससे महाप्रभु, उसको भूतार्थ सत्यार्थ साहेब कहा है, उसे सत्य कहा है। समझ में आया? रात्रि में थोड़ा कहा था। एक समय के परिणाम हैं, वे परिणाम भूतकाल के अनन्त काल से अनन्तवें भाग काल है। और भूतकाल वापस भविष्य के काल से अनन्तवें भाग है। समझ में आया? भविष्यकाल की अपेक्षा भूतकाल अनन्तवें भाग है और उससे भी एक समय के परिणाम अनन्तवें भाग है। अर्थात् बहुत समय एक सूक्ष्म रह गया, बस इतना। समझ में आया? भविष्यकाल है न? भविष्य। भविष्यकाल। उससे भूतकाल अनन्तवें भाग है। अनन्तवें भाग। भूतकाल से भविष्य अनन्तगुणा है, अनन्तगुणा भविष्य है और भविष्य काल से भूतकाल अनन्तवें भाग है। अनन्तवें भाग है। भूतकाल से एक समय की पर्याय अनन्तवें भाग है। अनन्त काल भूत है, उसकी अपेक्षा एक (समय के) परिणाम अनन्तवें भाग है। इसलिए तो एक परिणाम एक काल, समयमात्र इतना कहा।

मुमुक्षु : बहुत छोटे में छोटा...

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत छोटी पर्याय। बड़ा भगवान तो आत्मा है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो और निरतिचार कहा न? दूसरे व्रत और प्रतिमावाले को निरतिचार हो तो व्रती (कहलाता है)। यहाँ अखण्ड अभेद की दृष्टि हो तो समकिती (कहलाये)। अखण्ड कौन? कि जिसके एक समय के परिणाम भी त्रिकाल की अपेक्षा से तो अभूतार्थ है। ऐसा

भगवान आत्मा त्रिकाल एकरूप कि जिसका समय भी भविष्य से भूत अनन्तवें भाग और भूत से एक समय की पर्याय अनन्तवें भाग। अर्थात् बहुत काल छोटा हो गया। अब भाव से लें, इतना भाव—स्वभाव है इसका, सम्यग्दर्शन का, ज्ञान का वह गुण है, इतना भाव है कि भविष्य की निर्मल पर्यायें, निर्मल पर्यायें, निर्मल पर्याय जब से सम्यग्दर्शन हुआ, ज्ञान हुआ, तब से निर्मल पर्याय होते... होते... होते... होते... होते... उस निर्मल पर्याय का कहीं अन्त नहीं। समझ में आया? क्या कहा?

मुमुक्षु : निर्मल पर्याय का अन्त हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्त कहाँ का हो? अन्त किसका? तो द्रव्य का अन्त आ जाए। आहाहा!

ऐसी निर्मल पर्याय का अन्त नहीं, ऐसा का ऐसा... ऐसा का ऐसा हुआ ही करे। केवलज्ञान... और वह भी भविष्य में केवलज्ञान होना है, उस केवलज्ञान की पर्याय सादि-अनन्त ऐसी की ऐसी हुआ ही करेगी। ऐसी पर्याय का पिण्ड जो है गुण, ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड जो है, उसमें भाव अनन्त-अनन्त आ गया। त्रिकाली रहना महा अनन्त आ गया और एक समय की पर्याय अनन्तवें भाग में अनन्तवें... अनन्तवें... अनन्तवें भाग में आ गयी। ऐसी वस्तु जो है महा भगवान भाव कि जिसमें अनन्त केवलज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य ऐसी अनन्त पर्यायें जो पूर्ण, जो पूर्ण पर्याय का उत्पन्न होने का फिर अन्त नहीं। इतने काल और ऐसी की ऐसी चलती जाये... चलती जाये... चलती जाये... कहाँ अन्त? परनतु अन्त कहाँ हो? ऐसी पूर्ण पर्याय सर्वज्ञ की और सिद्धपद की पर्याय, ऐसी पर्याय की उत्पत्ति-व्यय, उत्पत्ति-व्यय, उत्पत्ति-व्यय हुआ ही करेंगे। ऐसा जो अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अन्त नहीं, ऐसा भाव, उस सब भाव का पिण्ड तो यहाँ है, कहते हैं। आहाहा! नवनीतभाई! समझ में आया? इसलिए त्रिकाल ऐसे भाव को सत्यार्थ भूतार्थ निश्चय गिनकर एक समय के परिणाम को असत्यार्थ, अभूतार्थ, नहीं जैसा गिनकर अभूतार्थ कहा। नहीं जैसा गिनकर। है अवश्य। समझ में आया? आहाहा! निमित्त तो कहीं रह गया, दया, दान के विकल्प तो कहीं रह गये, यह उसकी अपूर्ण पर्याय कहीं रह गयी परन्तु पूर्ण पर्याय हुई... हुई... हुई... हुई और हुआ ही करेगी, जिसका कहीं अन्त नहीं। अन्तिम पर्याय है कोई? अन्तिम

पर्याय हो तो फिर द्रव्य ही नहीं रहे। ऐसी वस्तु ही नहीं हो सकती। ऐसी जिसकी... आहाहा!

क्षेत्र में जैसे अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... है... है... है... है... क्षेत्र आया करे। कहीं नहीं, नहीं। ऐसे यहाँ अनन्त पूरी पर्याय होगी... होगी... होगी... होगी... होगी... है... है... है... ऐसी चलती जायेगी। कहीं नहीं है, ऐसा अन्त नहीं आयेगा। समझ में आया? ऐसा भगवान ऐसी अनन्त पर्याय को तो एक समय में गुण में कहीं छिपाकर पड़ा है वह तो। समझ में आया? आहाहा! ऐसे पूर्ण स्वभाव की अपेक्षा से एक समय की पर्याय को अनन्तवें... अनन्तवें... अनन्तवें... अनन्तवें भाग के भावरूप, पर्याय में भाव तो है न वह? समझ में आया? यह तो बहुत थोड़ा। इससे पर्यायदृष्टिवाले को मिथ्यादृष्टि कहा है न। ... वस्तु इतनी नहीं। समझ में आया? महा पूर्ण वस्तु... लोगों को अभी इस बात का अन्दर माहात्म्य नहीं आता, माहात्म्य। अभी पहले समझना कठिन। यह क्या है? बाहर की बातें होवे तो इसे सब ठीक पड़े।

ऐसा जो आत्मा त्रिकाल अखण्ड अभेद एक स्वरूप का परिणाम का भेद भी जिसमें नहीं। एक समय का ऐसा भेद भी जिसमें नहीं, तथापि भेदवाली पर्याय तो बहुत नजीवी जैसी। नजीवी जैसी अर्थात् नहीं टिकती जैसी। समझ में आया? ऐसे एक समय का काल और एक समय का भाव, यह अनन्तगुणा काल और अनन्तगुणा भाव, उसकी जहाँ अभेद की दृष्टि हुई, कहते हैं, अब पर्याय में जरा निर्बलता रही, वह निर्बलता मिटा डालेगा। स्वयं निरोग हो गया है। समझ में आया? पूर्ण निरोग वस्तु भगवान आत्मा भावभासन होकर प्रतीति हुई है, भाव ऐसा ही होता है, यह होता है, ऐसा होता है—ऐसा भान होकर प्रतीति हुई है, वह निरोगी हो गया। उसे अब रोग रहा नहीं। समझ में आया? अब निर्बलता टालने के लिये स्वरूप की स्थिरता करता है, उसमें ऐसे व्रत के, प्रतिमा के विकल्प आते हैं। आहाहा! समझ में आया?

वस्तु तो वस्तु है। वस्तु है, ऐसा उसे सत्तापना है, ऐसा इसे दृष्टि में आना चाहिए न? समझ में आया? यह वस्तु ऐसी। पूर्ण सिद्ध की पर्याय उत्पन्न हुआ करे, उसका अन्त नहीं। उन सब पर्यायों की खान तो द्रव्य है, हें! उत्पत्ति अपेक्षा से। उत्पाद स्वतन्त्र है। यह और अलग बात। समझ में आया? इस पर्याय का द्रव्य दाता नहीं, यह दूसरी अपेक्षा से बात।

हुई है, हुई है। वह दाता नहीं। होती है उसमें से, कहीं अन्यत्र से अद्धर से होती है? पूरा उसका दाता नहीं। पूरी चीज़ दाता नहीं। एक अंश के अन्दर जो योग्यता थी, ऐसी बाहर आयी। समझ में आया? पूरा आत्मा सामान्य है, वह उसका दाता नहीं। अरे! गजब बात, भाई! समझ में आया?

ऐसा जो वस्तु का स्वरूप, ऐसे महाप्रभु अनन्त-अनन्त भाव का एक भाव, अनन्त-अनन्त भाव का एक भाव, एक भाव अर्थात् द्रव्य, ऐसे अखण्ड पर निर्विकल्प दृष्टि होना, विकल्प टूटे बिना वह दृष्टि होती ही नहीं। समझ में आया? ऐसे भाववाला तत्त्व, उसे प्रतीति में लेने से जो उसमें राग नहीं, उसका सहारा उसमें नहीं होता। समझ में आया? उस निर्विकल्प पर्याय का सहारा राग को नहीं और राग का सहारा इसे नहीं। वह पर्याय पूरे ऐसे को स्वीकार करती है, अर्थात् पूरा आत्मा ऐसा रोगवाला माना था, कम माना था और पर्यायवाला माना था, वह तो सब रोगी प्राणी मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? ऐसा जो भगवान आत्मा, भाव और काल से त्रिकाल रहनेवाला तत्त्व, एकरूप तत्त्व, ऐसे-ऐसे भाव तो अनन्त कहे हैं, ऐसे-ऐसे अनन्त भाव का एकरूप भाव—वस्तु, उस पर (लक्ष्य करके) ज्ञान में उसे ज्ञेय बनाकर और प्रतीति में आवे, वह (जीव) छूट गया। संसार से छूट गया, राग से छूट गया। राग, वह संसार है न। आहाहा! वह थोड़ा राग फिर भिन्न रह गया। वह निर्बलता का राग है। उसे स्वरूप की स्थिरता द्वारा टालेगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कहो, भीखाभाई! आहाहा!

परमात्मप्रकाश में आता है न? रामचन्द्रजी आदि पुरुष वस्तुस्थिति की वस्तुस्तुति करते थे। वस्तु की स्तुति करते थे, ऐसा आता है। वस्तुस्तव—स्तुति। ऐसा आत्मा। आहाहा! तैंतीस सागर के विकल्प के ज्ञान में पार न पड़े। ऐसा आत्मा एक अन्तर्मुहूर्त के निर्विकल्प ध्यान में पार पड़कर केवलज्ञान ले। समझ में आया? इतनी ताकतवाला, इतने सामर्थ्यवाला, महाप्रभु का प्रभु, अनन्त प्रभुता का प्रभु स्वयं! उसमें दर्शन सम्यक् होने पर कहते हैं कि वह निरोग हो गया। अब उसे मोह और राग रहा नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह इस रोगरहित हुआ। वह तो चारित्र का जो रोग था, उसके रहित की बात की। यहाँ रोगरहित हो गया। आरोग्य बोहि लाभं। यह कहा है, एक ठिकाने

(कि) समकित हुआ, इसलिए निरोग हो गया। अब कमजोरी रही है। अब मात्र कमजोरी टालना रही है। निरोगी व्यक्ति हुआ, अब बुखार मिट गया है, अशक्ति रही है। उस अशक्ति का पूरा पड़ेगा। परन्तु रोग जब तक नहीं मिटे, तब तक अशक्ति तो साथ में पड़ी ही है। ऐ... वीरजीभाई! आहाहा!

यहाँ तो और यह व्रत में से आया। देखो न! आचार्य की शैली तो देखो, कथनपद्धति। दर्शनप्रतिमा को पाँचवाँ गुणस्थान होता है। उसे पाँच अणुव्रत होते हैं, तथापि उसे व्रतप्रतिमा नहीं कहा। अखण्ड व्रत जब तक न हो, पंचम गुणस्थान के योग्य, पाँच अणुव्रत निरतिचार (पालन करे), तब उसे व्रत प्रतिमा कहा जाता है। उसे व्रत के अन्दर में बिल्कुल दोष नहीं होता। जैसे सम्यग्दर्शन में बिलकुल अपूर्णता दृष्टि में नहीं होती, वैसे व्रत में बिल्कुल अतिचार का दोष नहीं लगता। समझ में आया?

तीसरा, सामायिक। यह सामायिक अर्थात् जो आत्मा का भान हुआ है, उस आनन्द में रहने का उपयोग का नाम सामायिक है। शुद्धोपयोग हो, शुद्धोपयोग में रहे, उसका नाम सामायिक है। समझ में आया? उसमें न रह सके तो भी अन्तर सन्मुख के झुकाववाला भाव और भक्ति आदि का जरा विकल्प हो... समझ में आया? परन्तु वह मूल सामायिक तो जितनी स्थिरता हुई है, उसे सामायिक कहा जाता है। समझ में आया?

प्रौषध। लो। प्रौषध... प्रौषध। अष्टमी, पाखी के उपवास आदि हो। स्वरूप में पोषण में निवृत्ति... निवृत्ति... निवृत्ति... आत्मा को प्रौषध से पुष्ट करना। प्रौषध से पुष्ट करना। जैसे चना पानी में डूबकर पुष्ट होता है, ऐसे आत्मा एकाग्र होकर शान्ति में पुष्ट होता है। उसे प्रौषध कहते हैं। समझ में आया?

एकदेश है और नाम ऐसे कहे हैं, प्रोषधोपवास, सचित्तत्याग,... एकदेश अर्थात् उस नाम में। मूल पाठ में है, इससे एक-एक शब्द लिया है। प्रौषध, ऐसा। प्रौषधप्रतिमा, दर्शनप्रतिमा, ऐसा लेना। एकदेश नाम लिया है। एक भाग लिया और दूसरा भाग नहीं लिया। एकदेश है। समझ में आया? प्रौषध आदि नाम का एकदेश है। प्रौषध व्रत है न, वह भाषा भले नहीं ली, परन्तु ऐसा समझ लेना, ऐसा कहते हैं। प्रौषधोपवास कहना। **सचित्तत्याग,...** पश्चात् स्थिरता विशेष अंश में होने से, शान्ति बढ़ने से सचित्त के त्याग

का भाव अन्दर होता है। श्रावक सचित्त खाये नहीं। ऐसे भी सम्यग्दर्शनसहित निरतिचार व्रत सहित, सामायिक सहित प्रौषधवाले को अमुक दिन और सचित्त का त्याग (होता है)। समझ में आया?

रात्रिभुक्तित्याग,... रात्रि में आहार का (त्याग होता है)। इतनी-इतनी स्थिरता आंशिक बढ़ी है, तब उस प्रकार का बाह्य त्याग देखने में आता है। **ब्रह्मचर्य,...** रात्रि और दिन बिल्कुल अब्रह्म का त्याग। **आरम्भत्याग,...** परिग्रह आदि का आरम्भ का त्याग। **परिग्रहत्याग...** आरम्भ में हिंसा आदि का त्याग। यहाँ परिग्रहत्याग। **अनुमतित्याग...** दसवीं प्रतिमा। लो! जगत के पाप के परिणाम में अनुमति कि यह तुमने ठीक किया, यह तुमने पुत्र का सम्बन्ध (सगाई) किया, अमुक... अच्छे घर में किया, यह अनुमति उसे नहीं होती। **उद्दिष्टत्याग,...** अन्त में श्रावक ग्यारहवीं प्रतिमा में सम्यग्दर्शनसहित, निरतिचार व्रतसहित, सामायिक आदि अन्दर साधता जीव अजमाईश करता, उसे आगे बढ़ते हुए उसके लिये कुछ भी पानी की बूँद बनायी (प्रासुक की) हो, तो भी त्याग। लेता नहीं। समझ में आया? उद्दिष्टत्याग—उसके लिये आहार, पानी बनाया हो, वह ले नहीं। इतनी आत्मा में स्वरूप की दृष्टिसहित स्थिरता हुई है कि सहज उसे उसके लिये बनाये हुए आहार-पानी लेने का विकल्प नहीं होता। उसे श्रावक की ग्यारह प्रतिमा कहते हैं।

इस प्रकार ग्यारह प्रकार देशविरत है। देखो! देशविरत है। समझ में आया? परन्तु यह सम्यग्दर्शनचरण चारित्र के बाद की बात है। जिसे सम्यग्दर्शन ही नहीं, उसे ग्यारह प्रतिमा या उसे बारह व्रत, बारह फ्रत कुछ नहीं होते। आहाहा!

भावार्थ – ये सागार संयमाचरण के ग्यारह स्थान हैं, इनको प्रतिमा भी कहते हैं। लो। गृहस्थाश्रम में आत्मज्ञानसहित, आत्मदर्शनसहित, आत्मा के समकितचरण आचरणसहित विशेष बढ़कर जब स्थिरता का अंश बढ़ता है, तब उसे इस प्रकार के ग्यारह प्रतिमा का भाव होता है। उसे पंचम गुणस्थानवाला श्रावक—सच्चा श्रावक उसे कहा जाता है। समझ में आया? वाड़ा में श्रावक-बावक कहते हैं, वह श्रावक-बावक नहीं। थैली में चिरायता और ऊपर लिखे शक्कर, वह कहीं चिरायता मीठा नहीं होता। इसी प्रकार ऊपर कहे कि हम जैन हैं और अन्दर में राग मेरा और पुण्य में प्रेम (है तो) वह जैन ही नहीं है। आहाहा! बहुत कठिन बात। समझ में आया? राग का एक विकल्पमात्र शुभ का, वह मेरा

हित करनेवाला है और वह मेरा है, (ऐसा माननेवाला) जैन नहीं है। वह जैन का श्रावक नहीं, जैन का भगत नहीं। वह राग का भगत है। ऐई! पोपटभाई! भारी काम, भाई कठिन। श्रावकपना भी ऐसा कठिन? वस्तु ऐसी है।

भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, जिसमें राग का विकल्प नहीं, जिसमें एक समय की पर्याय नहीं, ऐसा जो भगवान, उसका जहाँ अन्तरदृष्टि में भान हुआ, तब तो राग का अभावस्वभाववाला आत्मा हूँ, ऐसा भान हुआ। रागवाला हूँ, ऐसा भान नहीं। रागवाला आत्मा हूँ, (ऐसा मानता है) तब तक तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? आहाहा! भारी कठिन काम।

वीतराग, वीतराग की दृष्टि... परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी परमात्मा ऐसा कहते हैं। भाई! हम वीतराग और केवलज्ञानी हैं। हमारा मार्ग अर्थात् तेरा मार्ग वीतराग और पूर्ण ज्ञान प्रगट करने का है। समझ में आया? राग का कण भी चैतन्य के स्वभाव के साथ मिलावे, तब तक तो वह मिथ्यादृष्टि अजैन है। आहाहा! समझ में आया? वह जैन होता है, वह तो वस्तु का स्वरूप है, जैन। रागरहित आत्मा का स्वभाव, ऐसा वीतरागस्वरूप, उसे श्रद्धा-ज्ञान में लिया, तब राग का विकल्प मुझमें नहीं, भिन्न है, तब उसे जैनपने का दर्शन हुआ कहा जाता है। समझ में आया? भीखाभाई! भारी महँगा। महँगा नहीं, वस्तु ऐसी है। दुनिया मान बैठे, इसलिए कहीं वस्तु दूसरी हो जायेगी? यह तो सर्वज्ञ परमात्मा की कही हुई है। वीतरागदेव त्रिलोकनाथ, जो सौ इन्द्र के पूजनीक हैं, सौ इन्द्र के पूजनीक, उन प्रभु की वाणी में ऐसा आया है। भगवानजीभाई! आहाहा!

कहते हैं, जिसे पहला सम्यग्दर्शनचरण चारित्र हुआ है, अर्थात् कि रागादि, दया, दान, व्रत का विकल्प भी मुझमें नहीं, वह भिन्न चीज़ है, वह आस्रवतत्त्व है, मेरा तत्त्व ज्ञायक चिदानन्द है। आहाहा! ऐसे नव तत्त्व में आत्मा भिन्न पड़ गया है। आस्रव से, पुण्य-पाप के राग से भिन्न पड़कर आत्मतत्त्व की अन्दर प्रतीति की है कि जो संसाररहित का दृष्टि में हो गया है, ऐसा कहते हैं। उसमें संसार है नहीं। आहाहा! अब अस्थिरता का भाग थोड़ा रह गया। आहाहा! उसे तो जिनरूप से जानता है, हों! परन्तु मेरी निर्बलता का परिणमन है, ऐसा जानता है। उसे स्वरूप में अन्तर आनन्द में स्थिर होने से ऐसे प्रतिमा के (विकल्प होते हैं)। पहली प्रतिमा में जो शान्ति है, चौथे गुणस्थान में जो शान्ति है, उसकी अपेक्षा पहली प्रतिमा में शान्ति का अंश बढ़ गया है। दूसरी में उससे शान्ति का अंश (बढ़

गया है), तीसरी में उससे शान्ति (बढ़ी है), ऐसे ग्यारहवीं प्रतिमा में शान्ति वीतरागी अरागी पर्याय बढ़ गयी है। आहाहा! समझ में आया? सर्वार्थसिद्धि के समकिती देव ३३ सागर तक रहते हैं। उनकी अपेक्षा भी जिसकी-पाँचवें गुणस्थान की दशा बढ़ी, यह उसकी अपेक्षा अनन्तगुणा बढ़ गया है। आहाहा! समझ में आया? इसे यहाँ प्रतिमा कहा जाता है। भारी बात, भाई!

गाथा-२३

आगे इन स्थानों में संयम का आचरण किस प्रकार से है, वह कहते हैं -

पंचेव णुव्वयाइं गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि।
सिक्खावय चत्तारि य संजमचरणं च सायारं।।२३।।

पंचैव अणुव्रतानि गुणव्रतानि भवंति तथा त्रीणि।
शिक्षाव्रतानि चत्वारि संयमचरणं च सागारम्।।२३।।

ये देश-विरति पाँच अणुव्रत तीन गुणव्रत चतुष्की।
शिक्षाव्रतों संयम-चरण-युत हैं सभी सागार ही।।२३।।

***अर्थ* - पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत - इस प्रकार बारह प्रकार का संयमचरण चारित्र है, जो सागार है, ग्रन्थसहित श्रावक के होता है, इसलिए सागार कहा है।**

***प्रश्न* - ये बारह प्रकार तो व्रत के कहे और पहिले गाथा में ग्यारह नाम कहे, उनमें प्रथम दर्शन नाम कहा, उसमें ये व्रत कैसे होते हैं ?**

इसका समाधान - अणुव्रत ऐसा नाम किंचित् व्रत का है, वह पाँच अणुव्रतों में से किंचित् यहाँ भी होते हैं, इसलिए दर्शन प्रतिमा का धारक भी अणुव्रती ही है, इसका नाम दर्शन ही कहा। यहाँ इस प्रकार जानना कि इसके केवल सम्यक्त्व ही होता है और अव्रती है, अणुव्रत नहीं है। इसके अणुव्रत अतिचार सहित होते हैं, इसलिए व्रती नाम नहीं कहा। दूसरी प्रतिमा में अणुव्रत अतिचार रहित पालता है, इसलिए व्रत नाम कहा है, यहाँ सम्यक्त्व के अतिचार टालता है, सम्यक्त्व ही प्रधान है, इसलिए दर्शनप्रतिमा नाम है।

अन्य ग्रन्थों में इसका स्वरूप इस प्रकार कहा है कि जो आठ मूलगुण का पालन करे, सात व्यसन को त्यागे, जिसके सम्यक्त्व अतिचार रहित शुद्ध हो, वह दर्शन प्रतिमा का धारक है। पाँच उदम्बर फल और मद्य, मांस, मधु इन आठों का त्याग करना, वह आठ मूलगुण हैं।

अथवा किसी ग्रन्थ में इस प्रकार कहा है कि पाँच अणुव्रत पाले और मद्य, मांस, मधु का त्याग करे, वह आठ मूलगुण हैं, परन्तु इसमें विरोध नहीं है, विवक्षा का भेद है। पाँच उदम्बर फल और तीन मकार का त्याग कहने से जिन वस्तुओं में साक्षात् त्रस जीव दिखते हों, उन सब ही वस्तुओं का भक्षण नहीं करे। देवादिक के निमित्त तथा औषधादि निमित्त इत्यादि कारणों से दिखते हुए त्रसजीवों का घात न करे, ऐसा आशय है, जो इसमें तो अहिंसाणुव्रत आया। सात व्यसनों के त्याग में झूठ, चोरी और परस्त्री का त्याग आया, अन्य व्यसनों के त्याग में अन्याय, परधन, परस्त्री का ग्रहण नहीं है; इसमें अतिलोभ के त्याग से परिग्रह का घटाना आया, इस प्रकार पाँच अणुव्रत आते हैं।

इनके (व्रतादि प्रतिमा के) अतिचार नहीं टलते हैं, इसलिए अणुव्रती नाम प्राप्त नहीं करता (फिर भी) इस प्रकार से दर्शन प्रतिमा का धारक भी अणुव्रती है, इसलिए देशविरत सागारसंयमचरण चारित्र में इसको भी गिना है।।२३।।

गाथा-२३ पर प्रवचन

आगे इन स्थानों में संयम का आचरण किस प्रकार से है, वह कहते हैं – अब, उसे आत्मदर्शनसहित, सम्यग्दर्शनसहित, आत्मज्ञानसहित ग्यारह प्रतिमा में उसे जब व्रत प्रतिमा होती है न, तब ऐसे व्रत होते हैं। इस स्थान में यह बारह व्रत होते हैं, ऐसा कहते हैं। व्रत प्रतिमा का स्थान आया न। उसमें ऐसे व्रत होते हैं। यह तो वस्तुस्थिति ऐसी है। बाहर से आत्मदर्शन और आत्मज्ञान बिना, समकित बिना व्रत-ब्रत ले लेवे, वे व्रत हैं ही नहीं। वह तो अंक बिना के शून्य हैं। समझ में आया? मार्ग ऐसा प्रभु का है, भाई! केवलीपण्णत्तो धम्मो शरणं, मांगलिक में आता है न? वह यह। सच्चिदानन्द प्रभु, वीतरागी मूर्ति, जिसने—परमात्मा ने वीतरागदशा पर्याय में प्रगट की। ऐसा ही आत्मा अन्दर वीतरागी मूर्ति है। ऐसी उसकी श्रद्धा अनुभव होकर प्रतीति होना, भाव का भासन होकर प्रतीति होना, ऐसा। अर्थात् ज्ञान होकर प्रतीति होना, भासन होकर प्रतीति होना, एक ही बात

है। उसके समकित के आचरण में उसे पच्चीस दोष समकित के विरुद्ध के हों, वे नहीं लगते। निःशंक, निःकांक्ष आदि गुण की पर्याय होती है। उसे समकितचरण का चारित्र कहा जाता है। वह चौथे गुणस्थान में होता है। यह प्रतिमा की बात पाँचवें की है। आहाहा! उसे कहते हैं कि इस स्थान में, ऐसा कहा न? यह स्थान जो ग्यारह प्रतिमा के कहे, उनमें व्रत प्रतिमा जो है, उसके विषय में यह संयमाचरण होता है।

और एक दूसरा अर्थ (कहते हैं), देखो! यहाँ तो व्रत की प्रतिमा को संयम कहा है।...यह कहते हैं, भाई! विकल्पवाले को संयम का भेद किया तो विकल्पवाले के किये हैं, ऐसा कहते हैं। परन्तु बात दूसरी करे भी क्या? ऐसा जिसे विकल्प हो, उसके पीछे सम्यग्दर्शन और स्थिरता ऐसी होती है, ऐसा बतलाते हैं। आहाहा! क्योंकि देखो! यहाँ सागार-अनगार संयम के भेद किये, वह विकल्प के व्रत के भेद किये, ऐसा कहते हैं। भगवान! भले न कहा हो, परन्तु वह तो यहाँ व्रती कहना है, उसके द्वारा बतलाना है दर्शन और स्थिरता। आहाहा! उसे स्थिरता का अंश इतना होता है, तब उसके ग्यारह प्रतिमा के विकल्प ऐसे होते हैं। क्या हो? समझ में आया?

जब अन्दर सम्यग्दर्शनसहित शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... अकषाय की आंशिक बढ़ गयी हो, उसे ऐसे बारह व्रत के विकल्प होते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अर्थात् व्यवहार द्वारा उसका निश्चय कैसा होता है, यह समझाया है। यह व्यवहार व्रतादि है, वे चारित्र हैं, यह कुछ नहीं। समझ में आया? आत्मा के भानसहित में ग्यारह प्रतिमा हो, तब उसे ऐसे बारह व्रत के विकल्प होते हैं। इतनी स्थिरता अन्दर जमी है, तब ऐसा विकल्प उठता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह बात निकालते हैं न वे।

पंचेव णुव्वयाइं गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि।
सिक्खावय चत्तारि य संजमचरणं च सायारं।।२३।।

अणुव्रत पाँच। सम्यग्दृष्टि जीव को श्रावक को-पंचम गुणस्थानवाले को सच्चे श्रावक को पाँच अणुव्रत के विकल्प होते हैं। तीन गुणव्रत उसे (होते हैं)। स्पष्टीकरण करेंगे। चार शिक्षाव्रत।

अर्थ - पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत - इस प्रकार बारह प्रकार का संयमचरण चारित्र है, जो सागार है,... क्योंकि गृहस्थाश्रम में अभी

परिग्रहसहित दिखता है। परिग्रह है न? राजपाट हो। पाँचवाँ गुणस्थान हो, राजपाट भी दिखायी दे। अन्दर में मेरा मानता नहीं, परन्तु अस्थिरता के राग के भाग के कारण ऐसे निमित्त बाहर में होते हैं। समझ में आया? ग्रन्थसहित है न पाठ में? पहले आ गया है न? २१ गाथा। **'दुविहं'** सागार, निरागार। **'सायारं सग्गंथे।'** २१ गाथा में है। इसका स्पष्टीकरण बाद में। **'सग्गंथे परिग्गहा रहिय खलु णिरायारं।'** आहाहा! अभी स्त्री, कुटुम्ब, परिवार आदि का विकल्प उसे होता है। दृष्टि समकिती जानता है कि वह मेरी चीज़ नहीं है। परन्तु उसे पर्याय में एक दूसरा भाग ऐसा आता है। दूसरा भाग अर्थात्? एक निर्मल पर्याय की पर्याय एक अंश और उसमें उसी पर्याय का एक दूसरा राग का भाग आता है। उसे यहाँ व्रत आदि के विकल्प को बारह व्रत कहा गया है।

मुमुक्षु : उसमें तो व्रत को सागारपना बताया।

पूज्य गुरुदेवश्री : तब वे कहते हैं न। इसके द्वारा बतलाया है। बतलाना किस प्रकार? ऐसी बात है।

प्रश्न – ये बारह प्रकार तो व्रत के कहे और पहिले गाथा में ग्यारह नाम कहे, उनमें प्रथम दर्शन नाम कहा, उसमें ये व्रत कैसे होते हैं ? अब स्पष्टीकरण करते हैं। सम्यग्दर्शन आत्मा का ज्ञान और दर्शन हुआ। तदुपरान्त जहाँ दर्शन प्रतिमा हुई, उसे अणुव्रत कैसे होते हैं, उसे व्रत कैसे होते हैं? ऐसा बताते हैं। क्योंकि तुम तो दर्शनप्रतिमा को पाँचवाँ गुणस्थान कहते हो। तब उसे—दर्शनप्रतिमावाले को व्रत कैसे होते हैं? ऐसा कहते हैं। क्या कहा, समझ में आया इसमें?

ऐसा कि, तुम दर्शनप्रतिमा—समकितप्रतिमा कहते हो। तब उसे फिर तुम पाँचवें गुणस्थान में डाला। समकितदर्शन आत्मा के भान उपरान्त उसे पाँचवें में डाला। तो पाँचवें में उसे व्रत होते हैं या नहीं? इसके बिना पाँचवें में डाला कैसे? समझ में आया? सम्यक् अनुभव के दर्शनपूर्वक उसे—व्रत सम्यक् प्रतिमावाले को जब श्रावकरूप से, पंचम गुणस्थानरूप से स्वीकार किया गया तो उसे व्रत का पाँचवाँ गुणस्थान आया, तो उसे व्रत कैसे हों कि जिससे पाँचवें में आया? समझ में आया?

इसका समाधान – अणुव्रत ऐसा नाम किंचित् व्रत का है, वह पाँच अणुव्रतों में से किंचित् यहाँ भी होते हैं,... पाँच अणुव्रत में थोड़ा भी यहाँ है। **इसलिए दर्शन**

प्रतिमा का धारक भी अणुव्रती ही है, इसका नाम दर्शन ही कहा। यहाँ इस प्रकार जानना... (नहीं) नाम शब्द में नहीं जानना कहा है। **यहाँ इस प्रकार (नहीं) जानना कि इसके केवल सम्यक्त्व ही होता है और अव्रती है, अणुव्रत नहीं है इसके अणुव्रत अतिचार सहित होते हैं...** क्या कहा ? अतिचारसहित है। समझ में आया ? किंचित दोष लग जाते हैं। व्रत के दोष लगते हैं –अतिचार। आते हैं न अतिचार ? अतिचार, व्यतिचार, अतिक्रम, अतिचार, आते हैं न ? अति... अनाचार। यह अतिचार दोष लगते हैं, तथापि वह अणुव्रती है। परन्तु दोषवाला है, इससे उसे व्रती शब्द में नहीं डाला। व्रती की प्रतिमा में नहीं डाला परन्तु पंचम गुणस्थान की दशा में डाला है। ऐसा कहते हैं। भारी बातें, भाई ! यह तो अभी गुणस्थान की दशा को समझाने के लिये यह बात है। समझ में आया ?

दर्शन प्रतिमा का धारक भी अणुव्रती ही है,... अकेला समकिती हो तो वह दर्शनप्रतिमा नहीं कहलाती। श्रेणिक राजा क्षायिक समकिती (थे) परन्तु वह दर्शनप्रतिमा नहीं। श्रेणिक राजा समकित पाये, तीर्थंकरगोत्र बाँधा, पहले नरक में गये। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में है। श्रेणिक राजा पहले नरक में से निकलकर आगामी चौबीसी में तीर्थंकर होनेवाले हैं, परन्तु उन्हें दर्शनप्रतिमा नहीं थी। सम्यग्दर्शन था और दर्शनप्रतिमा दूसरी चीज़ है। सम्यग्दर्शनसहित पाँच अणुव्रत अतिचारसहित हों, उसे पंचम गुणस्थान की दर्शनप्रतिमा कहा जाता है। गजब भाई ! समझ में आया ? यह सूक्ष्म है, श्यामलालजी ! आचरण की बात है न।

यहाँ इस प्रकार जानना कि इसके केवल सम्यक्त्व ही होता है और अव्रती है,... दर्शनप्रतिमावाला। ऐसा नहीं है। **अणुव्रत नहीं है (ऐसा नहीं) इसके अणुव्रत अतिचार सहित होते हैं, इसलिए व्रती नाम नहीं कहा।** कहो, समझ में आया ? **दूसरी प्रतिमा में अणुव्रत अतिचार रहित पालता है, इसलिए व्रत नाम कहा है।** लो, हाँ ! **यहाँ सम्यक्त्व के अतिचार टालता है, सम्यक्त्व ही प्रधान है, इसलिए दर्शनप्रतिमा नाम है।** ऐसा कहते हैं। दर्शनप्रतिमा कैसे ली ? कि समकित के जो अतिचार हैं, वे उसे नहीं होते। व्रत के अभी अतिचार होते हैं, इसलिए उसे व्रतप्रतिमा में नहीं डाला है। बाकी है तो अणुव्रती। अतिचार जिसे नहीं है, इसलिए उसे दर्शनप्रतिमा कहा। परन्तु व्रत के अतिचार हैं, इसलिए व्रतप्रतिमा नहीं कही। इत्यादि आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन-४३, गाथा-२३ से २५, गुरुवार, आषाढ़ (गुजराती) कृष्ण ५, दिनांक २३-०७-१९७०

अष्टपाहुड़, चारित्रपाहुड़ की व्याख्या है। २३वीं गाथा। क्या कहते हैं ? श्रावक का ग्यारह प्रतिमा होती है। प्रतिमा अर्थात् क्या ? कि प्रथम उसे सम्यग्दर्शन (होता है)। आत्मा शुद्ध चैतन्यद्रव्य है। पुण्य-पाप के रागरहित शुद्ध पूर्ण आनन्दस्वरूप, जैसे सिद्ध भगवान हैं, वैसा ही आत्मा ध्रुव शुद्ध है। ऐसी अन्तर में उसका ज्ञान होकर प्रतीति होना, इसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन है। कहो, समझ में आया ? तब तक उसे व्रत नहीं होते। परन्तु ऐसा सम्यग्दर्शन प्रथम धर्म की शुरुआत में होता है। पहले धर्म का पहला अंक और पहला आँकड़ा यह है। पश्चात् व्रतादि के विकल्पों की दशा होती है। वह बाद में वर्णन करेंगे। पहला तो सम्यग्दर्शनचरण आया न पहला ? सम्यक्चरण चारित्र।

आत्मा, सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव ने देखा, केवली ने जो आत्मा देखा कि पूर्ण शुद्ध आनन्द का कन्द वह आत्मा है। ऐसे आत्मा के सन्मुख होकर और संयोग, राग और पर्याय से विमुख होकर, अन्तर्मुख दृष्टि का अनुभव होना, इसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन— धर्म की शुरुआत, श्रावक के व्रत लेने से पहले यह दशा होती है। समझ में आया ? पश्चात् दर्शनप्रतिमा के बाद बात चलती है। अब ग्यारह। सम्यग्दर्शन के पश्चात् दर्शनप्रतिमा। दर्शनप्रतिमा उसे कहते हैं कि उसमें उसे पाँच अणुव्रत होते हैं, परन्तु निरतिचार अणुव्रत नहीं होते तो व्रत में अतिचार आदि दोष लगते हैं। इससे उसे सम्यग्दर्शन उपरान्त आत्मा के अनुभव की प्रतीति उपरान्त, उसे पंच अणुव्रत के भाव होते हैं। परन्तु वे अतिचारसहित होते हैं, इसलिए उसे व्रत में नहीं कहा गया है। इसलिए उसे व्रती में, दूसरे नम्बर की (प्रतिमा), पहली दर्शनप्रतिमा, दूसरी व्रतप्रतिमा। उस व्रतप्रतिमा में उसे नहीं रखा गया है। समझ में आया ?

यह तो वीतराग का अन्तर का मार्ग है। लोगों को वह बात अन्तर की चीज़ क्या है और उसका अनुभव और प्रतीति क्या कहलाती है, किसे सम्यग्दर्शन कहना, इसकी उन्हें खबर भी नहीं। यह तो बाहर के देव, गुरु, शास्त्र को मानना या यह नव तत्त्व भगवान ने कहे, वे भेदवाला मानना, बस ! सम्यक्त्व (हो गया)। यह सम्यग्दर्शन नहीं। वह तो नव तत्त्व का भेद का अनुभव, उसे तो शास्त्र मिथ्यात्व कहता है। समझ में आया ? और देव,

गुरु, धर्म की श्रद्धा, वह भी एक शुभराग विकल्प है। वह कहीं समकित नहीं है। सूक्ष्म बात है, भाई! आत्मा देव, गुरु और स्वयं धर्म का स्वरूप है। ऐसा आत्मा पूर्ण आनन्द और पूर्ण चैतन्यस्वभावी है, ऐसा जो ध्रुवस्वरूप आत्मा का, उसे अवलम्ब कर जो सम्यग्दर्शन हो, उसे धर्म की पहली सीढ़ी कहते हैं। इसके बिना कहीं धर्म नहीं होता। समझ में आया?

इस सम्यग्दर्शन उपरान्त दर्शनप्रतिमा का धारक अणुव्रती ही है। पंचम गुणस्थान की बात है। पहला सम्यग्दर्शन जो कहा, वह चौथा गुणस्थान है। अब पंचम गुणस्थान श्रावक का, जो सच्चा श्रावक, हों! यह वाड़ा के श्रावक, वे कहीं श्रावक नहीं। समझ में आया? पोपटभाई! कितने प्रौषध और प्रतिक्रमण किये थे या नहीं? किया था। वस्तु की खबर बिना वास्तविक तत्त्व जो चैतन्य, उसमें स्थिर होना है, ऐसा जो चारित्र, उसमें स्थिर होना, वह चारित्र। अब वह चीज़ क्या है, ऐसा जहाँ सम्यग्दर्शन और ज्ञान में उस चीज़ को भान में लिया नहीं तो फिर स्थिर कहाँ होना, इसकी तो उसे खबर नहीं। बाकी सम्यग्दर्शन बिना चारित्र और व्रत आदि होते नहीं। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन के पश्चात् दर्शनप्रतिमा का धारक अणुव्रती है। **इसका नाम दर्शन ही कहा। यहाँ इस प्रकार (न) जानना कि इसके केवल सम्यक्त्व ही होता है...** क्या कहते हैं जरा? सम्यग्दर्शन आत्मा का, पूर्ण आत्मा का निर्विकल्प अनुभव, राग के मिश्रित बिना पूर्ण चैतन्य भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ, हों! इसके अतिरिक्त अन्य ने कहा हुआ आत्मा, वह आत्मा नहीं। ऐसा जो आत्मा, अन्तर निर्विकल्प दृष्टि से अर्थात् राग की मिश्रित दृष्टि बिना अकेली निर्मल दृष्टि से उसका अनुभव करना, इसका नाम प्रथम चौथा गुणस्थान सम्यग्दर्शन है। इसके पश्चात् दर्शनप्रतिमा, वह पंचम गुणस्थान है। उस पंचम गुणस्थान में पाँच अणुव्रत होते हैं। वह अव्रती नहीं है।

अणुव्रत नहीं है, इसके अणुव्रत अतिचारसहित होते हैं... ऐसा नहीं कि अव्रती ही है और अणुव्रत नहीं है। ऐसा नहीं है। सूक्ष्म बात है, भाई! अणुव्रत नहीं है, ऐसा नहीं है। अणुव्रत अतिचारसहित होते हैं। उनमें कोई दोष लगते हैं। अतिचार का आता है न? अनंगक्रीड़ा, ... चौथे व्रत के अतिचार दोष आते हैं। पहले व्रत के अतिचार आते हैं। बंधे वहे... इत्यादि... अतिचार है। परन्तु वह जिसे सम्यग्दर्शन अनुभव है, उसे जो ऐसे व्रत की स्थिरता का अंश प्रगट हुआ है और उसमें जो उसे ऐसे व्रत विकल्प हों, उसे निरतिचार

नहीं होते। उसमें कुछ दोष लगता है, इसलिए उसे पंचम गुणस्थान कहा जाता है। परन्तु उसे व्रती नहीं कहा जाता। समझ में आया? **अणुव्रत अतिचारसहित होते हैं, इसलिए व्रती नाम नहीं कहा।** उसे व्रती नहीं कहा जाता। अणुव्रत होने पर भी जो व्रतप्रतिमा दूसरी है, पहली दर्शनप्रतिमा, दूसरी व्रतप्रतिमा, वह व्रतप्रतिमा उसे नहीं कहा जाता। समझ में आया?

दूसरी प्रतिमा में अणुव्रत अतिचाररहित पालता है, इसलिए व्रत नाम कहा है,... सम्यग्दर्शनसहित दूसरे व्रत अर्थात् प्रतिमा में, नियम में व्रतप्रतिमा कही, उसमें पाँच अणुव्रत निरतिचार, आंशिक अतिचार का दोष न लगे, ऐसे अणुव्रत के राग की बहुत मन्दता और अन्तर में स्वरूप की स्थिरता का अंश जगा है, शान्ति का (अंश जगा है), उसे पंचम गुणस्थानवाला, व्रतप्रतिमावाला—दूसरी प्रतिमावाला कहा जाता है। भारी सूक्ष्म, भाई! भगवानजीभाई!

मुमुक्षु : बहुत सरस बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सरस है? उस नैरोबी में यह कुछ नहीं था। रुपये थे। नहीं थे, रुपये उसके घर में रहे। वे तो जड़ हैं। रुपये तो जड़-अजीव हैं। वे तो अजीव होकर रहे हैं। वे कहीं आत्मा के होकर रहे हैं? पैसा है, वह अजीव होकर रहा है या जीव का होकर रहा है? यदि जीव के होकर रहे, तब तो पैसा अरूपी हो जाए। पैसा शरीर, यह मिट्टी, यह तो अजीव होकर रहे हैं। यह शरीर भी अजीव होकर रहा है। यह कहीं जीव का नहीं है। आहाहा! स्त्री, पुत्र, उनके आत्मा, उनका आत्मा होकर रहा है, उनके शरीर, उसके अजीव होकर रहे हैं, वे इस जीव के होकर रहे हैं, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! ऐसे पहले मेरे स्वरूप में वे दूसरे अजीव और जीव नहीं हैं। मेरे स्वरूप में पुण्य और पाप के विकल्प उठे—राग, वह भी नहीं हैं। और मैं एक समय की वर्तमान अवस्था है, उतना मैं नहीं। समझ में आया? आहाहा!

ध्रुव परमात्मस्वरूप मेरा अपना, शुद्ध सच्चिदानन्द सिद्धस्वरूप वह है, सत् अर्थात् है, चिद् अर्थात् ज्ञान-आनन्द अर्थात् अन्दर आत्मा का अतीन्द्रिय सुख। ऐसा परिपूर्ण आत्मा मेरा है। उसका जिसे अन्तर्मुख होकर भान हो, तदुपरान्त जिसे शान्ति की स्थिरता बढ़कर दर्शनप्रतिमा जिसे हो, उसे पंच अणुव्रत होते हैं। है वहाँ थोड़ा चारित्र का अंश।

अणुव्रत है, वह भले विकल्प है परन्तु वहाँ शान्ति की स्थिरता का अंश प्रगट हुआ है। क्योंकि दूसरी कषाय का वहाँ अभाव है। क्या कहा? भगवान ने चार कषायें कही हैं न? अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी और संज्वलन। तो प्रथम आत्मदर्शन, सम्यग्दर्शन होने पर उसे मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ टलते हैं, परन्तु दूसरी तीन कषायें अभी होती हैं; इसलिए उसे सम्यग्दृष्टि, अविरती सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। परन्तु जब अंश भी स्थिरता का अंश दूसरी कषाय का टलकर आया है, उसमें वह पंच अणुव्रत आदि के विकल्प हैं। परन्तु सातिचार है, इसलिए उसे पंचम गुणस्थानवाला दर्शन प्रतिमा में रखा गया है। समझ में आया? श्यामदासजी! बहुत सूक्ष्म बातें, ऐसी बात।

वीतराग का मार्ग ऐसा है, भाई! परमेश्वर साक्षात् केवलज्ञानी ने देखा हुआ, जाना हुआ, अनुभव किया हुआ कहा हुआ मार्ग यह है। दुनिया अपनी मति से मानकर कल्पित कर बैठती है कि हम धर्मी हैं और हम समकिती हैं और व्रतधारी हैं। स्वतन्त्र अनादि से माना है। परन्तु वास्तविक परमात्मा सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने जो केवलज्ञान में देखा कि समकित इसे कहना, समझ में आया? वह इसने कभी दरकार नहीं की और इसे अपनी जाति पूर्ण आनन्द और शान्ति और वीतरागता से भरपूर चीज़ है, उसकी अनुभव में प्रतीति न हो, तब तक इसे सम्यग्दर्शन नहीं होता। सम्यग्दर्शन न हो तो अणुव्रत और महाव्रत के विकल्प हों, वे कहीं व्रत-ब्रत हैं नहीं। वे तो अंकरहित शून्य... शून्य...

यह तो सम्यग्दर्शनसहित... आहाहा! आत्मा का अनुभव। अनु अर्थात् आत्मा शुद्ध आनन्द को अनुसरकर भवना अर्थात् होना। ऐसी दशा में प्रतीति हुई, वह सम्यग्दर्शन। उसके उपरान्त स्वरूप का आश्रय जरा अधिक लेकर, स्वरूप का—द्रव्य का आश्रय अधिक लेकर जो शान्ति का अंश प्रगट हुआ है, उसमें पाँच अणुव्रत के भाव भी होते हैं। उसे दर्शनप्रतिमा—पहली प्रतिमा का नाम, उसे दर्शनप्रतिमा कहते हैं। है वह पंचम गुणस्थान में। समझ में आया?

मुमुक्षु : तब आह्लाद आनन्द बढ़ता जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, जितने कषाय टले, उतना आनन्द है न, विशेष है न। जितनी कषाय टली है, उतनी स्थिरता और आनन्द भी उतना साथ में है। बारहवें में आनन्द पूरा। तेरहवें में अनन्त आनन्द। चौथे गुणस्थान से आनन्द की शुरुआत होती है, सम्यग्दर्शन से

आनन्द की शुरुआत होती है। क्यों? कि जितने गुण आत्मा में भगवान ने अनन्त कहे, उन अनन्त गुण का पिण्ड, वह आत्मद्रव्य है। तो पूरे द्रव्य की जहाँ दृष्टि और प्रतीति हुई तो उसमें जितने गुण अनन्त हैं, उन सबका अंश प्रगट व्यक्त होता है। आहाहा! तो आनन्द का अंश भी व्यक्त और प्रगट है। चारित्र का अंश भी स्वरूपाचरण का आंशिक प्रगट है। सूक्ष्म बात है, भाई! समझ में आया? बाहर से लोगों ने मूल बात को छोड़कर बाहर से सब बेगार की। उसमें आत्मा का कुछ कल्याण नहीं हुआ। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा अरिहन्तदेव की वाणी में ऐसा आया, भाई! तू पूर्ण शुद्ध ध्रुव चैतन्य है न! वही तू पूरा है। एक समय की पर्याय है, वह पूरी नहीं। अरे! गजब बात, भाई! पुण्य-पाप के विकल्प हैं, वह तो तू नहीं, वे तो आस्रवतत्त्व हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्प जो उठते हैं, वे तो राग हैं, वह तो आस्रवतत्त्व है। वह आत्मतत्त्व नहीं। उनसे भगवान आत्मा पूर्ण अनन्त गुण का धाम, उसे जहाँ कब्जे में दृष्टि में लिया, इसलिए जितने गुण, उनकी शक्ति की अंशतः व्यक्तता-प्रगटता चौथे गुणस्थान में हो जाती है। कहो, समझ में आया? इसलिए श्रीमद् ने उसे संक्षिप्त भाषा में 'सर्व गुणांश, वह समकित' ऐसा कहा है। समझ में आया? पाँचवाँ गुणस्थान आने पर श्रावक का गुणस्थान (आता है)। श्रावक का अर्थात् भावश्रावक। समझ में आया? अन्तर की दृष्टि की खिलावट करके अन्दर में स्वरूप का आश्रय अधिक लेने से थोड़ी शान्ति हुई, दूसरी कषाय अप्रत्याख्यानी टली परन्तु अभी उसमें अतिचार दोष लगने का पंच अणुव्रत में सम्भव है। इसलिए उसे दर्शनप्रतिमा कही है, परन्तु उसे व्रतप्रतिमा नहीं कहा। इतना अतिचार खण्ड है, तब तक व्रती नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गुणस्थान भले पंचम। समझ में आया? कब निवृत्त हुए हैं? निवृत्त कब है? कमाना, खाना, पीना, भोग और इज्जत-कीर्ति... मर गया उसमें। धूल में भी नहीं वहाँ कुछ। आहाहा! जहाँ अपना भगवान अन्दर विराजता है, चैतन्यनाथ जहाँ सच्चिदानन्द प्रभु स्वयं हैं। समझ में आया? वे अन्यमति कहते हैं, ऐसा नहीं, हों! यह तो परमात्मा ने सत्... सत्... सत् जो भगवान ने देखा, सत्... सत... महाप्रभु चेतन, चिदानन्द। चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द। ऐसा परिपूर्ण प्रभु जिसकी श्रद्धा और प्रतीति करने से अनन्त गुणों की शक्ति की व्यक्तता-प्रगटता अनुभव में आवे। समझ में आया? यह पहले करने का है। आहाहा! तत्पश्चात् स्वरूप का—ध्रुव का अधिक आश्रय लेकर, जो शान्ति

का अंश प्रगट हुआ, उस भूमिका में पंच अणुव्रत के विकल्प का भाव होता है। परन्तु वह निरतिचार नहीं होता, इसलिए उसे व्रत की दूसरी प्रतिमा में नहीं डाला है। उसे दर्शनप्रतिमा कहते हैं, देखो ! है ?

दूसरी प्रतिमा में अणुव्रत अतिचाररहित पालता है... सम्यग्दर्शनसहित पहली प्रतिमा में पंच अणुव्रत तो है, परन्तु दूसरी प्रतिमा में निरतिचार व्रत पाले, तब उसे व्रती प्रतिमा पंचम गुणस्थान की दूसरी भूमिका की दशा कहा जाता है। समझ में आया ? आहाहा ! **अतिचाररहित पालता है, इसलिए व्रत नाम कहा है, यहाँ सम्यक्त्व के अतिचार टालता है,...** क्या कहते हैं ? दर्शनप्रतिमा में पाँच अणुव्रत के भाव, विकल्प हों। स्थिरता का अंश हो परन्तु उसके अतिचार न टाले, परन्तु दर्शनप्रतिमा में समकित के अतिचार टालता है। आहाहा ! समझ में आया ? शंका, कांक्षा, विचिकित्सा (आदि) समकित के अतिचार आते हैं न ? वे उसे नहीं होते। दर्शनप्रतिमा में शंका, कांक्षा... पर... है न ? परिचय करना... यह सम्यग्दृष्टि को उल्टी दृष्टिवाले अज्ञानी, जीव को ईश्वरकर्ता माननेवाले, जीव को पराधीन माननेवाले या जीव को एक ही माननेवाले या जड़ को एक ही माननेवाले, ऐसे माननेवाले अज्ञानियों का संसर्ग, उनके गुण नहीं गाये, उनका परिचय न करे। ऐसा पंचम गुणस्थानवाला भी दर्शनप्रतिमावाला, उसके समकित के अतिचार टालता है। व्रत के अतिचार नहीं टालता। समझ में आया ? आहाहा !

सम्यक्त्व के अतिचार टालता है, सम्यक्त्व ही प्रधान है,... इसलिए समकित ही प्रधान है, ऐसा कहते हैं। वहाँ व्रत प्रधान (नहीं है), प्रधान अर्थात् मुख्य व्रत कहने में नहीं आते। **इसलिए दर्शनप्रतिमा नाम है।** उसे भगवान के सिद्धान्त में दर्शनप्रतिमा कहा जाता है। **अन्य ग्रन्थों में इसका स्वरूप इस प्रकार कहा है कि जो आठ मूलगुण का पालन करे, सात व्यसन को त्यागे, जिसके सम्यक्त्व अतिचार रहित शुद्ध हो, वह दर्शन प्रतिमा का धारक है।** दूसरे शास्त्रों में परमेश्वर के भी दूसरे शास्त्रों में आठ मूलगुण पाले। पाँच उदम्बर फल हैं न ? यह टेटा... क्या कहलाता है ? टेटी वड की, उसमें बहुत त्रस होते हैं। इसलिए समकिती उसे नहीं खाता, उसे नहीं लेता। समझ में आया ? वड का टेटा, टेटी, यह अंजीर, अंजीर है न ? अंजीर। बहुत जीव। अंजीर। सड़ा हुआ हो। जीवांत बहुत बारीक-बारीक, त्रस जीव होते हैं। उसे सम्यग्दृष्टि ऐसे पाँच प्रकार

के फल, जिसमें त्रस की उत्पत्ति होती है, उन्हें नहीं खाता। उन्हें खाने का भाव उसे नहीं होता। समझ में आया? उन्हें उदम्बर कहते हैं। ऐसा एक फल वहाँ देखा था। दिशा को गये, वहाँ नीचे फल पड़े हुए। कहाँ? सलासर। सलासर नहीं? उस ओर आया न? सलासर गये थे। दिशा (दस्त के लिये) बाहर गये थे। वहाँ एक बड़ा वृक्ष और नीचे फल। अपने कुछ कभी देखा नहीं। इतने... इतने फल। कहा, क्या होगा यह? अकेली जीवांत पड़ी हुई अन्दर। वह यह ऊंबर के फल थे। यहाँ वृक्ष थे। राजकोट। भाई! अपन उतरे न किसी के मकान में। राठौड़ राठौड़ की जगह में उतरे थे। कुएँ के रास्ते में। बड़ा वृक्ष। ऊंबर के फल का था। मात्र त्रस। टेटी। यह टेटी की सब्जी बनाते हैं न? महा जीवांत अकेली होती है। समकिती ऐसी सब्जी नहीं खाता। इतना तो उसे अन्दर राग का त्याग होता है, ऐसा कहते हैं। एक राग तो टूट गया है, अनन्तानुबन्धी गया है। समझ में आया? जिसमें त्रस की उत्पत्ति (होती हो), उस त्रस का आहार तो माँस का आहार कहलाता है। समझ में आया? ऐ... मथुरभाई! उसे बेचारे को कहाँ खबर है, वह मर गया उसकी। कमाने-कमाने में पड़े हों। वहाँ सुनने को भी कहाँ निवृत्त है। वास्तविक बात है। आहाहा!

कहते हैं, पाँच उदम्बर फल और सात व्यसन। परस्त्री, शिकार, माँस, शराब यह समकिती को नहीं हो सकते। यह भाव उसे होते ही नहीं। ऐसा भाव सम्यग्दर्शन बिना भी आर्यप्राणी को भी वास्तव में तो माँस, शराब नहीं हो सकते। माँस, शराब, शिकार, परस्त्री यह तो कहीं सज्जन को हों? साधारण लौकिक सज्जन को भी यह नहीं होते। यहाँ तो सम्यग्दृष्टि की बात चलती है। व्रतसहित अणुव्रती है। उसे ऐसे सात व्यसन नहीं होते। और पाँच प्रकार के उदम्बर फल नहीं खाता। समझ में आया?

आठ मूलगुण अर्थात् यह पाँच उदम्बर फल और मधु, माँस और शराब। मधु, माँस है न? ... अर्थात् मद्य। मद्य अर्थात् शराब और माँस तथा मधु। यह समकिती नहीं खाता। मधु (शहद) की एक बूँद में सात गाँव को मारे, इतने जीव अन्दर हैं। समझ में आया? समकिती मधु दवा में भी नहीं लेता। ऐसी बात है। हिम्मतभाई! बहुत से लेते हैं न? दवा के नाम से। बड़ा पाप है। आठ मूलगुण, सात व्यसन।

जिसके सम्यक्त्व अतिचाररहित शुद्ध हो,... आठ मूलगुण पालन करे और सात व्यसन न हो। उसे दर्शनप्रतिमा का धारक कहा जाता है। **पाँच उदम्बर फल और**

मद्य, मांस, मधु... मद्य अर्थात् शराब। शराब, माँस और मधु तथा उदम्बर फल—यह टेटा आदि या अंजीर... क्या कहा यह? अंजीर। उन सबका त्याग समकिती को—अणुव्रतधारी को होता है। समझ में आया?

अथवा किसी ग्रन्थ में इस प्रकार कहा है कि पाँच अणुव्रत पाले और मद्य, मांस, मधु का त्याग करे... ऐसे आठ मूलगुण भी कहे हैं। उसमें पाँच उदम्बर फल कहे थे, यहाँ पाँच अणुव्रत कहे। परन्तु यह तो सब एक ही है। **परन्तु इसमें विरोध नहीं है, विवक्षा का भेद है।** कथन में भेद है। यह आ गया पाँच अणुव्रत में। कैसे? **पाँच उदम्बर फल और तीन मकार...** मद्य, माँस और मधु। मकार आया न? शराब। **त्याग कहने से जिन वस्तुओं में साक्षात् त्रस जीव दिखते हों, उन सब ही वस्तुओं का भक्षण नहीं करे।** जिसमें त्रस जीव बारीक... बारीक... बारीक... बारीक... बारीक... साक्षात् दिखाई दे, वे धर्मी को खानेयोग्य नहीं हो सकता। यह सड़ता है, नहीं? अथाणा सड़े, उसमें बहुत जीवांत पड़ती है। बारह-बारह महीने का अथाणा। अथाणा समझे न? अथाणा समझते हो? अचार। बारह-बारह महीने का, आम का, गुंदा का, खारेक का बनाते हैं न अथाणा?

मुमुक्षु : मक्खन को भी...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। मक्खन भी नहीं।

यहाँ कहते हैं, **साक्षात् त्रस जीव दिखते हों,...** यह मक्खन आठ-आठ दिन का रखकर लोग गाँव में घी करते हैं। अभी सब बिगड़ गया। मक्खन एक दिन का रखे और आठ दिन का इकट्ठा करे और दो घड़ी पश्चात् त्रस हों, शास्त्र तो ऐसा कहते हैं। यह उकाला हुआ घी। उसे यहाँ अच्छा घी कहते हैं। वह दूसरा डाला न हो न। क्या कहलाता है? वेजीटेवल न वह। परन्तु वे त्रस मर गये हैं वे? समझ में आया? वेजीटेबल डाला हो और वह डाला हो तो... परन्तु आठ दिन सड़ा रखा, गाँव में आठ दिन इकट्ठा करके फिर गर्म करते हैं। वहाँ भी तुम्हारे ऐसा होगा या नहीं? चार दिन। चार दिन कहते हैं तो भी यहाँ तो शास्त्र तो (ऐसा कहता है), मक्खन दो घड़ी के बाद अन्दर त्रस हो जाते हैं। समझ में आया? सूक्ष्म त्रस होते हैं। भगवान ने केवलज्ञानी ने देखे हैं। इसे भले नजर में न आवे।

साक्षात् त्रस जीव दिखते हों,... उसमें त्रस का ख्याल न आवे। **सब ही**

वस्तुओं का भक्षण नहीं करे। देवादिक के निमित्त... देव, गुरु के लिये भी वह त्रस की हिंसा नहीं करे। **तथा औषधादि निमित्त इत्यादि कारणों से दिखते हुए त्रसजीवों का घात न करे,...** वह औषध के लिये गोली, दवा, इत्यादि के लिये भी जिसमें त्रस जीव मरे, ऐसी दवा समकिती, श्रावक नहीं खाता। समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई! **घात न करे, ऐसा आशय है,...** लो। **औषधादि निमित्त इत्यादि कारणों से दिखते हुए त्रसजीव...** सूक्ष्मरूप से दिखाई दे, ऐसे न (ले)। **इसमें तो अहिंसाणुव्रत आया।** कहते हैं न वे? पाँच उदम्बर कहे थे। उसमें यह अणुव्रत आ गया होगा। उसका त्याग तो अणुव्रत हो गया।

मुमुक्षु : पाँचवें गुणस्थान में।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाँचवाँ। यह तो पाँचवें की बात है। प्रतिज्ञासहित की बात है न। व्रतधारी। चौथेवाला मद्य, माँस आदि खाता नहीं परन्तु उसे व्रत की प्रतिज्ञा नहीं है। चौथे में प्रतिज्ञा नहीं है न। तथापि चौथे में खाता नहीं। समकिती माँस नहीं, मधु नहीं, शराब नहीं। नहीं होता उसे। पंच उदम्बर फल उसे नहीं होते। समकित होने से पहले, जैन होने से पहले उसे नहीं होते, ऐसा शास्त्र कहते हैं। पुरुषार्थसिद्धिउपाय में है। जिसे आठ मूलगुणरूप त्याग नहीं, वह तो जैनधर्म को सुनने के योग्य नहीं। ऐसा कहते हैं। पुरुषार्थसिद्धिउपाय है न? अमृतचन्द्राचार्य। समझ में आया?

अहिंसाणुव्रत आया। लो। यह पाँच उदम्बर का त्याग प्रतिज्ञा है न यहाँ तो अणुव्रत में? उसकी बात है। पहले में प्रतिज्ञा नहीं, परन्तु होते नहीं। **सात व्यसनों के त्याग में झूठ,...** का त्याग आया। सात व्यसन में झूठ का त्याग, यह दूसरा अणुव्रत हो गया। **चोरी...** का त्याग आया। सात व्यसन में चोरी का त्याग आता है। **परस्त्री का त्याग आया, अन्य व्यसनों के त्याग में अन्याय, परधन, परस्त्री का ग्रहण नहीं है;...** लो। यह व्यसन के त्याग में अन्याय नहीं। अन्याय नहीं करता, समकिती अन्याय नहीं करता। अन्याय से किसी को लूटे या ऐसा नहीं होता। समझ में आया? थापण रखी हो पाँच लाख की और कहे तुम्हारे एक लाख थे, ऐसा अन्याय नहीं करता। ठीक है। यह विधवा महिला है, उसे कुछ खबर नहीं थी। बिना भान के रख गयी थी। हमारे पिता गुजर गये हैं, मेरे पिता की पूँजी मुझे आयी है। कितनी है, मुझे खबर नहीं, परन्तु तुम्हारे यहाँ रख जाती

हूँ। होगी पाँच लाख की, फिर कहे कि उसमें तो लाख की थी। ऐसा अन्याय नहीं होता। समझ में आया?

परधन, परस्त्री का ग्रहण नहीं है;... अन्याय से परधन और परस्त्री का ग्रहण नहीं होता। परस्त्री का त्याग होता है। समझ में आया? व्यभिचारी अणुव्रतधारी नहीं रह सकता। सम्यग्दर्शनसहित की बात है। न हो, उसे भी सज्जनता में तो इतना नहीं होता। साधारण सज्जन को भी परस्त्री का त्याग, माँस, शराब, मधु का त्याग, यह तो साधारण होता है। यह तो साधारण स्थिति है। यह (यहाँ) तो प्रतिज्ञा और भानसहित की बात चलती है।

इसमें अतिलोभ के त्याग से परिग्रह का घटाना आया,... चोरी का त्याग, परिग्रह का त्याग, झूठ का त्याग, ऐसा आया न? परिग्रह का त्याग भी आया। **इस प्रकार पाँच अणुव्रत आते हैं।** इन आठ मूलगुण में भी पाँच अणुव्रत आते हैं। **इनके (व्रतादि प्रतिमा के) अतिचार नहीं टलते हैं, इसलिए अणुव्रती नाम प्राप्त नहीं करता...** लो। दर्शनप्रतिमा पंचम गुणस्थान होने पर भी अतिचार नहीं टलते, इसलिए उसे दर्शनप्रतिमा कहा जाता है। अणुव्रत वह नहीं पालता। आहाहा! देखो न! विशिष्टता। अणुव्रत होने पर भी अतिचार (सहित है तो) अणुव्रत नहीं है। समझ में आया?

अतिचार नहीं टलते हैं, इसलिए अणुव्रती नाम प्राप्त नहीं करता (फिर भी) इस प्रकार से दर्शन प्रतिमा का धारक भी अणुव्रती है, इसलिए देशविरत सागार-संयमचरण चारित्र में इसको भी गिना है। क्या कहा? संयमचारित्र के दो प्रकार। एक—देशविरति और एक—सर्वविरति। देशविरति श्रावक में और पाँचवें गुणस्थानवाले में पहली प्रतिमा में डाले। संयमचरण चारित्र में डाले, ऐसा कहते हैं। भाई! ऐसा कि संयमचरण चारित्र में इसे डाला। संयमचरण चारित्र में डाला परन्तु व्रती में नहीं डाला। देखो न! अन्तर। समझ में आया?

पहला सम्यक्‌चरण चारित्र। वह तो बहुत विस्तार से बात हो गयी। पश्चात् संयमचरण चारित्र के दो भाग। एक गृहस्थाश्रम का देशविरति तथा सर्वविरति। देशविरति के संयमचरण चारित्र पाँचवें गुणस्थान में दर्शनप्रतिमा का आया और है वह संयमचरण चारित्र, तथापि उसे व्रती नहीं कहा जाता। आहाहा! प्रतिमा नहीं कही जाती। व्रतप्रतिमा नहीं कही जाती। समझ में आया? यह सब समझना पड़ता होगा? समझे बिना, बिना

भान के धर्म नहीं होता होगा? ऐसा नहीं चलता वीतरागमार्ग में। उसका बराबर ज्ञान करना चाहिए।

अरे! ऐसा मनुष्यदेह मिला, उसमें यदि यह भगवान ने कहा हुआ वास्तविक तत्त्व का धर्म न प्रगटे और न समझे (तो) जन्म-मरण का कहीं अन्त नहीं आता। दुनिया ऐसा कहेगी कि ओहोहो! करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़ हो और दस-बीस लाख खर्च करे... भारी धर्मी है यह। दुनिया धर्मी कहेगी। परन्तु वह धर्मी नहीं। तेरे दस लाख क्या पाँच-दस करोड़ खर्च कर न। वह तो जड़ है। दुनिया ऐसा कहे, दानेश्वरी! भगवान कहे, परन्तु अब सुन। तुझमें से राग को निकालकर स्वरूप के स्थिरता का दान तूने नहीं दिया, तब तक तू दानेश्वरी नहीं। ऐई! अपने को दान अन्दर (दे), भगवान आनन्द का धाम प्रभु, उसे राग का अभाव करके और शान्ति की स्थिरता आत्मा में देना, इसका नाम दान है। ऐसे बाहर के दान तो अनन्त बार दिये। कोई राग मन्द किया हो तो पुण्य होगा। उसने पाँच करोड़, दस करोड़ का मन्दिर बनाया, इसलिए धर्म होगा। तो कहते हैं, नहीं। किसने कहा तुझे? समझ में आया? दुनिया तो कहेगी। भगवान नहीं कहेंगे। बराबर है न यह? एक व्यक्ति ने लाख खर्च किये तो कहे, ओहोहो! परन्तु क्या है? तीन करोड़ के समक्ष एक लाख कैसा था? वहाँ तो ऐसा कहे, वाह... वाह...! उसका पिता भी जरा थोड़ी देर प्रसन्न हो जाये।

मुमुक्षु : बराबर...

पूज्य गुरुदेवश्री : जाने के बाद कहते हैं यह। परन्तु उसमें क्या है?

भगवान आत्मा वीतराग की मूर्ति प्रभु , उसका दान उसे शक्ति में से प्रगटने से वीतराग के अंश को करके और स्वयं रखे और स्वयं अपने को निर्मल भाव दे, उसे भगवान धर्मी का दान कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? बाहर के पैसे से... नाम पड़े। गरीब व्यक्ति बेचारा लिखा न सके। अंक लिखावे। यह पाँच लाख का चन्दा करना है। पहले बड़ों का अंक लिखाओ। क्योंकि छोटा पहले लिखावे तो बड़े को वह हो जाये। पोपटभाई! बड़े-बड़े को पहले पकड़े। लिखाओ पच्चीस हजार और एक। जो इससे छोटे का कम लिखाये परन्तु बहुत उसके जैसे हों, वह कम नहीं लिखे, यह तो दबाव के कारण परन्तु... यह भी राग की मन्दता वह अलग प्रकार की, कहते हैं। होवे तो। आहाहा!

यहाँ तो भगवान आत्मा अत्यन्त पवित्र का धाम ऐसी पवित्रता जिसे दृष्टि में आयी

है और वह पवित्रता प्रगट करनी है, उसमें बाहर के अवलम्बन और आश्रय की उसे आवश्यकता नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह देशविरत में गिनने में आया परन्तु दर्शनप्रतिमा का नाम व्रती में गिनने में नहीं आया।

गाथा-२४

आगे पाँच अणुव्रतों का स्वरूप कहते हैं –

थूले तसकायवहे थूले मोषे अदत्तथूले[1] य।
परिहारो परमहिला परिग्गहारंभपरिमाणं।।२४।।

स्थूले त्रसकायवधे स्थूलायां मृषायां अदत्तस्थूले च।
परिहारः परमहिलायां परिग्रहारंभपरिमाणम्।।२४।।

स्थूल त्रस हिंसा मृषा स्थूल चोरी परस्त्री।
परिहार आरंभ-परिग्रह परिमाण पंचाणु विरति।।२४।।

_अर्थ_ – थूल त्रसकाय का घात, थूलमृषा अर्थात् असत्य, थूल अदत्ता अर्थात् पर का बिना दिया धन, परमहिला अर्थात् परस्त्री इनका तो परिहार अर्थात् त्याग और परिग्रह तथा आरम्भ का परिमाण – इस प्रकार पाँच अणुव्रत हैं।

_भावार्थ_ – यहाँ थूल कहने का ऐसा अर्थ जानना कि जिसमें अपना मरण हो, पर का मरण हो, अपना घर बिगड़े, पर का घर बिगड़े, राजा के दण्ड योग्य हो, पंचों के दण्ड योग्य हो, इस प्रकार मोटे अन्यायरूप पापकार्य जानने। इस प्रकार स्थूल पाप राजादिक के भय से न करे, वह व्रत नहीं है, इनको तीव्र कषाय के निमित्त से तीव्रकर्मबन्ध के निमित्त जानकर स्वयमेव न करने के भावरूप त्याग हो वह व्रत है। इसके ग्यारह स्थानक कहे, इनमें ऊपर-ऊपर त्याग बढ़ता जाता है, सो इसकी उत्कृष्टता तक ऐसा है कि जिन कार्यों में त्रस जीवों को बाधा हो इस प्रकार के सब ही कार्य छूट जाते हैं, इसलिए सामान्य ऐसा नाम कहा है कि त्रसहिंसा का त्यागी देशव्रती होता है। इसका विशेष कथन अन्य ग्रन्थों से जानना।।२४।।

१. 'अदत्तथूले' के स्थान में सं. छाया में 'तितिक्ख थूले', 'परमहिला' के स्थान में 'परमपिम्मे' ऐसा पाठ है।

गाथा-२४ पर प्रवचन

आगे पाँच अणुव्रतों का स्वरूप कहते हैं – लो। पाँच अणुव्रत कहे न? अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। अणु अर्थात् छोटे व्रत। समकित सहित। समकित रहित व्रत, वह व्रत नहीं हो सकते। इसलिए पहले (कहा), सम्यक्चरण चारित्र बिना संयमचरण चारित्र नहीं हो सकता। यह बात पहले आ गयी है। सम्यक्चरण चारित्र –भगवान आत्मा पुण्य–पाप के विकल्प के राग की क्रिया बिना का, पूर्णानन्द का ध्रुव नाथ, उसके अन्दर में जम गयी प्रतीति, ऐसे अनुभव की प्रतीति बिना कोई भी व्रत और तप को करे, वे सब बिना अंक के शून्य हैं। समझ में आया? वे सब रण में शोर मचाने जैसा है, ऐसा कहते हैं। रण में शोर कोई सुने नहीं। उसका रुदन मिटे नहीं। इस वस्तु के भानसहित जो अणुव्रत सम्यग्दर्शनसहित हों, उसे संयमचरण चारित्र कहते हैं।

थूले तसकायवहे थूले मोषे अदत्तथूले य।
परिहारो परमहिला परिग्गहारंभपरिमाणं।।२४।।

अर्थ – थूल त्रसकाय का घात,... इसका त्याग। सम्यग्दर्शनसहित अणुव्रतधारी को स्थूल त्रस का घात (नहीं होता है)। सूक्ष्म कोई न दिखायी दे, ऐसा तो कुछ अशक्य है। समझ में आया? विषयभोग में असंख्य सम्मूर्च्छन त्रस मरते हैं। दिखायी न दे, ऐसी चीज़ है। भगवान की आज्ञा मानकर... समझ में आया? एक बार विषय में असंख्य सम्मूर्च्छन त्रस मरते हैं। आहाहा! समझ में आया? परन्तु वे दिखायी नहीं देते न, इससे उसे कहते हैं कि घात होता है, तथापि पाँचवें गुणस्थान का नाश नहीं होता। समझ में आया? गजब बात, भाई! दिखायी देनेवाले त्रस हों, यह जीवांत, देखो न! बैंगन के टोप में बहुत जीवांत होती है। बैंगन... बैंगन होते हैं न? उसके ऊपर का टोप होता है न? बारीक... बारीक... बारीक... पानी में डाले तो अलग पड़ जाये। ऐसे त्रस जिसमें हों, ऐसा आहार, स्थूल दिखायी दे, उसका आहार नहीं लेता, ऐसा कहते हैं।

ऐसा तो भगवान कहते हैं, मोटे छन्ने से पानी छाने तो भी सूक्ष्म त्रस तो अन्दर बारीक होते हैं। आहाहा! उसमें वे छन्ने में छन जाते हैं। पानी जाए न नीचे? पक्का छन्ना, हों! मोटा। यह बहुत पतला करते हैं, वह नहीं। मोटा कपड़ा। उसके छन्ने से पानी छाने तो भी अन्दर

नीचे पानी में अंगुल के असंख्यवें भाग में त्रस होते हैं। वे त्रस उसमें—पानी में जाते हैं। परन्तु वे दृष्टिगोचर त्रस नहीं हैं, इसलिए उनका त्याग नहीं हो सकता। ऐसी बात है। समझ में आया? ओहो! (यह) स्थूल त्रस का घात (हुआ)।

थूलमृषा... स्थूल झूठ। स्पष्टीकरण करेंगे। **थूल अदत्ता अर्थात् पर का बिना दिया धन, परमहिला...** का त्याग। परस्त्री का त्याग। **परस्त्री इनका तो परिहार अर्थात् त्याग और परिग्रह तथा आरम्भ का परिमाण...** इसका माप करे। परिग्रह का माप (मर्यादा) हो कि इतना इसके अतिरिक्त मुझे करना नहीं। ऐसा सम्यग्दर्शन के भानसहित इस भूमिका के अणुव्रत के परिणाम उसे होते हैं।

भावार्थ – यहाँ थूल कहने का ऐसा अर्थ जानना कि जिसमें अपना मरण हो,... समझ में आया? ऐसा अफीम खाये और ऐसा जो खाते हैं न वे? ऐसा नहीं होता। **पर का मरण हो,...** पर त्रस मर जाये, उसका त्याग है। **अपना घर बिगड़े,...** घर बिगड़े, **पर का घर बिगड़े,...** ऐसा धर्मी—समकिती नहीं करता। आहाहा! **राजा के दण्ड योग्य हो,...** राजा (के) दण्ड देनेयोग्य ऐसा कर्तव्य समकिती नहीं करता। समझ में आया? **पंचों के दण्ड योग्य हो...** पंच... पंच। महाजन। सरपंच हुए हैं न अब तो। (पहले) महाजन थे। महाजन का दण्ड हो, ऐसा वह आचरण नहीं करता। अभी तो सरपंच स्वयं करता हो। उसे भान भी नहीं होता कि क्या वस्तु है। यह तो पहले सच्चे महाजन थे, धर्मात्मा सच्चे... समझ में आया? वे उसे दण्ड दे, ऐसा समकिती नहीं करता। लज्जा आती है। आहाहा! **इस प्रकार मोटे अन्यायरूप पापकार्य जानने।** लो। मोटे अन्यायरूप पाप। यह अन्याय की व्याख्या की। ऐसे बड़े अन्यायरूप पाप वह नहीं करता।

इस प्रकार स्थूल पाप राजादिक के भय से न करे, वह व्रत नहीं है,... राज के भय से, कुटुम्ब के भय से, पंच के भय से, जाति के भय से कदाचित् ऐसी बड़ी हिंसा, अन्याय न करे तो भी वह व्रती नहीं कहलाता। वह तो दुनिया के लिये किया। आत्मा के लिये जिसे राग घटाने की भावना है, स्वरूप की दृष्टि का आश्रय लेकर, उसे तो ऐसे भाव अपने से सहज पाप के त्याग का भाव होता है। समझ में आया?

इनको तीव्र कषाय के निमित्त से तीव्रकर्मबन्ध के निमित्त जानकर... कहते हैं कि त्याग कैसे करना? यह तीव्र कषाय का निमित्त है और तीव्र कर्मबन्ध का निमित्त

है, ऐसा। यह स्थूल पाप। **स्वयमेव न करने के भावरूप त्याग हो, वह व्रत है।** अपने आप राग का त्याग। स्वभाव के भाव में स्थिरता करके ऐसा भाव हो तो उसे व्रतप्रतिमा कहा जाता है। नहीं तो नहीं (कहा जाता)। समझ में आया?

इसके ग्यारह स्थानक कहे, इनमें ऊपर-ऊपर त्याग बढ़ता जाता है,... ऐसा कहते हैं। ग्यारह प्रतिमा कही न? उसमें पहली प्रतिमा, फिर दूसरी, तीसरी बढ़ती जाये। नीचे उतरे नहीं। आहाहा! ऐसा कहते हैं। प्रतिमा ली, फिर छोड़ दी। छोड़ देंगे अपने, ऐसा नहीं होता। सच्ची सम्यग्दर्शनसहित की बात है न? पश्चात् उसे बढ़ना ही होता है। **इसके ग्यारह स्थानक कहे, इनमें ऊपर-ऊपर त्याग बढ़ता जाता है,...** राग घटता ही जाता है। पहली प्रतिमा से दूसरी में, दूसरी से तीसरी में राग घटता ही जाता है। तब उसे प्रतिमा कहा जाता है। आहाहा! **सो इसकी उत्कृष्टता तक ऐसा है...** बढ़ते-बढ़ते राग का त्याग करते-करते **उत्कृष्टता तक ऐसा है कि जिन कार्यों में त्रस जीवों को बाधा हो...** जिसमें त्रस जीव को दु:ख हो, **इस प्रकार के सब ही कार्य छूट जाते हैं,...** समझ में आया? खेती-बाड़ी में देखो न! खेती में कितने वे... क्या कहलाता है? खाद। खाद में बहुत जीवांत है, हों!

यह गाड़ा भरकर जाते थे। गाड़ा भरे न, सड़ा हुआ हो तो ऐसे जीव नीचे गिरे। गाड़ा चलता था, गाडा में से (नीचे गिरे)। पूरा गाड़ा भरा हुआ। और बनिये का था। बनिये को खेत था। समझ में आया? लोग कहे, हम ऐसा न करें और बनिया ऐसा करे? ऐसा लोग बोलते थे। बहुत वर्ष से पड़ा होगा... क्या कहलाता है? कचरा (रोड़ी)। पुराना सड़ा हुआ होगा। उसमें अवसर आया तो बेच दिया। उसमें गाड़ा का क्या उपजे? तब रुपया-डेढ़ रुपया। परन्तु जीवांत इतनी कि गाड़ा ऐसे चले (तो) नीचे त्रस काले जीव पड़ते ही हों, कुचलते ही हों। समझ में आया? ऐसा समकिती को नहीं हो सकता। आहाहा! यह तो हमें तो नाम-ठाम सब आता हो न, हमें खबर है कौन (वह)। त्रस मरे। सड़ा... सड़ा। कचरे में इतनी जीवांत। वर्षा पड़ी हो, सड़ गया हो, काले-काले सूक्ष्म जीव हो जायें। वह तो हजारों... हजारों... लाखों। अरे! धर्मी जीव ऐसे स्थूल त्रस मरे, ऐसे व्यापार में-धन्धे में वह नहीं पड़ता। समझ में आया?

एक सेठ को कहा था कि तुम यह ओटाई क्यों कराते नहीं? ओटाई... ओटाई।

हमारे पुण्य इतने नहीं कि ओटाई प्रेस में जले और वापस बाकी रहे। ऐसा जवाब दिया। इतना हमारा पुण्य हमारा दिखता नहीं। ओटाई करने से तो उसमें त्रस बहुत मरे। गर्म पानी नीचे गिरे, निंबोलियां गिरे, पक्षी गिरे। ऐसे पाप में हमारा पुण्य इतना दिखता नहीं कि ओटाई मशीन में पिलाये और बाकी थोड़ा पुण्य रहे। ऐसा जवाब दिया। बहुत वर्ष पहले की बात है। समझ में आया?

इसलिए सामान्य ऐसा नाम कहा है कि त्रसहिंसा का त्यागी देशव्रती होता है। लो। इसलिए त्रसहिंसा का त्यागी देशव्रती है। **इसका विशेष कथन अन्य ग्रन्थों से जानना।** लो।

गाथा-२५

आगे तीन गुणव्रतों को कहते हैं –

दिसिविदि सिमाण पढमं अणत्थदंडस्स वज्जणं बिदियं।
भोगोपभोगपरिमा इयमेव गुणव्वया तिण्णि ।।२५।।

दिग्विदिग्मानं प्रथमं अनर्थदण्डस्य वर्जनं द्वितीयम्।
भोगोपभोगपरिमाणं इमान्येव गुणव्रतानि त्रीणि ।।२५।।

परिमाण विदिशा दिशा का अन्–अर्थ–दंड विरति कहा।
परिमाण भोगोपभोग का ये तीन गुणव्रत जानना।।२५।।

***अर्थ* – दिशा विदिशा में गमन का परिमाण, वह प्रथम गुणव्रत है, अनर्थदण्ड का वर्जना द्वितीय गुणव्रत है और भोगोपभोग का परिमाण तीसरा गुणव्रत है, इस प्रकार ये तीन गुणव्रत हैं।**

***भावार्थ* – यहाँ गुण शब्द तो उपकार का वाचक है, ये अणुव्रतों का उपकार करते हैं। दिशा विदिशा अर्थात् पूर्व दिशादिक में गमन करने की मर्यादा करे। अनर्थदण्ड अर्थात् जिन कार्यों में अपना प्रयोजन न सधे, इस प्रकार पापकार्यों को न करे।**

यहाँ कोई पूछे – प्रयोजन के बिना तो कोई भी जीव कार्य नहीं करता है, कुछ प्रयोजन विचार करके ही करता है फिर अनर्थदण्ड क्या ?

इसका समाधान – सम्यग्दृष्टि श्रावक होता है, वह प्रयोजन अपने पद के योग्य विचारता है, पद के सिवाय सब अनर्थ है। पापी पुरुषों के तो सब ही पाप प्रयोजन है, उसकी क्या कथा? भोग कहने से भोजनादिक और उपभोग कहने से स्त्री, वस्त्र, आभूषण, वाहनादिक का परिमाण करे – इस प्रकार जानना।।२५।।

गाथा-२५ पर प्रवचन

आगे तीन गुणव्रतों को कहते हैं – पाँच अणुव्रत कहे। तीन गुणव्रत हैं। इसे गुण करे। व्रत को जरा....

दिसिविदि सिमाण पढमं अणत्थदंडस्स वज्जणं बिदियं।
भोगोपभोगपरिमा इयमेव गुणव्वया तिण्णि।।२५।।

अर्थ – **दिशा विदिशा में गमन का परिमाण, वह प्रथम गुणव्रत है,...** इस दिशा में नहीं जाना, इतने में नहीं जाना, इतने खण्ड में (नहीं जाना), ऐसी मर्यादा बाँधे। आत्मध्यान, ज्ञानसहित राग की मन्दता के लिये। यह तो समकित सहित की बात है, हों! अकेले समकित बिना के करे, वे कहीं (व्रत नहीं है)। जरा पुण्य बाँधे परन्तु मिथ्यात्वसहित है। मिथ्याभाव। क्योंकि राग को अपना कर्तव्य मानता है। यह वस्तु मैंने छोड़ी और यह रखी, ऐसा मिथ्यादृष्टि राग का अभिमान करता है। उसे तो मिथ्यात्व में तो व्रत-ब्रत हो नहीं सकते। बाहर से करे जरा। मिथ्यात्वसहित थोड़ा पुण्य बाँधे। चार गति में भटके। आहाहा! शर्तें बहुत परन्तु वीतरागमार्ग की कठिन। भीखाभाई!

दिसिविदि सिमाण पढमं अणत्थदंडस्स वज्जणं बिदियं।
भोगोपभोगपरिमा इयमेव गुणव्वया तिण्णि।।२५।।

दिशा विदिशामें गमन का परिमाण, वह प्रथम गुणव्रत है, अनर्थदण्ड का वर्जना द्वितीय गुणव्रत है... अनर्थदण्ड—बिना प्रयोजन दण्ड करना, उसका त्याग होता

है। **और भोगोपभोग...** एक बार भोगा जाये आदि वस्तु। सब्जी, दाल, भात आदि। बहुत बार भोगने में आवे ऐसी वस्तु। गहने, स्त्री आदि। उनका परिमाण करे। माप—हद बाँधे, हद। यह तीसरा गुणव्रत है। पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत। ऐसा करके पंचम गुणस्थान में बारह व्रत का विकल्प होता है। समझ में आया ?

भावार्थ – यहाँ गुण शब्द तो उपकार का वाचक है, ये अणुव्रतों का उपकार करते हैं। जिसे अणुव्रत अन्दर जो है, दूसरी कषाय का नाश हुआ है और अणुव्रत के विकल्प होते हैं, उसे यह गुणव्रत पुष्टि करते हैं, ऐसा कहते हैं। बराबर निर्मल पालन करे। दुनिया के जानपने के लिये कितना प्रयत्न करता है ! देखो ! परन्तु यह भगवान क्या कहते हैं ? सम्यग्दर्शन क्या ? अणुव्रत क्या ? अणुव्रत किसे कहना ? इसका त्याग हो तो क्या दशा हो ? इसका त्याग न हो तो क्या दशा हो ? इसका इसे ज्ञान तो बराबर होना चाहिए।

दिशा विदिशा अर्थात् पूर्व दिशादिक में गमन करने की मर्यादा करे। दिशा अर्थात् पूर्व, उत्तर आदि। विदिशा अर्थात् यह कोने... कोने। उनकी मर्यादा करे। **अनर्थदण्ड अर्थात् जिन कार्यों में अपना प्रयोजन न सधे, इस प्रकार पापकार्यों को न करे। यहाँ कोई पूछे – प्रयोजन के बिना तो कोई भी जीव कार्य नहीं करता है, कुछ प्रयोजन विचार करके ही करता है, फिर अनर्थदण्ड क्या ?** कोई भी प्रयोजन विचारकर ही करता है।

इसका समाधान – सम्यग्दृष्टि श्रावक होता है, वह प्रयोजन अपने पद के योग्य विचारता है,... अपने पद के योग्य। हमारे पंचम गुणस्थान के योग्य यह दशा होती है। ऐसा विचारे। इसके बिना... अमुक प्रकार का ही राग उसे होता है। विशेष नहीं होता। **अपने पद के योग्य विचारता है, पद के सिवाय सब अनर्थ है।** अपनी पंचम गुणस्थान की भूमिका के अतिरिक्त का (हो), उसे अनर्थ कहा जाता है। **पापी पुरुषों के तो सब ही पाप प्रयोजन है,...** सर्व पाप ही प्रयोजन है, ऐसा कहते हैं। जिसे कुछ दृष्टि की खबर नहीं, जिसे कुछ अणुव्रत के नियम की खबर नहीं, उन सब पापी को तो सब पाप ही प्रयोजन है। **उसकी क्या कथा ?** उसका–पापी का क्या कहना ? कहते हैं। प्रत्येक में प्रयोजन मानकर ही करते हैं। पूछा था न ? प्रयोजन बिना तो कोई करता नहीं, ऐसा पूछा

था। आहाहा! प्रयोजन के अर्थ दो हैं। एक तो पद के योग्य है, उससे न करना, उसका नाम उन्नत है। और इसे पद योग्य का तो कुछ भान है नहीं। वह तो सब पाप के लिये ही इसे प्रयोजन है। वह तो सब उसे अनर्थ ही है। आत्मा के भान बिना के प्राणी को अनर्थ है। समझ में आया?

भोग कहने से भोजनादिक और उपभोग कहने से स्त्री, वस्त्र,... लो। एक बार भोगने में आवे, वह भोजन आदि और स्त्री, वस्त्र बहुत बार भोगने में आये। उसका भी परिमाण—माप—हद करे कि इतने के अतिरिक्त नहीं। आत्मा के भानसहित राग की न्यूनता के लिये ऐसा करे। समझ में आया? उसे गुणव्रत कहा जाता है। फिर चार शिक्षाव्रत है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-४४, गाथा-२६ से ३०, शुक्रवार, आषाढ़ (गुजराती) कृष्ण ६, दिनांक २४-०७-१९७०

यह चारित्रपाहुड़। संयमचरण चारित्र की व्याख्या आती है। संयमचरण चारित्र, सम्यग्दर्शनचरण चारित्र हो तो होता है। यह पहली बात आ गयी है। सम्यक्चरण चारित्र। जो आत्मा में पूरी दुनिया में से बुद्धि उठकर जिसकी रुचि आत्मा के आनन्द में रमती है। समझ में आया? जिसकी रुचि को स्थिर होने का स्थान आत्मा है। सम्यग्दर्शन में स्थिर होने का स्थान आत्मा है। कहीं पुण्य और पाप, विकल्प और उसके बन्ध के फल, उसमें कहीं सम्यग्दृष्टि की रुचि, सुखबुद्धि, हितबुद्धि नहीं होती। समझ में आया? इससे उसे आत्मा के आनन्द में ही बारम्बार आना, यह रहता है। परन्तु जब स्वरूप में रह नहीं सकता, तब उसे इस प्रकार के बारह व्रत के विकल्प होते हैं। उसकी यहाँ बात करते हैं। पंचम गुणस्थान में सम्यग्दर्शन के चरण चारित्रसहित संयमचरण चारित्र, ग्यारह प्रतिमा को संयमचरण चारित्र कहते हैं। भले फिर दर्शनप्रतिमा हो, उसमें अणुव्रत भी हो परन्तु उसे पंचम गुणस्थान में गिनते हैं, भले अतिचार हो। समझ में आया?

अब यहाँ तो चार शिक्षाव्रत की बात चलती है। २६वीं गाथा।

गाथा-२६

आगे चार शिक्षाव्रतों को कहते हैं –

सामाइयं च पढमं बिदियं च तहेव पोसहं भणियं।
तइयं च अतिहिपुज्जं चउत्थ सल्लेहणा अंते।।२६।।

सामाइकं च प्रथमं द्वितीयं च तथैव प्रोषधः भणितः।
तृतीयं च अतिथिपूजा चतुर्थं सल्लेखना अन्ते।।२६।।

है प्रथम सामायिक सु प्रोषध दूसरा है तीसरा।
पूजा अतिथि की अंत में सल्लेखना व्रत सुशिक्षा।।२६।।

अर्थ – सामायिक तो पहिला शिक्षाव्रत है, वैसे ही दूसरा प्रोषद्य व्रत है, तीसरा अतिथि का पूजन है, चौथा अन्तसमय सल्लेखना व्रत है।

भावार्थ – यहाँ शिक्षा शब्द से ऐसा अर्थ सूचित होता है कि आगामी मुनिव्रत की शिक्षा इनमें है, जब मुनि होगा तब इस प्रकार रहना होगा। सामायिक कहने से तो रागद्वेष का त्याग कर, सब गृहारम्भसम्बन्धी क्रिया से निवृत्ति कर एकान्त स्थान में बैठकर प्रभात, मध्याह्न, अपराह्न कुछ काल की मर्यादा करके अपने स्वरूप का चिन्तवन तथा पंचपरमेष्ठी की भक्ति का पाठ पढ़ना, उनकी वन्दना करना इत्यादि विधान करना सामायिक है। इस प्रकार ही प्रोषध अर्थात् अष्टमी और चौदस के पर्वों में प्रतिज्ञा लेकर धर्म कार्यों में प्रवर्तना प्रोषध है। अतिथि अर्थात् मुनियों की पूजा करना, उनको आहारदान देना अतिथिपूजन है। अन्त समय में काय और कषाय को कृश करना समाधिमरण करना अन्तसल्लेखना है, इस प्रकार चार शिक्षाव्रत है।

यहाँ प्रश्न – तत्त्वार्थसूत्र में तीन गुणव्रतों में देशव्रत कहा और भोगोपभोगपरिमाण को शिक्षाव्रत में कहा तथा सल्लेखना को भिन्न कहा, वह कैसे ? इसका समाधान – यह विवक्षा का भेद है, यहाँ देशव्रत दिग्व्रत में गर्भित है और सल्लेखना को शिक्षाव्रतों में कहा है, कुछ विरोध नहीं है।।२६।।

गाथा-२६ पर प्रवचन

सामाइयं च पढमं बिदियं च तहेव पोसहं भणियं।
तइयं च अतिहिपुज्जं चउत्थ सल्लेहणा अंते।।२६।।

अर्थ – सामायिक तो पहिला शिक्षाव्रत है, वैसे ही दूसरा प्रोषद्य व्रत है, तीसरा अतिथि का पूजन है, चौथा अन्तसमय सल्लेखना व्रत है।

भावार्थ – यहाँ शिक्षा शब्द से ऐसा अर्थ सूचित होता है... इसे शिक्षाव्रत क्यों कहा? **कि आगामी मुनिव्रत की शिक्षा इनमें है,...** अन्त में तो मुनिपना लेना पड़े न! सम्यग्दर्शनसहित चारित्र न हो तो मुक्ति नहीं हो सकती। उस चारित्र को अंगीकार करने के पहले उसकी यह शिक्षा है। **जब मुनि होगा, तब इस प्रकार रहना होगा।**

सामायिक कहने से तो रागद्वेष का त्याग कर, सब गृहारम्भसम्बन्धी क्रिया से निवृत्ति कर एकान्त स्थान में बैठकर प्रभात, मध्याह्न, अपराह्न कुछ काल की मर्यादा करके अपने स्वरूप का चिन्तवन... करना। क्योंकि जो आत्मा में आनन्द जिसने सम्यग्दर्शन में देखा है, माना है, उसका यह दो-दो घड़ी में सामायिक में आनन्द के प्रयोग की आजमाईश है। क्या कहा और? समझ में आया? आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द है, ऐसा जो सम्यग्दर्शन में और सम्यग्ज्ञान में भान हुआ है, उसकी सामायिक सवेरे, दोपहर, शाम दो-दो घड़ी आदि वह आनन्द की आजमाईश करने के लिये यह प्रयोग है। मैं इस आनन्द में कितना रह सकता हूँ? इसका नाम सामायिक है। समझ में आया?

जो समता वीतरागमूर्ति आत्मा, उसकी जो दृष्टि हुई है कि यह ज्ञाता-दृष्टा शुद्ध स्वभाव आनन्द का धाम है, ऐसी जो अनुभव में प्रतीति सम्यग्दर्शन में हुई है, वह अब हमेशा सवेरे, दोपहर, शाम उस आनन्द में रहने की आजमाईश करता है, इसका नाम सामायिक कहा जाता है। समझ में आया? सामायिक तो नौवाँ व्रत है न? पहले सम्यग्दर्शन हुआ है, उसे बारह व्रतादि होते हैं। अमुक स्थिरता का अंश तो अन्दर आया है। उसे जानने चाहिए न बराबर? ऐसे स्थिरता के शान्ति का अंश तो विशेष है। संयमचरण चारित्र है न? परन्तु उसे अन्तर में एकाग्र होने के लिये सवेरे, दोपहर, शाम... है न? **प्रभात, मध्याह्न,**

अपराह्न कुछ काल की मर्यादा करके अपने स्वरूप का चिन्तवन... देखो! मूल तो सामायिक में श्रावक को धर्मात्मा को किसी समय शुद्ध उपयोग उसमें आ जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? स्वरूप चिन्तवन कहा है न पहला?

सम्यग्दर्शन में जैसे पहला शुद्ध उपयोग होकर सम्यग्दर्शन होता है। शुभ उपयोग और विकल्प से कहीं सम्यग्दर्शन नहीं होता। ऐसा जो भगवान आनन्द और ज्ञान की, चैतन्यमूर्ति, उसका शुद्ध उपयोग होकर प्रतीति सम्यग्दर्शन की हुई है, उसमें रमने के लिये अब शुद्ध उपयोग वह कहीं सदा नहीं रहता, इसलिए उसे अनेक प्रकार के विकल्प श्रावक के योग्य होते हैं। उसे भी टालकर दो-दो घड़ी अन्तर में स्वरूप में रमने का शुद्ध उपयोग का अखतरा—आजमाईश करता है। ऐई! पोपटभाई! तुमने खोटी सामायिक तो बहुत की थी। सच्ची सामायिक तो इसका नाम कहा जाता है। समझ में आया?

निजधाम आनन्दस्वरूप में जाकर एकाग्रता का उपयोग (होना), इसका नाम सामायिक है। समझ में आया? उसमें कदाचित् वहाँ न रह सके, निर्विकल्प उपयोग में, तो पंच परमेष्ठी की भक्ति आदि का विकल्प होता है। पंच परमेष्ठी का विकल्प (होता है)। परन्तु अन्दर दृष्टि और स्थिरता का अंश शुद्ध लब्धरूप से तो पड़ा हुआ ही है। समझ में आया? उपयोग में शुद्ध उपयोग अन्दर न जमे तो उसे ऐसे पंच परमेष्ठी की भक्ति आदि का विकल्प होता है, ऐसा कहते हैं। गजब काम। समझ में आया? इसका नाम भगवान सामायिक कहते हैं। आहाहा!

भक्ति का पाठ पढ़ना, उनकी वन्दना करना इत्यादि विधान करना... अन्दर में स्थिर न रह सके तो स्थिरता का अंश तो है, सम्यग्दर्शन है, अन्दर में जाने का प्रयोग करता है। न हो तो, इस प्रकार के विकल्प में भी राग की मन्दता, शुभराग होता है। इसलिए उसमें राग कम होता है, ऐसा प्रयोग करता है। समझ में आया? नवनीतभाई! लो, यह सामायिक। यह सच्ची सामायिक।

मुमुक्षु : यहा स्वरूप का चिन्तन है?

पूज्य गुरुदेवश्री : उपयोग... उपयोग। स्वरूप चिन्तन की व्याख्या ही यहाँ उपयोग है। शुद्ध निर्विकल्प। शास्त्र में ऐसा आता है, आत्मा का चिन्तवन। चिन्तवन अर्थात् शुद्ध

उपयोग। उसमें न रह सके, फिर विकल्प (आवे)। समझ में आया? तब उसे विकल्प (होता है)। नहीं तो चिन्तवन का अर्थ ही यह आता है कि प्रायश्चित के अधिकार में, बहुत जगह। स्वरूप का चिन्तवन। चिन्तवन अर्थात् एकाग्रता। अन्दर में एकाग्रता। और ऐसी एकाग्रता न रहे, सम्यग्दर्शन है, आनन्द का भान है, आनन्द की ओर झुकाव—वीर्य बारम्बार झुकाने का भाव भी है, तथापि उसमें स्थिर न हो सके तो फिर पंच परमेष्ठी की भक्ति का पाठ आदि करके भी एकाग्रता शुभ की रखे, ऐसा। दृष्टि तो शुद्धता का अंश प्रगट हुआ है। लब्ध में शुद्ध पर्याय निर्मल परिणति है। उपयोग में उपयोग अन्दर न जमे तो इस प्रकार विकल्प आदि में रखे। समझ में आया? भारी व्याख्या, भाई! प्रत्येक व्याख्या कठिन। यह तो अन्तर की मूल चीज़ की बात है। यह कहीं ऊपर की बात नहीं है। समझे बिना की सामायिक करके बैठे और कर डाली पंचरंगी। पाँच सामायिक की और दस की। धूल भी सामायिक नहीं। वह तो कोई शुभ विकल्प हो और वह भी वहाँ वापस विकल्प की कर्ताबुद्धि हो। इसलिए वह तो मिथ्यात्व का पोषक है। समझ में आया?

यहाँ तो अन्दर स्थिर नहीं होता, इसलिए सहज ऐसा विकल्प आता है। कर्तृत्वबुद्धि नहीं। भारी बात, भाई! और विकल्प है, वह शुभराग है। और शुभराग तो जहर है। समझ में आया? यह कहते हैं कि पंच परमेष्ठी की भक्ति का विकल्प, पाठ पढ़े, बोले अन्दर, वह शुभराग है। यहाँ स्वरूप की दृष्टि है, लब्ध में उपयोगरूपी लब्धि, वह व्यापार नहीं। इतनी शुद्धता प्रगट हुई है। और उसमें पंच परमेष्ठी की भक्ति आदि का (भाव हो), अशुभराग टलता है, उसे शुभराग है, ऐसी स्थिति का वर्णन यहाँ सामायिक कहा जाता है। समझ में आया?

वन्दना करना... अपने वन्दन में स्वरूप में उपयोग न रह सके तो वन्दन आदि का विकल्प उसे होता है। समझ में आया? तथापि उस विकल्प का कर्ता नहीं। कर्तव्य रूप से मेरा कर्तव्य है और कार्य है, ऐसा नहीं परन्तु राग होता है। आहाहा! **इस प्रकार ही प्रोषध अर्थात् अष्टमी और चौदस...** आठ-आठ दिन में वापस चौबीस-चौबीस घण्टे की आजमाईश करे। पहली दो-दो घड़ी की हमेशा आजमाईश थी। आजमाईश समझ में आता है? अखतरो। अन्दर अखतरो।

मुमुक्षु : अखतरो अर्थात?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रयोग। उस ओर का अभ्यास। अन्दर की ओर का अभ्यास, आनन्द में रहने का अभ्यास करे। दो-दो घड़ी हमेशा (करे) । और उसमें आठ-आठ दिन में तो अष्टमी और चौदस, प्रौषध (करे) । चौबीस घण्टे अन्दर में आनन्द में रहने का प्रयोग करे। इसके लिये प्रौषध है। समझ में आया ? ऐई ! प्रकाशदासजी ! लो, यह सामायिक और प्रौषध कर डाले कितने ही। इसका नाम सामायिक, प्रौषध है।

भगवान आत्मा जिसमें प्रौषध—पुष्टि हो। आठ दिन में, आठ-आठ दिन में अष्टमी, चौदस, अष्टमी, चौदस प्रयोग करे। पूर्ण आनन्द प्रगट करना चाहता है। मुनि भी होना चाहता है परन्तु मुनि नहीं हो सकता। पुरुषार्थ की कमी के कारण (नहीं हो सकता) तो ऐसा वह आठ-आठ दिन में मुनि की तरह, मुनि को जैसे सहज सातवाँ गुणस्थान-सहज शुद्धोपयोग आया ही करे, मुनि को तो छठवाँ-सातवाँ, छठवाँ-सातवाँ हजारों बार आता है। यह उसका अन्दर शिक्षा का—स्थिरता का प्रयोग करता है। समझ में आया ? सम्प्रदाय में यह कहा था। तुम्हारे पोपटभाई करते थे न ? प्रौषध... प्रौषध। प्रौषध करते थे परन्तु कहा, प्रौषध इसका नाम कहलाता है। भाई ! तब (संवत्) १९८० में (कहा था)। किये ये बाहर के। कहा, प्रौषध तो अन्दर आत्मा में आठ-आठ दिन में, आत्मा के आनन्द की पुष्टि का प्रयोग है, अखतरो है, आजमाईश है। आहाहा ! समझ में आया ? व्यायाम करते हैं न लोग ? ऐसे यह आत्मा के अन्दर में रहने का व्यायाम है। ऐई ! भीखाभाई ! इसका निर्णय तो करना पड़ेगा न कि ऐसी सामायिक होती है। कुछ का कुछ को माने और फिर माने कि हमारे सामायिक हो गयी, प्रौषध हो गया, प्रौषध। अष्टमी और पाखी का अपवास करे। हमारे वहाँ बोटाद में एक था। वह पूरे दिन सोता रहे। प्रौषध करे। गोपाणी था, एक गोपाणी। गरीब व्यक्ति था। नाम भूल गये। पूरे दिन सोता रहे। प्रौषध हो गया। परन्तु किसका प्रौषध अभी ?

जैसे चने को पानी में डालकर फुलाते हैं, पुष्टि (करते हैं)। वैसे आत्मा को एकाग्रता द्वारा शान्ति की पुष्टि करे, उसका नाम प्रौषध है। आहाहा ! समझ में आया ? मुनि को सदा आनन्द का उपयोग क्षण में और पल में आता है। मुनि का छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान, सच्चे मुनि का। उन्हें तो क्षण में शुद्ध उपयोग, क्षण में विकल्प। क्षण में शुद्ध उपयोग, क्षण में विकल्प। एक अन्तर्मुहूर्त में हजारों बार ऐसा आता है। सच्चे मुनि जो भावलिंगी हों वे। समझ में आया ? तब तो उन्हें मुनि कहा जाता है। नहीं तो मुनि किसके ?

जिसे निद्रा भी पौन सेकेण्ड के अन्दर होती है। एक सेकेण्ड की निद्रा आवे तो मुनिपना रहे नहीं। ऐसी दशा, वस्तु की स्थिति ऐसी है। समझ में आया? उन्हें तो उपयोग बारम्बार शुद्ध अन्दर रमे। यह मुनि के प्रयोग की यह शिक्षा है, ऐसा कहते हैं। आया न ऊपर? **मुनिव्रत की शिक्षा इनमें है,...** मुनिपने का प्रयोग करना है या नहीं? अभी चारित्र लेना है न! चारित्र ले नहीं सकता, तब तक यह गृहस्थाश्रम में भी हमेशा दो-दो घड़ी सवेरे, दोपहर, शाम ऐसे चैतन्य के आनन्द का, अन्दर निवृत्ति लेकर, ध्यान करे, प्रयोग करे, आजमाईश करे, अखतरो करे। और आठ-आठ दिन में पूरे चौबीस घण्टे करे। समझ में आया? अरे! भारी बात! ऐसा प्रौषध होगा? पोपटभाई! प्रौषध किया तो होगा या नहीं? सामायिक की होगी। खा-पीकर। एक बार खा ले और फिर उपाश्रय में बैठे। इसका नाम संवर। जामनगर में बहुत होता है। बहुत प्रौषध करते हैं न बहुत... अभी तो मिथ्यात्व का आस्रव किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती और मिथ्यात्व का आस्रव टले बिना दूसरे आस्रव टले कहाँ से? अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग तो बाद में है। पहला तो मिथ्यात्व आस्रव है। फिर अव्रत, पश्चात् प्रमाद, फिर कषाय और फिर योग। तो पहला मिथ्यात्व आस्रव टले बिना अव्रत का आस्रव टलता नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो मिथ्यात्व का आस्रव टाला है, सम्यग्दर्शन संवर प्रगट किया है, उसे आठ-आठ दिन में स्वरूप में रहने का प्रयोग करे। समझ में आया? इसका नाम प्रौषध है। नहीं खाना और बैठ गया चौबीस घण्टे, हो गया प्रौषध, (ऐसा नहीं है)। यह हमारे सेठ ने और ऐसे बहुतों ने ऐसा किया होगा। कराया होगा लंघन।

मुमुक्षु : संसार में स्वामी याद करे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह करे। वह अलग बात। यह तो भगवान भगवान करे... वस्तु का भान जहाँ आत्मा... जिसमें जिसे स्थिर होना है, वह चीज़ स्थिर होने का धाम कौन है? यह तो दृष्टि में और ज्ञान में वह चीज़ आयी नहीं और आये बिना स्थिरता कहाँ करे वह? मावाणी!

मुमुक्षु : उपाश्रय में ठहरने का।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपासरा तो यह है आत्मा का। उप-आश्रय। उप अर्थात् भगवान

आत्मा आनन्दस्वरूप, उसमें उप अर्थात् समीप में आश्रय में स्थिर होना, इसका नाम उपाश्रय है। बाहर का उपाश्रय जगत की चीज़ है, धूल की। वहाँ कहाँ उपाश्रय आया ? समझ में आया ? शास्त्र में ऐसा लेख है, हों ! उपाश्रय का अर्थ यह आता है। आत्मा ज्ञान और आनन्द का धाम, उसके उप अर्थात् उसके समीप में, पुण्य-पाप के विकल्प के राग से विमुख होकर।

मुमुक्षु : नियमसार की गाथा आती है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हाँ। आती है न। यही सब आता है। अन्दर योग का आता है। अन्यत्र भी बहुत जगह आता है। पहले पढ़ते थे उसमें कहीं आता था। अभी याद हो ? श्वेताम्बर के शास्त्र के शब्द अनुयोग द्वार में गाथा है। अनुयोग द्वार में गाथा आती है न ? ... जिसका आत्मा उपयोग में नजदीक वर्तता है, उसे सामायिक कहते हैं। यह गाथायें हैं। अनुयोग द्वार में है। यह अपने इसमें—नियमसार में है। यह गाथा है। ... अन्दर ज्ञान, दर्शन और आनन्द में जिसका उपयोग नजदीक—समीप वर्तता है। पुण्य-पाप में जिसका विकल्प नहीं जाता। उसे अन्दर सामायिक और प्रौषध कहा जाता है। ऐसी बात है।

इत्यादि विधान करना सामायिक है। लो। **इस प्रकार ही प्रोषध अर्थात् अष्टमी और चौदस के पर्वों में प्रतिज्ञा लेकर धर्म कार्यों में प्रवर्तना प्रोषध है।** धर्म कार्य में अर्थात् शुद्धभाव में प्रवर्तना। न प्रवर्त सके तो फिर विकल्प आदि पंच परमेष्ठी का ध्यान करे, विचार करे, स्वाध्याय करे, उसमें रहे। यह दूसरा शिक्षाव्रत।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह इसमें आ गया। दिग्व्रत में देशव्रत। उसमें यह आया। दूसरे में है। उसमें देशव्रत दिग्व्रत में यहाँ आ गया। नीचे लिखा है, नीचे लिखा है, देखो ! **देशव्रत दिग्व्रत में गर्भित है और सल्लेखना को शिक्षाव्रत में कहा है,...** नीचे है। दूसरे (पैरेग्राफ में)। है ?

मुमुक्षु : अतिथिसंविभाग।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। बाद में आयेगा। नीचे आया है। दसवाँ व्रत यहाँ छठवें में डाल दिया। अन्य जगह दसवाँ डाला है, उसे यहाँ छठवें में डाल दिया। और सल्लेखना वहाँ अलग की, उसे यहाँ शिक्षा में डालकर सल्लेखना कर दिया। उसमें कुछ अन्तर नहीं। समझ में आया ? आयेगा नीचे।

अतिथि अर्थात् मुनियों की पूजा करना, उनको आहारदान देना... महा नग्न मुनि दिगम्बर, जिन्हें एक वस्त्र का धागा भी नहीं होता, अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प हों और अन्तर में तीन कषाय के अभाव की वीतरागता हो। उन्हें जैनशासन में मुनि कहा जाता है। समझ में आया? बाकी वस्त्र-पात्र रखे, वह तो द्रव्यलिंगी भी नहीं है। द्रव्यलिंगी नग्न हो, अट्ठाईस मूलगुण निरतिचार हो, सम्यग्दर्शन-ज्ञान न हो। वह द्रव्यलिंगी कहलाता है और वस्त्र-पात्र रखे और मुनि माने, वह तो कुलिंगी कहलाता है। वह द्रव्यलिंगी भी नहीं है। मार्ग ऐसा है, भाई! समझ में आया? वीतराग का कथन यह है। लोगों ने फेरफार कर डाला, उससे कहीं मार्ग नहीं बदलता। उसका आत्मा उल्टी दशा में जायेगा।

मार्ग तो वीतराग का अनादि सर्वज्ञदेव ने कहा हुआ ऐसा है। पंच महाव्रतधारी मुनि अट्ठाईस मूलगुणवाले और अन्तर में तीन कषाय के अभाव के आनन्द की दशा में झूलनेवाले, जिन्हें क्षण में और पल में अतीन्द्रिय आनन्द उपयोग में आता है। उपयोग में आता है। लब्ध में तो आनन्द का अमुक अंश तो है ही। समझ में आया? आहाहा! मुनि को तो क्षण में शुद्ध उपयोग अन्दर में आनन्द में जम जाता है, कहते हैं। व्याख्यान का विकल्प हो, चलने का, तथापि उन्हें क्षण में और पल में उपयोग अन्दर में जम जाता है। और वहाँ से निकले तो विकल्प जरा होता है तो छठवाँ गुणस्थान होता है। और विकल्प टूटकर निर्विकल्प में आवे, तब सातवाँ होता है। ऐसी दशा मुनि को एक दिन में हजारों बार आती है। उन्हें मुनि कहा जाता है।

ऐसे मुनि का पूजन समकिती श्रावक करे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पाठ में है न? **'अतिहिपुज्जं'** है मूल पाठ में। उनकी तिथि नहीं कि अमुक दिन आयेंगे। घूमते-घूमते आ गये। उन्हें कुछ पात्र नहीं था या झोली नहीं होती। मुँहपत्ती नहीं होती या रजोणा नहीं होता। नग्न मुद्रा होती है। एक मोरपिच्छी और कमण्डल होता है, बाकी नहीं होता। समझ में आया? ऐसे मुनि की पूजा करना, कहते हैं। **पूजा करना, उनको आहारदान देना अतिथिपूजन है।** बारहवाँ व्रत। कहो, समझ में आया इसमें?

अन्त समय में काय और कषाय को कृश करना... सल्लेखना। सम्यग्दर्शन-सहित, अनुभवसहित, आनन्द के ध्यानसहित। उसे कषाय का क्रश करना। राग पतला करना और उसके साथ काय लिया है। काया शिथिल अपने आप पड़ जाती है। जीर्ण (हो

जाती है)। **समाधिमरण करना**... जिसके मृत्यु काल में धर्मी को आनन्द की चोट अन्दर में लगी हो। निर्विकल्पता आ जाये, उसका नाम समाधिमरण है। कदाचित् निर्विकल्पता न आवे, विकल्प हो। आनन्द का उपयोग अन्दर लब्धरूप हो और शान्ति... शान्ति... निवृत्ति... निवृत्ति... निवृत्ति... समझ में आया?

देखो न! उस कथा में नहीं आता? अनंग। कौन? अनंग? है न महिला? चक्रवर्ती की पुत्री। जंगल में चार हजार वर्ष तक तप किया। महिला थी। आता है न। अनंगसेना... अनंगसेना। अनंगवती। अनंगवती। उसे कोई ले गया, जंगल में डाल दिया। चक्रवर्ती की पुत्री। जंगल में कुछ साधन नहीं मिलता। चार हजार वर्ष तक तपस्या की। अन्त में उसे अजगर निगल गया। अजगर। जंगल में कोई नहीं होता। एक ही मनुष्य स्वयं। चार हजार वर्ष निकाले होंगे। कोई फूल, फल खाकर या अपवास करके। अजगर निगल गया। अजगर, अन्दर सल्लेखना की। वहाँ और उसका पिता चक्रवर्ती आया। उसे खबर पड़ी। ऐसे अजगर निगल गया था। तीर मारकर अजगर को मारने के लिये तैयार हुआ। इतना निगल गया था, इतने मुँह (बाहर) रहा। पिताजी! नहीं करना। मुझे संथारा है। अनशन है। बाहर आऊँ तो भी मैं जीनेवाली नहीं हूँ। मैंने तो चार आहार का त्याग किया है। अजगर के पेट में घुस गयी थी। थोड़ा मुँह बाहर (रह गया)। उसका पिता ऐसा देखता है... चार-चार हजार वर्ष में लड़की मिली... समझ में आया? देह छूट गयी। अन्दर घुस गयी।

(बाद के भव में) विशल्या हुई। यह लक्ष्मण की रानी। नहीं? विशल्या... विशल्या। सुना है या नहीं? एक बार बात हुई थी। लक्ष्मण को जब रावण ने विद्या (शक्ति) मारी है। लक्ष्मण मूर्च्छा में आ गये हैं। तब अब यह मूर्च्छा कैसे उतारना? सवेरा हो, तब तक उतरना चाहिए, नहीं तो लक्ष्मण नहीं रहेंगे। ऐसी लोगों को शंका पड़ने लगी। परन्तु जिन्हें शास्त्र की श्रद्धा हो... वासुदेव थे। वासुदेव, प्रतिवासुदेव को मारे बिना कभी मरे नहीं। रावण जीवित किस प्रकार रहे, उनकी मौजूदगी में? परन्तु लोगों को कितनों को थोड़ी शंका पड़ी। राम भी थोड़े विचलित हो गये। शंका नहीं परन्तु ऐसे डिग गये। अरे! लक्ष्मण भाई! क्या हुआ तुझे? बहुत प्रेम है न भाईयों को। दोनों को बहुत प्रेम है। अरे! कोई इसे उभारने की औषध, विद्या लाओ रे लाओ। रामचन्द्रजी पुकार करने लगे। फिर हनुमानजी भरत के पास जाते हैं। लोग कहे, एक विशल्या कन्या है। एक राजा की पुत्री है। उसका पानी

छिड़को तो तुरन्त यहाँ मिट जायेगा। कहो, ठीक! ऐसा पूर्व में ब्रह्मचर्य आदि पालन किया हुआव, संथारा किया न। चार हजार वर्ष तपस्या (की हुई)। जंगल में अकेले। हों! अकेली महिला। वहाँ वह कन्या आती है। भरत राज करते थे, उन्हें खबर थी कि उस राजा की यह पुत्री है। ऐसी जहाँ (पाण्डाल में) प्रवेश करती है, वहाँ हजारों सेना के लोग घात लगे हुए, चोट! वह जहाँ अन्दर प्रवेश करती है, वहाँ तो उसकी हवा से सब चोट अच्छी हो गयी। होता होगा या नहीं पर के कारण? परन्तु ऐसा साता का उसे उदय और यह उसका निमित्त। एकदम चोट ऐसी हो गयी। जहाँ अन्दर पाण्डाल में प्रवेश करती है। पाण्डाल नहीं कहा जाता उसे, क्या कहा जाता है उसे? तम्बू... तम्बू। तम्बू, तम्बू में प्रवेश करती है। वे तो राजा, बड़े दैवीय राजा। रामचन्द्रजी मोक्षगामी हैं, लक्ष्मणजी तीर्थंकर होकर मोक्ष जानेवाले हैं। वे तो सब महापुरुष हैं। पानी जहाँ छिड़का, वहाँ आलस मरोड़कर खड़े हो गये। देखो! यह लोग न कहे कि निमित्त का असर है या नहीं? ऐसा नहीं, भाई! उसकी पर्याय उस काल में ऐसी ही होनेवाली थी, तब उसको निमित्त कहने में आता है। ऐसी बात है।

यहाँ कहते हैं कि ऐसी श्रद्धा और ज्ञान तो पहले प्रगट हुए होते हैं। और फिर जब अन्त काल देह छूटने का आवे, छूटने का काल तो सबको आयेगा या नहीं इसमें? या किसी को नहीं आवे, ऐसा होगा? आहा! देह छूटने के काल में, कहते हैं कि वह सल्लेखना करे। स्वरूप की दृष्टि है। दो कषाय टल गये हैं। श्रावक है न? अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान का तो नाश हो गया है। अब प्रत्याख्यानी के रस को घटाने के लिये सल्लेखना आदि व्रत उसे होते हैं, ऐसा कहते हैं। अन्दर में ध्यान में किसी को उपयोग जम जाये तो निर्विकल्प में समाधिमरण हो जाये। आनन्द में, आनन्द में, हों! श्रावक को पंचम गुणस्थान में। अन्दर में ध्येय में उपयोग जम जाये (और) देह छूट जाये। किसी को निर्विकल्पता न भी हो। सविकल्प हो परन्तु अन्दर शान्ति और शुद्धता का उघाड़ हुआ है, वह कहीं जाता नहीं। उसमें देह छूट जाती है। स्वर्ग में जाता है।

काय और कषाय को कृश करना समाधिमरण करना अन्तसल्लेखना है, इस प्रकार चार शिक्षाव्रत है। लो। यह चार शिक्षाव्रत। यह चार शिक्षाव्रत। सामायिक, प्रौषध, अतिथिपूजन और सल्लेखना व्रत। प्रश्न आया, देखो!

यहाँ प्रश्न – तत्त्वार्थसूत्र में तीन गुणव्रतों में देशव्रत कहा... यहाँ तो तुमने कहा नहीं। **और भोगोपभोगपरिमाण को शिक्षाव्रत में कहा...** वहाँ तो भोगोपभोग सातवाँ व्रत है, उस शिक्षाव्रत में कहा है। यहाँ सल्लेखना न्यारा कहा, वहाँ सल्लेखना अलग कही है।

इसका समाधान – यह विवक्षा का भेद है, यहाँ देशव्रत दिग्व्रत में गर्भित है... आया था न दिशा-विदिशा ? दिशा-विदिशा २५ (गाथा)। छठवाँ जो देशव्रत है, यहाँ दिग्व्रत है, दिशा की मर्यादा करना। उसमें वह दसवाँ देशव्रत समाहित हो जाता है। **और सल्लेखना को शिक्षाव्रतों में कहा है,...** उसमें क्या है ? तत्त्वार्थसूत्र में अलग किया है। यहाँ अन्दर शिक्षाव्रत में डाला है। **कुछ विरोध नहीं है।** उसमें कोई विरोध नहीं है।

गाथा-२७

आगे कहते हैं कि संयमचरण चारित्र में श्रावक धर्म को कहा, अब यतिधर्म को कहते हैं –

एवं सावयधम्मं संजमचरणं उदेसियं सयलं।
सुद्धं संजमचरणं जइधम्मं णिक्कलं वोच्छे।।२७।।

एवं श्रावकधर्मं संयमचरणं उपदेशितं सकलम्।
शुद्धं संयमचरणं यतिधर्मं निष्फलं वक्ष्ये।।२७।।

संयम-चरण में इस तरह श्रावक धरम सब ही कहा।
अब शुद्ध संयम-चरण निष्कल यती धर्म बता रहा।।२७।।

अर्थ – **एवं अर्थात् इस प्रकार से श्रावकधर्मस्वरूप संयमचरण तो कहा, यह कैसा है? सकल अर्थात् कला सहित है, (यहाँ) एकदेश को कला कहते हैं। अब यतिधर्म के धर्मस्वरूप संयमचरण को कहूँगा, ऐसी आचार्य ने प्रतिज्ञा की है। यतिधर्म कैसा है ? शुद्ध है, निर्दोष है जिसमें पापाचरण का लेश नहीं है, निकल अर्थात् कला से नि:क्रान्त है, सम्पूर्ण है, श्रावकधर्म की तरह एकदेश नहीं है।।२७।।**

गाथा-२७ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि संयमचरण चारित्र में श्रावक धर्म को कहा, अब यतिधर्म को कहते हैं – यह तो श्रावक की बात की। संयमचरण चारित्र के दो भाग। एक—देशविरति और एक—सर्वविरति। उसमें देशविरति की व्याख्या यहाँ तक चली।

एवं सावयधम्मं संजमचरणं उदेसियं सयलं।
सुद्धं संजमचरणं जइधम्मं णिक्कलं वोच्छे।।२७।।

अर्थ – एवं अर्थात् इस प्रकार से श्रावकधर्मस्वरूप संयमचरण तो कहा,... श्रावक धर्म का, सम्यग्दर्शन चरणसहित देशसंयम चारित्र कहा। **यह कैसा है ? सकल अर्थात् कला सहित है,...** देखो! भाषा यहाँ। सकल अर्थात् पूरा, ऐसा नहीं। उसकी कला है। पूर्ण कला उसे प्रगट नहीं हुई। पूर्ण कला मुनि को होती है। .**(यहाँ) एकदेश को कला कहते हैं।** एकदेशविरति अन्दर में प्रगट हुई है। कला है न? कला। एकदेशविरति श्रावक को प्रगट हुई है। पंचम गुणस्थान में।

अब यतिधर्म के धर्मस्वरूप संयमचरण को कहूँगा, ऐसी आचार्य ने प्रतिज्ञा की है। यतिधर्म कैसा है? कैसा है मुनिधर्म? **शुद्ध...** पहला शब्द है। श्रावक में तो अभी हिंसा, झूठ, ऐसे थोड़े परिणाम होते हैं। सर्वथा विरति उसे नहीं है। मुनि को तो शुद्ध है। एकदम पंच महाव्रत, जिसमें कोई हिंसा का अंश भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? **शुद्ध है, निर्दोष है...** यह शुद्ध की व्याख्या की। **निर्दोष है, जिसमें पापाचरण का लेश नहीं है,...** ओहोहो! नग्न मुनिदशा जिनकी, अन्तर में तीन कषाय का नाश, ऐसा आनन्द में झूलता मुनि, उसे जैनशासन में साधु कहा जाता है। कहते हैं, ऐसे साधु को पापाचरण का लेश नहीं। उनके लिये बनाया हुआ आहार लेने का विकल्प भी नहीं होता। समझ में आया? लेश पापाचरण नहीं। वस्त्र ग्रहण का विकल्प वह पाप है। उनके लिये बनाया हुआ आहार लेने का विकल्प वह पाप है। वे सब पापाचरण जिन्हें नहीं हैं। और धर्माचरण, जिनके आनन्द का स्वरूप भगवान, वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा, उसमें जिसकी परिणति जम गयी है। आहाहा! समझ में आया? मुनि, बापू! जैनदर्शन का मुनि पहिचानना

कठिन है। यह सब जो ये घूमते हैं दीक्षा (लेकर), वह दीक्षा-बिक्षा नहीं है। वह तो सब दखिया है। राग अर्थात् दु:ख और राग को अंगीकार किया वह दुखिया है। समझ में आया? आत्मा के सम्यग्दर्शन बिना महाव्रत के शुभभाव, वे तो राग और दु:ख हैं। महाव्रत अंगीकार करता हूँ अर्थात् दु:ख को अंगीकार करता हूँ, ऐसा है।

यहाँ तो आत्मा अन्दर में आनन्दस्वरूप भगवान की वर्तमान किनारे पर्याय में आनन्द खिलकर आनन्द का ज्वार आया है। प्रचुर स्वसंवेदन। आहाहा! आत्मा के आनन्द का वेदन श्रावक को है, उससे मुनि को आनन्द का वेदन बहुत बढ़ गया है। चौथे गुणस्थान में जो आनन्द है, उसकी अपेक्षा पाँचवें में अधिक है, उसकी अपेक्षा छठवें में अधिक है और उसकी अपेक्षा सातवें में अधिक है। आहाहा! उस आनन्द के न्यूनाधिक के प्रकार के वे गुणस्थान हैं। समझ में आया? जिसमें पाप का लेश नहीं। आहाहा! जो आत्मा के अन्तर आचरण में शुद्ध स्वरूप में रमनेवाले और विकल्प आदि आवे तो शुभराग अहिंसा पंच महाव्रत का या अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प होता है। ऐसा जिसे पापाचरणमात्र का लेश नहीं, ऐसा उसका आचरण है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ऐसे वर्तमान में तो देखने में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : तुमने खुल्ला कर दिया। एक मुनि यहाँ आये थे। ऋषभसागर आये थे। इन्दौर में चातुर्मास था। नसियाजी में। इन्दौर में नसियाजी है न? वहाँ चातुर्मास था। दो वर्ष पहले यहाँ आये थे। उनके ८५ वर्ष होंगे। वे कहते थे कि ९५ है। ऐसा कहते थे। ९५। ९ और ५। लेकिन ८५ तो होंगे, ऐसा लगता था। यहाँ का वाँचन बहुत करते थे। यहाँ आये, दो दिन रहे। बोले, महाराज! कोई भावलिंगी साधु हिन्दुस्तान में है ही नहीं। स्वयं साधु। द्रव्यलिंगी भी कोई नहीं है।

मुमुक्षु : नाम क्या कहा आपने?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऋषभसागर। ऋषभ... ऋषभ। महाराष्ट्र के थे। इन्दौर में नसियाजी में दो वर्ष पहले चातुर्मास था। लेकिन यहाँ का वाँचन किया... आहाहा! बहुत सरल था। दो दिन रहे। भावनगर में आठ दिन रहे। सुने तो उसे कुछ ख्याल तो आवे। भले हो, अन्तर हो, उसमें... परन्तु क्या चीज़ है, (मालूम तो पड़े)। भविष्य में सुधरने का अवसर रहे। यह

तो वीतराग का मार्ग है, कोई पक्ष का मार्ग है ? और यह तो यहाँ बोल गये थे। बोल गये थे बेचारे। अरे ! हमारे पाप का उदय है (कि) नग्न हो गये। ऐसा बोल गये। पाप के उदय से हम नग्न हो गये। क्या करें ? मुनिपना है नहीं। छोड़ा नहीं जाता। यह वस्तु ऐसी हो गयी है कि अन्दर जकड़ गये हैं, पकड़ गये हैं। ऐई ! एक आये थे। दो वर्ष पहले। दो वर्ष हुए न ? महाराष्ट्र में चातुर्मास था। वृद्ध, बहुत वृद्ध। वे तो ९५ कहते थे। ९५ समझे न ? ९ और ५। ८५ होंगे। खेती के मनुष्य थे। खेती-कृषिकार। उसमें से साधु हो गये। परन्तु मनुष्य सरल बहुत। बहुत सरल। बहुत सरल... बोले। हमारे में मुनिपना कुछ नहीं है। आप कहते हो, वह बात धर्म है। समझ में आया ? मार्ग बापू ! दूसरा है, भाई ! दुनिया यह मानकर बैठ गये पकड़कर, इससे कहीं वस्तु हो जाये ? वीतराग सर्वज्ञ का मार्ग है। इन्द्र जिसका आदर करते हैं, गणधर जिसे जानते हैं और अनुभव करते हैं, ऐसी अलौकिक दशा है। समझ में आया ?

यतिधर्म तो निर्दोष **जिसमें पापाचरण का लेश नहीं है,...** और कैसे हैं ? **निकल...** निकल अर्थात् कला रहित। एकदेश वहाँ है (नहीं), एकदेश भाग नहीं, सम्पूर्ण पवित्रता। पूर्णमासी की तरह। श्रावक को तो दूज, तीज, चौथ, पंचम, छठ, सातम ऐसे कला के— देश के भाग पड़ते हैं। मुनि तो पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्णिमा को पूर्ण कहते हैं न ? पूनम का अर्थ पूर्ण है। अमावस का अर्थ अर्ध मास है। अपने यहाँ पहले शुक्ल लगता है। सिद्धान्त के हिसाब से तो पहले कृष्ण आता है। क्योंकि पहला अर्धमास (आवे)। अमावस्या आवे इसलिए अर्ध मास। पूर्णिमा आवे तो पूर्ण मास। समझ में आया ? ऐसे साधु हुए अर्थात् पूर्ण मास। पूर्ण पवित्रता। आहाहा ! जिसके वीतराग के झूले अन्दर से ऐसे आनन्द के झूले आते हैं। उस आनन्द के अनुभव में उन्हें दुनिया की भी कुछ पड़ी नहीं है। वे जंगल में स्थित हों। सिंह जैसे जंगल में पड़े हों, (उसी प्रकार वे) ध्यान में स्थित होते हैं। समझ में आया ? उसे जैनदर्शन में साधु और मुनि कहा जाता है।

निकल अर्थात् कला से निःक्रान्त है,... कला से निकल गये हैं। **'णिक्कलं वोच्छे'** उन्हें कहेंगे। **सम्पूर्ण है, श्रावकधर्म की तरह एकदेश नहीं है।** श्रावकधर्म समकितसहित एकदेश निवृत्ति है। एकदेश पाप की निवृत्ति और शान्ति की प्रवृत्ति एकदेश है। मुनि को तो सर्व पाप की निवृत्ति और शान्ति की प्रवृत्ति अन्दर बहुत है। शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... सन्त उपशमरस में झूलते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

गाथा-२८

आगे यतिधर्म की सामग्री कहते हैं –

पंचेंदियसंवरणं पंच वया पंचविंसकिरियासु।
पंच समिदि तय गुत्ती संजमचरणं णिरायारं।।२८।।

पंचेंद्रियसंवरणं पंच व्रता: पंचविंशतिक्रियासु।
पंच समितय: तिस्र: गुप्तय: संयमचरणं निरागारम्।।२८।।

है पाँच इन्द्रिय-संवरण व्रत पाँच पच्चिस क्रिया में।
हैं पाँच समिति तीन गुप्ति यती संयम चरण में।।२८।।

अर्थ – **पाँच इन्द्रियों का संवर, पाँच व्रत – ये पच्चीस क्रिया के सद्भाव होने पर होते हैं, पाँच समिति और तीन गुप्ति ऐसे निरागार संयमचरण चारित्र होता है।।२८।।**

गाथा-२८ पर प्रवचन

आगे यतिधर्म की सामग्री कहते हैं – लो। मुनि को कैसा मार्ग होता है ? देखो! पहले से शुरुआत करते आये हैं। समकितपाहुड़—दर्शनपाहुड़। पश्चात् सूत्रपाहुड़, फिर यह चारित्रपाहुड़। पहला दर्शनपाहुड़—समकित। फिर ज्ञान और फिर चारित्र। ऐसा यह तीसरा पाहुड़ चलता है। क्रम। ज्येष्ठ शुक्ल-पंचमी से शुरु किया है। ज्येष्ठ शुक्ल ५, लो, डेढ़ महीना हुआ। डेढ़ महीना हुआ।

पंचेंदियसंवरणं पंच वया पंचविंसकिरियासु।
पंच समिदि तय गुत्ती संजमचरणं णिरायारं।।२८।।

अर्थ – पाँच इन्द्रियों का संवर,... जिन्हें होता है। अतीन्द्रिय आनन्द में महालतो मुनि, अतीन्द्रिय आनन्द में महालतो जिन्हें पाँच इन्द्रिय के विषय का संवर होता है। यह संवर, हों! पाँच इन्द्रिय के विकल्पों का विषय जिन्हें टूट गया है। अतीन्द्रिय

आनन्द का भाव जिन्हें अनुभव में प्रगट हुआ है। समझ में आया ? आहाहा! **पाँच व्रत...** अहिंसा, सत्य, दत्त, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। **पच्चीस क्रिया के सद्भाव होने पर होते हैं, पाँच समिति...** उन्हें होती हैं। लो, स्पष्टीकरण करेंगे। **तीन गुप्ति ऐसे निरागार संयमचरण...** निरागार अर्थात् परिग्रह बिना। जिन्हें परिग्रह बिल्कुल नहीं होता। वस्त्र का धागा जिन्हें नहीं होता, उन्हें जैनदर्शन में मुनि कहते हैं। उन्हें निराधार परिग्रह रहित कहते हैं। समझ में आया ? बड़े पोटले रखे, चार-चार, पाँच-पाँच, दस-दस वस्त्र (रखे) और कहे, हम निर्ग्रन्थ मुनि हैं। परन्तु निर्ग्रन्थ मुनि कहाँ से आया ? ग्रन्थ तो जिसमें राग की गाँठ गल गयी है और बाहर से वस्त्र-पात्र भी परिग्रह है। वे भी जिनके टल गये हैं। राग गल गया है और बाह्य वस्तु टल गयी है। ऐसी दशा में पाँच समिति में, तीन गुप्ति में और निरागार संयम (होता है)। निरागार अर्थात् परिग्रह रहित।

गाथा-२९

आगे पाँच इन्द्रियों के संवरण का स्वरूप कहते हैं -

अमणुण्णे य मणुण्णे सजीवदव्वे अजीवदव्वे य।
ण करेदि रायदोसे पंचेंदियसंवरो भणिओ ॥२९॥

अमनोज्ञे च मनोज्ञे सजीवद्रव्ये अजीवद्रव्ये च।
न करोति रागद्वेषौ पंचेंद्रियसंवरः भणितः ॥२९॥

मनोज्ञ या अमनोज्ञ चेतन अचेतन सब द्रव्य में।
नहिं करे राग द्वेष पाँचों इन्द्रियी-संवर कहें॥२९॥

अर्थ - **अमनोज्ञ तथा मनोज्ञ ऐसे पदार्थ जिनको लोग अपने माने - ऐसे सजीवद्रव्य स्त्री पुत्रादिक और अजीवद्रव्य धन धान्य आदि सब पुद्गल द्रव्य आदि में रागद्वेष न करे, उसे पाँच इन्द्रियों का संवर कहा है।**

भावार्थ - **इन्द्रियगोचर जीव अजीव द्रव्य है, ये इन्द्रियों के ग्रहण में आते हैं, इनमें यह प्राणी किसी को इष्ट मानकर राग करता है और किसी को अनिष्ट मानकर द्वेष करता है, इस प्रकार रागद्वेष मुनि नहीं करते हैं, उनके संयमचरण चारित्र होता है ॥२९॥**

गाथा-२९ पर प्रवचन

आगे पाँच इन्द्रियों के संवरण का स्वरूप कहते हैं –

अमणुण्णे य मणुण्णे सजीवदव्वे अजीवदव्वे य।
ण करेदि रायदोसे पंचेंदियसंवरो भणिओ।।२९।।

अर्थ – अमनोज्ञ तथा मनोज्ञ ऐसे पदार्थ जिनको लोग अपने माने... दुनिया उसे अपना माने ऐसी स्थूल। **ऐसे सजीवद्रव्य स्त्री, पुत्रादिक और अजीवद्रव्य धन, धान्य आदि सब पुद्‌गलद्रव्य आदि में रागद्वेष न करे,...** मुनि को स्त्री का राग नहीं होता। पुत्र का राग नहीं होता। तथा कोई धन, धान्य का भी राग नहीं होता। **आदि में रागद्वेष न करे, उसे पाँच इन्द्रियों का संवर कहा है।** राग न करे अर्थात् कि वीतरागता प्रगट करे, उसे संवर कहा जाता है। नास्ति से बात की है।

भावार्थ – इन्द्रियगोचर जीव अजीवद्रव्य है,... ऐसा स्पष्टीकरण किया है। **लोग अपने माने...** ऐसा लिखा था न उसमें ? लोग बाहर से स्थूल को (अपना) मानते हैं, ऐसे इन्द्रियगम्य जीव, अजीव। मन में कोई साधारण विकल्प आ जाए तो वह कुछ... समझ में आया ? क्योंकि मुनि को मन का विकल्प तो आता है। यह प्रश्न हमारे हुआ था। (संवत्) १९७० में। १९७० के वर्ष में वे 'वोरा' थे न ? 'गिरधर वोरा'। उन्होंने प्रश्न किया था। बोटाद। बारह अव्रत के त्याग में मन का त्याग आता है तो मुनि को तो मन में अभी विकल्प होता है। भाई ! उन्होंने प्रश्न किया था। १९७० के वर्ष। पाँच महाव्रत, रात्रिभोजन त्याग यह छह, और पाँच इन्द्रिय तथा छठा मन, इनके विकल्प का त्याग, उसे संवर कहा जाता है। गिरधर वोरा। रतिभाई ! वह गिरधर वोरा नहीं था ? गिरधर वोरा अकेला था न ? कुँवारा। उसका भाई वहाँ उपाश्रय बनाता है न अभी। बोटाद में उपाश्रय उसके भाई ने बनाया है। उसने प्रश्न किया कि बारह अव्रत में मन का अव्रत भी जाए। तो मुनि को मन में विकल्प आता है या नहीं ? भाई ! वह तर्क करता था। वह होता है, परन्तु उसकी मर्यादा प्रमाण विकल्प होता है। उसकी मर्यादा उल्लंघकर नहीं होता, इसलिए मन का भी संवर गिनने में आया है। ऐ... पोपटभाई !

मुमुक्षु : इसमें तो पाँच इन्द्रियाँ ही ली हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। ली है न। परन्तु मन भी इकट्ठा आता है न। इन्द्रियगोचर है वह द्रव्य नहीं होता। इसलिए उसका राग उन्हें नहीं होता, ऐसा। संवर में आता है न? पाँच इन्द्रिय और छठा मन। समझ में आया? छह काय। बारह अव्रत का त्याग आता है न? उसका नाम संयम। बारह अव्रत का त्याग आता है। पहले से तो यह बात आती है। उसका त्याग, वह संयम।

इन्द्रियगोचर जीव अजीवद्रव्य है, ये इन्द्रियों के ग्रहण में आते हैं, इनमें यह प्राणी किसी को इष्ट मानकर राग करता है... किसी को देखकर, काऊ अर्थात्। **और किसी को अनिष्ट मानकर द्वेष करता है, इस प्रकार रागद्वेष मुनि नहीं करते हैं,...** लो। समता... समता... समता... समता... समझ में आया? जहाँ आगे मुनि को वीतरागपने की दशा प्रगटी है। मुनि को तो वीतरागी ही कहते हैं। आहाहा! पुष्पदन्त, भूतबली मुनि हो गये न? पुष्पदन्त, भूतबलि। यह षट्खण्डागम जिन्होंने रचे हैं। धवला में आता है। मोह और राग-द्वेषरहित वीतरागी सन्त थे। मोह और राग-द्वेषरहित। वह संज्वलन का साधारण राग है, उसे नहीं गिना। आहाहा! वीतरागी मुनि थे। पुष्पदन्त, भूतबलि जिन्हें यह षट्खण्डागम धरसेनाचार्य ने यहाँ गिरनार में दिया। पूरा हुआ, इसलिए देवों ने महोत्सव किया। व्यन्तर के देवों ने। व्यन्तर... व्यन्तर। पुष्पदन्त और भूतबलि गिरनार में मुनि थे न? भावलिंगी नग्न मुनि सन्त। भगवान ने स्वीकार किये ऐसे वीतरागी। धवल में पाठ है। वे तो वीतरागी मुनि थे। सब मुनि ऐसे ही होते हैं। समझ में आया? उसे संयमचरण चारित्र कहा जाता है। लो।

गाथा-३०

आगे पाँच व्रतों का स्वरूप कहते हैं -

हिंसाविरइ अहिंसा असच्चविरई अदत्तविरई य।
तुरियं अबंभविरई पंचम संगम्मि विरई य।।३०।।

हिंसाविरतिरहिंसा असत्यविरति: अदत्तविरतिश्च।
तुर्यं अब्रह्मविरति: पंचमं संगे विरति: च।।३०।।

हिंसा–विरति है अहिंसा विरति मृषा चोरी विरति।
विरति अब्रह्म विरति परिग्रह महाव्रत ये पाँच ही।।३०।।

***अर्थ* – प्रथम तो हिंसा से विरति अहिंसा है, दूसरा असत्यविरति है, तीसरा अदत्तविरति है, चौथा अब्रह्मविरति है और पाँचवाँ परिग्रहविरति है।**

***भावार्थ* – इन पाँच पापों का सर्वथा त्याग जिनमें होता है, वे पाँच महाव्रत कहलाते हैं।।३०।।**

गाथा–३० पर प्रवचन

आगे पाँच व्रतों का स्वरूप कहते हैं – पाँच व्रत का स्वरूप कहते हैं। मुनि को पाँच व्रत होते हैं। सम्यग्दर्शनसहित स्वरूप के स्थिरता के आचरणसहित, उन्हें पंच महाव्रत का विकल्प होता है। यहाँ बात इससे की है सब, इसलिए लोग इसे मान बैठते हैं। देखो! यह चारित्र, देखो! यह चारित्र। यह तो उसकी मर्यादा बतायी कि विकल्प ऐसा हो वहाँ ऐसा चारित्र होता है। क्या हो? शास्त्र के अर्थ को... आया न? दोपहर में अपने आता है या नहीं? सूत्र के अर्थ को ही तू दूसरे प्रकार से करता है। प्रज्ञा के अपराध से। हमें जो आशय कहने का है, वह आशय तू नहीं लेता। यह पंच महाव्रत कहे चारित्र के लिये, वे चारित्र है। महाव्रत का विकल्प कहाँ चारित्र है? वह तो व्यवहारचारित्र है। परन्तु वहाँ निश्चयचारित्र वर्तता हो, उसे ऐसे पाँच महाव्रत के विकल्प होते हैं। उसे दूसरा विशेष राग नहीं होता। ऐसा बताते हैं। समझ में आया? आहाहा!

हिंसाविरइ अहिंसा असच्चविरई अदत्तविरई य।
तुरियं अबंभविरई पंचम संगम्मि विरई य।।३०।।

***अर्थ* – प्रथम तो हिंसा से विरति अहिंसा है,...** अन्दर में राग के भाव का जहाँ अभाव (हुआ है), ऐसी निश्चय से अहिंसा है, वहाँ व्यवहार अहिंसा का ऐसा

विकल्प होता है। ऐसा। समझ में आया? **दूसरा असत्यविरति है,...** झूठ बोलने का त्याग। ऐसे महाव्रत का विकल्प होता है। **तीसरा अदत्तविरति है,...** चोरी का त्याग। एक तिनका भी आज्ञा बिना ले नहीं। राख की चपटी आज्ञा बिना न ले। न दिये हुए का पूर्ण त्याग, पूर्ण त्याग। **चौथा अब्रह्मविरति है...** विषय की वासना के विकल्प का सर्वथा त्याग। आहाहा! ब्रह्मानन्द ऐसा भगवान, ऐसे आनन्द के रस में रसीले सन्त, उन्हें कहते हैं कि ब्रह्मचर्य का भाव होता है। समझ में आया? अब्रह्म का त्याग (होता है)। जिन्हें ब्रह्मानन्द आत्मआनन्द में जिनकी मस्ती है। जिनको आनन्द खिलकर पर्याय में आनन्द की बाढ़ आयी है। आहाहा! ऐसा जो ब्रह्म अर्थात् आत्मा, उसमें चरना, आनन्द में चरना, ऐसा जहाँ निश्चय ब्रह्मचर्य है, वहाँ काया, मन, वचन से पर का अब्रह्म न सेवन करे, उसे यहाँ अब्रह्म का त्याग कहा गया है। यह चौथा अब्रह्म।

पाँचवाँ परिग्रहविरति है। एक वस्त्र का धागा भी परिग्रह है। उसकी विरति। जिसे निवृत्ति होती है। उसे पाँचवाँ महाव्रत कहा जाता है। समझ में आया? परिग्रहविरति। बिल्कुल परिग्रह उसे नहीं होता। नग्नपना। माता से जन्मा ऐसा जिसका अवतार होता है। आहाहा! उसे जैनदर्शन में मुनि कहा जाता है। बाकी मुनिपना माना है, वह जैनदर्शन के प्रमाण नहीं है। वह जैनदर्शन ही नहीं है। परिग्रहविरति। आहाहा!

भावार्थ – इन पाँच पापों का सर्वथा त्याग जिनमें होता है, वे पाँच महाव्रत कहलाते हैं। अब उन्हें महाव्रत क्यों कहना? श्रावक के पाँच अणुव्रत होते हैं। सम्यग्दर्शन, ज्ञानसहित शान्ति के अंश की भूमिका में। जब मुनि को शान्ति की भूमिका बहुत बढ़ गयी है। उनकी भूमिका में ऐसे पंच महाव्रत–पाँच महाव्रत क्यों कहना? उन्हें महाव्रत क्यों कहा? उसकी बात है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-४५, गाथा-३१ से ३३, रविवार, आषाढ़ (गुजराती) कृष्ण ८, दिनांक २६-०७-१९७०

यह अष्टपाहुड़, चारित्रपाहुड़ की ३१वीं गाथा। **आगे इनको महाव्रत क्यों कहते हैं, वह बताते हैं –** क्या चलता है यह? यह चारित्र अधिकार है। चारित्र में पहले अधिकार में पहले आ गया है कि सम्यक्चरण चारित्र बिना संयमचरण चारित्र नहीं हो सकता। चारित्र के दो भेद किये, चारित्र के दो भाग किये। समझ में आया? सम्यक्चरण चारित्र, वह चारित्र का एक भाग लिया है। दो भाग किये हैं न? सम्यक्चरण चारित्र और संयमचरण चारित्र। उसमें सम्यक्चरण चारित्र हो तो फिर संयमचरण चारित्र होता है। सम्यक्चरण चारित्र न हो, उसे संयमचरण चारित्र नहीं हो सकता। समकितचरण चारित्र में यह आ गया है कि अखण्ड अभेद चैतन्यस्वरूप, जिसका एकरूप त्रिकाल स्वरूप है, उसकी अन्तर्मुख में प्रतीति होना, पच्चीस दोषरहित, वह सम्यक्चरण चारित्र है। पच्चीस दोषरहित और निःशंक आदि आठ गुण सहित। समझ में आया? ऐसा जो निज स्वरूप, निज स्वरूप तो वास्तव में उसे यह कहा, वह ध्रुव स्वरूप, वह निजस्वरूप है। त्रिकाल एकरूप स्वरूप है, जो एक समय की पर्याय रहित, इसके अन्तर में श्रद्धा को ध्रुव में पसारना, उसमें—ध्रुव में पर्याय को जोड़ना, इसका नाम सम्यग्दर्शन कहा जाता है। इसमें साथ में पच्चीस दोष का त्याग है और समकित के निःशंक आदि का आचरण होता है। समझ में आया? उस सम्यक्चरण चारित्र के बिना यह चारित्र संयम में नहीं होता। संयमचरण चारित्र भी दो प्रकार से है।

पहले चारित्र के दो भेद। समकितचरण चारित्र और संयमचरण चारित्र। अब संयमचरण चारित्र के दो भेद। एक—देशसंयम और एक—सर्वविरति संयम। देशविरति की व्याख्या आ गयी। अब सर्वविरति की। सम्यग्दर्शनपूर्वक उसे सर्वविरति संयम कैसा होता है, इसका उसे भान कराते हैं। समझ में आया? यह ३१वीं गाथा में महाव्रत किसे कहना? देखो! यहाँ महाव्रत से लिया है। महाव्रत है तो विकल्प। परन्तु चारित्र के भेद में महाव्रत को और अणुव्रत को लिया है। इसलिए कितने ही उसे ही चारित्र मानते हैं। इसमें कथन ऐसा है। चारित्र के दो भेद में संयमचरण चारित्र। उसके दो भेद—देशविरति और सर्वविरति। देशविरति में ग्यारह प्रतिमा, बारह व्रत, वे तो सब विकल्प हैं। और यह पंच

महाव्रत वह भी विकल्प है। ऐसी जाति के विकल्प की हद में उनके स्वरूप का आचरण और स्वरूप में स्थिरता की शान्ति का अंश होता है, ऐसा यह बताते हैं। व्यवहार, वह निश्चय को बताता है (कि) ऐसा वहाँ निश्चय होता है। समझ में आया?

एक ओर कहना कि पंच महाव्रत के विकल्प जहर हैं। ऐई! समझ में आया? तथा एक ओर यहाँ कहेंगे, महापुरुषों ने उन्हें आचरण किया है। इसलिए ही लोग विवाद उठाते हैं न! समझ में आया? भाई! आचरण किया है, इसका अर्थ (यह कि) व्यवहारनय का विकल्प उस भूमिका में पंच महाव्रत का विकल्प होता है। परन्तु उसके पीछे स्वरूप के आनन्द का घोलन और शान्ति की विशेष दशा, प्रचुर स्वसंवेदन ऐसी वीतरागदशा प्रगट हुई है, उसे न लेकर, पंच महाव्रत को चारित्र का भाग कहने में आया है। इससे यह अनुमान कर कि अन्दर शान्ति और ऐसी वीतरागदशा होती है। समझ में आया? अकेले सम्यक्चरण चारित्र से ही मुक्ति होती है, ऐसा नहीं है। ऐसा बतलाने के लिये यह बात इकट्ठी ली है। कहो, समझ में आया? इस संयम में यह भाग इस प्रकार से किये हैं। इसलिए दूसरे लोग कहते हैं कि देखो! महाव्रत को भी चारित्र कहा है। भाई! परन्तु तत्त्वार्थसूत्र में तो महाव्रत को आस्रव कहा है, पुण्यभाव कहा है। और यहाँ कहते हैं, तो दोनों में अन्तर है? वहाँ उस भूमिका में महाप्रभु चैतन्य अपने आंगन में अन्दर रमता है, ऐसी शान्ति जिसे प्रगट हुई है, उसे महाव्रत के विकल्प इस जाति के होते हैं और वह आचरण करता है, ऐसा व्यवहारनय से कहा जाता है। बहुत से इसमें से लेते हैं। इसमें से, दूसरे से, जहाँ कुछ यह आवे, चारित्र के भेद आवे वहाँ (ऐसा ले)। सर्वविरति और देशविरति। अन्तर का चारित्र है, वह बात मुख्य में नहीं आती, इसलिए ऐसा ले जाते हैं कि महाव्रत, वह चारित्र है। देखो! ३१ वीं गाथा।

गाथा-३१

आगे इनको महाव्रत क्यों कहते हैं, वह बताते हैं –

साहंति जं महल्ला आयरियं जं महल्लपुव्वेहिं।
जं च महल्लाणि तदो [1]महव्वया इत्तहे याइं।।३१।।

साधयंति यन्महांतः आचरितं यत् महत्पूर्वैः।
यच्च महन्ति ततः महाव्रतानि एतस्माद्धेतोः तानि।।३१।।

ये महा नर ही साधते पहले भि साधा बड़ों ने।
महान हैं जो स्वयं भी इससे महाव्रत नाम है।।३१।।

अर्थ – महल्ला अर्थात् महन्त पुरुष जिनको साधते हैं, आचरण करते हैं और पहले भी जिनका महन्त पुरुषों ने आचरण किया है तथा ये व्रत आप ही महान् हैं, क्योंकि इनमें पाप का लेश भी नहीं है, इस प्रकार ये पाँच महाव्रत हैं।

भावार्थ – जिनका बड़े पुरुष आचरण करें और आप निर्दोष हो वे ही बड़े कहलाते हैं, इस प्रकार इन पाँच व्रतों को महाव्रत संज्ञा है।।३१।।

गाथा-३१ पर प्रवचन

साहंति जं महल्ला आयरियं जं महल्लपुव्वेहिं।
जं च महल्लाणि तदो महव्वया इत्तहे याइं।।३१।।

देखो! यह वर्णन किया। और एक ओर जहाँ निश्चयनय का वर्णन आवे, तब कहे, आत्मा का स्वरूप वह तो शुद्ध ध्रुव चैतन्य, वही उसका स्वरूप है। समझ में आया? और वापस यह झुकाव आवे। कहा था न? उसमें आया न यह? जीव नहीं उपजता, नहीं मरता, नहीं बन्ध करता, नहीं मोक्ष करता। उसे जीव कहा। परन्तु वह जीव कहा, वह नय से कहा

१. पाठान्तर ह्र 'महव्वया इत्तहे याइं' के स्थान पर 'महव्वयाइं तहेयाइं'।

है। क्योंकि नय का वाक्य है न? वह कहीं पूरे प्रमाण का वाक्य नहीं। समझ में आया? एक समय में जीव मोक्ष की पर्याय को करे नहीं, उसे जीव कहते हैं, कहते हैं। अरे! गजब! यह बन्ध की और मोक्ष की दोनों की एक-एक समय की पर्याय को... पर्याय में आवे नहीं, पर्याय करे नहीं, पर्यायरूप उपजे नहीं, उसे जीव कहा जाता है। ऐसा वहाँ कहा। ३२०वीं गाथा में आया न? और परमात्मप्रकाश की ६८ गाथा। भाई! ऐसा कहा है कि जीव अर्थात् कि मोक्ष की पर्याय को न करे, वह जीव। गजब बात, भाई! समझ में आया?

यहाँ जीव की पर्याय में पाँच महाव्रत पाले, वह चारित्रवन्त, (ऐसा कहते हैं)। चन्दुभाई! भारी बात, भाई! समझ में आया? यह नय के वाक्यों को मुख्य-गौण करके कहा हो, उसे बराबर समझना चाहिए। क्योंकि एकदम स्वरूप जब मोक्ष की पर्याय भी न करे, वह जीव, (ऐसा कहे तब) वह तो द्रव्यार्थिकनय का परमपारिणामिकभाव नय का विषय हुआ। और नय का विषय है, उसमें एक भाग रह जाता है। समझ में आया? नय है, इसलिए उसमें एक भाग आया। भले बड़ा आया, पूरा आया। नवनीतभाई! परन्तु वह नय है न? परमपारिणामिकभाव ग्राहक द्रव्यार्थिक एकरूप वह नय। वह ध्रुव जीव वस्तु। गजब भाई! और यह वस्तु उसे कहते हैं, उसकी पर्याय—निर्मल वीतरागी पर्याय को भी न करे।

मुमुक्षु : जाने तो सही न?

पूज्य गुरुदेवश्री : जाने तो सही। इसके लिये तो यह बात चलती है। यह कहा है, वह एक नय का भाग कहा है। परन्तु एक नय दूसरा रह जाता है न वापस। ऐ... चन्दुभाई! नयवाक्य है, वह एक भाग को बताता है। भले वह शुद्ध द्रव्यार्थिक एकरूप स्वरूप वह जीव, ऐसा कहा। परन्तु वह शुद्ध परमपारिणामिक द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से कहा है, पूरे द्रव्य की अपेक्षा से नहीं। पूरा द्रव्य अर्थात् समझे न? पर्यायसहित।

मुमुक्षु : प्रमाण का द्रव्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रमाणरूप द्रव्य की बात नहीं यहाँ। अकेला ध्रुव हूँ, ऐसा कहा। नहीं? ३२० में तो अन्त में आया है न? सकल निरावरण परमपारिणामिकभाव अखण्ड वह मैं हूँ। वह मैं हूँ, खण्ड वह मैं नहीं। पर्याय, वह मैं नहीं, (ऐसा) वहाँ तो आया। अन्तिम

बोल आता है न ? ३२० में आ गया। अपने दो बार (व्याख्यान) हो गये। वहाँ तो दो बार हो गये हैं। नहीं ? यहाँ एक बार हुआ। अब यहाँ यह कक्षा में आनेवाला है। कक्षा में (शिविर में) ३२० गाथा लेनी है न। बहुत लोग आनेवाले हैं न। कहा, सुनें तो सही। क्या कहते हैं ? समझ में आया ?

ऐसे देखो तो एक समय का भगवान, उसे जीव कहा। और वह जीव वही उसका स्वरूप है। पर्याय उसका स्वरूप नहीं, ऐसा कहा, परन्तु यह नय से कहा है। नय से कहा है, इसका अर्थ कि एक भाग पूरा पूर्ण वस्तु, वह नय का विषय है। ऐसा कहकर जीव को द्रव्यार्थिकनय के विषयरूप से गिनकर उसे पर्याय का कर्ता नहीं है, ऐसा कहा गया है। परन्तु उसके साथ दूसरा नय रह जाता है। समझ में आया ? दूसरा नय न रहे तो वह नय ही नहीं कहलाता। हिम्मतभाई ! समझ में आया ? ऐसे देखो तो ऐसा कहा।

जीव... ओहोहो ! उसे जीव कहते हैं। पर्याय का जीवन ही नजीवुं जीवन। वह नजीवुं जीवन और यह जीवता जीवन। जीव के ऊपर भाई ! कल विचार आया था। कहा, यह जीव की भाषा है। वहाँ भले फिर आत्मा लिया है। द्रव्य-पर्याय रूप से लिया है न ? द्रव्य-पर्याय वह जोड़ा आत्मा का है, ऐसा लिया है। ऐसा होने पर भी शुरुआत की है जीव से। और समयसार की दूसरी गाथा में जीव लिया है। **'जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो'।** यहाँ विशेष विचार तो क्या आया था। जीता है, जीता है। टिकता है पूरा, उसे जीव कहते हैं, ऐसा। वह जीव का स्वरूप टिकता त्रिकाल वह जीव का स्वरूप है, ऐसा कहा। नय की अपेक्षा से (कहा)। परन्तु पर्यायार्थिक एक दूसरा नय रह जाता है। यदि वह नय साथ में लक्ष्य में न हो तो एकान्त नय हो जाता है। ऐई ! नवरंगभाई ! आहाहा ! इसलिए यहाँ आचार्य स्वयं यह खास बात रखते हैं।

जो पंच महाव्रत... आहाहा ! यह तो विकल्प कहा। कहते हैं कि वह जाना हुआ प्रयोजनवान, ऐसा कहा है। भाई ! आहाहा ! भगवान आत्मा... वहाँ ग्यारहवीं (गाथा में) यह कहा, भूतार्थ वह जीव, वही आत्मा, वह वस्तु। बस ! पर्याय अभूतार्थ। पर्याय नहीं। नजीवी... नजीवी। नजीवी अर्थात् ? नजीव, लोगों में भाषा नहीं आती ? यह तो नजीवी चीज़ है। मामूली... नजीवी। मुझे तो उस जीव के ऊपर का नजीवी कहना है। जीव अस्ति है, तो पर्याय नजीवी स्वस्ति है। परन्तु है अवश्य। दूसरा एक नय साथ में है। दूसरा नय

न हो तो वह नय भी एकान्त हो जाता है, सच्चा नहीं रहता। समझ में आया? आहाहा! इतना बड़ा भाग लिया तो भी कहते हैं, अभी एक दूसरा नय है। वह तो नय है, हों! ध्यान रखना। यह द्रव्यार्थिकनय से ऐसा कहा है। पूरे प्रमाण के विषय से ऐसा नहीं कहा। आहाहा! समझ में आया? वजुभाई! इससे यहाँ लिया, भाई!

पंच महाव्रत तो महापुरुषों-गणधरों ने आचरण किये हैं। आहाहा! ऐई! देखो! **महाव्रत क्यों कहते हैं,...** वहाँ ऐसा कहा, यहाँ ऐसा कहते हैं। दोनों विरोध है? समझ में आया? बापू! वीतराग मार्ग इतना सूक्ष्म और अलौकिक है कि जिसका पार पड़ने से संसार नहीं रहता उसे। ऐसी वह चीज़ है। समझ में आया न? अन्यत्र ऐसी चीज़ नहीं हो सकती। एक ओर यह कहे, पर्याय को जीव करता नहीं। राग को तो करता नहीं, पर को तो करता नहीं परन्तु अपनी क्षायिक पर्याय को, केवलज्ञान की पर्याय को जीव नहीं करता। उसे जीव, उसे ध्रुव, उसे नित्य, उसे द्रव्यार्थिकनय का विषय (का) जीव कहा जाता है। समझ में आया? आओ... आओ... अन्दर आओ। मार्ग कर देना, मार्ग। समझ में आया? गजब बात।

एक ओर भगवान ऐसा कहते हैं, दूसरी ओर वे ही भगवान ऐसा कहते हैं। एक ओर प्रभु आत्मा, जो अत्यन्त वस्तु... वस्तु... वस्तु। यह तो कहा न? उस दिन कहा था न? तुम थे। नहीं? एक समय की पर्याय... भाई! तीन काल के कितनेवें भाग में रह गयी है? क्योंकि भूतकाल से भविष्यकाल अनन्त गुना। भूतकाल की पर्याय से भविष्य अनन्त गुना और भूतकाल के अनन्तवें भाग एक समय की पर्याय। बहुत काल छोटा हो गया। सूक्ष्म बात है, भाई! यह द्रव्य वस्तु है न? द्रव्य आत्मा, यह त्रिकाली वस्तु है, ध्रुवरूप से।

अब उसकी पर्यायें लो तो भी भूतकाल की अनन्त अवस्थायें हैं, उनसे भविष्य की अवस्थायें अनन्तगुणी होंगी, कि जो भविष्य की अनन्तगुणी अवस्था के हिसाब से भूतकाल की पर्यायें अनन्तवें भाग हैं। और उस पर्याय के अनन्तवें भाग एक समय की पर्याय है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी एक समय की जो पर्याय, उसमें भाव भी अनन्तवें... अनन्तवें... अनन्तवें... अनन्तवें भाग का भाव आया। पर्याय है, वह काल है परन्तु उसमें भाव है न वापस! अनन्त-अनन्त गुण, ऐसी अनन्त पर्याय का भाव एक गुण में, ऐसे-ऐसे अनन्त पर्याय का भाव दूसरे गुण में, ऐसे अनन्त गुण का भावरूप द्रव्य। ऐसा जो महाभाव, जिसमें केवलज्ञान की एक समय की पर्याय में अनन्त केवली ज्ञात हों, ऐसी एक समय

की पर्याय, वह पर्याय भी ऐसी अनन्त-अनन्त पर्याय का पिण्ड, वह ज्ञान। श्रद्धा की एक समय की पर्याय, उसमें अनन्त तीर्थंकर, तीन काल के द्रव्य प्रतीति में पर्याय में, ज्ञानपर्याय में प्रतीति में आये हैं। ऐसी अनन्त पर्याय श्रद्धा की अनन्त-अनन्त श्रद्धागुण में पड़ी है। वह भाव भी एक समय की पर्याय का बहुत छोटा हो गया। काल छोटा और भाव छोटा।

वस्तु त्रिकाली। काल बड़ा और उसकी शक्ति का भाव बड़ा। परन्तु तो भी वह भाव बड़ा, त्रिकाल वस्तु त्रिकाल रहनेवाली, वही वस्तु है। ध्यान में लेनेयोग्य वह है। दृष्टि में ध्यान में उसे लेनेयोग्य है। ध्यान में पर्याय को लेनेयोग्य नहीं। ध्यान, पर्याय का ध्यान नहीं करता, ध्यान करे द्रव्य का; तथापि वह ध्यान जो... अथवा क्षायिक समकित की पर्याय जो वस्तु का—पूरी चीज़ का निर्णय करता है, कहते हैं कि वह पर्याय भी नजीवी है। ऐई! एक समय की टिकती भाववाली चीज़ है। जिसने निर्णय किया पूरी चीज़ का, उस निर्णय की पर्याय का करनेवाला भी द्रव्य नहीं। ऐई! समझ में आया? ऐसा द्रव्य जो निष्क्रिय ध्रुव चैतन्य भगवान, उसे भगवान ने स्वरूप कहकर उसकी दृष्टि को सम्यग्दर्शन कहा। उसकी दृष्टि को सम्यक् (कहा)। अब यह बात वर्णन की, उसके साथ में अब यह वर्णन किया जाता है।

ऐसा सम्यक्चरण चारित्र प्रगट हुआ और उसमें देशसंयमी की दशा भी प्रगट हो। यहाँ तो अब सर्वविरती की दशा प्रगट (होती है)। अन्तर में वीतरागता का आश्रय भगवान पूर्ण स्वरूप, उसका जो आश्रय दृष्टि से लिया था, वह अब स्थिरता से उसका आश्रय लिया। समझ में आया? अर्थात् चारित्र की स्थिरता इतनी प्रगट हुई कि प्रचुर आनन्द के डकार के झरने अब आये। चारित्रवन्त को तो अतीन्द्रिय आनन्द का झरना बहता है। ऐसी भूमिका में पंच महाव्रत के विकल्प होते हैं।

मुमुक्षु : व्यवहारनय से कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहारनय से ही कहा है। यही कहा है। इसलिए तो यह बात चलती है। चारित्र का अधिकार है तो उसे व्यवहारनय से समझाया है। क्योंकि उस भूमिका में पीछे चारित्र निर्मल वीतरागदशा खड़ी है न, उसे मूल गिनकर उसे महाव्रत कहा गया है। और वह भी उस महाव्रत को... यहाँ क्या कहते हैं? देखो!

'साहंति जं महल्ला' एक बोल। **'आयरियं जं महल्लपुव्वेहिं', 'जं च महल्लाणि तदो महव्वया इत्तहे याइं।'** तीन बोल हैं।

अर्थ – महल्ला अर्थात् महन्त पुरुष जिनको साधते हैं,... सम्यग्दर्शन उपरान्त यह व्रत तो महान पुरुष आदरते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सम्यग्दर्शन में तो एक द्रव्य का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शनचरण प्रगट हुआ है। महापुरुष तो महाव्रत को आचरते हैं। अर्थात् कि महा स्वरूप का विशेष आश्रय लेकर जो चारित्रदशा प्रगट हुई है, उसमें ऐसे पंच महाव्रत के विकल्प को महापुरुषों ने आदर किया है। ऐई! एक पर्याय आदरणीय नहीं, भाई! उसकी जगह (कहे), महाव्रत को महापुरुषों ने आदर किया। भाई! कथन की... तीन बोल लेंगे अभी तो। गाथा ऐसी आ गयी सहज। तीन बोल हैं।

महापुरुष, महन्त पुरुष जिन्हें आचरते हैं **और पहले भी जिनका महन्त पुरुषों ने आचरण किया है...** पूर्व में गणधर, तीर्थंकर,... आहाहा! केवलज्ञान होने से पहले महापुरुषों ने पंच महाव्रत को आचरा है। इसका अर्थ यह कि वहाँ स्वरूप का चारित्र—आचरण विशेष है, इसलिए वहाँ ऐसे विकल्प की मर्यादा होती है, उसे व्यवहार से आचरते हैं और अन्तर स्थिरता, वह निश्चय से आचरते हैं। अरे! ऐई! ऐसे कथन हैं। परन्तु उसमें यह जानना। न जाने तो समझना एक नय का यह वाक्य है। वह एक नय का था, यह दूसरे नय का है।

मुमुक्षु : थोड़ा लिखा बहुत जानना।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। समझ में आया? एक ओर कहे कि महाव्रत का विकल्प तो जहर है। जहर का घड़ा है। भाई!

मुमुक्षु : उसी और उसी में उसे व्यवहार से अमृत कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो उसे व्यवहार से अमृत कहा। व्यवहार से अमृत कहा। क्योंकि अशुभ टला है और शुभ का विकल्प है। यहाँ अमृतस्वरूप निश्चय है, उसका आरोप देकर व्यवहार से अमृत कहा। सूक्ष्म भारी, भाई! समझ में आया?

भगवान आत्मा अमृत का सरोवर है। चैतन्य के सरोवर में चोंच डालकर डूब, अन्दर देख, आनन्द ले। वह तो भरपूर आनन्द है, भगवान! आहाहा! ऐसा आनन्द कि जो सिद्ध का आनन्द है, ऐसे आनन्द से भगवान (भरपूर है)। वह वस्तु है, और वस्तु है तो उसमें दु:ख नहीं हो सकता। दु:ख है, वह विकल्प है, वह विकार है और विकार किसी

प्रकार से स्वभाव नहीं हो सकता। समझ में आया? और वास्तव में तो जब तक आनन्द के स्वभाव के अतिरिक्त पुण्य के विकल्प में भी सुख है, ऐसा मानता है, स्त्री में सुख है, पैसे में सुख है, यह माने वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! परन्तु शुभभाव जो हो पंच महाव्रत का, उसमें सुख है - ऐसा माने, वह भी मिथ्यादृष्टि है। क्योंकि उसमें सुख नहीं है; सुख तो आत्मा में है। समझ में आया? तथापि यहाँ महाव्रत के जो विकल्प हैं, दुःखरूप हैं, जहर का घड़ा कहा है, वह वस्तु में नहीं—ऐसा कहा है। समकिती को महाव्रत के विकल्प से भिन्न गिनने में आया है, भाई! व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान कहा है न? उसकी पर्याय में राग है, ऐसा वहाँ इनकार किया है, वस्तु की दृष्टि से। जितने विकल्प हैं, उनसे समकिती मुक्त है। क्योंकि विकल्प है, वह विकार है और स्वभाव की दृष्टिवन्त स्वभाव की पर्याय में विकार की पर्याय मिलाता नहीं, इसलिए मुक्त है। आहाहा!

मुमुक्षु : निश्चय-व्यवहार की सन्धि...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी है, बापू! आहाहा! समझ में आया?

आत्मा के आनन्द के अतिरिक्त कहीं भी कोई शुभभाव की लार शुभभाव में, शुभ के बन्धन में, उसके संयोगी फल में कहीं ठीक है, सुख है, ऐसा माना है, उसने आत्मा को हनन कर डाला है। आनन्दस्वरूप है, उसका उसने निषेध कर डाला है। यहाँ आनन्द है, यहाँ नहीं - ऐसा। समझ में आया? भारी सूक्ष्म, भाई! ऐसा भान होने पर भी कहीं विकल्प में सुख नहीं है, वह जड़ की पर्याय मुझसे नहीं होती, विकल्प की पर्याय का आत्मा कर्ता नहीं, जिसे तो निर्मल पर्याय का कर्ता भी निषेध किया है। आहाहा! ऐई! उसे यहाँ कहते हैं, भगवान! नय के वाक्य को भी समझना चाहिए। अमरचन्दभाई!

कहते हैं, आत्मा का सम्यग्दर्शन स्वरूपाचरण की उग्रता, पच्चीस दोषरहित प्रगट हुई है, उसने ऐसे स्वरूप का बहुत आश्रय लिया है, द्रव्य का, बहुत आश्रय लेकर जिसे अन्तर में तीन कषाय के अभाव की वीतरागता वर्तती है, वर्तती है, उसे भी जीव करे, ऐसा दृष्टि में निषेध किया है, वही यहाँ वापस कहते हैं, उसकी भूमिका में पंच महाव्रत के विकल्प आवें, वह उसने पालन-आचरण किये हैं। समझ में आया? वह स्वरूप की स्थिरता का आचरण किया है, उसके आचरण का आरोप डालकर व्रत को आचरण किया है, ऐसा कहा गया है।

मुमुक्षु : असद्भूतव्यवहारनय...

पूज्य गुरुदेवश्री : असद्भूतव्यवहारनय का वचन है। आहाहा! क्या हो? लोगों को...

पूरी चीज़ है और यह भी है। एक ओर ऐसा कहा कि सम्यग्दृष्टि तो व्यवहार के विकल्प से मुक्त है। तब उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। क्योंकि व्यवहार का विकल्प, वह आस्रव है। और आस्रवसहित आत्मा माने तब तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? उसी वस्तु को यहाँ कहते हैं। तत्त्वार्थसूत्र में भी महाव्रत के परिणाम को आस्रव कहा है, पुण्य परिणाम कहा है, अपराध कहा है, शुभभाव कहा है। समझ में आया? पुरुषार्थसिद्धिउपाय में भी उसे अपराध कहा है। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव अपराध है। आहाहा! हीराभाई! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव अपराध है। धर्म नहीं, अधर्म है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका अर्थ यह। वह धर्म नहीं, इसलिए अधर्म है। ऐई! बन्धन धर्म से होगा? अधर्म से बन्ध होता है। चाहे तो शुभभाव हो और अशुभ हो, दोनों धर्म से विरुद्ध भाव हैं। आहाहा!

महल्ला अर्थात् महन्त पुरुष जिनको साधते हैं,... इतनी साधारण बात की। ओ..हो..! छह खण्ड के धनी चक्रवर्ती तीर्थंकर स्वरूप के अन्दर में माणवा अन्दर में आनन्द का अनुभव करने, जिसे सर्वविरति के पंच महाव्रत के विकल्प आये थे। समझ में आया? वे महन्त पुरुष उन्हें आचरण करते हैं। यह तो उनके ऊपर जरा... आचरण करते हैं, वे भी कहते हैं। तुम महाव्रत को हेय कहते हो, शास्त्र में आचरण करते हैं—ऐसा कहा है।

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य ने पूरी जिन्दगी आचरण किये।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुन्दकुन्दाचार्य ने पूरी जिन्दगी पालन किये। बापू! भाई! पालन किये की व्याख्या क्या? कि इस भूमिका में उन्हें वे होते हैं। होते हैं और व्यवहारनय से पालन किये, ऐसा कहने में आता है। हेय है, उसका रक्षण करे तो पालन किये कहलाते हैं। रक्षण करे तो पालन किये कहलाते हैं। रक्षण किया है उनका? हेयबुद्धि है उनमें तो।

परन्तु है, इसलिए पालन किये, ऐसा व्यवहारनय से (कहा जाता है)। पालन नहीं किये, उसे पालन किया कहना, यह व्यवहारनय के लक्षण हैं। आहाहा! भारी कठिन काम।

मुमुक्षु : ....प्रायश्चित्त लेते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ले। अतिचार लगे तो प्रायश्चित ले। यह सब व्यवहार है। पालन किये, यह व्यवहार से कहा जाता है। प्रायश्चित लिया, वह विकल्प है, वह व्यवहार है। ऐसी भूमिका में ऐसा विकल्प आवे, उसे प्रायश्चित लेते हैं, ऐसा कहा जाता है। लेना क्या है? विकल्प जो है, उसे स्वरूप का आश्रय करके टालते हैं। इतने उपवास करना और यह सब व्यवहार की बातें हैं। ऐसे विकल्प की जाति होती है। होती है, इतना बताने के लिये यह बात की है, तथापि उसक कर्ता नहीं है, उसे हितरूप मानता नहीं है, उसे ज्ञानी अपनी आनन्द पर्याय में मिलाता नहीं है। आहाहा! तब उसे व्यवहार करता है और पालन करता है, ऐसा कहा जाता है। ऐसा है वस्तु का स्वरूप। वहाँ भी नहीं कहा? पंचास्तिकाय में कल नहीं आया था? आता है न १७२ में? क्रियाकाण्ड के महाव्रत आदि के विकल्प से समकिती माहात्म्य को वारता, उसमें माहात्म्य नहीं करता। अन्तर में जाने का माहात्म्य करे। परन्तु होता है, उसे यहाँ पालता है, उस भूमिका में ऐसा ही भाव होता है। समझ में आया? उसे वस्त्र-पात्र लेने का या सदोष आहार लेने का विकल्प नहीं होता, राग नहीं होता। ऐसा एक राग होता है। अन्दर ध्यान आत्मा का है, आश्रय आत्मा का है, स्थिरता उग्र शान्ति परिणमी है, उसकी भूमिका में ऐसे ही विकल्प की योग्यता होती है, ऐसा गिनकर व्यवहार से आचरण करता है, ऐसा कहा है। समझ में आया? भारी बात, भाई! शास्त्र के अर्थ करने में भी विवाद।

महल्ला अर्थात् महन्त पुरुष जिनको साधते हैं,... एक बात। यह सामान्य बात की। **पहले भी जिनका महन्त पुरुषों ने आचरण किया है...** ऐसा कहते हैं। बात करते हैं, ऐसा नहीं परन्तु महापुरुषों ने आचरण किया है, ऐसा कहते हैं। गणधरों ने, तीर्थंकरों ने केवली होने से पहले तमाम जितने मोक्ष जायें, उन्हें महाव्रत के विकल्प होते हैं। उन्होंने आचरण किया है। व्यवहार से व्रत का आचरण, प्रायश्चित का कहने में आता है। एक नय है न यह? नय है तो उसका विषय होगा न? नय तो जाननेवाला है। जाननेवाला कुछ विषय हो, उसे जाने न? समझ में आया? निश्चय है, वह तो विषय है,

कौन सा ? ध्रुव। उसका विषय ध्रुव है। तब व्यवहार विषय है या नहीं ? उसकी वर्तमान पर्याय और राग, उसे जाने, वह उसका विषय है। यह जानने के बदले आचरण किया है, ऐसा कहा गया है, वह आरोप से कथन है। समझ में आया ? नहीं तो वस्तु का मिलान नहीं खायेगा।

मुमुक्षु : नयविवक्षा...

पूज्य गुरुदेवश्री : विवक्षा समझना चाहिए, क्या अपेक्षा है। समझ में आया ? आहाहा!

मुमुक्षु : शब्द को नहीं पकड़ना।

पूज्य गुरुदेवश्री : शब्द को नहीं पकड़ना। शब्द में कहने का आशय क्या है ? किस नय से यह कहा है ? और किस नय को हेय करके उपादेय कहा, किस अपेक्षा से ? समझ में आया ? क्योंकि उसे तीव्र सावद्ययोग का त्याग है, इससे ऐसा निर्वद्ययोग ऐसा व्यवहार से... है तो वह सावद्य निश्चय से, परन्तु व्यवहार से निर्वद्य गिनकर उसे सम्यग्दर्शन का भान है, आनन्द का लक्ष्य है, आनन्द जिसे प्रगट हुआ है, अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में पड़ा है, उसे ऐसे विकल्प होते हैं, उसे आचरण करता है, ऐसा व्यवहारनय से कहा जाता है। व्यवहारनय ऐसा होता है। लोग देखे ऐसा चाहिए न कुछ। नवनीतभाई! भगवान की कथनी का न्याय समझना जरा सूक्ष्म है। समझ में आया ? आहाहा!

एक ओर कहते हैं कि राग का कर्ता हो... दोपहर में अपने यह चलता है, वह मिथ्यादृष्टि है। वह के वही आचार्य यहाँ कहते हैं, राग को, महाव्रत को पालन करता है। यह तो महाव्रत... निश्चय स्थिरता है, कहा न ? है, वहाँ ऐसा भाग है, उसे व्यवहार से (कहा जाता है)। पालता है तो उस स्थिरता को, परन्तु यह महाव्रत का विकल्प है, उसे पालता है, वह साथ में होता है इससे आरोप से कथन किया है। वह स्थिरता पालता है, वह भी एक व्यवहार है। क्योंकि स्थिरता की जो शान्ति की पर्याय है, वह एक समय की है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आस्रव में विशेष की श्रद्धा है। पर्याय में कर्तापने का उससे मन्द निषेध है। यह सद्भूतव्यवहार है—निर्मल पर्याय। और वह तो असद्भूत है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न ? व्यवहार की अपेक्षा से दोनों का निषेध समान है। परन्तु भेद की अपेक्षा से अन्तर है। भाई ! निर्मल पर्याय है, वह सद्भूतव्यवहार है और राग है, वह असद्भूतव्यवहार है। इतना अधिक बड़ा अन्तर है। ऐई ! यह सब समझना और ऐसा करना... लोगों को (कठिन लगता है)। ऐ... नवरंगभाई ! इसकी अपेक्षा पानी छानकर पीना, छन्ना अच्छा रखना, (यह सीधा सट्ट था)। उसमें भाई चढ़ गये थे। पहली भूमिका में हो। समझ में आया ? आहाहा !

कहते हैं कि भाई ! तू तो तीन लोक का नाथ का नाथ है, हों ! क्योंकि सब नाथ— केवली तो तेरी एक समय की पर्याय में ज्ञात हो जाते हैं। आहा ! और ऐसी अनन्त पर्याय का नाथ तू है। ऐसी दृष्टि हुई होने पर भी जब तक पर्याय में केवलज्ञान और पूर्ण दशा न आवे, तब तक उसे साधकपने में स्थिरता का साधना होता है, उसमें ऐसे विकल्प की मर्यादावाला व्यवहार साधक, असद्भूतव्यवहारनय से साधक कहकर, उसे पालता है— ऐसा कहा है। लो, यह तो गाथा ऐसी आयी मौके से। ऐई ! यह सब आये हैं और यह गाथा ऐसी आयी। आहा ! कहो, रतिभाई !

जिसे महापुरुषों ने आचरण किया। आहाहा ! सन्त पुरुष सम्यग्दृष्टि ज्ञानी तीन ज्ञान के धनी तीर्थंकर थे, वे भी चलवृत्ति के परिणाम के कारण उन्होंने रखा। व्यवहार है। गणधर... अरे ! तीर्थंकर भी मुनि हो तब चार ज्ञानवाले होते हैं, उन्हें भी पंच महाव्रत के विकल्प होते हैं। राग की मन्दता की इस भूमिका से अराग की परिणति और पूर्ण-पूर्ण परमात्मा के आश्रयवाली दृष्टि ऐसी होती है, वहाँ ऐसे विकल्प होते हैं, उन्हें पालन करता है, ऐसा चरणानुयोग की विधि के कथन में इस प्रकार आता है। जिसे महापुरुषों ने आचरण किया है। जिसे महापुरुष आचरण कर गये हैं, ऐसा कहते हैं। आचरण किये, यह सामान्य बात की। जिसे महापुरुषों ने आचरण किये हैं। दो (बातें हुईं)।

ये व्रत आप ही महान् हैं,... तीन। ऐसे स्वयं महान हैं। समझ में आया ? छह खण्ड के राज, ९६-९६ हजार स्त्रियाँ और उनके प्रति का राग छोड़कर, सर्वविरति के परिणाम आये। जंगल में सन्त सिंह की भाँति, जैसे सिंह दहाड़ मारता हो, वैसे आत्मा की

दहाड़ मारते विकल्प ऐसे आये थे। उन्हें महाव्रत को स्वयं भी महा है, ऐसा कहने में आता है। महापुरुषों ने आदर किये, महापुरुषों ने भूतकाल में आचरण किये, आदर किये यह सामान्य बात हो गयी। **'पुव्वे'** शब्द पड़ा है न? **'आयरियं जं महल्लपुव्वेहिं'** ऐसा है न? देखो न! पूर्व में आचरण कर गये हैं। आचरण शब्द पहला सामान्य है। वर्तमान साधारण। **'साहंति जं महल्ला'** वर्तमान महापुरुष आचरते हैं, पूर्व में महापुरुष अनन्त आचरण कर गये। दो। और स्वयं महान हैं। भारी बात, भाई! राजकोट (वाले) आये, और यह आया।

आप ही महान् हैं, क्योंकि... जाते अर्थात् जिससे। **इनमें पाप का लेश भी नहीं है,...** बस! यह बात है। जिसमें अशुभराग का लेश नहीं, ऐसा शुभभाव, शुद्धता के आश्रय की भूमिका में होता है। ऐई! प्रकाशदासजी! लो, महाव्रत... महाव्रत। अकेले महाव्रत नहीं, ऐसा कहते हैं। तो ही उनको महाव्रत कहा जाता है, नहीं तो महाव्रत कहलाये किसके? जिसे अन्तर द्रव्य का आश्रय होकर समकितचरण चारित्र प्रगट हुआ है, उसे विशेष आश्रय करके स्थिरता के आनन्द की उग्रता के वेदन में आया है, उसे इस प्रकार के सर्वविरति के विकल्प उठते हैं। समझ में आया? यह तो न मिले आत्मा का भान, सम्यग्दर्शन क्या (इसकी खबर न हो) और कहे, महाव्रत लो और महाव्रत का आचरण करो। परन्तु किसके महाव्रत का आचरण? वे तो राग के आचरण हैं, अकेले जहर के। समझ में आया?

भावार्थ – जिनका बड़े पुरुष आचरण करें और आप निर्दोष हो, वे ही बड़े कहलाते हैं,... दोनों में समाहित कर दिया। समुच्चय कर दिया। दो को एक में डाला। आचरण किया और आचरण करते थे। **बड़े पुरुष आचरण करें और आप निर्दोष हो, वे ही बड़े कहलाते हैं,...** स्वयं निर्दोष है न। अव्रत का लेश नहीं, तीव्र कषाय का अंश नहीं। मन्द राग भी वहाँ भूमिका में आनन्द और शान्ति वर्तती है, इसलिए उसे महान व्रत कहा गया है। **इस प्रकार इन पाँच व्रतों को महाव्रत संज्ञा है।**

गाथा-३२

आगे इन पाँच व्रतों की पच्चीस भावना कहते हैं, उनमें से प्रथम अहिंसाव्रत की पाँच भावना कहते हैं –

वयगुत्ती मणगुत्ती इरियासमिदी सुदाणणिक्खेवो।
अवलोयभोयणाए अहिंसए भावणा होंति।।३२।।

वचोगुप्तिः मनोगुप्तिः ईर्यासमितिः सुदाननिक्षेपः।
अवलोक्य भोजनेन अहिंसाया भावना भवंति।।३२।।

है वचन-मन-गुप्ति रु ईर्या समिति आदान-क्षेपण।
अवलोकि भोजन अहिंसा की भावना जिनवर कथित।।३२।।

_अर्थ_ – वचनगुप्ति और मनोगुप्ति ऐसे दो तो गुप्तियाँ, ईर्यासमिति, भले प्रकार कमंडलु आदि का ग्रहण निक्षेप यह आदाननिक्षेपणा समिति और अच्छी तरह देखकर विधिपूर्वक शुद्ध भोजन करना, यह एषणा समिति – इस प्रकार ये पाँच अहिंसा महाव्रत की भावना हैं।

_भावार्थ_ – बारबार उस ही के अभ्यास करने का नाम भावना है, सो यहाँ प्रवृत्ति निवृत्ति में हिंसा लगती है, उसका निरन्तर यत्न रखे तब अहिंसाव्रत का पालन हो, इसलिए यहाँ योगों की निवृत्ति करनी तो भले प्रकार गुप्तिरूप करनी और प्रवृत्ति करनी तो समितिरूप करनी, ऐसे निरन्तर अभ्यास से अहिंसा महाव्रत दृढ़ रहता है, इसी आशय से इनको भावना कहते हैं।।३२।।

गाथा-३२ पर प्रवचन

आगे इन पाँच व्रतों की पच्चीस भावना कहते हैं,... लो। गाथा भी ऐसी आयी। फिर भावना आयी। ऐई! यहाँ कहते हैं कि पर्याय की भावना द्रव्य न करे। वीतराग की पर्याय को द्रव्य न करे। यहाँ कहे कि पंच महाव्रत के विकल्प की भावना ज्ञानी करे।

ऐसे विकल्प की मर्यादा वहाँ होती है। भावना का अर्थ अभ्यास है। भावना का अर्थ अभ्यास है। है तो विकल्प, परन्तु उसमें तीव्र पाप का भाव आवे नहीं, राग तीव्र न हो, ऐसा जो लक्ष्य रहे, उसे बारम्बार अभ्यास करके भावना कहा जाता है। **उनमें से प्रथम अहिंसाव्रत की पाँच भावना कहते हैं –**

वयगुत्ती मणगुत्ती इरियासमिदी सुदाणणिक्खेवो।
अवलोयभोयणाए अहिंसए भावणा होंति।।३२।।

अर्थ – वचनगुप्ति और मनोगुप्ति ऐसे दो तो गुप्तियाँ,... उसे भावना में होती है। जैसे बने वैसे वचन को गोपन करे। वचन तो जड़ है, उन्हें क्या गोपन करना? परन्तु उसमें जो करने का विकल्प है, उसे न होने दे। ऐसा कथन है। मन को गोपन करे। जड़ परमाणु मन यहाँ है, उसे क्या गोपन करना है? उस ओर का विकल्प है, उसे न होने दे, यह गोपन किया। **ईर्यासमिति,...**

मुमुक्षु : विकल्प को गोपन करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प है तो सही वह, परन्तु उससे विशेष विकल्प को गोपन करे, ऐसा। उसकी भूमिका के योग्य से विशेष विकल्प जो हो, उसे गोपन करे। बाकी तो यह सब विकल्प है। समझ में आया? एक तो पंच महाव्रत स्वयं विकल्प है और उसकी फिर एक-एक की पाँच भावना। पाँच महाव्रत की पच्चीस भावना, लो।

मुमुक्षु : इससे निवृत्त पड़कर...

पूज्य गुरुदेवश्री : निवृत्त ही है अन्दर। यह तो अन्दर बतलाते हैं कि ऐसे तीव्र राग का भाव न हो। ऐसा जिसे अभ्यास है। तीव्र राग उसकी भूमिका में (नहीं होता), ऐसा ही अभ्यास है। ऐसा है। आहाहा!

ईर्यासमिति, भले प्रकार... ईर्यासमिति—देखकर चलना। बराबर किसी जीव को दुःख न हो। ऐसे विकल्प का अभ्यास। समझ में आया? **भले प्रकार कमंडलु आदि का ग्रहण निक्षेप...** लो। **'सुदाणणिक्खेवो'** ऐसा शब्द है न? ठीक! **'सुदाणणिक्खेवो' भले प्रकार कमंडलु आदि का ग्रहण...** लेना और **निक्षेप...** अर्थात् रखना। **यह आदाननिक्षेपणा समिति...** उसमें उसकी यत्ना का अभ्यास (होता है)। अयत्ना न हो,

ऐसे यत्न का अभ्यास होता है, इतनी बात है। तथापि वह है तो विकल्प। परन्तु उस भूमिका में ऐसा अभ्यास, यह स्थिति होती है। आहाहा! वीतराग का मार्ग...

और अच्छी तरह देखकर विधिपूर्वक शुद्ध भोजन करना,.. 'अवलोयभोयणाए' है न? देखकर विधिपूर्वक भोजन (करना)। आहार में कहीं त्रस जीव न आवे, हरितकाय का टुकड़ा न आवे, इस प्रकार ध्यान लक्ष्य में रखे। **यह एषणा समिति – इस प्रकार ये पाँच अहिंसा महाव्रत की भावना हैं।** लो! ऐसी चरणानुयोग की विधि है और ऐसा वहाँ होता है, यह बतलाने के लिये इस प्रकार वर्णन है। वस्तु है न? भूमिका में ऐसा होता है न। होता है न, होता है न। बतलाते हैं कि इस प्रकार वहाँ होता है। इससे विरुद्ध भाव उसे नहीं होता। यह वस्तु की स्थिति ही ऐसी है, ऐसा कहते हैं। जहाँ भूमिका आत्मा के आनन्द की प्रगटी और उस आनन्द में भी विशेष आनन्द चारित्र का जहाँ प्रगट हुआ, अतीन्द्रिय आनन्द जहाँ उग्र आया, उसे ऐसे पंच महाव्रत में एक-एक महाव्रत की पंच भावना का विकल्प सहज होता है। उसे यहाँ करे और पालन करे, ऐसा कहने में आता है। ऐई! सहज विकल्प है या नहीं? उन्होंने भी लिखा है। शुभ विकल्प सहज होता है। नियमसार में, पंचास्तिकाय में... हठ बिना होता है। सहज शब्द प्रयोग किया है, हठ बिना भले हो परन्तु सहज शब्द प्रयोग किया है। फूटनोट में। है तो यह सहज। उस दृष्टि की अपेक्षा से। परन्तु व्यवहारनय की अपेक्षा से उसका अभ्यास तीव्र राग न हो, ऐसा करे, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : अशुभ के वंचनार्थ।

पूज्य गुरुदेवश्री : वंचनार्थ, यह भी व्यवहार है। यह सब भाषा है। परन्तु क्या हो? उस समय में वही आने का और वह प्रकार होता है। उसे तीव्रता नहीं होती, ऐसा अभ्यास है, ऐसी भावना है, इसलिए ऐसा कहते हैं। समझ में आया? होता है न। यह विषय नहीं? है न? अस्तिरूप से है न? जानता है न? ज्ञान में जानता है या नहीं? और वह ज्ञान सच्चा है या नहीं? कि ऐसा है, ऐसा जानता है।

मुमुक्षु : पर्याय की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पर्याय की बात, परन्तु जानता है न ज्ञान? ज्ञान भी व्यवहार को यह है, ऐसा जानता है न? समझ में आया?

भावार्थ – बारबार उस ही के अभ्यास करने का नाम भावना है,... एक तो महाव्रत का विकल्प और वापस उसकी भावना, उसका वापस बारम्बार अभ्यास। व्यवहार के कथन ऐसे होते हैं। यह वस्तु है न ? इस प्रकार से होता है न ? तीव्र राग नहीं होता। भूमिकायोग्य के अतिरिक्त आड़ा-टेड़ा नहीं होता। यह पर्याय के विवेक का ज्ञान वहाँ होता है। समझ में आया ?

उसमें आया न ? पर्याय का विवेक तो करना न ? पर्याय का विवेक करने जाओगे, वहाँ द्रव्यदृष्टि चली जाएगी। और वहाँ ऐसा आवे। ऐई ! है या नहीं उसमें ? है न ? खबर है न ? ऐ... अमरचन्दभाई ! यह तो वहाँ ले जाए अन्दर से। उसका अर्थ कि पर्याय के ऊपर आश्रय करने जायेगा, वहाँ यहाँ आश्रय छूट जाएगा। जानने का तो है न। वस्तु जानने जैसी है। समझ में आया ? पर्याय में ऐसा चाहिए, पर्याय में ऐसा चाहिए, पर्याय में ऐसा चाहिए— ऐसा वहाँ जोर देने जाएगा तो यहाँ जोर नहीं जायेगा, ऐसा कहना है। पर्याय में ऐसा होता है, ऐसा होता है, ऐसा उसे ज्ञान होता है और उसका अभ्यास भी ऐसा करता है, इसलिए होता है, ऐसा भी कहने में आता है। आहाहा ! ऐ... हीराभाई ! ऐसा वीतरागमार्ग। वह तो सीधा-सट्ट था, लो ! छह काय की दया पालना, रात्रिभोजन नहीं करना... कुछ उसमें समझने का है ? अन्ध-अन्ध।

अन्ध बुने और बछड़ा चबाये। सुना है ? अन्ध डोरी बुने न ? अन्धा-अन्ध। कोई बछड़ा हो, वह चबाता जाये, निगलता जाये। यह जाने कि डोरा बुनता है, परन्तु वहाँ चबाता हो। तर होकर चबाता जाये। बछड़ा होता है न ? बछड़ा समझते हो ? बछड़ा। अन्ध होता है न ? अन्ध। डोरी बुने, डोरी। बछड़ा हो, वह उसे खबर न हो। वह चबा जाये। आहाहा ! समझ में आया ? इसी प्रकार अज्ञानी कुछ न कुछ करने जाये, वहाँ मिथ्यात्व का पोषण होता है—ऐसी उसे खबर नहीं है। कर्ताबुद्धि होती है, मूल तो ऐसा कहते हैं। यह तो एक भूमिका में ऐसी स्थिति होती है, परिणमन होता है, ऐसा ज्ञान जानता है न ? वस्तु करनेयोग्य है, ऐसा नहीं। परन्तु राग का उस जाति का परिणमन है, ऐसा ज्ञाननय से, कर्तृत्वनय से, अकर्तृत्वनय से उसे जानता है। आता है या नहीं ? ४७ नय।

बारबार उस ही के अभ्यास करने का नाम भावना है, सो यहाँ प्रवृत्ति निवृत्ति में... देखो ! कहते हैं कि जहाँ प्रवृत्ति है न ? ऐसे हिलना, चलना इत्यादि। उसमें **निवृत्ति**

में हिंसा लगती है, उसका निरन्तर यत्न रखे, तब अहिंसाव्रत का पालन हो, इसलिए यहाँ योगों की निवृत्ति करनी तो भले प्रकार गुप्तिरूप करनी... ऐसा कहते हैं। निवृत्ति करनी हो तो अशुभ की निवृत्ति करना। **प्रवृत्ति करनी तो समितिरूप करनी,...** अशुभराग तीव्र न होने देना, यह गुप्ति व्यवहार। और प्रवृत्ति करनी हो तो शुभ विकल्प में ध्यान रखना कि यह होता है। **करनी तो समितिरूप करनी,...** क्या कहा समझ में आया? निवृत्ति करनी हो तो राग से हट जाना। प्रवृत्ति करनी हो तो शुभराग में ख्याल रखना। अशुभराग तीव्र न हो, अशुभ में न आ जाये, इतना ध्यान रखना।

ऐसे निरन्तर अभ्यास से अहिंसा महाव्रत दृढ़ रहता है,... लो! **इसी आशय से इनको भावना कहते हैं।** देखो! यहाँ तो इन्होंने अर्थ किया है, हों! ऐसे आशय से। इसे भावना क्यों कहा? इस प्रकार से। पंच महाव्रत बराबर वहाँ उसकी योग्यता प्रमाण बने रहें, इससे उसे एक अहिंसा की पाँच भावना कही गयी है।

गाथा-३३

आगे सत्य महाव्रत की भावना कहते हैं –

कोहभयहासलोहा मोहा विवरीयभावणा चेव।
विदियस्स भावणाए ए पंचेव य तहा होंति।।३३।।

क्रोधभयहास्यलोभमोहा विपरीतभावना: च एव।
द्वितीयस्य भावना इमा पंचैव च तथा भवंति।।३३।।

नित क्रोध लोभ रु मोह हास्य रु भय प्रवृत्ति त्यागना।
जिनवर कहे अनुसार भाषण सत्यव्रत की भावना।।३३।।

अर्थ – **क्रोध, भय, हास्य, लोभ और मोह इनसे विपरीत अर्थात् उल्टा इनका अभाव ये द्वितीय व्रत सत्य महाव्रत की भावना हैं।**

भावार्थ – **असत्य वचन की प्रवृत्ति क्रोध से, भय से, हास्य से, लोभ से और**

परद्रव्य के मोहरूप मिथ्यात्व से होती है, इनका त्याग हो जाने पर सत्य महाव्रत दृढ़ रहता है।

तत्त्वार्थसूत्र में पाँचवीं भावना अनुवीचीभाषण कही है, सो इसका अर्थ यह है कि जिनसूत्र के अनुसार वचन बोले और यहाँ मोह का अभाव कहा, वह मिथ्यात्व के निमित्त से सूत्रविरुद्ध बोलता है, मिथ्यात्व का अभाव होने पर सूत्रविरुद्ध नहीं बोलता है, अनुवीचीभाषण का भी यही अर्थ हुआ इसमें अर्थभेद नहीं है।।३३।।

गाथा-३३ पर प्रवचन

आगे सत्य महाव्रत की भावना कहते हैं –

कोहभयहासलोहा मोहा विवरीयभावणा चेव।
विदियस्स भावणाए ए पंचेव य तहा होंति।।३३।।

अर्थ – क्रोध, भय, हास्य, लोभ और मोह... मिथ्यात्व। **इनसे विपरीत अर्थात् उल्टा इनका अभाव ये द्वितीय व्रत–सत्य महाव्रत की भावना हैं।**

भावार्थ – असत्य वचन की प्रवृत्ति क्रोध से, भय से, हास्य से, लोभ से और परद्रव्य के मोहरूप मिथ्यात्व से होती है,... ऐसा कहते हैं। मिथ्यात्वभाव से अन्दर असत्य की प्रवृत्ति हो जाये। या क्रोध से, या भय से, या हास्य से, या लोभ से (हो जाये)। **इनका त्याग हो जाने पर सत्य महाव्रत दृढ़ रहता है।**

तत्त्वार्थसूत्र में पाँचवीं भावना अनुवीचीभाषण कही है, सो इसका अर्थ यह है कि जिनसूत्र के अनुसार वचन बोले... जिनसूत्र वीतराग ने कहे, उसके अनुसार वाणी बोलने का भाव हो। भाव हो, ऐसा। वाणी तो वाणी के (कारण से) निकलती है। वाणी बोले, भाषा तो दूसरी आवे न? व्यवहार में क्या आवे? **वचन बोले...** लो, ठीक! देखो! वाणी बोले ऐसा इसमें लिखा है। बोलने के भाव में ऐसा होता है, इसलिए वाणी विचारकर बोलता है, ऐसा कहने में आता है।

मोह का अभाव... मिथ्यात्व का, हों! **मिथ्यात्व के निमित्त से सूत्रविरुद्ध बोलता है, मिथ्यात्व का अभाव होने पर सूत्रविरुद्ध नहीं बोलता है,...** ऐसा कहते

हैं। मिथ्याश्रद्धा हो तो सूत्र, आगम से, न्याय से विरुद्ध कहे। यदि मिथ्यात्वभाव का अभाव हो तो आगम से विरुद्ध कहे नहीं। ऐसी उसकी सत्य महाव्रत की भावना होती है। **अनुवीचीभाषण का भी यही अर्थ हुआ...** अनुवीची शब्द आता है। समझ में आया? सब में अनुवीची शब्द नहीं? दूसरे में अनुवीची आता है। सूत्रविरुद्ध नहीं बोलना। मिथ्यात्व गया है, इसलिए सूत्रविरुद्ध नहीं बोल सकता। ऐसा भाव उसे होता ही नहीं। और मिथ्यात्व हो, वहाँ ऐसा विपरीत भाव आये बिना नहीं रहता। इस प्रकार पंच में दूसरे सत्यव्रत की पाँच भावना कही गयी है। तीसरे की कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-३४

आगे अचौर्य महाव्रत की भावना कहते हैं –

सुण्णायारणिवासो [1]विमोचियावास जं परोधं च।
एसणसुद्धिसउत्तं साहम्मीसंविसंवादो ।।३४।।

शून्यागारनिवास: विमोचितावास: यत् परोधं च।
एषणाशुद्धिसहितं साधर्मिसमविसंवाद: ।।३४।।

सूने घरों में रह विमोचित-वास पर-उपरोध नहिं।
हो एषणा शुद्धि सधर्मी साथ सविसंवाद नहिं।।३४।।

अर्थ – **शून्यागार अर्थात् गिरि, गुफा, तरु, कोटरादि में निवास करना, विमोचितावास अर्थात् जिसको लोगों ने किसी कारण से छोड़ दिया हो – इस प्रकार के गृह-ग्रामादिक में निवास करना, परोपरोध अर्थात् जहाँ दूसरे की रुकावट न हो, वस्तिकादिक को अपनाकर दूसरे को रोकना, इसप्रकार नहीं करना, एषणाशुद्धि अर्थात्**

---

१. पाठान्तर – विमोचितावास।

आहार शुद्ध लेना और साधर्मियों से विसंवाद नहीं करना – ये पाँच भावना तृतीय महाव्रत की हैं।

भावार्थ – **मुनियों की वस्तिका में रहना और आहार लेना ये दो प्रवृत्तियाँ अवश्य होती हैं। लोक में इन्हीं के निमित्त अदत्त का आदान होता है। मुनियों को ऐसे स्थान पर रहना चाहिए, जहाँ अदत्त का दोष न लगे और आहार भी इस प्रकार लें, जिसमें अदत्त का दोष न लगे तथा दोनों की प्रवृत्ति में साधर्मी आदिक से विसंवाद न उत्पन्न हो। इस प्रकार ये पाँच भावना कही हैं, इनके होने से अचौर्य महाव्रत दृढ़ रहता है।।३४।।**

प्रवचन-४६, गाथा-३४ से ३८, सोमवार, आषाढ़ (गुजराती) कृष्ण ९, दिनांक २७-०७-१९७०

अष्टपाहुड़, चारित्र अधिकार। ३४वीं गाथा। पंच महाव्रत की भावना की व्याख्या है। सम्यग्दर्शन प्रगट होने के पश्चात् स्वरूप की स्थिरता का चारित्र जो हो, उस काल में उसे पंच महाव्रत के विकल्प होते हैं। उसका यहाँ पाँच प्रकार की भावना का वर्णन है। यह है तो सब विकल्प। समझ में आया ?

निश्चयचारित्र तो स्वरूप में... यह आगे कहेंगे। ३८वीं गाथा में। निश्चयचारित्र तो स्वरूप का भान, आनन्द और ज्ञानस्वरूप आत्मा है, ऐसा अन्तर भान अनुभव में होने में होने पर, पश्चात् स्वरूप में—ज्ञान में—स्वभाव में स्थिरता करे, रमणता करे, वीतरागता पर्याय प्रगट करे, उसे चारित्र कहा जाता है। उस चारित्र की भूमिका में ऐसे पंच महाव्रत को इसकी पच्चीस भावना होती है, यह बात वर्णन करते हैं। समझ में आया ?

तीसरे महाव्रत की भावना।

सुण्णायारणिवासो विमोचियावास जं परोधं च।
एसणसुद्धिसउत्तं साहम्मीसंविसंवादो।।३४।।

अर्थ – मुनि तो दिगम्बर होते हैं न। जिनकी नग्नदशा होती है। इसलिए वे तो जंगल में ही बसते हैं। समझ में आया ? वे **शून्यागार अर्थात् गिरि, गुफा, तरु, कोटरादि में निवास करना,...** समझ में आया ? वे गाँव में किसी मकान-बकान में नहीं रहते। कोई आहार लेने आये हों और थोड़ी देर रहे, वह अलग बात है। बाकी तो शून्यागार,

जिसमें घर में शून्य अर्थात् गिरि, जिसमें मनुष्य और पशु न हो। गुफा, तरु, वृक्ष के बड़े खोखला। बड़े वृक्ष होते हैं न? उसमें खाली भाग होता है। पोला... पोला। **निवास करना,...** उसमें निवास करे। लो।

विमोचितावास अर्थात् जिसको लोगों ने किसी कारण से छोड़ दिया हो... कोई भूत का वहम पड़ा हो और मकान छोड़ दिया हो, कोई लड़का प्रिय में प्रिय मर गया हो और छोड़ दिया हो अथवा उस मकान में जब होंगे, तब याद आया करेगा, ऐसा करके मकान छोड़ दिया हो, उसमें मुनि बसते हैं। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे, किसी समय आवे। वस्तु यह।

मुमुक्षु : निवास करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। निवास करे। थोड़ी देर रहते हैं न।

छोड़ दिया हो – इस प्रकार के गृह-ग्रामादिक में निवास करना,... गाँव में ऐसा घर होता है न? गाँव में ऐसा कोई घर थोड़ा दूर हो, एकान्त (हो), टूटा हुआ (हो) वहाँ बसे। और **परोपरोध अर्थात् जहाँ दूसरे की रुकावट न हो,...** पर को जहाँ हानि न पहुँचे और पर का नकार न हो, ऐसे वास में बसते हैं। दूसरे को जगह का अवरोध हो, ऐसा भी नहीं और मिली हो, उसमें दूसरे को आने न दे (कि) नहीं, इतने में तुम्हें नहीं आने देंगे, ऐसा नहीं होता। **वस्तिकादिक को अपनाकर दूसरे को रोकना,...** उसमें दूसरे को आने न देना। **इस प्रकार नहीं करना,...** मुनि की दशा ऐसी होती है, उसे जानना पड़ेगा या नहीं? ऐई! प्रकाशदासजी! यहाँ बड़े बँगले में, दो-दो लाख के बँगले में बसे और (माने कि) महाव्रत पालन करते हैं और (हमें) चारित्र है।

मुमुक्षु : वह तो गृहस्थ के होते हैं न, उनके लिये कहाँ बनाये हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : उनके लिये बनाये हैं सब उपाश्रय। समझ में आया?

एषणाशुद्धि अर्थात् आहार शुद्ध लेना... उनके लिये बनाया हुआ, पकाया हुआ, उद्देशिक किया हुआ आहार नहीं लेते, ऐसी ऐषणाशुद्धि होती है। **और साधर्मियों से विसंवाद नहीं करना...** कोई उसमें लेने-देने का काम पड़े (तो) उसमें उनके साथ

झगड़ा न करे। अपने ज्ञानी धर्मात्मा के साथ झगड़ा न करे। नहीं तो चोरी का दोष लगे। ऐसा कहते हैं।

भावार्थ – मुनियों की वस्तिका में रहना और आहार लेना ये दो प्रवृत्तियाँ अवश्य होती हैं। यहाँ अभी तो प्रवृत्ति की बात है न। **लोक में इन्हीं के निमित्त अदत्त का आदान होता है।** उसमें अदत्त लिया जाये, ऐसा त्याग करना, उसकी यहाँ बात है। **मुनियों को ऐसे स्थान पर रहना चाहिए, जहाँ अदत्त का दोष न लगे...** किसी का अदत्त लेना, ऐसा न हो, ऐसे स्थान में बसे। किसी को दु:ख नहीं हो, किसी का विरोध नहीं हो, दूसरे आकर बसे हुए हों, उन्हें निकालकर बैठना, ऐसा न हो। ऐसा। समझ में आया? **और आहार भी इस प्रकार लें, जिसमें अदत्त का दोष न लगे...** उनके लिये कुछ बनाया हुआ हो तो वह सब अदत्त का दोष—चोरी का दोष है। समझ में आया?

मुमुक्षु : उसने दिया हुआ है, उसमें चोरी का दोष... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दिया हुआ परन्तु उनके लिये बनाया हुआ है न। आज्ञा बाहर, वह भगवान की चोरी है। आज्ञा की चोरी है।

मुमुक्षु : अदत्त... बिना दिया?

पूज्य गुरुदेवश्री : अदत्त (अर्थात्) बिना दिया। बिना दिया ले, कोई भी एक कण भी (हो), उसका त्याग करे। ऐसा नहीं होता। आहार, बस्ती सब।

तथा दोनों की प्रवृत्ति में साधर्मी आदिक से विसंवाद न उत्पन्न हो। देखो! स्थान आदि हो, रहने का स्थान या आहार आदि (हो), साधर्मी के साथ काम हो (तो) झगड़ा न करे। तुमको नहीं आया, तुमने ऐसा किया, अमुक किया... ऐसा झगड़ा न करे। झगड़ा और क्लेश जरा करे तो उसे चोरी का दोष लगता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **इस प्रकार ये पाँच भावना कही हैं, इनके होने से अचौर्य महाव्रत दृढ़ रहता है।** इसकी जब भावना हो तो अचौर्य महाव्रत (दृढ़ रहे)। है तो यह सब विकल्प, हों! निश्चयचारित्र तो स्वरूप में रमणता, उस आनन्द में रहना, वह चारित्र है। उस भूमिका में ऐसे व्रत के विकल्प और भावना होती है, उसका यहाँ ज्ञान कराकर प्रवृत्ति हो, उसे बतलाते हैं। समझ में आया?

गाथा-३५

आगे ब्रह्मचर्य महाव्रत की भावना कहते हैं –

महिलालोयणपुव्वरइसरणसंसत्तवसहिविकहाहिं।
पुट्ठियरसेहिं विरओ भावण पंचावि तुरियम्मि।।३५।।

महिलालोकनपूर्वरतिस्मरणसंसक्तवसतिविकथाभि:।
पौष्टिकरसै: विरत: भावना: पंचापि तुर्ये।।३५।।

महिला–विलोकन पूर्व–रति–स्मृति संसक्त–वास से।
स्त्री–कथा पौष्टिक रसों से विरति चौथे की कहें।।३५।।

अर्थ – स्त्रियों का अवलोकन अर्थात् रागभावसहित देखना, पूर्वकाल में भोगे हुए भोगों को स्मरण करना, स्त्रियों से संसक्त वस्तिका में रहना, स्त्रियों की कथा करना, पौष्टिक रसों का सेवन करना, इन पाँचों से विकार उत्पन्न होता है, इसलिए इनसे विरक्त रहना, ये पाँच ब्रह्मचर्य महाव्रत की भावना हैं।

भावार्थ – कामविकार के निमित्तों से ब्रह्मचर्यव्रत भंग होता है, इसलिए स्त्रियों को रागभाव से देखना इत्यादि निमित्त कहे, इनसे विरक्त रहना, प्रसंग नहीं करना, इससे ब्रह्मचर्य महाव्रत दृढ़ रहता है।।३५।।

गाथा-३५ पर प्रवचन

आगे ब्रह्मचर्य महाव्रत की भावना कहते हैं –

महिलालोयणपुव्वरइसरणसंसत्तवसहिविकहाहिं।
पुट्ठियरसेहिं विरओ भावण पंचावि तुरियम्मि।।३५।।

अर्थ – स्त्रियों का अवलोकन अर्थात् रागभावसहित देखना,... उसे छोड़े। रागभाव है। दिखायी दे तो अलग बात है। समझ में आया? रागभाव से देखना, उसे छोड़ना, ऐसी उसकी भावना चौथे महाव्रत की अन्दर होती है। **पूर्वकाल में भोगे हुए**

भोगों को स्मरण करना,... पूर्व के विषय की याद करे, उसे छोड़ दे, याद न करे। राग के जहर को क्या याद करे? पूर्व का स्मरण करे नहीं। हम तो ऐसे राजा थे, ऐसे मकान में रहते थे और अमुक, अमुक... यह सब स्मरण न करे।

स्त्रियों से संसक्त वस्तिका में रहना,... जहाँ स्त्री रहती हो, वहाँ उसके नजदीक में बसना, उसे छोड़ दे। नजदीक में बसे नहीं। **स्त्रियों की कथा करना,...** स्त्री का शरीर ऐसा और उसका ऐसा... यह कथा न करे। उसे स्मरण न करे। **पौष्टिक रसों का सेवन करना,...** जिसमें मैसूर और ऊँचा माल सालमपाक खाता हो, बादाम के मैसूर और पिस्ता के पापड़... समझ में आया? ऐसे पुष्ट रस नहीं खाये, ऐसा कहते हैं। जिसे ब्रह्मचर्य चौथा महाव्रत है, उसके अतिचार भी न लगने दे। क्योंकि उसकी भावना ऐसी होती है। यह तो सम्यग्दर्शनसहित स्वरूप की चारित्रदशा प्रगटी है, उस भूमिका में ऐसे महाव्रत के विकल्प होते हैं, उनकी बात की है। जिसे आत्मा आनन्दमूर्ति ध्रुव का जिसे आश्रय—शरण मिला नहीं, उसे सम्यग्दर्शन नहीं, उसे चारित्र भी नहीं और उसे पंच महाव्रत के परिणाम भी सच्चे नहीं, खोटे होते हैं। समझ में आया? लो, प्रकाशदासजी! यह महाव्रत... महाव्रत। महाव्रत अकेले महाव्रत नहीं। यह कहेंगे।

इन पाँचों से विकार उत्पन्न होता है, इसलिए इनसे विरक्त रहना,... उनसे दूर रहना। स्त्री का संसर्ग करना नहीं, जहाँ स्त्री बैठी, उस आसन में भी बैठना नहीं। ऐसी भावना (होती है)। महा ब्रह्मचारी हैं न मुनि तो! आत्मा के आनन्द में रमनेवाले ब्रह्मचारी हैं वे तो। मुनि तो ब्रह्म अर्थात् आत्मा का आनन्द, उसमें चरनेवाले होते हैं। आनन्द में रमनेवाले होते हैं। ऐसा जिनका ब्रह्मचर्य, उसमें व्यवहार ब्रह्मचर्य ऐसा होता है, ऐसा कहते हैं। प्रवृत्ति का ब्रह्मचर्य ऐसा होता है, निवृत्ति का ब्रह्मचर्य स्वरूप में रमे, वह होता है।

मुमुक्षु : दो प्रकार के....

पूज्य गुरुदेवश्री : दो प्रकार के ब्रह्मचर्य। समझ में आया?

अन्तर आनन्दमूर्ति भगवान... यह कहेंगे, ३८ में। भगवान ने तो ज्ञानस्वरूप आत्मा कहा है। यह विकल्प है, वह कहीं आत्मा नहीं। ज्ञान जानन आत्मा, उसमें जो अन्तर अनुभव करके आनन्द में रमे, रमे-चरे, वह चारित्र है। सच्चा चारित्र तो वह है। ऐसी चारित्र

की भूमिका जहाँ हो, वहाँ ऐसे पंच महाव्रत के भाव होते हैं। उसकी यह भावना भी वहाँ होती है। इतनी बात है। यह तो भान भी नहीं और अकेले पंच महाव्रत के विकल्प को चारित्र माने, वह तो मिथ्यादृष्टि है। वह तो शुभयोग है। शुभयोग को चारित्र माने, संवर माने, वह तो मिथ्या आचरण को संवर माना। समझ में आया? उसे तो नव तत्त्व की श्रद्धा का ठिकाना नहीं। लो। ब्रह्मचर्य महाव्रत की पाँच भावना।

कामविकार के निमित्तों से ब्रह्मचर्यव्रत भंग होता है, इसलिए स्त्रियों को रागभाव से देखना इत्यादि निमित्त कहे,.. निमित्त। **इनसे विरक्त रहना, प्रसंग...** उनका प्रसंग नहीं करना। समझ में आया? **इससे ब्रह्मचर्य महाव्रत दृढ़ रहता है।** मुनि को स्त्री के परिचय की आवश्यकता क्या? उसे समझाना, पढ़ाना, दो घड़ी, चार घड़ी पढ़ावे घण्टे-दो घण्टे। यह मुनि को नहीं होता। मुनि तो संसर्ग के—बाहर के परिचय से रहित होते हैं। अन्दर में राग के संसर्ग से रहित, बाहर में बाहर शुभराग होता है, इसलिए बाहर के संसर्ग से रहित। उस शुभराग को विघ्न न आवे, ऐसे संसर्ग से रहित। और स्वरूप में शुभराग से रहित। स्थिरता का उसमें शुभराग का संसर्ग नहीं अन्तर चारित्र में।

गाथा-३६

आगे पाँच अपरिग्रह महाव्रत की भावना कहते हैं –

अपरिग्गह समणुण्णेसु सद्दपरिसरसरूवगंधेसु।
रायद्दोसाईणं परिहारो भावणा होंति।।३६।।

अपरिग्रहे समनोज्ञेषु शब्दस्पर्शरसरूपगंधेषु।
रागद्वेषादीनां परिहारो भावना: भवन्ति।।३६।।

स्पर्श रस रंग गंध शब्द पदार्थ सुंदर असुंदर।
मैं राग द्वेष नहीं करो ये भावना अपरिग्रह।।३६।।

अर्थ **– शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध ये पाँच इन्द्रियों के विषय समनोज्ञ अर्थात्**

मन को अच्छे लगनेवाले और अमनोज्ञ अर्थात् मन को बुरे लगनेवाले हों तो इन दोनों में ही राग-द्वेष आदि न करना परिग्रहत्याग व्रत की ये पाँच भावना हैं।

***भावार्थ* – पाँच इन्द्रियों के विषय स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द ये हैं, इनमें इष्ट-अनिष्ट बुद्धिरूप राग-द्वेष नहीं करे, तब अपरिग्रहव्रत दृढ़ रहता है, इसीलिए ये पाँच भावना अपरिग्रह महाव्रत की कही गई हैं।।३६।।**

गाथा-३६ पर प्रवचन

आगे पाँच अपरिग्रह महाव्रत की भावना कहते हैं – पाँचवें महाव्रत की भावना।

अपरिग्गह समणुण्णेसु सद्दपरिसरसरूवगंधेसु।
रायद्दोसाईणं परिहारो भावणा होंति।।३६।।

अर्थ – शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध ये पाँच इन्द्रियों के विषय समनोज्ञ अर्थात् मन को अच्छे लगनेवाले... ... अच्छे हों। **अमनोज्ञ...** खराब हों। **इन दोनों में ही राग-द्वेष आदि न करना...** लो! यह अपरिग्रह की भावना। निन्दा सुनकर द्वेष नहीं और प्रशंसा सुनकर राग नहीं। ठीक लगे। यह ठीक हमारे। उसे अपरिग्रहव्रत नहीं रहता। इतनी आसक्ति हो गयी न? ऐसा कहते हैं। स्वरूप की स्थिरता में पाँचों ही शब्द, रूप, रस, गन्ध के विषय की प्रवृत्ति में, अनुकूलता-प्रतिकूलता में कहीं राग-द्वेष नहीं होना, इसका नाम पाँचवें महाव्रत की भावना कही जाती है। **इन दोनों में ही राग-द्वेष आदि न करना परिग्रहत्याग व्रत की ये पाँच भावना हैं।** लो!

पाँच इन्द्रियों के विषय स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द ये हैं, इनमें इष्ट-अनिष्ट बुद्धिरूप राग-द्वेष नहीं करे,... लो! जगत में कोई इष्ट है ही नहीं। ज्ञान का ज्ञेय है। ऐसे शब्द इष्ट नहीं और ऐसे शब्द इष्ट, ऐसा कुछ शब्दों में नहीं। शब्द में है? कि यह निन्दा के शब्द, वे खराब। वह तो जड़ की पर्याय है। और प्रशंसा की पर्याय अच्छी। वह तो जड़ की पर्याय है। ज्ञान में ज्ञेय है। उसमें इष्ट-अनिष्ट मानना, वही परिग्रह है। समझ में आया? इष्ट-अनिष्ट की अस्थिरता हो जाना, वह परिग्रह है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उसे छोड़ देना।

इष्ट-अनिष्ट बुद्धिरूप राग-द्वेष नहीं करे, तब अपरिग्रहव्रत दृढ़ रहता है, इसीलिए ये पाँच भावना अपरिग्रह महाव्रत की कही गई हैं। अब पाँच समिति। पाँच महाव्रत कहे, पाँच महाव्रत की भावना कही। अब पाँच समिति। सब पाँच-पाँच कहा।

गाथा-३७

आगे पाँच समितियों को कहते हैं -

इरिया भासा एसण जा सा आदाण चेव णिक्खेवो।
[1]संजमसोहिणिमित्तं खंति जिणा पंच समिदीओ ।।३७।।

ईर्या भाषा एषणा या सा आदानं चैव निक्षेपः।
संयमशोधिनिमित्तं ख्यान्ति जिनाः पंच समितीः ।।३७।।

संयम सुशुद्धि-हेतु ईर्या एषणा भाषा तथा।
आदान निक्षेपण प्रतिष्ठापना पाँच समिति सदा।।३७।।

***अर्थ* - ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण और प्रतिष्ठापना, ये पाँच समितियाँ संयम की शुद्धता के लिए कारण हैं, इस प्रकार जिनदेव कहते हैं।**

***भावार्थ* - मुनि पंच महाव्रतस्वरूप संयम का साधन करते हैं, उस संयम की शुद्धता के लिए पाँच समितिरूप प्रवर्तते हैं इसी से इसका नाम सार्थक है - ''सं'' अर्थात् सम्यक्प्रकार 'इति' अर्थात् प्रवृत्ति जिसमें हो सो समिति है''। चलते समय जूड़ा प्रमाण (चार हाथ) पृथ्वी देखता हुआ चलता है, बोले तब हितमितरूप वचन बोलता है, आहार लेवे तो छियालीस दोष, बत्तीस अंतराय टालकर, चौदह मल दोष रहित शुद्ध आहार लेता है, धर्मोपकरणों को उठाकर ग्रहण करे सो यत्नपूर्वक लेते हैं, ऐसे ही कुछ क्षेपण करे तब यत्नपूर्वक क्षेपण करते हैं, इस प्रकार निष्प्रमाद वर्ते तब संयम का शुद्ध पालन होता है, इसलिए पंचसमितिरूप प्रवृत्ति कही है। इस प्रकार संयमचरण चारित्र की शुद्ध प्रवृत्ति का वर्णन किया।।३७।।**

---

१. पाठान्तर - संजमसोहिणिमित्ते।

गाथा-३७ पर प्रवचन

आगे पाँच समितियों को कहते हैं –

इरिया भासा एसण जा सा आदाण चेव णिक्खेवो।
संजमसोहिणिमित्तं खंति जिणा पंच समिदीओ।।३७।।

ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण और प्रतिष्ठापना, ये पाँच समितियाँ संयम की शुद्धता के लिए कारण हैं,... संयम की शुद्धि के लिये कारण हैं। **इस प्रकार जिनदेव कहते हैं।** अब इसमें ऐसा डाला है इस अष्टपाहुड़ में। इसमें वह डाला है न? एक पत्र में आता है न? लेना, रखना, वस्त्र को यत्न से लेने-रखने में आता है। एक आता है। उसका यहाँ क्या काम है? वस्त्र था ही कब, ऐसा लिखा है। वह पत्र डाला है। यह सब गड़बड़... गड़बड़... गड़बड़। यह है न कितना है वह? ३७। ईर्या का ३७ न? चारित्र में।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो यह है। उसकी यहाँ बात कहाँ है? वह सब गड़बड़ डालते हैं। यह है न **ईर्या, भाषा, एषणा,...** 'समाग्रहित यत्नपूर्वक आगे चार हाथ भूमि देखकर चलना, वह ईर्यासमिति।' यह तो देखा। 'हितकारी परिमित वचन बोलना।' यह भाषा। 'दोष और अन्तराय टालकर कुलीन श्रावक के घर शुद्ध आहार लेना।' कहो यह बात यहाँ कहाँ है इसमें? अन्तराय-बन्तराय। दोष की बात नहीं वह तो श्वेताम्बर में। यह तो दिगम्बर की बात है। **शास्त्र, पिच्छी, कमण्डलु,...** लो! शब्द तो डाले हैं वापस। **शास्त्र, पिच्छी, कमण्डलु, देख-शोधकर सँभालकर लेना-रखना...** यह आदाननिक्षेप। **जन्तुरहित स्थान में मल-मूत्र...** फिर उसमें लिखा अन्दर। निर्मल विचारधारा... अन्दर लिखा है। **जैसे आज्ञा दी है, वैसे आज्ञा के उपयोगपूर्वक वस्त्रादि लेना-रखना...** परन्तु यह अन्दर में और शास्त्र, पिच्छी, कमण्डल और यहाँ वह। कहीं मैल कहाँ है? समझ में आया? अन्दर तो यह डाला। **शास्त्र, पिच्छी, कमण्डलु,...** शास्त्र, पिच्छी, कमण्डल हो, उसे वस्त्र नहीं होता। तो वस्त्र को यत्न से लेना-रखना—ऐसा है नहीं। वस्त्र ही नहीं होता न। ऐसा डालते हैं। ये गड़बड़ की है। यह अष्टपाहुड़ के अर्थ किये, लो।

मुमुक्षु : कौन सा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अष्टपाहुड़ है। अगास की ओर से प्रकाशित हुआ है। अगास है न अगास ? श्रीमद् राजचन्द्र का पत्र...

मुमुक्षु : दो... कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों कहा। आज भी कहा। यहाँ चलता है अधिकार पहला वस्त्ररहित। धागा हो तो निगोद में जाये, ऐसा कहा। पश्चात् तो यह चारित्र का अधिकार शुरु किया। कुछ सुमेल होना चाहिए न ?

मुमुक्षु : उसमें वस्त्र कहाँ से आया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें और वस्त्र को यत्न से लेना-रखना। लोगों को सम्प्रदाय की दृष्टि को छोड़ना कठिन पड़ता है। मुनि को वस्त्र होते ही नहीं। लेने-रखने की बात कैसी ? उन्हें यह मोरपिच्छी, कमण्डलु, पुस्तक ये होते हैं। उन्हें यत्न ले-रखे। अभी प्रवृत्ति का भाव है न ? समिति। समझ में आया ? श्रीमद् का पत्र है। परन्तु वह तो वहाँ पहले लिखा एक जगह। यह तो मूलमार्ग की बात नहीं। यह तो वर्तमान व्यवहार की...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे-आवे। मुनि को दीक्षा देना, उसे ऐसा करना। यह सब उन लोगों की भाषा थी और उसमें आया।

मुनि को तीन काल, तीन लोक में छठवाँ गुणस्थान जहाँ हो, वहाँ वस्त्र और पात्र एक टुकड़ा भी नहीं होता। लेना-रखना वस्त्र-पात्र हो, वहाँ मुनिपना है नहीं। ऐसा मार्ग है। समझ में आया ? इसमें यह डाला है। देखो न ! ईर्या है न ? ऐषणा। यह आदाननिक्षेप है न आदान ? उसका अर्थ किया है। परन्तु मूल में आदान का यह अर्थ किया है। मोरपिच्छी, कमण्डल लेना-रखना। वापस अर्थ में श्रीमद् का पत्र यहाँ इन्हें नहीं डालना था।

यहाँ तो कुन्दकुन्दाचार्य पहले से ही पुकार करते आते हैं कि जिनमार्ग, वह दिगम्बर मुनि का मार्ग है। वीतरागी दशा, वीतरागी दृष्टि, वीतरागी चारित्र और दिगम्बर मुद्रा, इसका नाम जैनमार्ग है। इसके अतिरिक्त कोई वस्त्रादि रखे तो वह जिनमार्ग नहीं है। मुनि का मार्ग नहीं है। समझ में आया ? उसमें और अपवाद आ जाये तथा अमुक आ जाये,

ऐसा नहीं है। यहाँ तो यह उनके अपने समिति की और उसकी बात चलती है। देखो!

ये पाँच समितियाँ संयम की शुद्धता के लिए कारण हैं,... देखा! संयम शुद्धि का कारण कहा है न? उसमें और इन्होंने तो विशिष्ट डाला है अष्टपाहुड़ में। संयम शुद्धि का कारण क्या? ... मोरपिच्छी और कमण्डल वह शुद्धि का कारण है। भाई! अष्टपाहुड़ में यह ... टीका। कितना है यह? ३८। उसमें यह डाला। अभी यह डाला है। वस्तु हो ऐसा होवे न! दूसरा उल्टा-सीधा कुछ होता होगा? **'संजमसोहिणिमित्तं'** है न शब्द?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ यह। ... महीने-महीने के अपवास करे, परन्तु यदि मोरपिच्छी, कमण्डल और चारित्र अन्दर न हो और दूसरी दशा हो तो उसे कुछ भी लाभ नहीं है। शुद्धि नहीं है। ऐसा कहा कि जिसे सम्यग्दर्शनसहित, चारित्रसहित पंच महाव्रत के विकल्प हों, उसे मोरपिच्छी और कमण्डल होता है। तथा मोरपिच्छी, कमण्डल छोड़कर दूसरे ऊन के रखे, यह महीने-महीने के अपवास करे तो भी उसे शुद्धि नहीं है।

यहाँ तो मोरपिच्छी और कमण्डल शुद्धि में डाले हैं। नवनीतभाई! ऐसा है। ऐसा कहीं चले? मोरपिच्छी और कमण्डल ही मुनि को होता है। उन्हें कहीं रजोणो हो और मुँहपत्ती हो और रुंछडा हो (ऐसा नहीं होता)। यह कहते हैं कि मोरपिच्छी छोड़कर चारित्रादि हो परन्तु मोरपिच्छी आदि न हो और चारित्र माने और महीने-महीने के अपवास करे तो भी सब शुद्धि के लिये नहीं है। बन्ध के लिये है। प्रकाशदासजी! यह तो सब विपरीत अभी तक सुना उससे। ऐसी बात, भाई!

पाठ में है न? **'संजमसोहिणिमित्तं'** संयमशुद्धि के निमित्त। अन्तर सम्यग्दर्शन है, चारित्र भी है, पंच महाव्रत के विकल्प भी हैं, निमित्त में मोरपिच्छी और कमण्डल व्यवहार से होते हैं। दूसरी कोई चीज़ नहीं होती। ऐसा मुनि मार्ग है। उसे श्रद्धा में तो लेना पड़ेगा या नहीं? इसके अतिरिक्त आड़ा-टेड़ा कहे, वह मुनिमार्ग नहीं है। भगवानजीभाई! यह तो वह यति देखकर प्रसन्न हो गये थे। अफ्रीका में। परन्तु क्या है? कोई न हो तब क्या करे?

मुमुक्षु : ...देखे नहीं...

पूज्य गुरुदेवश्री : देखे नहीं। घर में पधरामणी की थी और १५१ रुपये रखे थे।

मुमुक्षु : इतना तो लाभ होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : लाभ मिथ्यात्व का होगा।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उन लोगों को खबर न हो और इसलिए लोगों को ऐसा हो जाता है। आहाहा! यति-यति। वे यति थे। वे अफ्रीका में गये थे। इन सब सेठियों ने चरण कराये थे। एक लाख रुपये हो गये थे। फिर आकर विवाह किया, विवाह किया। वे लाख रुपये हुए थे तो विवाह किया।

मुमुक्षु : इनके भाई...

पूज्य गुरुदेवश्री : इनके भाई नहीं। वे तो लाख रुपये की... एक लाख अफ्रीका में।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। पैसा तो वहाँ अफ्रीका में बहुत होवे न। यहाँ आसाम में जाये तो बहुत पैसा लावे। अरे! उसमें क्या हुआ? धूल में। सच्ची श्रद्धा और ज्ञान का और चारित्र का ठिकाना नहीं, उसके पास सच्ची प्ररूपणा हो, ऐसी आशा रखना, यह सब झूठी है। समझ में आया? देखो न! यह अधिकार चलता है **'संजमसोहिणिमित्तं'** ऐषणा आदि हो। और लेने-रखने की, आदान—लेना-रखने की चीज़ हो। तो लेने-रखने की चीज़ मुनि को कितनी हो? मोरपिच्छी, कमण्डल, पुस्तक।

मुमुक्षु : वस्त्र का धागा न हो, पत्र में लिख गये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लिख गये हैं वहाँ। पहले तो लिख गये। '...' स्वयं यहाँ लिखा। और यहाँ वापस यह डाला। इसमें ठिकाना कहाँ है इसमें?

मुमुक्षु : अनेकान्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा अनेकान्त फुदड़ीवाद होगा? वहीं का वहीं पहले लिखा कुछ... उसमें लिखा वापस पहले कि यदि वस्त्र का धागा रखकर साधु मनावे या माने, वह निगोद गच्छाई—निगोद में जायेगा। क्योंकि ब्रह्मचारी रहे, गृहस्थाश्रम पालन करे भले। समकित सहित गृहस्थाश्रम होवे तो मोक्षमार्गी है। परन्तु वस्त्र का धागा रखकर मुनिपना

माने तो निगोद गच्छई। मिथ्यात्व में जायेगा। ऐसी बात तो पहले स्थापित कर गये हैं। फिर चारित्र में श्रीमद् का यह पत्र डाले। नवनीतभाई! यह बात हुई थी न। वहाँ अष्टपाहुड़ में। न्याय से कहीं एक मार्ग बदले? यह तो वीतराग का मार्ग है। यह कहीं किसी का कल्पित है?

कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ चरणानुयोग में कहते हैं—जिनमग्गे। जिनमार्ग में अट्ठाईस मूलगुण कहे हैं। अचेलपना, वह उनका मूलगुण है। अर्थात् पर्याय में भले विकल्प है। ऐसा जिनमार्ग कहा है। जिनमार्ग में कहीं वस्त्र और पात्र हो, उसे मुनि कहे, वह जिनमार्ग में है नहीं। कहो, रतिभाई! यह सब ऐसा निकला। यह पुराने व्यक्ति हैं न पुराने। कहो, समझ में आया? आहाहा!

ये पाँच समितियाँ संयम की शुद्धता के लिए कारण हैं,... ऐसा कहना है। अर्थात् शुद्धि के अर्थ में, इसलिए फिर इन्होंने यह डाला। शुद्धि के अर्थ में तो मुनि को मोरपिच्छी और कमण्डल होता है। मोरपिच्छी, कमण्डल छोड़कर दूसरे उपकरण रखे (और) महीने-महीने के अपवास करके मर जाये तो भी उसे कुछ लाभ नहीं है। उसे शुद्धि का लाभ कुछ है नहीं, अशुद्धि का है। ऐसा कहते हैं। अवसर आवे, तब यह डालते हैं और अवसर आवे तब इन्होंने डाला। आहाहा! 'जिसका पक्ष लेकर बोलूँ वह मन में सुख माने, जिसका पक्ष छोड़कर बोलना, वह मन में स्थित कुछ ताणे' यहाँ तो यह मार्ग है, देखो!

मुनि पंच महाव्रतस्वरूप संयम का साधन करते हैं,... देखा! पंच महाव्रतरूप संयम का साधन करे। **उस संयम की शुद्धता के लिए पाँच समितिरूप प्रवर्तते हैं, इसी से इसका नाम सार्थक है-** क्या? देखो! **''सं'' अर्थात् सम्यक् प्रकार...** 'सं' कहने से सम्यक् प्रकार। सम्यग्दर्शनसहित। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञानसहित। **'इति' अर्थात् प्रवृत्ति जिसमें हो, सो समिति है।** सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित सच्ची प्रवृत्ति हो, उसे यहाँ समिति कहा जाता है।

चलते समय जूड़ा प्रमाण (चार हाथ) पृथ्वी देखता हुआ चलता है,... जूड़ा। जूड़ा प्रमाण देखकर चले। **बोले तब हितमितरूप वचन बोलता है, आहार लेवे तो छियालीस दोष, बत्तीस अंतराय टालकर, चौदह मल दोष रहित शुद्ध आहार**

लेता है,... एक दिक्क था श्वेताम्बर में। चौदह मल, बत्तीस अन्तराय। ऐई! सुना था बत्तीस अन्तराय और चौदह मैल। वहाँ है नहीं अन्दर। वहाँ है कहाँ? ४२, ४६, ९६ दोष रहित। इतनी भाषा है।

मुमुक्षु : ४२, ४६ क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : ४२, ४६, ९६ दोषरहित, इतना है। पहले हम जब (संवत्) १९७७ में भावनगर गये थे, यह ९६ दोष के चौपानिया (पर्चा) प्रकाशित किया था। घर-घर में। देखो! महाराज को कहीं... ७७ में जब भावनगर गये थे न? पहले ७७ में। हमारी छाप तो कठोर थी न। आहार लेने में कड़क। घूमने में सर्वत्र घर-घर में पम्पलेट। अमरचन्दभाई थे। हरिभाई के बड़े भाई। उस समय वे सेठ थे। महाराज हैं। इनके लिये बनाया हुआ आहार हो तो गर्भ में गलना पड़ेगा। इसलिए गर्भ में गलने से बचने की चाबी। ऐसा करके ९६ दोष का पम्पलेट छपाया था। अपने आप, हों! ९६ दोष आते हैं न? ९६ दोषरहित आहार देना। ऐसा। १९७७ की बात है। कितने वर्ष हुए? ४९। भावनगर पहली बार गये थे। लोग चिल्लाहट मचाये। आहार-पानी... पच्चीस-पच्चीस घर में कहीं मिले नहीं। उन लोगों का तो ठिकाना नहीं था। हमारे इस ओर तो... इसलिए।

यहाँ कहते हैं, **छियालीस दोष, बत्तीस अंतराय टालकर, चौदह मल दोष रहित शुद्ध आहार लेता है,...** यह ऐषणासमिति। नहीं तो ऐषणासमिति का दोष है। वह मुनि को नहीं होता। **धर्मोपकरणों को उठाकर ग्रहण करे, सो यत्नपूर्वक लेते हैं, ऐसे ही कुछ क्षेपण करे...** ले, डाले। **तब यत्नपूर्वक क्षेपण करते हैं, इस प्रकार निष्प्रमाद वर्ते तब संयम का शुद्ध पालन होता है, इसलिए पंचसमितिरूप प्रवृत्ति कही है। इस प्रकार संयमचरण चारित्र की शुद्ध प्रवृत्ति का वर्णन किया।** इस प्रकार संयमचरण चारित्र की प्रवृत्ति कही। अब यह निवृत्तिचारित्रसहित प्रवृत्ति ऐसी होती है, यह इसमें बताते हैं।

गाथा-३८

अब आचार्य निश्चय चारित्र को मन में धारण कर ज्ञान का स्वरूप कहते हैं –

भव्वजणबोहणत्थं जिणमग्गे जिणवरेहि जह भणियं।
णाणं णाणसरूवं अप्पाणं तं वियाणेहि।।३८।।

भव्यजनबोधनार्थं जिनमार्गे जिनवरैः यथा भणितं।
ज्ञानं ज्ञानस्वरूपं आत्मानं तं विजानीहि।।३८।।

है ज्ञान ज्ञान-स्वरूप आतम जिन-कथित जिन-मार्ग में।
है भव्य-जन संबोधनार्थ कहा उसे अब जान ले।।३८।।

अर्थ – जिनमार्ग में जिनेश्वरदेव ने भव्यजीवों के सम्बोधने के लिए जैसा ज्ञान और ज्ञान का स्वरूप कहा है, वह ज्ञानस्वरूप आत्मा है, उसको हे भव्य जीव ! तू जान।

भावार्थ – ज्ञान को और ज्ञान के स्वरूप को अन्य मतवाले अनेक प्रकार से कहते हैं, वैसा ज्ञान और वैसा ज्ञान का स्वरूप नहीं है। जो सर्वज्ञ वीतराग देव भाषित ज्ञान और ज्ञान का स्वरूप है वही निर्बाध सत्यार्थ है और ज्ञान है वही आत्मा है तथा आत्मा का स्वरूप है, उसको जानकर उसमें स्थिरता भाव करे, परद्रव्यों से रागद्वेष नहीं करे वही निश्चय चारित्र है, इसलिए पूर्वोक्त महाव्रतादिक की प्रवृत्ति करके उस ज्ञानस्वरूप आत्मा में लीन होना, इस प्रकार उपदेश है।।३८।।

गाथा-३८ पर प्रवचन

अब आचार्य निश्चयचारित्र को मन में धारण कर ज्ञान का स्वरूप कहते हैं – लो! कोई अकेले महाव्रत-महाव्रत को मान ले, इसलिए यह भी वापस अन्दर डाला। समझ में आया या नहीं ? आया था न महाव्रत बड़े महापुरुषों ने आचरण किये हैं। महाव्रत स्वयं बड़े हैं। आचरण करते हैं। कहते हैं कि यह निश्चयचारित्र हो, वहाँ ऐसी प्रवृत्ति होती है। जहाँ चारित्र और सम्यग्दर्शन नहीं, वहाँ अकेले पंच महाव्रत के विकल्प (हों), वह तो

अकेला राग है। वह व्यवहाराभास है। उसे तो व्यवहार भी नहीं कहा जाता। ऐसा कहते हैं।

भव्वजणबोहणत्थं जिणमग्गे जिणवरेहि जह भणियं।
णाणं णाणसरूवं अप्पाणं तं वियाणेहि।।३८।।

देखो! कुन्दकुन्दाचार्य की भाषा।

जिनमार्ग में जिनेश्वरदेव ने भव्यजीवों के सम्बोधने के लिए... भव्य जीव के भान के लिये **जैसा ज्ञान और ज्ञान का स्वरूप कहा है,...** टीका में ज्ञान अर्थात् व्यवहार ज्ञान ऐसा लिखा है। व्यवहार ज्ञान। ज्ञान अर्थात् पाँच पर्याय के भेद पड़े, वह व्यवहार ज्ञान, ऐसा। निश्चय ज्ञानस्वरूप वह। ऐसा। भेद पड़े न व्यवहारनय का। उस व्यवहार का अर्थ यह मति-श्रुतादि ज्ञान की पर्याय के भेद पड़े, वह व्यवहार है और ज्ञानस्वरूप आत्मा अखण्ड है, वह निश्चय है।

ज्ञान और ज्ञान का स्वरूप... भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप ही है। वह पंच महाव्रत के विकल्पस्वरूप आत्मा नहीं। देखो! यह स्पष्टीकरण किया। समझ में आया? **वह ज्ञानस्वरूप आत्मा है,...** लो! **'अप्पाणं'** भगवान आत्मा तो जानन-देखन ज्ञाता-दृष्टा है। उसमें कोई पंच महाव्रत के विकल्प और भावना है, वह उसके स्वरूप में नहीं है। ऐसे स्वरूप का भान करके उसमें स्थिर हो, ज्ञान में स्थिर हो, ज्ञानस्वरूप का अनुभव करके उसमें स्थिर हो, उसे सच्चा चारित्र कहा जाता है। ऐसे चारित्रवन्त को ऐसे पंच महाव्रत की प्रवृत्ति होती है। समझ में आया? लो! यह स्पष्टीकरण ले, वह न ले। वहाँ तो संयम के दो प्रकार कहे। अणुव्रत और महाव्रत। देखो! चारित्रपाहुड़ है, इसलिए उसे चारित्र कहा है। यह अर्थ ले। यह कहा वह?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह देखो न, इसमें लिखा है। अच्छा अर्थ किया है।

पूर्वोक्त महाव्रतादिक की प्रवृत्ति करके उस ज्ञानस्वरूप आत्मा में लीन होना,... महाव्रत के विकल्प की प्रवृत्ति परिणाम हो, परन्तु मूल तो ज्ञानस्वरूप में लीन होना, वह चारित्र है।

मुमुक्षु : उस समय भी ज्ञान...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। वह ही है। जितनी स्थिरता... साथ में विकल्प है, तथापि उसमें स्थिर होना, वह चारित्र है। ऐसा। विकल्प के समय भी ज्ञान में जितनी स्थिरता है, वह चारित्र है। महाव्रत के विकल्प हैं, वह तो राग है। ऐसा करना... ऐसा करना... वह राग है। वह कहीं चारित्र नहीं है। उसे व्यवहारनय से चारित्र कहा।

भगवान ने ज्ञान और ज्ञान का स्वरूप कहा है। **भव्यजीवों के सम्बोधने के लिए जैसा ज्ञान और ज्ञान का स्वरूप कहा है, वह ज्ञानस्वरूप आत्मा है, उसको हे भव्य जीव ! तू जान। 'अप्पाणं तं वियाणेहि'** ऐसा है न? **ज्ञान को और ज्ञान के स्वरूप को अन्यमतवाले अनेक प्रकार से कहते हैं,...** भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त ज्ञान और ज्ञान के स्वरूप को दूसरे अनेक प्रकार से कहते हैं। उनसे भगवान ने कहा, वह एक ही बात सत्य है। जैसा भगवान ने कहा, ज्ञान आत्मा। उसमें कम, अधिक और विपरीत टालकर अकेला भगवान ज्ञानस्वभाव आत्मा। ज्ञाता-दृष्टा ही आत्मा है, ऐसा अनुभव करके स्वरूप में, ज्ञान में रमना, उसका नाम सच्चा चारित्र है। समझ में आया?

वैसा ज्ञान और वैसा स्वरूप ज्ञान का नहीं है। यह अज्ञानी कहे, वह ज्ञान का स्वरूप नहीं है। वह ज्ञान भी नहीं और ऐसा ज्ञान का स्वरूप भी नहीं। दोनों नहीं, ऐसा। **जो सर्वज्ञ वीतरागदेव भाषित ज्ञान और ज्ञान का स्वरूप है, वही निर्बाध सत्यार्थ है...** परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर। ऐसा मार्ग कहाँ होगा? विष्णु में होगा ऐसा? विष्णु और जैन दोनों में विरोध नहीं। अरे! पूरब और पश्चिम का विरोध है। समझ में आया? सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव ने तीन काल-तीन लोक देखकर, ज्ञान वह आत्मा... ज्ञान वह आत्मा। ऐसा जो पूर्ण स्वभाव। ऐसा पूर्ण स्वभाववान, पूर्ण स्वभाववाला। ऐसा जो ज्ञान का स्वरूप भगवान ने कहा, वह निर्बाध सत्यार्थ है। उसमें कोई विरोध नहीं आता और सच्चा है। कहो, समझ में आया?

कितने ही कहते हैं, भाई! पठन से ज्ञान आवे, बाहर से ज्ञान आवे। कम ज्ञान, अधिक ज्ञान कहाँ से आवे? बाहर से आवे, पढ़े तो आवे, वाँचन करे तो आवे। यह सब बात खोटी, कहते हैं। ज्ञान की न्यूनता में से अधिकता होती है, वह अन्दर आत्मा में से आती है। ऐसा ज्ञान का स्वरूप है। समझ में आया? किसी को कम जानपना हो और फिर

पढ़े, तब अधिक होता है या नहीं ? कहाँ से आया ? यह वाँचन किया तो आया। सुना तो आया। ऐसा ज्ञान का स्वरूप है नहीं। यह अन्दर में ज्ञानस्वरूप आत्मा है, उसमें से ज्ञान आता है। ऐसा भगवान ने ज्ञान का स्वरूप कहा है। समझ में आया ? आहाहा ! बहुत वाँचन करे और बहुत पुस्तकों के पन्ने फिराये, इसलिए ज्ञान बढ़े—ऐसा भगवान ने ज्ञान का स्वरूप कहा नहीं। यहाँ ऐसा कहते हैं। क्योंकि ज्ञान, वह आत्मा। पूरा आत्मा ही वह है। उसके आश्रय से जो अन्दर एकाकार होकर ज्ञान आवे, वह भेदरूप ज्ञान की पर्याय आती है। अभेद तो ज्ञान और आत्मा दोनों एक ही है। समझ में आया ? कहो, भीखाभाई ! ऐसा है। यहाँ तो कहते हैं। ऐसी बात है। दूसरे कहे वैसी नहीं। भगवान ऐसा कहते हैं।

ज्ञान का स्वभाव, ज्ञान वह आत्मा, ज्ञान वह आत्मा। आत्मा वह ज्ञान, आनन्द इत्यादि है। परन्तु ज्ञान, वह तो आत्मा ही है। वह आत्मा का अवलम्बन लेकर पर्याय में जो ज्ञान प्रगटे, वह भेदरूप ज्ञान। वह पर्याय सच्ची। समझ में आया ? वह ज्ञान अन्यमति आदि... समझ में आया ? लिया न ? अन्यमतियों ने अनेक प्रकार कहे। बहुत प्रकार। ऐसा हो जाये... ऐसा हो जाये। किसी का लक्ष्य करो ध्यान में, अग्नि का लक्ष्य करो, पृथ्वी का लक्ष्य करो, अमुक लक्ष्य करो, तो ज्ञान जलहल ज्योति प्रगटे। समझ में आया ? ऐसा आता है, हों ! उसमें भी आता है। ज्ञानार्णव में लो। ऐसा कल्पित करना, कमल कल्पित करना, कमल की पंखुड़ी कल्पित करना, पंखुड़ी में तीर्थंकर कल्पित करना और तीर्थंकर की ॐध्वनि आती है ऐसा कल्पित करना। यह तो विकल्प के काल में ऐसा विचार आया। बाकी उसके कारण अन्दर स्थिर हुआ जाता है, ज्ञान होता है—ऐसा नहीं है। आहाहा ! गजब बात। समझ में आया ? बात भारी होगी ? आहाहा !

सर्वज्ञ वीतरागदेव परमेश्वर ने तो यह कहा। ज्ञान की खान तो आत्मा है। वहाँ से ज्ञान आता है। ज्ञान कहीं बाहर से आवे ? ऐसा ज्ञान का स्वरूप। अल्प पर्याय में अधिक दिखाई दे तो ऐसा नहीं जानना कि वह बाहर से आया है, ऐसा कहते हैं। और विकल्प किया, इसलिए ज्ञान बढ़ा, ऐसा ज्ञान का स्वरूप नहीं है। ऐसा यहाँ कहते हैं। सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ हैं, भाई ! आत्मा ज्ञायकभाव है, ज्ञानभाव है, ज्ञायकभाव है, अभेद है। वह निश्चय है और उसके आश्रय से जो पर्याय प्रगट होती है, वह सब व्यवहार कहलाता है। भेदरूप पर्याय प्रगटे, प्रगटे उसमें से। समझ में आया ? मति की निर्मलता,

श्रुत की निर्मलता। वह सब निर्मलता हो अन्दर के आश्रय से। बाहर के आश्रय से नहीं होती। क्योंकि ज्ञान वह आत्मा, ऐसा कहा। ऐसा कहा न? **'णाणसरूवं अप्पाणं'** यह तो आत्मा ज्ञानस्वरूप है। जिसका स्वरूप है, उसमें से ज्ञान आता है। बाहर से नहीं आता।

वही आत्मा है... लो! ज्ञान वही आत्मा। यह तो आचारांग में भी आता है। टुकड़ा डाले। यह सब ... 'आया ते जिनाया, जिनाया ते आया। ...' आत्मा वह विज्ञान और विज्ञान वह आत्मा। वापस यह शब्द डाला परन्तु दूसरी जगह इसका मिलान नहीं मिलता। दूसरी जगह कहे, पाँच महाव्रत निर्जरा का ठिकाना, ऐसा कहते हैं। लो। पाँच महाव्रत निर्जरा के ठिकाने हैं। यहाँ कहे, पाँच महाव्रत विकल्प बन्ध के कारण आस्रव हैं। परन्तु ऐसी चारित्रदशा की भूमिका में ऐसे विकल्प अनुसार प्रवृत्ति होती है। समझ में आया? यह तो किसी को ऐसा लगे कि यह वीतराग का मार्ग ऐसा होगा? अपने तो अहिंसा, पर की दया पालना तो ज्ञान उघड़े। सच्चा बोले तो ज्ञान उघड़े। ब्रह्मचर्य पाले तो ज्ञान उघड़े। ऐसा भगवान ने कहा नहीं, कहते हैं। तू क्यों मानता है? ज्ञान, वह आत्मा है। ज्ञान, वह आत्मा है। वह आत्मा के आश्रय से ज्ञान होता है। पर्याय में ज्ञान भेदरूप निश्चय में से परन्तु व्यवहार इस प्रकार से होता है। समझ में आया? देखो, सब व्यवहार डालकर यहाँ यह डाला है।

आत्मा का स्वरूप है, उसको जानकर उसमें स्थिरता भाव करे,... लो! **'वियाणेहि'** है न? **'अप्पाणं तं वियाणेहि'** परन्तु यह जानना और विशेषपना जानना कब? यह जाना और फिर स्थिर हो। उसमें स्थिर हो। ऐसा विशेष निकाला। क्योंकि पंच महाव्रत की प्रवृत्ति है न। प्रवृत्ति में तो पीछे ऐसा ज्ञान, वह आत्मा और इसमें स्थिर हुआ हो, उसे पंच महाव्रत की प्रवृत्ति के विकल्प को व्रत कहा जाता है। इतनी सब शर्तें हों तो। समझ में आया?

तथा आत्मा का स्वरूप है,... यह आत्मा है और उस आत्मा का स्वभाव ही यह है, ऐसा कहते हैं। स्व रूप ही, आत्मा ज्ञानस्वरूप ही है। समझ में आया? **उसको जानकर उसमें स्थिरता भाव करे,...** आत्मा ज्ञान है, उसमें स्थिरता करे, वह चारित्र है। लो! महाव्रत आदि, वह व्यवहारचारित्र। परन्तु ऐसा चारित्र हो, उसे ऐसा व्यवहारचारित्र

होता है। ऐसा जहाँ ज्ञान नहीं, आत्मा में दृष्टि करके स्थिर हुआ नहीं, चारित्र नहीं, वहाँ पाँच महाव्रत को महाव्रत व्यवहार भी कहने में नहीं आता। समझ में आया ?

स्थिरता भाव करे, परद्रव्यों से रागद्वेष नहीं करे... देखो! परद्रव्य में इष्ट –अनिष्ट की कल्पना ही छोड़ दे। **वही निश्चय चारित्र है...** सच्चा चारित्र यह है। आहाहा! **इसलिए पूर्वोक्त महाव्रतादिक की प्रवृत्ति करके...** ऐसा कि महाव्रतादि का विकल्प वहाँ होता है, **उस ज्ञानस्वरूप आत्मा में लीन होना,...** मूल तो अन्दर स्थित नहीं हो सके, तब महाव्रत के विकल्प होते हैं, ऐसा कहते हैं। वरना तो अन्दर स्थिर होना, इसका नाम सच्चा चारित्र है। समझ में आया ? अच्छे अर्थ किये हैं।

इसलिए पूर्वोक्त... पूर्वोक्त कौन ? अभी तक महाव्रत और भावना तथा समिति कही न ? उन सभी **महाव्रतादिक की...** महाव्रत, समिति आदि की **प्रवृत्ति...** अर्थात् विकल्प के भाव जो कहे, **उस ज्ञानस्वरूप आत्मा में...** यह विकल्प में आवे, जब स्थिर नहीं हो सके, तब। परन्तु फिर विकल्प छोड़कर अन्दर में स्थिर हो और विकल्प के काल में भी अन्दर में जितना स्थिर हुआ है, वह चारित्र है। भारी काम। यह तो महाव्रत, वह चारित्र। चारित्र अंगीकार करो तो तुम्हारा कल्याण। जाओ।

आत्मा आनन्दमूर्ति भगवान में स्थिर होना, वह चारित्र है। आनन्द आनन्द का धाम। सच्चिदानन्द प्रभु, वह बड़ा साहेब का साहेब है। ऐसा भगवान ज्ञानस्वरूपी है। उसके साथ आनन्दस्वरूपी है, उसके साथ श्रद्धास्वरूप है, शान्तिस्वरूप, वीतरागस्वरूप है, ऐसा जो त्रिकाली। ज्ञानप्रधान से बात की है। ऐसे स्वभाव का ज्ञान करके उसमें स्थिर हो, प्रवृत्ति काल में भी उसमें स्थिर हुआ चारित्र, नहीं तो भी रह सके, इसलिए विकल्प आया, तो उसे छोड़कर भी स्थिरता करे, ऐसा कहते हैं। देखो न! छठवें गुणस्थान में ऐसे विकल्प होते हैं। ऐसे विकल्प हों परन्तु फिर स्थिर हो, सातवें में आवे, ऐसा कहते है।

प्रवृत्तिकाल में ऐसे हों। अन्दर चारित्र है। परन्तु उसे छोड़कर **आत्मा में लीन होना,...** छठवें गुणस्थान की भूमिका में ऐसे (विकल्प) होते हैं, परन्तु अन्त में उन्हें छोड़कर स्वरूप में स्थिर होना, वह शुद्धोपयोगरूपी चारित्र, वह आत्मा का है। यह शुभोपयोग वह चारित्र नहीं है। यह तो शुभोपयोग है, राग है। यह तो आस्रव है। शुभोपयोग

तो आस्रव है। तत्त्वार्थसूत्र में भी कहा है। पंच महाव्रत वे आस्रव के परिणाम हैं। तत्त्वार्थसूत्र में। अणुव्रत और महाव्रत वे आस्रव परिणाम हैं। संवर-निर्जरा के परिणाम वे नहीं हैं। तत्त्वार्थसूत्र में, मोक्षशास्त्र में कहा है, लो। जो दशलक्षणी पर्व में हमेशा पढ़ा जाता है। मिथ्यादृष्टि की कहाँ बात है! मोक्षशास्त्र की बात है। समझ में आया? पुरुषार्थसिद्धिउपाय में कहा नहीं? वह तो समकिती को कहा।

मुमुक्षु : जयधवल में भी है...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह निर्जरा होती है कहा है। निर्जरा कहाँ सच्ची... वह तो निमित्त को सम्मिलित करके प्रमाण का ज्ञान कराया।... आरोपित कहा। सम्यग्दर्शन-व्यवहार को आरोप किया है। ऐसा निमित्त में शुभभाव को निर्जरा का आरोप किया है। वह (निर्जरा) है नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि पूर्वोक्त जितनी प्रवृत्ति कही, वह प्रवृत्ति करके ज्ञानस्वरूप आत्मा में स्थिर होना। प्रवृत्ति तो ऐसा विकल्प छठवें गुणस्थान में होता है। जहाँ आत्मा निर्विकल्प आनन्द है, ऐसा भान पहले हुआ। पश्चात् स्वरूप में स्थिर हुआ, वह आनन्द में-आनन्द में लीन प्रचुर स्वसंवेदन, बहुत वेदन आनन्द का हो गया। उसकी भूमिका में ऐसे पंच महाव्रत के विकल्प हो, यह कहे वे। परन्तु उन्हें छोड़कर फिर अन्दर स्थिर हो। देखो! मेल कैसा लगाते हैं! समझ में आया? यह बात करे, फिर यह बात नहीं। चारित्र के दो प्रकार में बारह व्रत और पंच महाव्रत को कहे हैं। परन्तु यह कहा वह? पाठ में तो यह लिया। ३८ में। प्रवृत्ति की भूमिका में ऐसा राग होता है। इतनी ही मर्यादा में होता है। यह बतलाने के लिये बात की है। समझ में आया?

तथापि यहाँ तो कहते हैं कि स्वरूप में स्थिर हो, वह चारित्र है। चरणं चारित्रं। स्वरूप में रमना, वह चारित्र। स्वरूपे चरणं चारित्र। **पूर्वोक्त...** पूर्व उक्त—कही जितनी प्रवृत्ति, वह सब महाव्रतादि की प्रवृत्ति करके। भाषा देखो! **उस ज्ञानस्वरूप आत्मा में लीन होना, इस प्रकार उपदेश है।** ऐसा भगवान का उपदेश है। मुनि के लिये भी यह उपदेश है। अन्दर में शुद्धोपयोगरूप से स्थिर न रह सके, तब उन्हें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रदशा होती है, तब उसे पंच महाव्रत और समिति की भावना के ऐसे विकल्प होते हैं,

परन्तु उन्हें छोड़कर स्वरूप में जमे, शुद्धोपयोग में रमे, वह चारित्र है। समझ में आया? जिस जाति के संस्कार हों और वे संस्कार वापस अन्दर से खड़े हों, फट... फट...

अब यहाँ अर्थ में यह किया और वापस वहाँ कहा गाथा वह लिखी। ईर्यासमिति की। उसमें यह डाला। उपयोगपूर्वक... मूल प्रत्याख्यान की बात नहीं, ऐसा वापस लिखा, हों, उसमें श्रीमद् ने। वह शब्द अन्दर है। यह मूल प्रत्याख्यान की बात नहीं है। प्रत्याख्यान में भी दोष लगे तो लगने न देना। मूल प्रत्याख्यान की बात अलग है। ऐसा एक जगह कहा है।... में। जिस मनुष्य को जो बात रुचे, वह बात सामने रखे। ऐसा होता है? वस्तु हो, ऐसी होनी चाहिए न। वीतराग का मार्ग है। यह कहीं कोई पक्ष का नहीं है।

यहाँ तो यह भी सिद्ध किया है। एक सम्यग्दर्शन हुआ, राग से भिन्न पड़कर भान हुआ, इसलिए उसे केवलज्ञान होकर मोक्ष हो, ऐसा नहीं है। उस सम्यग्दर्शनसहित स्वरूप में रमणता की दशा प्रगट करे, तब उसकी प्रवृत्ति में पंच महाव्रतादि हों, उन्हें भी छोड़कर रमे, तब उसे मोक्ष होता है। इसके बिना चारित्र की इस रमणता के बिना मोक्ष नहीं होता। ऐसी बात है। कोई कहे, परन्तु अभी मोक्ष नहीं है; इसलिए हमारे पंच महाव्रत, वह चारित्र। क्योंकि अभी तो स्वर्ग में जाया जाता है। ऐसा नहीं है। इतना राग से छूटकर स्थिर हुआ, उतनी मुक्ति तो अभी है। समझ में आया? विकल्प से छूटकर जितना आनन्दस्वरूप निर्विकल्प भगवान आत्मा में जितना स्थिर हुआ, उतनी तो मुक्ति इस समय में ही है। पूर्ण मुक्ति रागरहित होगा, तब वह भाव होगा। आवे एकाध भव। होगा अन्त में। समझ में आया? पूर्ण के लिये उसका प्रयत्न है। अटका है, इसलिए स्वर्ग में गया।

यहाँ क्या कहा? **'जिणमग्गे जिणवरेहि जह भणियं'** जैनमार्ग में वीतराग ने जो कहा, उस ज्ञानस्वरूप आत्मा को जानकर उसमें स्थिर होना। निश्चयचारित्र। पंच महाव्रता के विकल्प हो, तब भी स्थिरता वह चारित्र। पश्चात तो विशेष उसे छोड़कर शुद्ध उपयोगरूप स्थिरता करे, वह खास चारित्र है। यह प्रवचनसार में ... कहा गया है ... वह चारित्र।

आगे कहते हैं कि जो इसप्रकार ज्ञान से ऐसे जानता है,... ऐसा ज्ञान करके कैसे जाने? क्या जाने? यह बात लेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-३९

आगे कहते हैं कि जो इस प्रकार ज्ञान से ऐसे जानता है, वह सम्यग्ज्ञानी है –

जीवाजीवविभत्ती जो जाणइ सो हवेइ सण्णाणी।
रायादिदोसरहिओ जिणसासणे [1]मोक्खमग्गोत्ति।।३९।।

जीवाजीवविभक्तिं यः जानाति स भवेत् सज्ज्ञानः।
रागादिदोषरहितः जिनशासने मोक्षमार्ग इति।।३९।।

नित जीव और अजीव का जो भेद जाने वही है।
सद् ज्ञानि रागादि विकारों बिना शिव-मग जैन में।।३९।।

अर्थ – जो पुरुष जीव और अजीव का भेद जानता है वह सम्यग्ज्ञानी होता है और रागादि दोषों से रहित होता है, इस प्रकार जिनशासन में मोक्षमार्ग है।

भावार्थ – जो जीव-अजीव पदार्थ का स्वरूप भेदरूप जानकर स्व-पर का भेद जानता है, वह सम्यग्ज्ञानी होता है और परद्रव्यों से रागद्वेष छोड़ने से ज्ञान में स्थिरता होने पर निश्चय सम्यक्चारित्र होता है, वही जिनमत में मोक्षमार्ग का स्वरूप कहा है। अन्य मतवालों ने अनेक प्रकार से कल्पना करके कहा है, वह मोक्षमार्ग नहीं है।।३९।।

प्रवचन-४७, गाथा-३९ से ४३, मंगलवार, आषाढ़ (गुजराती) कृष्ण १०, दिनांक २८-०७-१९७०

यह अष्टपाहुड, चारित्रपाहुड़। ३९वीं गाथा।

आगे कहते हैं कि जो इस प्रकार ज्ञान से ऐसे जानता है, वह सम्यग्ज्ञानी है –

जीवाजीवविभत्ती जो जाणइ सो हवेइ सण्णाणी।
रायादिदोसरहिओ जिणसासणे मोक्खमग्गोत्ति।।३९।।

जो पुरुष जीव और अजीव का भेद जानता है... आत्मा आनन्द, ज्ञानस्वरूप

१. पाठान्तरः – मोक्खमग्गुत्ति।

है और शरीरादि, कर्म आदि अजीव है। उस अजीव में मैं नहीं और मुझमें अजीव नहीं। ऐसा जब भेद करे। शरीर, वाणी, मन, कर्म की क्रिया, वह सब क्रिया मुझसे भिन्न है।

मुमुक्षु : ऐसा इसमें कहाँ है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या आया यह ? जीव और अजीव। इसमें आया या नहीं ? अजीव का द्रव्य, अजीव का गुण और अजीव की पर्याय। इसमें आ गया ? नहीं ? अजीव अर्थात् द्रव्य साधारण ? शरीर, वाणी, कर्म जो अजीवद्रव्य है और उसकी शक्ति गुण और उसकी वर्तमान पर्याय, इन तीनों से मैं भिन्न हूँ। कहो, समझ में आया ?

मुमुक्षु : भिन्न भले रहे परन्तु मदद तो ली जाती है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मदद किसकी ले ? भिन्न, फिर भिन्न की मदद क्या ?

मुमुक्षु : बड़े हों तो मदद नहीं लेना उनकी ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई नहीं लेता। आता नहीं। कोई जाता नहीं। कहो, समझ में आया ? नेमीदासभाई !

यहाँ तो कहते हैं कि जीव और अजीव दो भिन्न जाने। **वह सम्यग्ज्ञानी होता है...** इसका अर्थ ही यह कि कर्म, शरीर, वाणी आदि अजीव पदार्थ, उनसे लक्ष्य छोड़ दे अर्थात् कि वे मुझमें हैं नहीं। और जीव को भिन्न जाने अर्थात् जीव ज्ञानानन्द है, ऐसी अन्तर्दृष्टि करके अजीव से जीव को भिन्न जाने, तब जीव-अजीव को भिन्न जाना, विभक्त किया—ऐसा कहा जाता है। विभक्ति है न ? विभक्त किये। समझ में आया ?

अजीव का एक भी अंश, वह मुझमें नहीं और अजीव के अंश में मैं नहीं। मैं आत्मा हूँ, ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ और कर्म, शरीरादि अजीव हैं। मन, वाणी। यह पुद्गल, यह पैसा सब अजीव है, लो ! पैसे में मैं नहीं, शरीर में मैं नहीं, कर्म में मैं नहीं, वाणी में मैं नहीं। यह सब तो अजीव है। ऐसे जीव और अजीव के भेद जाने। विभक्त का अर्थ भेद किया। विभक्ति है न ? पृथक् पड़ना।

मुमुक्षु : दिगम्बर सब जीव-अजीव का भेद जानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई नहीं जानता। यह बातें करे। ऐसा कहते हैं, यह दिगम्बर में जन्में हैं, वे तो सब जीव-अजीव को जानते हैं। ऐसा।

मुमुक्षु : चारित्र लेने का रहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं। ज्ञान का ठिकाना नहीं। चारित्र कहाँ से ले? इसके लिये तो ज्ञान करते हैं। देह की एक समय की हिलने-चलने की क्रिया मुझसे अत्यन्त भिन्न है और उसकी क्रिया से मैं भिन्न हूँ, ऐसा जाने बिना यह शरीर की क्रिया होती है, वह मैंने की, यह मुझसे होती है, पर की दया पालने में मैंने पैर ऊँचा किया, मैंने पैर (ऐसे) रखा, इसलिए दया पली। (ऐसा माननेवाले ने) तो जीव और अजीव को भिन्न नहीं जाना। समझ में आया?

देखो! यह महाव्रत और इनकी पंच भावना यह सब वर्णन कर गये। परन्तु इसमें कहते हैं कि यह निश्चय दर्शन-ज्ञान और चारित्र हो तो वह प्रवृत्ति व्यवहार की व्यवहार कहलाती है। समझ में आया?

जो जीव और अजीव का भेद जानता है, वह सम्यग्ज्ञानी होता है... दो बातें। तीसरी अब इसके अन्दर। **और रागादि दोषों से रहित होता है,...** यह चारित्र। अब आस्रवरहित हो गया। पहले अजीव और जीव दोनों भिन्न जाने, पश्चात् पुण्य और पाप के विकल्प आस्रव है, उससे मैं भिन्न हूँ, ऐसा करके अन्दर स्थिर हो। क्योंकि पहले भिन्न तो जाना। पश्चात् अन्दर स्वरूप में पुण्य-पाप के भाव से भिन्न पड़कर स्वरूप में स्थिर हो, उसे चारित्र कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

जो पुरुष जीव और अजीव का भेद जानता है, वह सम्यग्ज्ञानी होता है... पश्चात्। **रागादि दोषों से रहित होता है,...** वीतरागपर्याय प्रगट करे। देखो! राग के, द्वेष के अंश से रहित निर्मल वीतरागी परिणति प्रगट करे, वह चारित्र। समझ में आया? **इस प्रकार जिनशासन में मोक्षमार्ग है।** इसे जैनशासन में मोक्षमार्ग कहा है। है न ऊपर शब्द? वीतरागमार्ग में, जैनशासन में जीव और अजीव की दो की क्रिया अत्यन्त भिन्न (जाने) और फिर ऐसा जीव का अजीव से भिन्न भान होने के पश्चात् राग और द्वेष के, पुण्य और पाप के भाव से रहित स्वरूपज्ञान में स्थिर हो, लीन हो, आनन्द की वृद्धि हो, उसे चारित्र कहते हैं। लो, यह वे महाव्रत और चारित्र चारित्र लाये थे, वह व्यवहार से बात थी। निश्चय ऐसा चारित्र हो, वहाँ महाव्रत के परिणाम को व्यवहारचारित्र कहा जाता है।

मुमुक्षु : नहीं तो व्यवहार भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं तो व्यवहार भी नहीं। व्यवहार कहाँ था ? समझ में आया ?

पाठ में है न ? यह देखो न ! **'जिणसासणे मोक्खमग्गोत्ति '** जिनशासन में तो इसे मोक्षमार्ग कहा है। पुण्य-पाप और अजीव से जीव भिन्न, ऐसा सम्यग्दर्शन और ज्ञान (हो), ज्ञानप्रधान से यहाँ कथन है। और पश्चात् स्वरूप में, आनन्द में लीन होने से राग-द्वेषरहित जो स्थिरता प्रगट हो, उसे भगवान ने जैनशासन में चारित्र कहा है। और उस सम्यग्ज्ञानसहित चारित्र मुक्ति का कारण—मार्ग है। कहो, समझ में आया ? पहले पंच महाव्रत की बहुत बात की न सब ? वापस उसका स्पष्टीकरण यहाँ करते हैं। पंच महाव्रत थे, वह तो विकल्प की बात थी। ऐसा चारित्र हो, वहाँ ऐसे अट्ठाईस मूलगुण के, पंच महाव्रत के विकल्प होते हैं। श्रावक को आत्मा के आनन्द का भान और आंशिक आनन्द की दशा प्रगट हुई है, वह उसका श्रावकपना है, परन्तु उसमें बारह प्रकार के व्रत अथवा ग्यारह प्रकार की प्रतिमा के विकल्प उठे, वह व्यवहार ऐसा होता है। समझ में आया ? परन्तु जिसे यह अजीव से जीव भिन्न है, (इसका भान नहीं उसे चारित्र नहीं हो सकता)। ऐसा तो कहे कि हमने तो अजीव और जीव (भिन्न जाने हैं), हमारे तो भेदज्ञान है।

मुमुक्षु : होवे ही, परन्तु दिगम्बर में जन्मे उसका लाभ क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु दिगम्बर अर्थात् क्या ? वाडा में जन्मे (इसलिए जैन) हो गये ? कहते हैं, वे जयपुरवाले इन्द्रलाल शास्त्री (कहते थे) दिगम्बर में जन्मे वे सब भेदज्ञानी तो है। अब उन्हें चारित्र लेना है। लो !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : भेदज्ञानी। तीर्थंकर तीन ज्ञान लेकर आते हैं न ? सम्यग्दर्शन तो लेकर आते हैं। भेदज्ञान तो लेकर आते हैं। फिर उन्हें चारित्र रहा। इसी तरह हम दिगम्बर में जन्मे। कहो, समझ में आया ? किसे कहना दिगम्बर ? यहाँ तो कहते हैं।

यहाँ तो राग के विकल्प की वृत्ति भी मेरे स्वरूप में नहीं है। दया, दान, व्रत के विकल्प उठें, वे भी मेरे स्वरूप में नहीं है। ऐसी वृत्ति रहित आत्मा, उसकी श्रद्धा, इसका नाम दिगम्बर श्रद्धा कहा जाता है। समझ में आया ? जैनशासन में मोक्ष का मार्ग यह कहा

है। वीतरागता, वह मोक्षमार्ग होगा या राग, वह मोक्षमार्ग होगा? ऐसा कहते हैं। वीतरागता। जड़ से भिन्न चैतन्य वीतरागी स्वभाव, उसका ज्ञान हुआ और उसमें रागरहित स्थिरता हो, वह चारित्र है। वह वीतराग की पर्याय, वह जैनशासन का मोक्षमार्ग है। समझ में आया? वहाँ पंच महाव्रतादि के विकल्प का ज्ञान कराया, परन्तु वह मोक्षमार्ग है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : संयमचरण चारित्र।

पूज्य गुरुदेवश्री : संयमचरण चारित्र कहा न, वह व्यवहार। उसे ऐसा अन्दर निश्चय होय, तब ऐसा व्यवहार होता है, ऐसा ज्ञान कराया है। व्यवहार निश्चय को बतलाता है कि ऐसा अन्दर निश्चय होता है। समझ में आया?

भावार्थ – जो जीव–अजीव पदार्थ का स्वरूप भेदरूप जानकर... भिन्न जानकर। **स्व–पर का भेद जानता है,...** आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, वह स्वयं। और इसके अतिरिक्त रागादि सब वास्तव में तो वह अजीव है। समझ में आया? पुण्य–पाप के विकल्प भी अजीव हैं। वह जीव का स्वभाव (अर्थात् कि) जीव नहीं है। महाव्रत का विकल्प भी अजीव है। समझ में आया? मार्ग तो अलौकिक है, भाई! लोगों ने लौकिक कर डाला है, वह कहीं मार्ग अलौकिक फीटीने लौकिक नहीं हो जायेगा। यह अलौकिक वीतरागमार्ग है।

पहली तो दृष्टि में वीतरागता आनी चाहिए, ऐसा कहते हैं। ज्ञान की बात की है न? कि राग और अजीव से भिन्न भगवान आत्मा है, उसका ज्ञान कब हो? जीव के स्वभाव सन्मुख हो, राग और अजीव से विमुख हो, तब उसका ज्ञान जीव–अजीव का भिन्न हो। समझ में आया? और पश्चात् राग के परिणाम से भिन्न पड़कर, स्थिर हो। दृष्टि में भिन्न तो पड़ा हुआ था परन्तु अस्थिरता थी, उसे टालकर स्वरूप में स्थिर हो, उसे जैनशासन में मोक्षमार्ग कहा जाता है।

परद्रव्यों से रागद्वेष छोड़ने से ज्ञान में स्थिरता होने पर... देखो! ज्ञान में स्थिरता हो। **निश्चय सम्यक्चारित्र होता है,...** इसका नाम निश्चयचारित्र है। **वही जिनमत में मोक्षमार्ग का स्वरूप कहा है।** इस जिनमत में मोक्षमार्ग का स्वरूप इसे

कहा गया है। **अन्य मतवालों ने अनेक प्रकार से कल्पना करके कहा है, वह मोक्षमार्ग नहीं है।** लो! जैन के अतिरिक्त अन्य, जैन सम्प्रदाय में भी अन्य कहे, वे सब अन्यमति ही हैं। समझ में आया? **जिनमत में मोक्षमार्ग का स्वरूप कहा है। अन्य मतवालों ने अनेक प्रकार से कल्पना करके कहा है, वह मोक्षमार्ग नहीं है।** मोक्षमार्ग नहीं है।

गाथा-४०

आगे इस प्रकार मोक्षमार्ग को जानकर श्रद्धा सहित इसमें प्रवृत्ति करता है, वह शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त करता है, इस प्रकार कहते हैं –

दंसणणाणचरित्तं तिण्णि वि जाणेह परमसद्धाए।
जं जाणिऊण जोई अइरेण लहंति णिव्वाणं।।४०।।

दर्शनज्ञानचरित्रं त्रीण्यपि जानीहि परमश्रद्धया।
यत् ज्ञात्वा योगिनः अचिरेण लभंते निर्वाणम्।।४०।।

जानों परम श्रद्धान से दृग ज्ञान चारित्र तीन ही।
ये जानकर अति शीघ्र योगी प्राप्त करते मोक्ष ही।।४०।।

***अर्थ* – हे भव्य ! तू दर्शन–ज्ञान–चारित्र इन तीनों को परमश्रद्धा से जान, जिसको जानकर योगी मुनि थोड़े ही काल में निर्वाण को प्राप्त करता है।**

***भावार्थ* – सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र त्रयात्मक मोक्षमार्ग है, इसको श्रद्धापूर्वक जानने का उपदेश है, क्योंकि इसको जानने से मुनियों को मोक्ष की प्राप्ति होती है।।४०।।**

गाथा-४० पर प्रवचन

आगे इस प्रकार मोक्षमार्ग को जानकर श्रद्धा सहित इसमें प्रवृत्ति करता है,... परम श्रद्धा। परम श्रद्धा से दर्शन–ज्ञान–चारित्र को जाने, ऐसा कहते हैं। **जानकर**

(परम) श्रद्धा... मोक्षमार्ग को जानकर श्रद्धासहित इसमें प्रवृत्ति करता है, वह शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त करता है, इस प्रकार कहते हैं –

दंसणणाणचरित्तं तिण्णि वि जाणेह परमसद्धाए।
जं जाणिऊण जोई अइरेण लहंति णिव्वाणं।।४०।।

देखा! तीन को जानना परम श्रद्धा से। ४०-४०। ४० है न? जानने के ऊपर वजन है। परन्तु परम श्रद्धा से जानना। ऐसा का ऐसा अन्दर कैसे होगा, कैसे नहीं। कैसे होगा... बिना भान के मानना, ऐसा नहीं।

हे भव्य ! लो! यहाँ तो भव्य को कहा है। मोक्ष होने के योग्य है, उसकी बात यहाँ की है। **तू दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीनों को परमश्रद्धा से जान,...** परम श्रद्धा से जान।

मुमुक्षु : परम श्रद्धा अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : परम श्रद्धा अर्थात् पक्का विश्वास रख कि यह सम्यग्दर्शन पर से भिन्न निर्विकल्प, वही सम्यग्दर्शन है। राग से और पर से भिन्न ज्ञान, वही ज्ञान है। राग से भिन्न स्वरूप की स्थिरता, वह चारित्र है। ऐसा परम श्रद्धा से जान। विश्वास में अकेली श्रद्धा तो कही दर्शन को। परम श्रद्धा-विश्वास अन्दर। अहो! भगवान आत्मा परिपूर्ण आनन्द और ज्ञानस्वभावी वस्तु है। वह राग, विकल्प, शरीर और कर्म से रहित है। समझ में आया?

लो! यह अभी कहा था इन्होंने। वह अपने चलता था न, वहाँ। कर्म रुकावट नहीं। आत्मा का अपना दोष है। वहाँ चला होगा। आणंदजी कहते थे। 'दावणगिरी'' '...विजय'? कौन था? अभी तुमने मुम्बई की बात नहीं की थी? ऐसा कहते हैं यह कानजीमुनि कहते हैं कि कर्म का असर नहीं है। यह असर न हो तो लावे नहीं केवलज्ञान। भगवान ने कैसे निश्चय केवलज्ञान प्रगट किया। सब इस प्रकार के (कुतर्क करते हैं)। इस प्रकार वहाँ मुम्बई में बात चली थी। परन्तु पुरुषार्थ पर्याय का, अपना स्वतन्त्र पुरुषार्थ है। कर्म के कारण से अटका है, ऐसा है नहीं। सबको विपरीतता कर्म की घुस गयी है।

मुमुक्षु : बोटाद के हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बोटाद के हैं। वे गुजर गये। बोटाद के थे। नहीं ? गुजर गये न ? उन्हें दमा था, दमा-श्वास। एक अमृतविजय, नन्दनविजय सब बोटाद के।

मुमुक्षु : तीन...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ तीन। खबर है। समझ में आया ? उसे कहते होंगे कोई यह कर्म के असर की कुछ नहीं ? कर्म आत्मा को रोकता नहीं तो कर दे न केवलज्ञान।

मुमुक्षु : ...केवलज्ञान क्यों नहीं होता ?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्यों नहीं होता ? पुरुषार्थ तो बहुत करता है। करता नहीं। जितना पुरुषार्थ करना चाहिए, उतना नहीं करता और मानता है कि पुरुषार्थ बहुत करता हूँ। यही उसकी विपरीत मान्यता है। आहाहा ! स्वभाव में स्थिर होने के लिये जितना पुरुषार्थ चाहिए, उतना नहीं है। और उतना होवे तो केवलज्ञान हुए बिना नहीं रहे। क्योंकि थोड़ा दे और कार्य अधिक चाहे, वह कहीं कारण-कार्य की श्रद्धा नहीं है। समझ में आया ? सब यह चिल्लाहट करते हैं न। एक के एक। रामविजय वहाँ उस दिन कहते थे। त्रिलोकनाथ परम उपकारी भगवान कहते हैं, कर्म के कारण भटका। तुम कहते हो कि अपनी भूल के कारण से भटका। उस भूल के कारण से भटका। कर्म को तो खबर भी नहीं। वह तो जड़ है।

यहाँ क्या कहा ? अजीव से भिन्न करे तो कर्म से भिन्न किया, तब उसे भान हुआ न ? कर्म तो अजीव है। अजीव से भिन्न करके आत्मा को जाने, तब अजीव से भिन्न करने का पुरुषार्थ स्वयं किया। वह कर्म ने कराया था और कर्म से अटका था, ऐसा है नहीं। आहाहा ! गजब बात, भाई ! पुरुषार्थ चैतन्य के आनन्द में जितना चाहिए, उतना करता नहीं, इसलिए वह अटका हुआ है। कर्म ने उसे अटकाया, जड़ पदार्थ परद्रव्य अटकाता है, (यह) एकदम झूठ बात है। इसलिए तो यहाँ पहले बात की अजीव से भिन्न...

मुमुक्षु : पुरुषार्थ तो उठाना चाहिए न।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुषार्थ नहीं उठाता, नहीं करता इसलिए। पर्याय का पुरुषार्थ स्वतन्त्र है। कर्म के कारण से नहीं। यह गजब बात। यह और सवेरे उसमें कहा। चला होगा, वहाँ बात चली होगी मुम्बई में। यहाँ से बात बाहर चली है न ? कर्म से कुछ आत्मा को नुकसान-लाभ नहीं होता। स्वयं अपने उल्टे पुरुषार्थ से अपने को नुकसान करता है।

और सुलटे पुरुषार्थ से अपने को लाभ करता है। वस्तु का यह स्वरूप है।

इसीलिए तो यहाँ पहले अजीव और जीव भिन्न (कर, ऐसा कहा) तो कर्म अजीव नहीं? अजीव से भिन्न कर। अजीव को जीव के कारण से अटका है, ऐसा नहीं। तू स्वयं तेरी पर्याय की विपरीतता से अजीव में अटका है। उसे भिन्न कर। भगवान आत्मा अजीव से भिन्न चीज़ है, इसलिए कर्म मुझे कुछ रोके या लाभ करे, (ऐसा नहीं है)। जो चीज़ अपने में नहीं, वह लाभ करे या नुकसान करे, यह किस प्रकार हो? समझ में आया? कर्म की भारी विपरीतता घुस गयी है। जैन में कर्म... कर्म। उनको ईश्वर। ईश्वर कर्ता है, तो यह कहे हमारे कर्म कर्ता है। उनको चैतन्य ईश्वर, इनका जड़ ईश्वर। ऐसा है नहीं।

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु पूर्णानन्द का नाथ स्वयं अपने को जानता नहीं,उसकी भूल स्वयं की है और इसमें स्थिर नहीं होता, यह भी उसकी अपनी भूल है। कोई उसे चारित्रमोह का उदय स्थिर नहीं होने देता, ऐसा नहीं है। यहाँ तो देखो न यह कहा न? राग-द्वेष छोड़, ऐसा कहा न? कर्म छूटे तो राग-द्वेष छूटे, ऐसा कहा है?

हे भव्य ! तू दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीनों को... इन तीनों को। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को **परमश्रद्धा से...** परमश्रद्धा से। आहाहा! ऐसा कहते हैं कि इसे विश्वास ऐसा (कर)। ऐसी की ऐसी श्रद्धा, ऐसा नहीं। परम श्रद्धा। इतना भरोसा अन्दर ला कि यह वस्तु दर्शन है, वह (स्व के) आश्रय से हुआ समकित, वह ऐसा ही होता है। स्व के आश्रय से हुआ जो ज्ञान, वह ऐसा ही होता है और स्वरूप में स्थिरता, वह चारित्र इसे ही कहते हैं; दूसरे को चारित्र नहीं कहते। समझ में आया? अभी तो निर्णय करने का श्रद्धा का ठिकाना नहीं होता। उसे चारित्र और व्रत कहाँ से आ गये तप और उपवास? सब लंघन है। समझ में आया?

दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीनों को परमश्रद्धा से जान, जिसको जानकर योगी मुनि थोड़े ही काल में निर्वाण को प्राप्त करता है। देखा! **'अचिरेण'** शब्द प्रयोग किया है न? अल्प काल में। जिसकी आत्मा की गति में श्रद्धा का पुरुषार्थ, ज्ञान का, स्थिरता का चला, वह अल्प काल में केवलज्ञान को प्राप्त करेगा। अल्प काल में वह सिद्धपद को पायेगा। समझ में आया? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र त्रयात्मक मोक्षमार्ग है। लो! उमास्वामी का सूत्र। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-**

चारित्र त्रयात्मक मोक्षमार्ग है,... अर्थात् तीन स्वरूप, मोक्षमार्ग तीन स्वरूप एक मोक्षमार्ग। तीन मोक्षमार्ग नहीं। सम्यग्दर्शन—आत्मा के अनुभव में प्रतीति; सम्यग्ज्ञान—आत्मा का स्वसंवेदन ज्ञान और चारित्र—आत्मा में शुद्ध आनन्द में, लीनता की रमणता, ऐसा जो चारित्र, यह तीन होकर एक मोक्षमार्ग है।

इसको श्रद्धापूर्वक जानने का उपदेश है,... जोर यहाँ है। ऐसा का ऐसा जानना-वाँचना, ऐसा नहीं - ऐसा कहते हैं। उसे विश्वास... विश्वास (आवे कि) भगवान पूर्णस्वरूप शुद्ध आनन्द है। क्षेत्र भले विशाल न हो परन्तु उसका स्वभाव, स्वभाव, अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द ऐसी तो अनन्त शक्तियाँ पड़ी ही हैं। ऐसे शक्तिवन्त को श्रद्धा, ज्ञान और रमणता में लेना। उसका श्रद्धा-विश्वास करके ले। समझ में आया? विश्वास से सब अटका है, ऐसा कहते हैं। विश्वास से जहाज चलते हैं, ऐसा नहीं कहते? इसी प्रकार यह आत्मा (अविश्वास से अटका है)। राग-द्वेष का भाव हो, चारित्र भले न हो। समझ में आया? परन्तु कहते हैं कि परम श्रद्धा से तीन ऐसे हों, ऐसा तो जान, ऐसा कहते हैं, भाई! समझ में आया? ऐसे तीन हों, ऐसा परमश्रद्धा से जान - ऐसा यहाँ तो पहले कहते हैं न? समझ में आया?

ज्ञानस्वभाव—आत्मा का ज्ञानस्वभाव शक्ति अनन्त है। क्योंकि जिसका स्वभाव है, उसमें उसे मर्यादा नहीं होती। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, श्रद्धा और दर्शनोपयोग अनन्त दोनों। दर्शन—श्रद्धा वह श्रद्धागुण है, वह अनन्त है। चारित्र वीतरागता, वह अनन्त है। ऐसे अनन्त गुणों का समुदाय आत्मा, उसे... उसे उसकी श्रद्धा—परम श्रद्धा से उसकी श्रद्धा ऐसी होती है, ऐसा जान। समझ में आया? मूल वस्तु का ठिकाना नहीं होता और ऊपर से करने लगा यह व्रत, तप और आंबेल और ओळी। फिर कहता है कि जन्म-मरण मिटे नहीं। परन्तु कहाँ से मिटे? जो उपाय है, वह तो लिया नहीं।

कहते हैं कि ऐसे को परमश्रद्धा से जान। **इसको जानने से...** योगी। **'योगिन:'** शब्द है न? मुनि की बात है न प्रधानता से। **'योगिन:'** अर्थात् जिसने आत्मा शुद्ध आनन्द और ज्ञान का वीतरागस्वभाव का भण्डार है, उसमें जितने वर्तमान परिणति को जोड़ा है, ऐसे त्रिकाल स्वभाव में वर्तमान पर्याय को जिसने स्थिर कर दिया है, ऐसा योगी। उसे योगी कहते हैं। यह अन्यमत के बाबा और बाबा, वे योगी, बाबा-बाबा योगी है नहीं। समझ में आया?

आत्मा पूर्ण स्वरूप ज्ञान से, श्रद्धा से, आनन्द से इत्यादि अनन्त शक्तियों से, वस्तु एक है, उसका स्वभाव भी पूर्ण एक और अखण्ड है। ऐसे पूर्ण स्वभाव की श्रद्धा करना, जानना और स्थिर होना। उसे—तीन को भी तू परम श्रद्धा से जान, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा समकित होता है, ऐसा परमश्रद्धा से जान, ऐसा ही ज्ञान होता है, ऐसा परमश्रद्धा से जान, स्वरूप में रागरहित स्थिरतारूप चारित्र ऐसा ही होता है, ऐसा परम श्रद्धा से जान। आहाहा! मार्ग गजब, भाई! कहो, प्रकाशदासजी! कहाँ गये? यह मार्ग वह कैसा? पंच महाव्रत पालो, अणुव्रत पालो। जाओ। जिसे व्रत हो, उसे समकित और ज्ञान तो होता है। ऐसे व्रत तो खोखा अनन्त बार पालन किये। नौवें ग्रैवेयक गया वहाँ। अनन्त बार खोखा किया। भावपाहुड़ में तो बहुत लिखा है। अनन्त बार। हे मुनि! द्रव्यलिंग अनन्त बार पालन किया, परन्तु भाव उसने शुद्ध चैतन्य की-श्रद्धा-ज्ञान किया नहीं। समझ में आया? पंच महाव्रत के खोखा अनन्त बार पालन किये। वह तो विकल्प-राग था।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तुस्थिति तो यह है। देखो न! है न अन्दर। इसका अर्थ भी होता है न।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्णय करना। निर्णय करने का किसी को नहीं सौंपना। और किसी के साथ मिलान करूँ तो निर्णय करूँ, ऐसा नहीं हाँकना। एक बार यहाँ थे न हमारे ब्रह्मचारी थे एक। चम्पालाल। फिर उनके साथ बात हुई कि देखो, हाथ की क्रिया है, उसे आत्मा स्पर्श नहीं करता। देखो, द्रव्यसंग्रह में ऐसा है। हाथ की क्रिया के राग का कर्ता अज्ञानभाव से सही; और ज्ञानभाव से ज्ञान की पर्याय का कर्ता। परन्तु हाथ की क्रिया का कर्ता .... वह आत्मा नहीं। तब कहे, मैं भूरीबाई को पूछकर निर्णय करूँगा। इन्दौर में एक भूरीबाई थी। बहुत प्रसिद्ध थी। छोटी उम्र में विद्वान पढ़ी बहुत थी। बहुत पढ़ी। गोम्मटसार और वह। वह किसी साधु को मानती नहीं। भूरीबाई थी, वह किसी को साधु मानती नहीं। किसी को व्रतधारी माने नहीं। स्वयं मरे तब तक कभी व्रत लिये नहीं। भूरीबाई... कब? तुमने भूरीबाई को देखा था भूरीबाई? इन्दौर। बहुत वाँचन बहुत। किसी को साधु माने नहीं। स्वयं ने व्रत लिये नहीं। व्रत-ब्रत की अभी योग्यता नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... परन्तु... अन्त में मरते हुए दो प्रतिमा ली थी। इसने तो अन्त तक वह भी नहीं। वाँचन बहुत था भूरीबाई को। परन्तु यह उसका सब जानपना। वह चम्पालाल सेठ थे। एक ब्रह्मचारी थे। चम्पालाल। २००० के वर्ष में यहाँ थे। चम्पालाल थे।

मुमुक्षु : चम्पालाल सेठी।

पूज्य गुरुदेवश्री : सेठी। वे हमारे साथ दो महीने रहे थे। फिर कहे, यह हस्त की क्रिया आत्मा नहीं करता? हाथ ऐसे-ऐसे हिलावे वह। कहे कि भूरीबाई को पूछूँगा। परन्तु यह भूराभाई बैठा है अन्दर, उसे निर्णय कर न। तू भूराभाई बैठा है अन्दर में। उज्ज्वल चैतन्यमूर्ति ज्ञान करे। ज्ञान, वह हाथ को हिलावे, यह करता ही नहीं, यह यहाँ निर्णय कर न। किसी को सौंपकर क्या काम? कि उसे पूछूँगा। वह वह पूछे तो वापस तुझे बैठाना है न?

मुमुक्षु : वह हाँ करे तो हाँ और न करे तो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका हेतु इतना यह। परन्तु वह बाई बहुत थी न। और यह पहले-पहले सुना यहाँ। २००० के वर्ष की बात है। २०००। २६ वर्ष हुए। विहार में यहाँ साथ घूमते थे। दो महीने साथ में चलते थे। हाथ से पकाकर खाये। मिर्ची सुखाये। यह सुखाकर सब पानी भरकर आवे, पकाकर खाये।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरदेवश्री : नहीं। नहीं। वे तो ब्रह्मचारी थे। शेठी थे और उनका नाम— चम्पालाल सेठी। दो प्रतिमा थीं।

परमश्रद्धा से जान, जिसको जानकर योगी... अर्थात् स्वरूप में जिसका जुड़ान स्थिर हो गया है। आहाहा! जिसके स्वभाव में जिसकी परिणति स्थिर हो गयी है। वे जीव थोड़े काल में केवल(ज्ञान) को पायेंगे, मोक्ष को पायेंगे। राग की क्रिया और व्रत की क्रिया करते-करते कोई केवल(ज्ञान) पायेगा, ऐसा है नहीं। समझ में आया? **श्रद्धापूर्वक जानने का उपदेश है, क्योंकि इसको जानने से मुनियों को मोक्ष की प्राप्ति होती है।** लो!

गाथा-४१

आगे कहते हैं कि इस प्रकार निश्चयचारित्ररूप ज्ञान का स्वरूप कहा, जो इसको पाते हैं, वे शिवरूप मन्दिर में रहनेवाले होते हैं –

[१]पाऊण णाणसलिलं णिम्मलसुविशुद्धभावसंजुता।
होंति सिवालयवासी तिहुवणचूड़ामणी सिद्धा।।४१।।

[२]प्राप्य ज्ञानसलिलं निर्मलसुविशुद्धभावसंयुक्ताः।
भवंति शिवालयवासिनः त्रिभुवनचूड़ामणयः सिद्धाः।।४१।।

नित ज्ञान-जल पी सुनिर्मल सुविशुद्ध भाव-सहित हुए।
त्रिभुवन शिखर शिव लोक-वासी सिद्ध भी वे ही हुए।।४१।।

अर्थ – जो पुरुष इस जिनभाषित ज्ञानरूप जल को प्राप्त करके अपने निर्मल भले प्रकार विशुद्धभाव संयुक्त होते हैं, वे पुरुष तीन भुवन के चूड़ामणि और शिवालय अर्थात् मोक्षरूपी मन्दिर में रहनेवाले सिद्ध परमेष्ठी होते हैं।

भावार्थ – जैसे जल से स्नान करके शुद्ध होकर उत्तम पुरुष महल में निवास करते हैं, वैसे ही यह ज्ञान जल के समान है और आत्मा के रागादिक मैल लगने से मलिनता होती है, इसलिए इस ज्ञानरूप जल से रागादिक मल को धोकर जो अपनी आत्मा को शुद्ध करते हैं, वे मुक्तिरूप महल में रहकर आनन्द भोगते हैं, उनको तीन भुवन के शिरोमणि सिद्ध कहते हैं।।४१।।

गाथा-४१ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि इस प्रकार निश्चयचारित्ररूप ज्ञान का स्वरूप कहा,... निश्चयचारित्ररूप ज्ञान का स्वरूप। **जो इसको पाते हैं, वे शिवरूप मन्दिर में रहनेवाले होते हैं –** शिवालयवासी।

---

१. पाठान्तरः – पीऊण। २. पाठान्तरः – पीत्वा

पाऊण णाणसलिलं णिम्मलसुविशुद्धभावसंजुता।
होंति सिवालयवासी तिहुवणचूड़ामणी सिद्धा।।४१।।

जो पुरुष इस जिनभाषित ज्ञानरूप जल को प्राप्त करके... भगवान ने कहा, वैसे ज्ञानरूप जल को पाकर। राग और पुण्य के विकल्प से, शरीर से पृथक् ऐसा आत्मा, ऐसे आत्मा का अन्दर ज्ञान करके **अपने निर्मल भले प्रकार विशुद्धभाव संयुक्त होते हैं,...** लो! जैसे जल से स्नान करते हैं, वैसे इस निर्मल ज्ञान द्वारा मैल को धो डाला है कि मैल मेरा स्वरूप नहीं है। समझ में आया? **ज्ञानरूप जल को प्राप्त करके अपने निर्मल भले प्रकार विशुद्धभाव संयुक्त होते हैं,...** मैल को टालकर विशुद्धभावसहित होते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? बहुत संक्षिप्त शब्दों में इसमें लिया है।

अपने निर्मल भले प्रकार विशुद्धभाव संयुक्त होते हैं,... विशुद्ध शब्द से यहाँ पवित्र वीतरागभाव है। यहाँ विशुद्ध अर्थात् शुभविकल्प नहीं। शुभ को विशुद्ध कहा जाता है। यहाँ वह नहीं। यहाँ तो विशेष शुद्ध। **अपने निर्मल भले प्रकार विशुद्धभाव संयुक्त होते हैं, वे पुरुष तीन भुवन के चूड़ामणि...** तीन भुवन के चूड़ामणि **और शिवालय...** शिवालय। यह शिव-आलय—मुक्ति का स्थान। **अर्थात् मोक्षरूपी मन्दिर में रहनेवाले सिद्ध परमेष्ठी होते हैं।** शिवालय के अन्दर बसनेवाले। शिवालय अर्थात् शंकर-शिवालय नहीं। शिव अर्थात् शंकर, ऐसा नहीं। यहाँ तो शिवालय अर्थात् आत्मा का सिद्धपद, उसका जो स्थान, मुक्ति अन्दर पवित्रधाम में अन्दर रहे, उसका नाम शिवालय कहा जाता है। तीन में चूड़ामणि शिवस्थान में।... लोक के अन्त में है न? मूल तो लोक के अन्त में यहाँ है। राग का अन्त पूरा होकर शिवालाय यहाँ प्राप्त होता है। आहाहा! राग और व्रत का जो विकल्प है, उससे भी रहित होकर शिवपद तो यहाँ प्राप्त होता है। यहाँ देह में। समझ में आया?

देह में आत्मा भिन्न पड़कर स्वरूप की पूर्ण दशा केवलज्ञान को यहाँ का यहाँ पाता है। पश्चात् उसका स्वभाव है तो ऊर्ध्व जाता है। ऊर्ध्व जाए, ऐसे भगवान विराजते हैं, वहाँ रहता है। रहता है अर्थात् अपना आत्मा वहाँ स्थित हो जाता है। वहाँ कोई घर नहीं है। एक घर में एक रहे और दूसरे घर में यह दूसरे सिद्ध जाकर रहे, (ऐसा नहीं है)। खाली

जगह है, उसमें अपने निजपद की रमणता में रमते ऐसे अनन्त सिद्ध वहाँ हैं, वह स्वयं सिद्ध होकर रहते हैं। उसे शिवालय मन्दिर में बसनेवाले कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

जैसे जल से स्नान करके शुद्ध होकर उत्तम पुरुष महल में निवास करते हैं,... स्नान करके उत्तम पुरुष महल में निवास करे। **वैसे ही यह ज्ञान जल के समान है और आत्मा के रागादिक मैल लगने से मलिनता होती है,...** रागादिभाव—शुभ परिणाम आदि भाव, वह मलिन है। शुभभाव, व्रतादि का विकल्प मलिन है। आहाहा! वह मलिनता होवे तो उसे ज्ञानरूप जल से रागादि मल धोकर, अर्थात् कि ज्ञानस्वभाव में स्थिरता होने से राग धुल जाता है अर्थात् राग नष्ट हो जाता है और निर्मलता प्रगट होती है, उसने जल से—निर्मल ज्ञान से स्नान किया, ऐसा कहा जाता है।

अपनी आत्मा को शुद्ध करते हैं,... अपने आत्मा को पवित्र करते हैं। **वे मुक्तिरूप महल में रहकर आनन्द भोगते हैं,...** आत्मा की निर्मल पवित्र दशा प्रगट हुई, वह अन्दर में आत्मा आनन्द को भोगता है। संसार के दुःख को भोगता था, मुक्ति में आनन्द को भोगता है—अपनी दशा को, उसका नाम मुक्ति। समझ में आया? **उनको तीन भुवन के शिरोमणि सिद्ध कहते हैं।** तीन भुवन के सिर पर रखे यहाँ से तो। लोकाग्र में हैं न सिद्ध? चूड़ामणि। तीन भुवन के शिरोमणि सिद्ध कहते हैं। 'सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु' आता है न? लोगस्स में आता है। भगवानजीभाई! किया था?

मुमुक्षु : बहुत बार।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत बार। ठीक। 'सिद्धा सिद्धिं' हे सिद्ध भगवान! मुझे सिद्धपद दिखाओ। दिखाओ, वह कब दिखे? केवलज्ञान हो, तब सिद्धपद दिखता है। लोग्गस में आता है। दृष्टि की, ज्ञान की कुछ खबर नहीं होती और प्रतिक्रमण किये और आसन झाड़कर खड़े हो गये।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : झाड़े नहीं। धूल लगी हो तो झाड़े न?

मुमुक्षु : कचरा घर ले जाया जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : कचरा घर ले जाया जाये ? पैर का कचरा कोई उड़कर आया हो। वापस लपटेना हो तो लपेटने में कचरा साथ में लपेटना ? यहाँ चौड़ा आसन करके बैठा हो, उसमें तिनका आ गया, कोई शरीर पर आ गया। शरीर खड़ा हुआ उसमें तिनका वस्त्र पर गिर गया। खड़े होकर झाड़ना चाहिए न। बाँधना, वापस लपेटना किस प्रकार ? आहाहा !

आत्मा के राग के विकल्प से भिन्न पड़ी हुई निर्मल दशा बिना उसका मोक्ष का मार्ग और मोक्ष है नहीं, ऐसा कहते हैं।

गाथा-४२

आगे कहते हैं कि जो ज्ञानगुण से रहित हैं, वे इष्ट वस्तु को नहीं पाते हैं, इसलिए गुण दोष को जानने के लिए ज्ञान को भले प्रकार से जानना –

णाणगुणेहिं विहीणा ण लहंते ते सुइच्छियं लाहं।
इय णाउं गुणदोसं तं सण्णाणं वियाणेहिं।।४२।।

ज्ञानगुणैः विहीना न लभते ते स्विष्टं लाभं।
इति ज्ञात्वा गुणदोषौ तत् सद्ज्ञानं विजानीहि।।४२।।

इस ज्ञानगुण से रहित नहिं पाते सुनिश्चित लाभ को।
गुण-दोष को पहिचानने तुम जान लो सद् ज्ञान को।।४२।।

अर्थ **– ज्ञानगुण से हीन पुरुष अपनी इच्छित वस्तु के लाभ को नहीं प्राप्त करते, इस प्रकार जानकर हे भव्य ! तू पूर्वोक्त सम्यग्ज्ञान को गुण दोष के जानने के लिए जान।**

भावार्थ **– ज्ञान के बिना गुण दोष का ज्ञान नहीं होता है तब अपनी इष्ट तथा अनिष्ट वस्तु को नहीं जानता है, तब इष्ट वस्तु का लाभ नहीं होता है इसलिए सम्यग्ज्ञान ही से गुण-दोष जाने जाते हैं, क्योंकि सम्यग्ज्ञान के बिना हेय-उपादेय वस्तुओं का जानना नहीं होता है और हेय-उपादेय को जाने बिना सम्यक्चारित्र नहीं होता है। इसलिए ज्ञान ही को चारित्र से प्रधान कहा है।।४२।।**

गाथा-४२ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो ज्ञानगुण से रहित हैं, वे इष्ट वस्तु को नहीं पाते हैं, इसलिए गुण दोष को जानने के लिए ज्ञान को भले प्रकार से जानना – यह समयसार की २०५ गाथा में आता है न? समयसार की २०५ गाथा में यह है।

णाणगुणेहिं विहीणा ण लहंते ते सुइच्छियं लाहं।
इय णाउं गुणदोसं तं सण्णाणं वियाणेहिं।।४२।।

शब्द थोड़ा अन्तर है।

णाणगुणेण विहीणा एदं तुंपदंबहू वि ण लहंते।
तं गिण्ह णियदमेदं जदि इच्छसि कम्मपरिमोक्खं।।२०५।।

यह २०५। थोड़ा यह '**णाणगुणेण विहीणा**' इतना अन्तर है।

णाणगुणेहिं विहीणा ण लहंते ते सुइच्छियं लाहं।
इय णाउं गुणदोसं तं सण्णाणं वियाणेहिं।।४२।।

ज्ञानगुण से हीन पुरुष अपनी इच्छित वस्तु के लाभ को नहीं प्राप्त करते,... जिसे अभी तो ज्ञान सच्चा नहीं, उस इच्छित भावना का फल उसे नहीं मिलता। हमारे मोक्ष जाना है। परन्तु भान बिना? तेरी इच्छा क्या काम आवे वहाँ? हमारे तो मोक्ष जाना है, लो! एक व्यक्ति कहता है कि हम तो भगवान की भक्ति करते हैं, हमें राग नहीं चाहिए, हमारे तो वीतरागता चाहिए। परन्तु भक्ति करना वही स्वयं शुभराग है।

मुमुक्षु : ऐसा ज्ञान तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ज्ञान वह तो राग, लो! भगवान के निकट भक्ति करें किसलिए? हमारे वीतरागता चाहिए। परन्तु तुम भक्ति करो, वह भाव ही राग है। राग में से वीतरागता आती थी? ऐसा कहते। (संवत्) १९९६ में जूनागढ़। समझ में आया?

ज्ञानगुण से हीन पुरुष अपनी इच्छित वस्तु के लाभ को नहीं प्राप्त करते,... इच्छित अर्थात्? उसे इच्छा हुई कि मुझे मोक्ष जाना है। मुझे तो इसमें से मोक्ष होना है। ऐसा।

ऐसी इच्छा हो परन्तु वस्तु का ज्ञान नहीं, भान नहीं। इच्छा से कहाँ से लाभ मिले उसका? समझ में आया? हम तो पंच महाव्रत पालते हैं, वह मुक्ति के लिये पालते हैं। समझ में आया? हम यह दया, दान, व्रत, तपस्या करते हैं, वह मुक्ति के लिये करते हैं। ऐसी तेरी इच्छा होने पर भी वस्तु का भान नहीं, इसलिए कहीं उस चीज़ का लाभ मिलेगा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? हम यह सामायिक, प्रोषध, प्रतिक्रमण करते हैं, इसलिए हमारी मुक्ति होगी। हम व्रत, तप करते हैं, इसलिए हमारी मुक्ति होगी। ऐसा इच्छितलाभ तेरी तो इच्छा का जहाँ लाभ है, वह वास्तविक ज्ञान बिना वह मिलनेवाला नहीं है। ज्ञान नहीं और फिर तू मान बैठे। महाव्रत के विकल्प से भिन्न ज्ञान नहीं, ज्ञान का ज्ञान नहीं, देह की क्रिया से भिन्न का ज्ञान नहीं। समझ में आया? श्रद्धा का ज्ञान नहीं कि श्रद्धा कैसी हो, उसका ज्ञान नहीं। चारित्र का ज्ञान नहीं। राग से भिन्न स्थिरता, वह चारित्र। उसका ज्ञान नहीं। उसके ज्ञान बिना तू इच्छा रखे कि मुझे यह मिलेगा। धूल भी नहीं मिलेगा। धूल अर्थात्? अच्छा लोकोत्तर पुण्य भी नहीं होगा। आहाहा!

ज्ञानगुण से हीन पुरुष अपनी इच्छित वस्तु के लाभ को नहीं प्राप्त करते, इस प्रकार जानकर हे भव्य ! तू पूर्वोक्त सम्यग्ज्ञान को गुण दोष के जानने के लिए जान। देखो! अज्ञान के दोष और ज्ञान में गुण, इन्हें तू ज्ञान करके जान, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह तेरे क्रियाकाण्ड से ज्ञात हो ऐसे नहीं हैं, ऐसा कहते हैं। तू दया, दान, व्रत और तप करे, वह विकल्प है। इससे यह ज्ञात हो? ज्ञान के गुण और अज्ञान के दोष। यह गुण-दोष तो ज्ञान सच्चा हो, उसमें से ज्ञात होते हैं। ऐसे क्रियाकाण्ड करने से तुझे गुण-दोष ज्ञात हो, ऐसा है नहीं। आहाहा! ऐसा कहते हैं, हों! मूल तो।

ज्ञानगुण से हीन पुरुष अपनी इच्छित वस्तु के लाभ को नहीं प्राप्त करते,... अर्थात् क्या? यह तो ऐसा मानता है कि तुझे मोक्ष होगा। हमारे निर्जरा होती है। इच्छित लाभ। ऐसा। समझ में आया? हम यह अपवास करते हैं तो उसमें हमें निर्जरा होगी। शास्त्र में नहीं कहा? तपसा: निर्जरा। कहते हैं कि सच्चे भान बिना तेरी इच्छा का लाभ मिलेगा नहीं। निर्जरा-बिर्जरा होती नहीं। धूल भी नहीं होती। आहाहा!

मुमुक्षु : देवलोक में...

पूज्य गुरुदेवश्री : देवलोक अर्थात्? दु:ख। देवलोक अर्थात् दु:ख का स्थान।

देवलोक में सुख कहाँ था ? वहाँ तो आकुलता है। कषाय के अंगारें सुलगे हैं। आहाहा ! इस ज्ञान बिना कहते हैं, तेरी इच्छा प्रमाण लाभ नहीं होगा। तू तो बहुत चाहे कि हम इतना करेंगे तो ऐसा होगा। अपवास करूँगा तो उसमें से निर्जरा होगी। आठ-आठ, दस अपवास कर डालेंगे तो उसमें बड़ी निर्जरा होगी। कहाँ से धूल में होगी ? अभी तो तुझे सच्चा ज्ञान भी नहीं है।

अपनी इच्छित वस्तु के लाभ को नहीं प्राप्त करते,... तुझे लाभ नहीं मिलेगा। समझ में आया ? घाणी का बैल पूरे दिन घाणी में चक्कर मारता है। आँख खोले जहाँ वे होते हैं न लकड़ी का ढाला; वहाँ उसका घर। उस तेली की घाणी और वह कौना। ओय ! चले तो बहुत थे। परन्तु ज्ञान बिना, भान बिना गति तो ऐसी की ऐसी करता है। चार गति की गति के भाव की गति करता है। यह गोल चक्कर मारता है। गोल चक्कर में रास्ता कहाँ निकले ? चार गति के भाव हैं, वे तो गोल चक्कर चार गति में भटकने के हैं। यहाँ से यहाँ और यहाँ से यहाँ। पुण्य करे तो स्वर्ग में, पाप करे तो नरक। यह तो चार गति के गोल चक्कर हैं। समझ में आया ? सच्चे ज्ञान बिना...

हे भव्य! वस्तु के लाभ को प्राप्त नहीं करेगा। **इस प्रकार जानकर हे भव्य! तू पूर्वोक्त सम्यग्ज्ञान को गुण दोष के जानने के लिए जान।** इस सम्यग्ज्ञान को किसलिए जानना ? गुण-दोष को जानने के लिये। आत्मा के अन्तर में श्रद्धा आदि में स्थिर होना, वह गुण है और रागादि का विकल्प, वह दोष है, ऐसा सम्यग्ज्ञान में जानना। समझ में आया ? जितना स्व-आश्रय में स्थिर होकर स्थित है, वह गुण है और जितना पराश्रय में विकल्प उठता है, वह सब दोष है, ऐसा सम्यग्ज्ञान कर। इस सम्यग्ज्ञान के बिना तेरी भावना (होवे) कि मुझे तो मोक्ष चाहिए और निर्जरा होगी। ऐसा नहीं होगा। समझ में आया ?

ज्ञान के बिना गुण दोष का ज्ञान नहीं होता है... जाने बिना यह शक्कर है या यह काँच है, इसका ज्ञान नहीं। यह सब इकट्ठा माने। काँच और हीरा। उसी प्रकार राग, विकल्प दोष और निर्विकल्प आनन्द चैतन्य के ज्ञान बिना दोनों को इकट्ठे समान माने, ऐसा कहते हैं। चैतन्य हीरा आनन्द का नाथ और एक ओर विकल्प उठे, वह दोष। उसे सम्यग्ज्ञान बिना दोनों को भिन्न नहीं जाना जा सकता और जाने बिना तू फल चाहे कि मुझे इसमें ऐसा लाभ होगा। वह नहीं मिलेगा।

ज्ञान के बिना गुण दोष का ज्ञान नहीं होता है, तब अपनी इष्ट... वस्तु। देखो ! **अनिष्ट वस्तु को नहीं जानता है,...** इष्ट तो पवित्रता, अनिष्ट तो रागादि अनिष्ट है। पुण्य-पाप का विकल्प, वह अनिष्ट है और इष्ट तो अपना आत्मा और परिणति निर्मल होना, वह इष्ट है। प्रवचनसार में आता है। अनिष्ट का त्याग करके इष्ट प्राप्त हुए हैं भगवान। आता है न ? प्रवचनसार में आता है। ज्ञान अधिकार में। ज्ञान अधिकार है। अनिष्ट का त्याग करके परमात्मा ने इष्ट की प्राप्ति की है। ऐसा शास्त्र में आता है। इष्ट की प्राप्ति केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द वह इष्ट है। पहले यहाँ आत्मा को इष्ट किया है। पूर्ण ज्ञान-आनन्द आदि दृष्टि-ज्ञान में इष्ट किया है और राग को अनिष्ट जाना है। उसे अनिष्ट टलकर इष्टता होगी। परन्तु इष्ट-अनिष्ट का भान ही जहाँ नहीं है और फिर कहे हमारे लाभ होगा, हों ! कुछ तो लाभ होगा न ? करते हैं तो कुछ तो फलेगा या नहीं ? बहुत से ऐसा कहते हैं।

एक व्यक्ति कहता था। पैंतालीस वर्ष से मुँडाया है, कुछ तो होगा। यह महाराज कहते हैं ऐसा तो कुछ हमें ज्ञान नहीं है। यह तो उपादान से होता है और निमित्त से नहीं होता। निश्चय से होता है और व्यवहार से... यह सब बातें करते हैं, वह क्या ? एक श्वेताम्बर साधु यहाँ आया था। पैंतालीस वर्ष से मुँडाया है कुछ होगा तो सही न ? मुँडाया था तो भेड़ भी मुँडाती है। सुन न ! साधु का नाम क्या था ? विद्याविजय धर्मविद्या के शिष्य। वे यहाँ खड़े थे। थोड़ी चर्चा हुई थी। और फिर ऐसे बोले। यह तो दूसरी बहुत बातें करते हैं। ऐसी होगी ? इसमें तो कुछ अता-पता सूझता नहीं। परन्तु अब मुँडाकर बैठे हैं, स्त्री-पुत्र छोड़कर। कुछ तो लाभ होगा न ? धूल भी नहीं होगा, ऐसा कहते हैं। होगा लाभ, भटकने का। समझ में आया ?

इष्ट तथा अनिष्ट वस्तु को नहीं जानता है, तब इष्ट वस्तु का लाभ नहीं होता है, इसलिए सम्यग्ज्ञान ही से गुण-दोष जाने जाते हैं,... लो ! इसलिए सम्यग्ज्ञान से ही गुण और दोष जानने में आते हैं। ज्ञान बिना जानना कहाँ ? हीरा और काँच दोनों इकट्ठे हों। ज्ञान में कीमत हो तो हीरा और काँच भिन्न जाने। ऐसे ज्ञान ज्ञात हो, रागादि विकल्प वह मैल है, दोष है, स्वभाव चैतन्यमूर्ति वह पवित्र आनन्द है। इन दोनों को ज्ञान द्वारा भिन्न जाने तो उसे दोष और गुण का सच्चा ज्ञान होता है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

इसलिए सम्यग्ज्ञान ही से गुण–दोष जाने जाते हैं, क्योंकि सम्यग्ज्ञान के बिना हेय–उपादेय वस्तुओं का जानना नहीं होता है... लो! सम्यग्ज्ञान बिना। **हेय–उपादेय वस्तुओं का जानना नहीं होता है...** महाव्रतादि विकल्प है, वे सब हेय हैं। और आत्मा अखण्ड आनन्द, वह उपादेय है। ऐसा ज्ञान बिना जाने कौन? देखो! यहाँ स्पष्टीकरण सब ले लिया। बहुत अधिक बात की है। पंच महाव्रत की बात समझायी। समझ में आया? वास्तव में तो यह पंच महाव्रत के विकल्प हैं, राग है, वह श्रद्धा में हेय है। समझ में आया? और आत्मा पूर्ण आनन्द और ज्ञान का स्वभाव, वही उपादेय है। इस प्रकार हेय और उपादेय का ज्ञान सम्यग्ज्ञान द्वारा होता है। यदि ज्ञान न हो तो यह जानपना हो नहीं। **और हेय–उपादेय को जाने बिना सम्यक्चारित्र नहीं होता है।** हेय और उपादेय जाने बिना चारित्र नहीं होता। सब खिंचड़ा करके बैठे। भगवान का स्मरण करते हैं भाई। हम ध्यान में बैठे हैं। किसका ध्यान? णमो अरिहन्ताणं, णमो अरिहन्ताणं। परन्तु वह तो विकल्प है, वह तो राग है। वह ध्यान नहीं। बहुत ध्यान में बैठे हैं। ४८ मिनिट की सामायिक कर डाली। णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... करके पाठ पढ़े। पाठ पढ़े। परन्तु वह तो विकल्प है। समझ में आया? उससे आत्मा विकल्प से भिन्न जाने बिना तुझे लाभ होगा कहाँ से? आहाहा! गजब। जानना और श्रद्धा करना, जानना और श्रद्धा करना, इस पर पूरा जोर है। पश्चात् स्थिरता, ऐसा। यह जानना–श्रद्धा करने का वह जोर बाद में स्थिरता, उसका चारित्र। जिसे ज्ञान ही सच्चा हुआ नहीं, श्रद्धा का ठिकाना नहीं, उसे चारित्र कहाँ से होगा?

वस्तुओं का जानना नहीं होता है (ज्ञान के बिना) और हेय–उपोदय को जाने बिना सम्यक्चारित्र नहीं होता है। इसलिए ज्ञान ही को चारित्र से प्रधान कहा है। देखो! यहाँ तो चारित्र से ही ज्ञान को प्रधान किया, मुख्य किया। क्योंकि ज्ञान बिना विवेक नहीं आता, विवेक बिना जड़ और चैतन्य भिन्न नहीं ज्ञात होते। ज्ञान बिना आस्रव और आत्मा भिन्न है, ऐसा नहीं ज्ञात होता। उसे कहते हैं। देखो! समझ में आया? **ज्ञान ही को चारित्र से प्रधान कहा है।** चारित्र से ही ज्ञान की मुख्यता यहाँ वर्णन की है? किसलिए? कि चारित्र होने से पहले ऐसा ज्ञान उसे होना चाहिए। यदि ज्ञान न हो तो चारित्र नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं।

गाथा-४३

आगे कहते हैं कि जो सम्यग्ज्ञान सहित चारित्र धारण करता है, वह थोड़े ही काल में अनुपम सुख को पाता है –

चारित्तसमारूढो अप्पासु परं ण ईहए णाणी।
पावइ अइरेण सुहं अणोवमं जाण णिच्छयदो।।४३।।

चारित्रसमारूढ आत्मनि[१] परं न ईहते ज्ञानी।
प्राप्नोति अचिरेण सुखं अनुपमं जानीहि निश्चयत:।।४३।।

नित स्वयं में पर नहीं चाहे चरित्रधारी ज्ञानि जो।
पाता नियत अति शीघ्र अनुपम सौख्य यह तुम जान लो।।४३।।

अर्थ – जो पुरुष ज्ञानी है और चारित्र सहित है, वह अपनी आत्मा में परद्रव्य की इच्छा नहीं करता है, परद्रव्य में राग-द्वेष-मोह नहीं करता है। वह ज्ञानी जिसकी उपमा नहीं है, इस प्रकार अविनाशी मुक्ति के सुख को पाता है। हे भव्य ! तू निश्चय से इस प्रकार जान। यहाँ ज्ञानी होकर हेय उपादेय को जानकर, संयमी बनकर परद्रव्य को अपने में नहीं मिलाता है, वह परम सुख पाता है, इस प्रकार बताया है।।४३।।

गाथा-४३ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो सम्यग्ज्ञान सहित चारित्र धारण करता है, वह थोड़े ही काल में अनुपम सुख को पाता है – लो! इसमें भी '**अचिरेण**' आया। आया था न '**अचिरेण**'? उसमें '**अचिरेण**' आया था। ४०।

चारित्तसमारूढो अप्पासु परं ण ईहए णाणी।
पावइ अइरेण सुहं अणोवमं जाण णिच्छयदो।।४३।।

---

१. सं. प्रति में 'आत्मनि' के स्थान में 'आत्मन:' श्रुतसागरी सं.टीका मुद्रित प्रति में टीका में अर्थ भी 'आत्मना' का ही किया है, दे.पृ. ५४।

जो पुरुष ज्ञानी है और चारित्र सहित है,... दो बातें ली हैं। जो पुरुष ज्ञानी का अर्थ सम्यग्दृष्टि है, उसे राग और पुण्य से भिन्न किया हुआ आत्मा ज्ञान और अनुभव में आया है। उसे यहाँ ज्ञान कहा जाता है। **जो पुरुष ज्ञानी है और चारित्र सहित है,...** अकेला ज्ञानी हो चौथे-पाँचवें में परन्तु चारित्र न हो तो उसे मुक्ति नहीं होती, ऐसा कहते हैं। क्योंकि जब चारित्र स्थिर होगा, तब मुक्ति होगी।

वह अपनी आत्मा में परद्रव्य की इच्छा नहीं करता है,... लो! **'अप्पासु परं ण ईहए णाणी'** अपना आनन्द स्वभाव, ज्ञान स्वभाव के अतिरिक्त विकल्प को, शरीर को और पर को वह इच्छता नहीं। समझ में आया? ज्ञानी अपने आनन्दस्वरूप आत्मा की भावना करे। राग होता है, हो, परन्तु उस राग की भावना उसे नहीं होती। समझ में आया?

जो पुरुष ज्ञानी है और चारित्र सहित है, वह अपनी आत्मा में परद्रव्य की इच्छा नहीं करता है,... अर्थात्? अपने आत्मा में परद्रव्य को मिलाता नहीं। स्वद्रव्य भिन्न, परद्रव्य भिन्न। राग भी वास्तव में परद्रव्य है। आहाहा! **'चारित्तसमारूढो अप्पासु परं ण ईहए णाणी।'** अपने आत्मा में परद्रव्य की इच्छा नहीं करता। भगवान आत्मा में राग को या शरीर की क्रिया को नहीं मिलाता। इसलिए उसकी इच्छा उसे आत्मा में राग को रखने की नहीं है। समझ में आया? लो! उसमें यह आया ... परद्रव्य की श्रद्धा वह व्यवहार। यहाँ कहते हैं कि परद्रव्य को इच्छता नहीं। व्यवहार इच्छता नहीं, ऐसा भी इसका अर्थ हुआ। यहाँ तो स्पष्ट है। परद्रव्य को इच्छता नहीं। परद्रव्य की श्रद्धा, वह व्यवहार, स्वद्रव्य की श्रद्धा, वह ज्ञान। स्वद्रव्य का ज्ञान, वह ज्ञान, परद्रव्य का ज्ञान वह परलक्षी व्यवहार। स्वद्रव्य का चारित्र वह चारित्र, परद्रव्य का चारित्र, वह अचारित्र-राग-व्यवहार। परद्रव्य को अपने में मिलाता नहीं।

परद्रव्य में राग-द्वेष-मोह नहीं करता है। इसलिए पर के कारण राग-द्वेष नहीं करता। **वह ज्ञानी जिसकी उपमा नहीं है, इस प्रकार अविनाशी मुक्ति के सुख को पाता है। हे भव्य! तू निश्चय से इस प्रकार जान। यहाँ ज्ञानी होकर हेय उपादेय को जानकर, संयमी बनकर परद्रव्य को अपने में नहीं मिलाता है, वह परम सुख पाता है, इस प्रकार बताया है।** जानकर स्वरूप में स्थिर हो और वीतरागता प्रगट करे तो मोक्ष होता है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-४८, गाथा-४३ से ४५, १-२ (बोधपाहुड़),
बुधवार, आषाढ़ (गुजराती) कृष्ण ११, दिनांक २९-०७-१९७०

यह अष्टपाहुड़ में से चारित्रपाहुड़ का अधिकार है। ४३ गाथा हो गयी न ? अभी थोड़ी फिर से। ४३।

चारित्तसमारूढो अप्पासु परं ण ईहए णाणी।
पावइ अइरेण सुहं अणोवमं जाण णिच्छयदो।।४३।।

यह अधिकार क्या चलता है ? संयमचरण चारित्र। इसमें सर्वविरति संयमचरण चारित्र, यह अधिकार चलता है। चारित्र के दो प्रकार, एक सम्यक्चरण चारित्र, दूसरा संयमचरण चारित्र। संयमचरण चारित्र के दो प्रकार :— एक, देशसंयमचरण चारित्र; एक, सर्वसंयमचरण चारित्र। इसमें यह अन्तिम अधिकार सर्व संयमचरण चारित्र का अधिकार है।

जो पुरुष ज्ञानी है... अर्थात् जिसे पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न आत्मा का ज्ञान हुआ है, वह ज्ञानी है, जिसे मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषाय टला है। और स्व चैतन्य आनन्दस्वरूप के आश्रय से जिसे ज्ञान हुआ है, उसे यहाँ ज्ञानी कहा गया है। वह ज्ञानी चारित्रसहित हो ऐसा ज्ञान, दर्शन अनन्तानुबन्धी के अभाव का स्वरूपाचरणचारित्र होने पर भी उसे यदि चारित्र हो तो मुक्ति होगी। समझ में आया ? चारित्ररूप से सहित। ज्ञानी और चारित्र स्वरूप की वीतरागता, जिसमें तीन कषाय का अभाव है। सम्यग्दर्शन में तो एक कषाय का और मिथ्यात्व का अभाव है। चारित्र में तो अनन्त पुरुषार्थ से स्वरूप में वीतरागता की रगड़ करने से अन्दर बहुत शान्ति प्रगट होती है, उसे संयमचरण चारित्र कहा जाता है।

ऐसा चारित्र यदि हो तो **वह अपनी आत्मा में परद्रव्य की इच्छा नहीं करता है,...** सम्यग्दर्शन में तो अभी परद्रव्य के लक्ष्य से अस्थिरता का शुभ-अशुभराग होता है। चारित्र में वह नहीं होता। समझ में आया ? सम्यग्दर्शन होने पर भी, सम्यग्ज्ञान होने पर भी स्वरूपाचरण का भाव सम्यक्चरण चारित्र दर्शनाचार होने पर भी अभी उसे अनुकूल-प्रतिकूल पदार्थ के प्रति आसक्ति का भाव उत्पन्न होता है। आहाहा! अनुकूल-प्रतिकूल

मानकर नहीं। समझ में आया? परन्तु ऐसे परज्ञेयों में उसे परलक्षी राग और द्वेष जरा समकिती को होने पर भी, क्षायिक समकित होने पर भी ऐसा राग और द्वेष होता है। वह जब परद्रव्य के प्रति राग-द्वेष छोड़ता है, तब उसमें चारित्र प्रगट होता है।

चारित्रपाहुड़ है न? उसमें संयमचरण चारित्र की व्याख्या की है। हिन्दी है न? तुम्हारे हाथ में गुजराती है। ४३ गाथा है। **'अप्पासु परं ण ईहए'** आत्मा की अन्तर शुद्ध वीतरागी भावना के अतिरिक्त परद्रव्य के प्रति राग की इच्छा जिसे है नहीं। समझ में आया? **अपनी आत्मा में परद्रव्य की इच्छा नहीं करता है,...** चारित्र है न? सम्यग्दर्शन होने पर परद्रव्य से और परद्रव्य के निमित्त से विकल्प जो उठता है, उससे तो भिन्न पड़ा है। भिन्न पड़ने पर भी स्वरूप में स्थिरता की कचाश है। समझ में आया? वह स्वरूप में संयम अन्दर में सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित परपदार्थ के प्रति आसक्ति को छोड़कर और परद्रव्य को इच्छता नहीं। वह **परद्रव्य में राग-द्वेष-मोह नहीं करता है। वह ज्ञानी जिसकी उपमा नहीं है,** ऐसा जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्रसहित ऐसे फल को पाता है कि जिसकी उपमा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यह उपमा नहीं ऐसे **अविनाशी मुक्ति के सुख को पाता है।** उसे अनन्त आनन्द की प्राप्ति होती है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान और उसमें चारित्र अर्थात् वीतराग दशा (प्रगट होती है), तब उसे अनन्त सुख ऐसा जो मोक्ष, उसकी उसे प्राप्ति होती है। ऐसा **हे भव्य! तू निश्चय से इस प्रकार जान।** हे भव्य! तू निश्चय से जान कि आत्मा का जिसे ज्ञान और आत्मा में चारित्र रमणता हुई, निश्चय से उसे आनन्द की पूर्ण दशा ऐसी मुक्तदशा उसे प्रगट होती है।

यहाँ ज्ञानी होकर हेय उपादेय को जानकर, संयमी बनकर... देखो! सम्यग्दृष्टि और ज्ञानी होने पर भी जब तक संयमी न हो... चारित्र अर्थात् अन्तर चारित्र, हों! यह बाहर की क्रिया प्रवृत्ति की बात नहीं है। आहाहा! स्वरूप में ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा, उसमें रमणतारूपी वीतरागीदशा (हो), उसे यहाँ चारित्र कहते हैं। विकल्परहित। पंच महाव्रत तो विकल्प है, यह भी बात पहले आ गयी है। वे हों, परन्तु वह मूल चारित्र नहीं है। समझ में आया? इसे ज्ञान में यह बात निर्णय तो करना पड़ेगी न? आत्मा का भान होने पर भी जब तक संयमभाव प्रगट न हो, तब तक उसकी मुक्ति नहीं होगी। समझ में आया?

हेय उपादेय को जानकर, संयमी बनकर... देखो! पाँच इन्द्रिय के विषय से दमन करके स्वरूप की अतीन्द्रिय आनन्द की जिसे रमणता प्रगट हो, उसका नाम चारित्र है। आहाहा! ऐई! प्रकाशदासजी! यह चारित्र है। देखो! आत्मा आनन्दस्वरूप, भगवान आनन्दस्वरूप आत्मा है। उस आनन्द की श्रद्धा हुई, ज्ञान हुआ और आंशिक आनन्द का भाव भी हुआ परन्तु पूर्ण आनन्द की दशा प्रगट करने के लिये अन्तर आनन्द में रमणता (होना), उसे चारित्र कहते हैं। आहाहा! चरना... चरना। जैसे पशु घास चरता है, वैसे आत्मा आनन्द को चरता है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दनाथ प्रभु, ऐसा भगवान आत्मा, उसे अन्दर चरे अर्थात् रमे। उस आनन्द का अनुभव—भोग करे, उसे चारित्र कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : नयी-नयी पर्याय का आनन्द है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्द है। नयी-नयी पर्याय वीतरागी पर्याय है न। चारित्र है। आनन्द अतीन्द्रिय गुण में से प्रगट होता है। वह कहीं बाहर के क्रियाकाण्ड वह आनन्द नहीं और चारित्र नहीं। चारित्र तो अन्तर स्वरूप में आनन्द की प्रतीति, ज्ञान अनुभव होने पर भी, तदुपरान्त जब आनन्द में लवलीन बहुत हो जाये, प्रचुर स्वसंवेदन दशा प्रगट हो, उसे भगवान चारित्र कहते हैं। समझ में आया?

हेय उपादेय को जानकर, संयमी बनकर परद्रव्य को अपने में नहीं मिलाता है,... विकल्प भी वास्तव में परद्रव्य है। आहाहा! चैतन्य सच्चिदानन्द नाथ, आनन्द का सागर भगवान है। उसमें जिसकी रमणता (हुई है), उसमें राग को न मिलावे, ऐसा कहते हैं। इसका नाम भगवान ने संयमचरण चारित्र कहा है। इसका नाम संयम। आहाहा!

परद्रव्य को अपने में नहीं मिलाता है, वह परम सुख पाता है, इस प्रकार बताया है। विकल्प जो व्यवहाररत्नत्रय का राग है, वह भी दुःखरूप है। आहाहा! वह भी अन्तर आनन्दमूर्ति प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का मन्दिर, सागर। लो! सागर आया तुम्हारा। अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु, उसमें डुबकी मारकर आनन्द में रमे, उसका नाम चारित्र और उससे उसे केवलज्ञान की—मुक्ति की प्राप्ति होती है। समझ में आया?

गाथा-४४

आगे इष्ट चारित्र के कथन का संकोच करते हैं –

एवं संखेवेण य भणियं णाणेण वीयराएण।
सम्मत्तसंजमासयदुण्हं पि उदेसियं चरणं।।४४।।

एवं संक्षेपेण च भणितं ज्ञानेन वीतरागेण।
सम्यक्त्वसंयमाश्रयद्वयोरपि उद्देशितं चरणम्।।४४।।

इस वीतरागी केवली-भाषित चरण सम्यक्त्व वा।
संयम सुआश्रित दुविध का संक्षिप्त से वर्णन किया।।४४।।

_अर्थ_ – एवं अर्थात् ऐसे पूर्वोक्त प्रकार संक्षेप से श्री वीतरागदेव ने ज्ञान के द्वारा कहे सम्यक्त्व और संयम – इन दोनों के आश्रय से चारित्र सम्यक्त्वचरणस्वरूप और संयमचरणस्वरूप दो प्रकार से उपदेश किया है, आचार्य ने चारित्र के कथन को संक्षेपरूप से कहकर संकोच किया है।।४४।।

गाथा-४४ पर प्रवचन

आगे इष्ट चारित्र के कथन का संकोच करते हैं – इस चारित्र का कथन अब पूरा करते हैं।

एवं संखेवेण य भणियं णाणेण वीयराएण।
सम्मत्तसंजमासयदुण्हं पि उदेसियं चरणं।।४४।।

एवं अर्थात् ऐसे पूर्वोक्त प्रकार संक्षेप से श्री वीतरागदेव ने... श्री वीतरागदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकर परमात्मा, सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा के मुख में से वाणी निकली। यह भगवान ने ऐसा कहा। **वीतरागदेव ने ज्ञान के द्वारा कहे...** भगवान ने ज्ञान करके कहा। तीन काल और तीन लोक का ज्ञान करके भगवान ने वाणी में कहा। **सम्यक्त्व और संयम – इन दोनों के आश्रय से चारित्र...** देखो! पहला सम्यक्चरणस्वरूप चारित्र... अभी

विवाद निकालते हैं न ? चौथे गुणस्थान में स्वरूपाचरण नहीं होता। यह विवाद निकालते हैं। उन्हें कुछ खबर नहीं होती। स्वरूपाचरणचारित्र का अंश प्रगट हुए बिना चौथा गुणस्थान ही नहीं होता। समझ में आया ? यह सम्यक्‌चरण। सम्यक्—समकित का आचार है यह।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन न हो तो चरण अर्थात् स्वरूपाचरण ?

पूज्य गुरुदेवश्री : चरण कहो या आचार कहो। स्वरूपाचरण। नि:शंक आदि गुण की पर्याय और अट्ठाईस दोष की पर्याय का नाश। पच्चीस दोष है न ? आठ मद आदि का नाश। नि:शंक आदि की पर्याय ... उसमें भी स्वरूप आचरण में स्थिरता आंशिक है। परन्तु कहते हैं कि वह समकितचरण चारित्र अकेले से मुक्ति नहीं है। समझ में आया ?

और (दूसरा) संयमचरणस्वरूप... चारित्र। उसके साथ सम-यम। सम्यग्दर्शनपूर्वक, सम्यग्ज्ञानपूर्वक स्वरूप के आनन्द की उग्रता के वेदन में जो संयमचरण चारित्र हो, इन दो का कथन इसमें कहा। देखो ! चारित्र में सम्यक्‌चरण चारित्र को भी चारित्र कहा है। दर्शन आचार कहो, समकित आचार कहो, समकित चरण चारित्र कहो, वह चौथे गुणस्थान में होता है। समझ में आया ? इतने से मुक्ति नहीं है। इस चारित्र का कारण प्रगट हुआ, परन्तु चारित्र वीतरागता (प्रगटी), जहाँ परद्रव्य से डोलाया डुलता नहीं, हिलाये हिलता नहीं। शान्त... शान्त... शान्त... उपशमरस में प्रविष्ट हो गया है। ऐसा संयमचरण चारित्र। यह दो मिलकर उसकी मुक्ति होती है।

उपदेश किया है,... भगवान ने दो का उपदेश किया। समकितचरण चारित्र और संयमचरण चारित्र। इस पूरे अध्याय में दो का उपदेश किया है। **आचार्य ने चारित्र के कथन को संक्षेपरूप से कहकर संकोच किया है।** अब यह कथन पूरा करते हैं। समझ में आया ?

गाथा-४५

आगे इस चारित्रपाहुड को भाने का उपदेश और इसका फल कहते हैं –

भावेह भावसुद्धं फुडु रइयं चरणपाहुणं चेव।
लहु चउगइ चइऊणं अइरेणऽपुणब्भवा होई।।४५।।

भावयत भावशुद्धं स्फुटं रचितं चरणप्राभृतं चैव।
लघु चतुर्गती: त्यक्त्वा अचिरेण अपुनर्भवा: भवत।।४५।।

चारित्र पाहुड़ रचा स्फुट भाव-शुद्धि पूर्वक।
भाओ चतुर्गति छोड़ पाओ शीघ्र अपुनर्भव अचल।।४५।।

अर्थ – यहाँ आचार्य कहते हैं कि हे भव्यजीवों ! यह चरण अर्थात् चारित्रपाहुड हमने स्फुट प्रगट करने हेतु बनाया है, उसको तुम अपने शुद्धभाव से भाओ। अपने भावों में बारम्बार अभ्यास करो, इससे शीघ्र ही चार गतियों को छोड़कर अपुनर्भव मोक्ष तुम्हें होगा, फिर संसार में जन्म नहीं पाओगे।

भावार्थ – इस चारित्रपाहुड को बांचना, पढ़ना, धारण करना, बारम्बार भाना, अभ्यास करना – यह उपदेश है, इससे चारित्र का स्वरूप जानकर धारण करने की रुचि हो, अंगीकार करे तब चार गतिरूप संसार के दु:ख से रहित होकर निर्वाण को प्राप्त हो, फिर संसार में जन्म धारण नहीं करे, इसलिए जो कल्याण को चाहते हैं, वे इस प्रकार करो।।४५।।

गाथा-४५ पर प्रवचन

आगे इस चारित्रपाहुड को भाने का उपदेश और इसका फल कहते हैं –

भावेह भावसुद्धं फुडु रइयं चरणपाहुणं चेव।
लहु चउगइ चइऊणं अइरेणऽपुणब्भवा होई।।४५।।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य महाराज जगत को कहते हैं, हे भव्यजीव! हे आत्मा के

मोक्ष के योग्य प्राणी! आहाहा! समझ में आया? कहते हैं कि तू तो भव्य—मोक्ष के योग्य प्राणी है। आहाहा! उसे बात करते हैं। अभव्य को नहीं कहते। अभव्य की योग्यता नहीं है। समझ में आया?

हे भव्य! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त होने की तुझमें योग्यता है। समझ में आया? **हे भव्यजीवों ! यह चरण अर्थात् चारित्रपाहुड हमने स्फुट प्रगट करने हेतु बनाया है,...** स्पष्ट रीति से सम्यक्चरण चारित्र किसे कहना? संयमचरण चारित्र के दो भाग — देशसंयम और सर्वसंयम। उसे प्रगट रीति से हम कहते हैं। जैसा भगवान ने कहा था, वैसा कहा है। आहाहा! समझ में आया? बाह्य क्रिया वस्त्र बदले या यह हुए, यह बात इसमें—चारित्र में है ही नहीं। आहार लिया और आहार छोड़ा, ऐसा ग्रहण-त्याग आत्मा के स्वरूप में है ही नहीं। मात्र स्वरूप का अनुभव होने पर, सम्यग्दर्शन होने पर उसमें राग नहीं, उसमें पर के ग्रहण-त्याग का अभाव है। ऐसा जो अन्तर में भान हुआ, तब स्वरूप में स्थिरता भी आंशिक हुई, परन्तु इतने मात्र से कहते हैं कि मुक्ति नहीं होगी। सम-यम। अन्दर रमणता... रमणता... रमणता... आहाहा! कहते हैं कि उसे सुन तो सही और उसकी भावना तो कर। ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : श्रद्धा-ज्ञान...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... व्यवहार। यहाँ यह बराबर है।

चरण अर्थात् चारित्रपाहुड हमने स्फुट प्रगट करने हेतु बनाया है,... यहाँ तो और ऐसा कहना चाहते हैं कि चारित्र न प्रगटे तो उसे ज्ञान ही नहीं कहा जाता। ऐसा कहना चाहते हैं। ऐसा नहीं वापस। श्वेताम्बर की ऐसी भाषा है। ज्ञान का फल विरति। विरति आवे तो ज्ञान कहलाये। ऐसा नहीं है। ज्ञान तो पहले सम्यग्दर्शन, ज्ञान स्पष्ट अन्तर अनुभव में पहले हो। फिर उसे चारित्र होता है। फल उसका कहलाता है। परन्तु चारित्र न हो तो उसे ज्ञान ही नहीं है, ऐसा नहीं है। अभी भी यह कहा जाता है न। बहुतों ने अर्थ भी ऐसा किया है। इस समयसार के अर्थ में नहीं? .....

मुमुक्षु : कौन था?

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रुतसागर। श्रुतसागर ने किया है न? यह तो दूसरा उसने नहीं।

वह। अजमेर में वह, नहीं ? दूसरा, वह नहीं ? वह ज्ञानसागर, ब्रह्मचारी थे वे। उन्होंने अर्थ किया है कि निर्विकल्पता हो तो ज्ञान कहलाये। निर्विकल्पता से हटा तो अज्ञान कहलाये। सब मिथ्या बात है। समझ में आया ? उन लोगों ने ऐसे बहुत अर्थ किये हैं।

यहाँ तो कहते हैं, वस्तु तो सम्यग्दर्शन होने पर निर्विकल्पता शुद्ध उपयोग में ही उसे प्राप्ति होती है, परन्तु वह शुद्ध उपयोग फिर रह नहीं सकता। अस्थिरता में आकर अनेक प्रकार के तीन कषाय के विकल्प होते हैं। उनके विकल्परहित होकर शुद्धोपयोग का जो आचरण करना, उसे यहाँ संयमचरण चारित्र कहा जाता है। वह संयमचरण चारित्र न हो तो समकित को ज्ञान नहीं, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? और सम्यग्ज्ञान तथा दर्शन हो तो वहाँ चारित्रसंयम होना ही चाहिए, ऐसा नहीं है। परन्तु सम्यग्दर्शन और ज्ञान होने पर भी जब तक संयम न हो, तब तक उसे मुक्ति नहीं होती। इतनी बात है। समझ में आया ?

स्फुट प्रगट करने हेतु बनाया है,... समकितचरण चारित्र किसे कहना और संयमचरण चारित्र, दोनों के पृथक् भाग करके वर्णन किया है। **उसको तुम अपने शुद्धभाव से भाओ।** उसे तुम्हारे शुद्धभाव से भावो। वाह! शुद्धभाव से भावो। देखो! अन्तर शुद्धस्वभाव में एकाग्र करके भावो। ऐसी एकाग्रता, वह भावना। समझ में आया ? पाठ में **'भावसुद्धं'** शब्द है न पाठ में ? भावशुद्ध। शुद्ध-रागरहित। वीतरागस्वरूप ही आत्मा है। आत्मा का स्वभाव ही वीतराग है। ऐसे वीतरागभाव की शुद्ध पर्याय द्वारा भावना करो। यह भावना। कल्पना और चिन्तवना, ऐसा नहीं। अन्तर चैतन्य भगवान वीतरागमूर्ति में एकाग्रता करके उसकी भावना करो। ऐसा कहते हैं।

अपने भावों में बारम्बार अभ्यास करो,... इस शुद्ध चैतन्य की ओर का बारम्बार अभ्यास करो। राग और विकल्प का अभाव करके, स्वभाव का अभ्यास होने पर अभाव हो जाता है, अभाव करना नहीं पड़ता। समझ में आया ? **शीघ्र ही चार गतियों को छोड़कर...** अल्प काल में चार गति छोड़कर **अपुनर्भव मोक्ष तुम्हें होगा,...** कोलकरार है कि तुम्हें केवलज्ञान होगा। इस प्रकार भगवान आत्मा का सम्यग्दर्शन प्रगट करके और पश्चात् शुद्ध भावना द्वारा चारित्र को प्रगट करके और फिर चारित्र द्वारा उसे अल्प काल में केवलज्ञान होगा। मुक्ति होगी, होगी और होगी। **फिर संसार में जन्म नहीं पाओगे।** अरे! दुःखदायक अवतार कलंक! अवतरित होना, वह कलंक है। जन्म धारण करना,

चाहे तो देव का या मनुष्य का, कलंक है। भवरहित भगवान को भव धारण हो, वह कलंक है। उस कलंकरहित होकर भवरहित हो जायेगा।

इस प्रकार सम्यक्चरण चारित्र और तदुपरान्त संयमचरण चारित्र प्राप्त करके शुद्ध भावना द्वारा चारित्र न हो परन्तु भावना करना। चारित्र ऐसा होता है, उसे जानना, उसकी भावना करना, उसका बारम्बार अभ्यास करने के लिये प्रयत्न करना। ऐसा करने से संमचरण चारित्र होगा, अल्प काल में केवलज्ञान होगा।

इस चारित्रपाहुड को बांचना,... लो! इस चारित्रपाहुड़ को बराबर वाँचना। **पढ़ना, धारण करना,...** धारण करना कि यह क्या कहते हैं। **बारम्बार भाना, अभ्यास करना – यह उपदेश है,...** ऐसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का उपदेश है। **इससे चारित्र का स्वरूप जानकर...** इसलिए चारित्र के स्वरूप को जानकर, देखो! **धारण करने की रुचि हो,...** देखो! इस चारित्र को पहिचाने तो उसकी रुचि होकर बारम्बार उसकी भावना करने का भाव हो। जानने की रुचि हो तो चारित्र ग्रहण करने की रुचि हो। यह चारित्र ग्रहण अर्थात् स्वरूप में रमण, वह चारित्र, हों! बाहर से ऐसे वस्त्र बदलकर हो गया चारित्र। वह चारित्र कहाँ था? आहाहा! वर छोड़कर बारात (जोड़ दी)। जान समझे? वर-दूल्हा-दूल्हा। दूल्हे को छोड़कर फिर बारात जोड़े। जान समझते हो? बारात। समझते हों या नहीं? क्या? वर को छोड़कर बारात चली। बारात है, वर नहीं। इसी प्रकार आत्मा आनन्दस्वरूप की दृष्टि और अनुभव तो नहीं और उसका ज्ञान भी नहीं और चला चारित्र अंगीकार करने। समझ में आया? यह हमारे वररहित बारात, ऐसा कहते हैं। दूल्हा अर्थात् वर। जान अर्थात् बारात। समझ में आया?

तब चार गतिरूप संसार के दुःख से रहित होकर निर्वाण को प्राप्त हो, फिर संसार में जन्म धारण नहीं करे,... लो! फिर से जन्म धारण करे नहीं। **इसलिए जो कल्याण को चाहते हैं, वे इस प्रकार करो।** कल्याण के अर्थी को ऐसा सम्यग्दर्शन चारित्र प्रगट करके फिर संयमचरण चारित्र प्रगट करो। समझ में आया?

(छप्पय)

चारित दोय प्रकार देव जिनवर ने भाख्या।
समकित संयम चरण ज्ञानपूरव तिस राख्या।।
जे नर सरधावान याहि धारैं विधि सेती।
निश्चय अर व्यवहार रीति आगम में जेती।।
जब जगधंधा सब मेटि कैं निजस्वरूप में थिर रहै।
तब अष्टकर्मकूं नाशि कै अविनाशी शिव कूं लहै।।१।।

ऐसे सम्यक्त्वचरणचारित्र और संयमचरणचारित्र दो प्रकार के चारित्र का स्वरूप इस प्राभृत में कहा।

(दोहा)

जिनभाषित चारित्रकूं जे पालैं मुनिराज।
तिनि के चरण नमूं सदा पाऊँ तिनि गुणसाज।।२।।

इति श्रीकुन्दकुन्दस्वामि विरचित चारित्रप्राभृत की पण्डित जयचन्द्र छाबड़ा कृत देशभाषावचनिका का हिन्दी भाषानुवाद समाप्त।।३।।

(छप्पय)

चारित दोय प्रकार देव जिनवर ने भाख्या।
समकित संयम चरण ज्ञानपूरव तिस राख्या।।
जे नर सरधावान याहि धारैं विधि सेती।
निश्चय अर व्यवहार रीति आगम में जेती।।
जब जगधंधा सब मेटि कैं निजस्वरूप में थिर रहै।
तब अष्टकर्मकूं नाशि कै अविनाशी शिव कूं लहै।।१।।

इसका अर्थ – **'चारित दोय प्रकार'** चारित्र के दो प्रकार। **'देव जिनवर ने भाख्या'** जिनवरदेव ने कहे। समकित चारित्र और संयम चारित्र। देखो! दो आये। **'समकित संयम चरण'** समकित चरण और संयम चरण। दो प्रकार का चारित्र भगवान वीतराग देव ने कहा। **'ज्ञानपूरव तिस राख्या'** परन्तु ज्ञानसहित, ऐसा कहते हैं। ... ज्ञान नहीं था ... ज्ञान

तो सम्यग्दर्शन में होता है। **'ज्ञानपूरव तिस राख्या'** जिसमें सम्यग्दर्शन है, वहाँ ज्ञान भी सच्चा होता है। तब उसे चारित्र सच्चा होता है।

'जे नर सरधावान' जो नर श्रद्धावान। पूर्ण परमात्मस्वरूप अपना, उसकी श्रद्धा करनेवाला। **'याहि धारैं विधि सेती'** वह सम्यक्‌चरण चारित्र को धारे और फिर संयमचरण चारित्र को धारे। **'विधि सेती'** विधि से। पहला सम्यक्‌चरण चारित्र न हो और संयमचरण चारित्र हो, यह विधि नहीं है। पहला सम्यक्‌चरण चारित्र हो, फिर संयमचरण चारित्र (आवे), यह विधि है। परन्तु भान बिना सम्यक्‌चरण चारित्र नहीं और फिर क्रिया अंगीकार की, वह चारित्र है, ऐसा है नहीं।

'निश्चय अर व्यवहार' ऐसा पहले आया था न? पंच महाव्रतादि। वह व्यवहार है। पंच महाव्रत होते हैं। आत्मा का सम्यग्दर्शन, आत्मा का ज्ञान और आत्मा का जहाँ चारित्र होता है, वहाँ परद्रव्य के आश्रय का, पंच महाव्रत का विकल्प भी छठवें गुणस्थान तक होता है। परद्रव्य है, वह व्यवहार है और स्वरूप में श्रद्धा-ज्ञान और स्थिरता वह निश्चय है। स्वाश्रय वह निश्चय और पर आश्रय वह व्यवहार। परद्रव्य के आश्रय से जितने विकल्प उठें, वह सब परद्रव्य। समझ में आया? स्व भगवान आत्मा ज्ञानस्वभाव, शुद्ध पवित्र आनन्दस्वभाव आत्मा का, उसके आश्रय से दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह स्व अर्थात् निश्चय। उसमें जरा पंच महाव्रतादि का विकल्प उठे, वह व्यवहार। यह निश्चय हो तो उसको व्यवहार कहा जाता है। निश्चय न हो तो व्यवहार नहीं कहा जाता। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : सविकल्प चारित्र?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, निर्विकल्प चारित्र। पंच महाव्रत, वह व्यवहारचारित्र।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र जो संयम है, वह निर्विकल्प संयमचरण चारित्र। और पंच महाव्रत के विकल्प, वह सविकल्प व्यवहार चारित्र। बन्ध का कारण। निर्विकल्प संयमचरण चारित्र, वह रागरहित चारित्र और पंच महाव्रत का विकल्प वह राग। सविकल्प, वह राग है परन्तु होता है। छठवें गुणस्थान की भूमिका में जब तक पूर्ण वीतराग नहीं हो अथवा

सप्तम में जाये नहीं, तब तक ऐसा विकल्प होता है, इसलिए उसे व्यवहारचारित्र कहा है। है व्यवहारचारित्र बन्ध का कारण। निश्चयचारित्र मोक्ष का कारण है। आहाहा! समझ में आया?

'रीति आगम में जेती' जितनी व्यवहार-निश्चय की रीति कही, उसे बराबर जानकर विधि से करना। **'जब जगधंधा सब मेटि कैं'** लो! यह जग धन्धा। व्यवहार भी जग धन्धा है। उसे छोड़कर **'निजस्वरूप में थिर रहै'** आहाहा! पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प तथा बारह व्रत, वह सब जग धन्धा है। व्यवहार धन्धा, राग धन्धा, व्यवहार का धन्धा है। आहाहा! योगसार में आता है न, भाई! नहीं? व्यवहार-धन्धा छोड़कर। 'व्यवहारे धन्धा फस्या, बहुधा जग के लोभ। व्यवहार में धन्धे में फँसा। यह विकल्प यह करूँ और यह न करूँ। इस विकल्प में व्यवहार-धन्धे में फँस गया। यह तो राग है, संसार है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतरागता निर्विकल्पता हो, वहाँ ऐसा विकल्प होता है। बस। इतना। न हो, ऐसा नहीं है। छठवें गुणस्थान में ऐसा भाव होता है। व्यवहार होता है। परन्तु व्यवहार वह....

मुमुक्षु : साथ में निश्चय होता है या अकेला व्यवहार?

पूज्य गुरुदेवश्री : अकेला व्यवहार होता ही नहीं। व्यवहार कहाँ से ... आया? निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो। कहा न। तब वे पंच महाव्रत के विकल्प होते हैं, तब उन्हें व्यवहार कहा जाता है। उसे व्यवहार तो बन्ध का कारण है। अज्ञानी को वह व्यवहार कहाँ है? सम्यग्दर्शन बिना, निश्चयचारित्र बिना व्यवहारचारित्र कहाँ से आया? समझ में आया? यह विधि है। विधि यह है इसकी। आहाहा! वीतराग मार्ग ऐसा कठिन और कड़क और स्वभाव के आश्रय से प्रगट। आहाहा! प्रगट करके कहा, बापू! मार्ग तो यह है, भाई! इसमें कोई पक्ष की बात नहीं है।

'जब जगधंधा सब मेटि कैं निजस्वरूप में थिर रहै।' लो! यह व्यवहार-फ्यवहार जो आगम में कहा था, तत्प्रमाण हो, उसे छोड़कर स्वरूप में स्थिर होता है। **'तब अष्टकर्मकूं नाशि कै अविनाशी शिव कूं लहै।'** लो! तब आठ कर्म का नाश करके मुक्ति को पाता है। **ऐसे सम्यक्त्वचरणचारित्र और संयमचरणचारित्र दो प्रकार के चारित्र का स्वरूप इस प्राभृत में कहा।** लो! इस चारित्रपाहुड़ में।

'जिनभाषित चारित्रकूं' देखो! वीतराग ने कहा वह। अज्ञानियों ने कहा कहा चारित्र-फारित्र नहीं। सर्वज्ञ परमात्मा।

जिनभाषित चारित्रकूं जे पालैं मुनिराज।
तिनि के चरण नमूं सदा पाऊँ तिनि गुणसाज।।२।।

ऐसे चारित्र को जो मुनिराज सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरण सहित चारित्र को पाले, उसके चरण को नमूँ। **'सदा पाऊँ तिनि गुणसाज।'** उसके गुण का समुदाय, उसे मैं प्राप्त करूँ। मुनि के जो गुण का समुदाय प्रगट हुआ है, उसे मैं प्राप्त करूँ। ऐसी भावना से वन्दन करते हैं। **श्रीकुन्दकुन्दस्वामि विरचित चारित्रप्राभृत की पण्डित जयचन्द्र छाबड़ा कृत देशभाषावचनिका (का हिन्दी भाषानुवाद) समाप्त।** लो!

● ● ●

बोधपाहुड़
–४–

(दोहा)

देव जिनेश्वर सर्व गुरु वंदूं मन–वच–काय।
जा प्रसाद भवि बोध ले, पालैं जीव निकाय।।१।।

इस प्रकार मंगलाचरण के द्वारा श्री कुन्दकुन्द आचार्यकृत गाथाबन्ध 'बोधपाहुड' की देशभाषामय वचनिका का हिन्दी भाषानुवाद लिखते हैं, पहिले आचार्य ग्रन्थ करने की मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करते हैं –

अब चौथा बोधपाहुड़।

(दोहा)

देव जिनेश्वर सर्व गुरु वंदूं मन–वच–काय।
जा प्रसाद भवि बोध ले, पालैं जीव निकाय।।१।।

देव जिनेश्वर को और सर्व गुरुओं को वन्दन करके। मन–वचन–काया से। जिसकी प्रसादी से भवि बोध ले। देव–गुरु और प्रसाद से बोध अर्थात् सम्यग्ज्ञान प्राप्त करे। और पाले जीव की काय। छह काय के जीव को पाले। इसमें छह काय का मूल आयेगा। छह काय के जीव के हित के लिये मैं यह बात करूँगा, ऐसा आयेगा। समझ में आया?

इस प्रकार मंगलाचरण के द्वारा श्री कुन्दकुन्द आचार्यकृत गाथाबन्ध 'बोधपाहुड' की देशभाषामय वचनिका का हिन्दी भाषानुवाद लिखते हैं, पहिले आचार्य ग्रन्थ करने की मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करते हैं –

गाथा-१-२

बहुसत्थअत्थजाणे संजमसम्मत्तसुद्धतवयरणे।
वंदित्ता आयरिए कसायमलवज्जिदे सुद्धे।।१।।
सयलजणबोहणत्थं जिणमग्गे जिणवरेहिं जह भणियं।
वोच्छामि समासेण [1]छक्कायसुहंकरं सुणहं।।२।।

बहुशास्त्रार्थज्ञापकान् संयमसम्यक्त्वशुद्धतपश्चरणान्।
वन्दित्वा आचार्यान् कषायमलवर्जितान् शुद्धान्।।१।।
सकलजनबोधनार्थं जिनमार्गे जिनवरैः यथा भणितम्।
वक्ष्यामि समासेन षट्कायसुखंकरं शृणु।।२।।युग्मम्।।

बहु-शास्त्र अर्थ सुविज्ञ समकित शुद्ध तप संयम-सहित।
विरहित कषाय-कलंक से सुविशुद्ध सूरी को नमन।।१।।
जिन-मार्ग में जिनवर-कथित को कहूँगा संक्षेप में।
षट्काय सुखकर सकलजन बोधन निमित सुनना इसे।।२।।

अर्थ – आचार्य कहते हैं कि मैं आचार्यों को नमस्कार कर, छहकाय के जीवों को सुख के करनेवाले जिनमार्ग में जिनदेव ने जैसे कहा है वैसे, जिसमें समस्त लोक के हित का ही प्रयोजन है – ऐसा ग्रन्थ संक्षेप में कहूँगा, उसको हे भव्य जीवों! तुम सुनो। जिन आचार्यों की वन्दना की, वे आचार्य कैसे हैं? बहुत शास्त्रों के अर्थ को जाननेवाले हैं, जिनका तपश्चरण सम्यक्त्व और संयम से शुद्ध है, कषायरूप मल से रहित है, इसीलिए शुद्ध है।

भावार्थ – यहाँ आचार्यों की वन्दना की, उनके विशेषण से जाना जाता है कि गणधरादिक से लेकर अपने गुरुपर्यन्त सबकी वन्दना है और ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा की, उसके विशेषण से जाना जाता है कि जो बोधपाहुड़ ग्रन्थ करेंगे, वह लोगों को धर्ममार्ग में सावधान कर कुमार्ग छुड़ाकर अहिंसाधर्म का उपदेश करेगा।।३।।

---

१. मुद्रित सटीक संस्कृत प्रति में ''छक्कायहियंकरं'' ऐसा पाठ है।

गाथा-१-२ पर प्रवचन

बहुसत्थअत्थजाणे संजमसम्मत्तसुद्धतवयरणे।
वंदित्ता आयरिए कसायमलवज्जिदे सुद्धे।।१।।
सयलजणबोहणत्थं जिणमग्गे जिणवरेहिं जह भणियं।
वोच्छामि समासेण छक्कायसुहंकरं सुणहं।।२।।

'छक्कायसुहंकरं' अथवा **'छक्कायहियंकर'** नीचे है। इसमें सब निश्चय अधिकार आयेगा। जिनप्रतिमा निश्चय संयमी मुनि, जिनबिम्ब भी संयमी मुनि। यह प्रतिमा जिनबिम्ब, वह तो व्यवहार है। ऐसा निश्चय हो, वहाँ उसे ऐसा व्यवहार विकल्प होता है। परन्तु अकेले जिनबिम्ब को बाहर को ही माने और अन्तर के जिनबिम्ब को पहिचाने नहीं... समझ में आया ? यह मुनिराज ही जिनबिम्ब है, ऐसा कहेंगे। आत्मा के दर्शनसहित जिसे अन्तर चारित्रदशा प्रगट हुई है, वह जिनबिम्ब है, वीतरागी बिम्ब है। यह प्रतिमा आदि तो व्यवहार है। ऐसा हो, वहाँ ऐसा व्यवहार होता है। स्थिर न हो सके तो शुभभाव होता है। परन्तु उसे ही अकेला जिनबिम्ब मान ले और सचेतन भगवान आत्मा को जिनबिम्बरूप से पहिचानकर स्थिर न हो तो इस जिनबिम्ब से व्यवहार से भी इसे नहीं कहा जाता। आहाहा! समझ में आया ? ऐसे तो ग्यारह बोल आयेंगे। सब निश्चय के। जिनप्रतिमा भी यह और वे सब अन्दर आयेंगे।

आचार्य कहते हैं कि मैं आचार्यों को नमस्कार कर,... देखो! आचार्य कहते हैं कि मैं आचार्य को वन्दन करके **छहकाय के जीवों को सुख के करनेवाले...** देखो! छह काय के जीव को सुख का करनेवाला। उसमें आत्मा आया न ? **जिनमार्ग में जिनदेव ने जैसे कहा...** कोई ऐसा कहता है कि यह जिनबिम्ब आदि प्रतिमा यह नहीं और यह प्रतिमा, वह जिनप्रतिमा, ऐसा जो कहा है, वह किसने कहा ? वह **जिनमार्ग में जिनदेव ने जैसे कहा है...** समझ में आया ? जिनप्रतिमा, जिनबिम्ब वह आत्मा का स्वरूप का भान होकर स्थिर हो, वह जिनबिम्ब और जिनप्रतिमा है।

निश्चय से जिनप्रतिमा और जिनबिम्ब को पहिचाने नहीं और अकेले बाह्य जिनबिम्ब

को वहाँ सिर फोड़ा करे और उससे धर्म होगा, ऐसा माने, वह अज्ञानी है—ऐसा कहते हैं। ऐई! व्यवहार है परन्तु कब? कि निश्चय हो तो न। ऐसा कहते हैं। जिनबिम्ब स्वयं वीतरागी आत्मा अखण्डानन्द विकल्परहित चैतन्य निर्विकल्प, उसकी तो दृष्टि और स्थिरता नहीं और अकेले जिनबिम्ब में जाकर उसके कारण कल्याण हो जायेगा और मुक्ति होगी... ऐसा जिनवरदेव ने कहा नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे नहीं। अन्तर देखता हो। उसे देखता क्या हो? अन्तर सन्मुख होकर जिनबिम्ब वीतराग का आश्रय करे, तब समकित होता है। तब सामने जिनबिम्ब हो, वह निमित्त कहा जाता है। वहाँ सामने देखकर होता होगा? अन्तर पूरा वीतरागबिम्ब चैतन्यमूर्ति प्रकाश का पुंज, चैतन्यप्रकाश का पुंज, उसके सन्मुख देखने से, एकाग्र होने से सम्यक्त्व होता है। भगवान के सन्मुख देखने से होता होगा? साक्षात् तीर्थंकर हो और समवसरण में विराजते हों, उनके सन्मुख देखना, वह तो विकल्प है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : देखकर स्मरण में लावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्मरण में लावे, वह आत्मा को स्मरण में लावे। वह देखा, इसलिए स्मरण में लावे, ऐसा भी नहीं है। उसकी ओर का ज्ञान और विकल्प है, वह भी इस आत्मा के स्वभाव को प्राप्त करने में कारण नहीं है, ऐसा कहते हैं। वह लो बहिर्लक्ष्यी ज्ञान है। यह भगवान है, यह प्रतिमा है, यह तीर्थंकर है, लो न! ऐसा जो ज्ञान है, वह बहिर्लक्ष्यी ज्ञान है, परसत्तावलम्बी ज्ञान है। निजस्वभाव का सत्तावलम्बी वह ज्ञान नहीं है। होता है, जब तक वीतरागता न हो, तब तक उसे चौथे-पाँचवें-छठवें में (गुणस्थान) में ऐसा पूजा-भक्ति का शुभ विकल्प होता है। परन्तु मात्र भक्ति को उसे ही मान बैठे कि यह ही मुझे धर्म और संवर-निर्जरा है, तो कहते हैं कि मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। जैसे महाव्रत को मानकर चारित्र माने, वह मूढ़ है। परन्तु जहाँ आत्मा का दर्शन, ज्ञान और चारित्र प्रगट हुआ, तब महाव्रत के विकल्प होते हैं, परन्तु महाव्रत के विकल्प को ही चारित्र माने, वह मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि है, कहते हैं।

इसी प्रकार आत्मा सम्यग्दर्शन आत्मा चैतन्य का बिम्ब प्रभु है, उसकी दृष्टि और ज्ञानसहित हो उसे वीतराग की प्रतिमा और भगवान के प्रति भक्ति का शुभराग आवे, उसे व्यवहार कहा जाता है। परन्तु उस व्यवहार में ही मान ले और यहाँ आत्मा की तो कुछ खबर है नहीं। तो उसे कुछ कल्याण-फल्याण होता नहीं। ऐसा स्याद्वाद मार्ग है। समझ में आया?

आचार्य कहते हैं कि मैं आचार्यों को नमस्कार कर, छहकाय के जीवों को सुख के करनेवाले... भाषा कैसी ली, देखो! आहाहा! **जिनमार्ग में जिनदेव ने जैसे कहा...** जिनमार्ग में-वीतरागमार्ग में वीतरागदेव ने ऐसा कहा। **वैसे, जिसमें समस्त लोक के हित का ही प्रयोजन है - ऐसा ग्रन्थ संक्षेप में कहूँगा, उसको हे भव्य जीवों! तुम सुनो। जिन आचार्यों की वंदना की, वे आचार्य कैसे हैं?** जिन आचार्य को भगवान कुन्दकुन्दाचार्य वन्दन करते हैं, वे आचार्य कैसे हैं, कहते हैं।

बहुत शास्त्रों के अर्थ को जाननेवाले हैं,... ऐसा। अर्थात् क्या? कि अकेले मूर्ति और प्रतिमा और बाहर का जाना है और आत्मा अन्दर क्या है, उसका जाना नहीं, ऐसे नहीं है। आत्मा को जाननेवाले और दूसरे व्यवहार शास्त्र के भी जाननेवाले, ऐसे आचार्य होते हैं। समझ में आया? कहते हैं कि **बहुत शास्त्रों के अर्थ को जाननेवाले हैं,...** बहुत शास्त्र के अर्थ को जाननेवाले हैं। निश्चय किसे कहना, व्यवहार किसे कहना, निमित्त किसे कहना, उपादान किसे कहना, इन सब शास्त्र को वे जाननेवाले होते हैं। समझ में आया? मात्र बाहर से मनवा दे, शास्त्र में बाहर से आया इसलिए। करो यात्रा तुम्हारा तीसरे भव में कल्याण होगा। सम्मेदशिखर की यात्रा करे। आता है या नहीं? पण्डितजी! उसमें क्या आता है?

मुमुक्षु : एक बार वन्दे जो कोई।

पूज्य गुरुदेवश्री : 'एक बार वन्दे जो कोई...' कहते हैं कि आत्मा के भान बिना लाख बार वन्दन हो तो भी धर्म-कल्याण नहीं है, ले। तेरे सम्मेदशिखर को... आहाहा! साक्षात् त्रिलोक के नाथ तीर्थंकरदेव को आत्मा के दर्शन और ज्ञान के अनुभव बिना अकेला वन्दन करे, वह तो विकल्प है, पुण्यबन्ध का कारण है। धर्म-बर्म है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तो क्या हुआ ? आत्मा के साथ नहीं गया, वहाँ पर के साथ क्या करें ? समझ में आया ?

भगवान अनन्तनाथ, अनन्त के नाथ लो, और यह आया। अनन्त शुद्ध स्वरूप, अनन्त शुद्ध स्वरूप, उसका जो रखवाला भगवान आत्मा स्वयं, उसकी श्रद्धा-ज्ञान का ठिकाना नहीं और संयम अर्थात् स्वरूप में स्थिरता का भाव नहीं और अकेले व्यवहार को माने। गहरे-गहरे तो ऐसा कहा है कि छह काय के हितकर को अर्थात् ? उसमें जरा छह काय की हिंसा का थोड़ा सावद्ययोग है। आता है न ? सावद्य लेशो बहु पुण्यराशो - थोड़ा सावद्यभाव होता है, यह राग। बहुत पुण्यभाव उसमें होता है। इसमें तो बिल्कुल सावद्य नहीं, ऐसा कहना चाहते हैं। भाई ! आहाहा ! छह काय के जीव का कहकर ऐसा कहना चाहते हैं।

अहो ! जिसमें एक भी एकेन्द्रिय जीव पानी के, जल के जीव को कुछ भी दुःख हो, ऐसा उसमें विकल्प है ही नहीं। आहाहा ! यह बात करते हैं। भक्ति का, मन्दिर का शुभराग आवे। उसमें सहज थोड़ा राग का भाग है, साधकपना है और थोड़ा-सा पुण्य भी उसमें विशेष शुभभाव हो। ऐसा कहते हैं, हों ! मूल तो कहने के लिये। समझ में आया ? जिसमें छह काय के जीव को अर्थात् अपने और किसी दूसरे प्राणी के। जरा भी किसी को दुःख नहीं, ऐसा अन्तर का मार्ग वीतराग ने कहा है, वह मार्ग कहूँगा।

अकेला चैतन्य भगवान, पुण्य और पाप के विकल्प के रागरहित, उसका स्वरूप जो अन्दर जाने-स्थिर हो, उसे जिनप्रतिमा, उसे जिनबिम्ब, उसे निर्ग्रन्थमार्ग, वह मोक्ष का मार्ग, वह जिनमुद्रा, वह प्रव्रज्या, वह तीर्थ इत्यादि (कहा जाता है)। आहाहा ! अकेले बाहर के तीर्थ को वन्दन करके मानो कल्याण हो जायेगा, ऐसा है नहीं। आहाहा ! ऐसी बात है। इसलिए तो जिनवरदेव ने जिनमार्ग में ऐसा मार्ग छह काय के हित का सुखकर कहा है। जिसमें अपने को, पर को कुछ भी दुःख का अंश नहीं है, ऐसा मार्ग वीतराग ने निश्चय से यह कहा है। समझ में आया ? व्यवहार में मन्दिर बनाने में, शास्त्र में कुछ भी रागभाग है और सावद्य में एकेन्द्रिय जीव को भी जरा पानी के ऐसे जीव को दुःख होता है। भले शुभभाव हो। समझ में आया ? यह इसमें कहना चाहते हैं। इसमें अकेला आत्मा छह काय

के जीव को सुखकर, अपने को और पर को सबको, ऐसा कहते हैं। ऐसा निश्चय मार्ग, आत्मा के आश्रय का मार्ग, जिसमें पर के आश्रय की बिल्कुल गन्ध नहीं। ऐसा मार्ग अन्तर का उसे जिनवर ने कहा है। जिनमार्ग में उसे कहा। समझ में आया?

बहुत शास्त्रों के अर्थ को जाननेवाले हैं, जिनका तपश्चरण सम्यक्त्व और संयम से शुद्ध है,... जिसे मैं वन्दन करूँ, वे आचार्य कैसे हैं? बहुत शास्त्र के जाननेवाले हैं, संयम और समकित सहित हैं। लो! शुद्ध। और जिनका तपश्चरण शुद्ध है। तपश्चरण— तपस्या, इच्छानिरोध। आनन्द के उछाले मारती तपस्या उन्हें अन्दर में है। जिसे अतीन्द्रिय आनन्द उछल रहा है, ऐसी तपस्या। ऐसे सन्तों को मैं वन्दन करता हूँ। कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा स्वयं कहते हैं। समझ में आया?

कषायरूप मल से रहित है, इसीलिए शुद्ध है। समकित से शुद्ध है। जिसे तपश्चरण है। उसमें कषाय का अंश तपस्या में है नहीं। वह इच्छा उत्पन्न होती है न? कि ऐसा नहीं खाना, वह तप नहीं है। आहाहा! खाना नहीं यह भी ... है, अमुक करना है, यह विकल्प है। यह तपस्या नहीं। यह कषायमलरहित अकषाय परिणाम उत्पन्न हो, उसे तपस्या कहा जाता है। आहाहा! धर्मदासजी! ऐसा मार्ग है। बड़ा भगवान विराजता है न नाथ! तुझमें क्या कमी है? कि जहाँ पर का आश्रय लेकर तुझे लाभ हो। ऐसा कहते हैं। पूर्णानन्द का नाथ स्वभाव से भरपूर, उसके आश्रय में ही सब अपने को और पर को हित का कारण है। ऐसा जिनवर के मार्ग में जिनवर ने कहा है।

और वापस यह सुनकर कितने ही ऐसा कहे। यह जिनबिम्ब और यह जिनप्रतिमा मुझे बहुत अच्छी लगती है। वह जिनबिम्ब व्यवहार से मुझे बैठता नहीं। परन्तु वह व्यवहार बीच में आये बिना रहता नहीं। तो उसे यह भी नहीं बैठा। समझ में आया? बहुत से ऐसा कहते हैं। एक कहता है न पण्डित? तुम्हारे पण्डित है न, वह छोटा कौन अमृतलाल? अमृतलालजी? कौन?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ...लाल ने .... किया था और एक वह अमृतलाल है। ... नहीं था वहाँ? अमृतलाल नहीं। तारणपन्थी में एक अमृतलाल है। वह यहाँ आये थे। इस बोधपाहुड़ में प्रतिमा का स्वरूप यह उन्हें बहुत रुचता है।

मुमुक्षु : अमथालाल ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अमथालाल है परन्तु दूसरा अमृतलाल है। वहाँ अपने आये थे।

मुमुक्षु : चंचल।

पूज्य गुरुदेवश्री : चंचल, अमृतलाल चंचल। वे कहते थे। उसमें भाई कैसे तुम्हारे ? अमथालाल तो यह कहते थे कि जिनप्रतिमा कहीं है ही नहीं। स्वर्ग में भी नहीं, अमुक नहीं। भाई ! तुम्हे खबर बिना... कुछ नहीं। लोगों ने कल्पना से उठाया है। अरे ! शास्त्र में जिनप्रतिमायें (कही) है। यहाँ जिनप्रतिमा है। परन्तु वह व्यवहार जब निश्चय हो अन्दर का भान, तब ऐसा विकल्प हो, उसे व्यवहार कहा है। इसलिए न हो, ऐसा भी नहीं और होवे तो वह धर्म है, ऐसा भी नहीं है। जेठालालजी ! ऐसी बात है। वह यह सुनकर ऐसा वे ऐसा कहते थे। इस बोधपाहुड़ में जो जिनबिम्ब की प्रतिमा की व्याख्या है, वह मुझे बराबर बैठती है। यह बराबर बैठी नहीं। जिसे पूर्ण वीतराग न हो, तब तक निश्चयसहित में जिनप्रतिमा, जिनबिम्ब ऐसे वन्दन का व्यवहार विकल्प-राग होता है। है वह पुण्य, परन्तु वह भाव आये बिना रहता नहीं। ऐसा व्यवहार होता है, तब उसे निश्चय होवे तो उसको व्यवहार कहा जाता है। और इस निश्चय का अकेला माने और व्यवहार होता ही नहीं तो वह निश्चय को समझता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

प्रतिमा को न माने, उसे यह बहुत ठीक पड़ता है। वह यह सब अधिकार ले। परन्तु इसमें भाई ! उसका अर्थ है। एक में है भाई, हों ! एक जगह। तत्त्वार्थसार में लिखा है। तत्त्वार्थसार है न ? उसमें निक्षेप के अधिकार में लिखा है। जब तक मानसिक भाव है, एकदम वीतराग हुआ नहीं, तब तक ऐसा निक्षेपभाव आये बिना नहीं रहता। ऐसा भाई ने लिखा है। कौन ? कोल्हापुरवाले बंसीधरजी। निक्षेप में लिखा था। स्थापना निक्षेप में। तत्त्वार्थसार है ? है उसमें। मेरे मन में ख्याल है। स्थापना निक्षेप की व्याख्या की है न ? वहाँ एक आधार दिया है न नीचे नोट में।

जब तक मानसिक मन का व्यापार पूर्ण छूटा नहीं, तब तक मन के व्यापार में ऐसा स्थापना का शुभभाव आये बिना रहता नहीं। ऐसा कुछ है। स्थापना निक्षेप है न ? निक्षेप में है। **जिस प्रयोजन को साधने के लिये जिस वस्तु की अपेक्षा करता है, कोई**

वस्तु द्वारा यदि यह प्रयोजन सिद्ध हो जाये तो वस्तु सत्य क्यों न माननी चाहिए? मिथ्यासत् उसे कहना चाहिए जिससे ... न हो। वस्तु परीक्षण का यही एक मार्ग है। जिसका अधिक खुलासा यहाँ किया जायेगा। आगे कहेंगे। उसकी सिद्धि है। **सम्यग्दर्शनादिक नामोचरण किया है। उसका अर्थ अनेक भाग से हो सकता है। प्रयोजन की सिद्धि किससे हो सके यह ... इसलिए प्रयोजन व्यवहार के अनुसार शब्दों का अर्थ ... भाग हो सकता है...** कि निक्षेप में यह प्रकार होता है। निक्षेप का ऐसा अर्थ प्रयोजन के लिये होता है। यदि न हो तो उसका स्वरूप बहुत ख्याल में नहीं आया। जब तक मन का है न, तब तक आता है। ऐसा कहीं कहा है।

मन अर्थात् जब तक वह स्थिर नहीं होता, तब तक आता है। प्रयोजन सिद्ध होता है। है कहीं, परन्तु वह आवे न अन्दर। न्याय भी है न? कि मन का सम्बन्ध जहाँ सर्वथा न छूटे, वहाँ मन के सम्बन्ध में आवे, इसलिए व्यवहार खड़ा हुए बिना नहीं रहता। मन का सम्बन्ध छूट जाये तो अकेला निश्चय हो गया। समझ में आया? यह तो व्यवहार का थोड़ा मस्तिष्क में आया था।

इस प्रकार आत्मा है, उसका सम्बन्ध बिल्कुल आत्मा के साथ हो जाये, तब तो फिर मन का सम्बन्ध नहीं रहता, परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मा के आश्रय से-सम्बन्ध से होने पर भी अभी मन का सर्वथा सम्बन्ध छूटा नहीं। सर्वथा छूट जाये तो वीतराग हो जाये। इसलिए मानसिक में जब तक है, तब तक उसे ऐसा निक्षेप, जिनबिम्ब प्रतिमा आदि वन्दन का विकल्प आये बिना नहीं रहता। प्रयोजन की, व्यवहार की वहाँ यह सिद्धि है। समझ में आया? अरे... गजब यह तो... !

मुमुक्षु : ...बल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बल तो सब अपने में है। यहाँ तो जितना कहा जाये, उतनी बात है। आगे-पीछे ले जाओ तो...

मुमुक्षु : शुभराग...

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभराग के समय जब तक मानसिक का व्यापार है... स्वरूप की दृष्टि तो हुई है। इसलिए हमने कहा था न बहुत वर्ष पहले। वे कहते हैं कि जिनप्रतिमा

कब तक होती है ? कि मिथ्यादृष्टि हो तब तक। मैंने कहा—नहीं। सम्यग्दर्शन के पश्चात् जिनप्रतिमा होती है। क्यों ? कि सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन हुआ, तब तो निक्षेप है, वह उसका ज्ञेय है। साक्षात् ज्ञेय में ज्ञेय के चार भाग पड़ते हैं, तब सच्चे ज्ञान में ज्ञेय और निक्षेप यथार्थरूप से सम्यग्ज्ञानी को निक्षेप होते हैं। मिथ्यादृष्टि को निक्षेप नहीं होता। पण्डितजी ! यह बात बहुत वर्ष पहले हो गयी। चालीस वर्ष पहले। वे कहे कि मूर्ति मिथ्यादृष्टि को होती है। नहीं; झूठ बात। आत्मा का दर्शन हुआ है, सम्यग्ज्ञान हुआ है, सम्यग्दर्शन हुआ है। उसे ज्ञान के भेद पड़ने से नय होते हैं, और ज्ञेय के भेद पड़ने से निक्षेप होते हैं। नाम, स्थापना यह ज्ञेय के भेद हैं। नय के भेद में व्यवहार-निश्चय यह भेद है। और जिसे नय प्रगट हुए, उसे निक्षेप होते हैं। उसका विषय है, इसलिए (होते हैं)। जिसे ज्ञान नहीं, उसे निक्षेप-बिक्षेप का ज्ञेय का ज्ञान सच्चा नहीं होता। लोग बाहर न्याय को नहीं समझे तो क्या हो ? झगड़े-बातें करे।

यहाँ कहते हैं कि **सम्यक्त्व और संयम से शुद्ध है, कषायरूप मल से रहित है, इसीलिए शुद्ध है। यहाँ आचार्यों की वन्दना की, उनके विशेषण से जाना जाता है कि गणधरादिक से लेकर अपने गुरुपर्यन्त सबकी वन्दना है...** बोधपाहुड़ निश्चय से कहना है न ? और वह जिनमार्ग में यह वास्तविक मार्ग है, ऐसा कहते हैं। **और ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा की, उसके विशेषण से जाना जाता है कि जो बोधपाहुड़ ग्रन्थ करेंगे, वह लोगों को धर्ममार्ग में सावधान कर कुमार्ग छुड़ाकर अहिंसाधर्म का उपदेश करेगा।** छह काय के हितकर कहा न ? जिसमें राग की उत्पत्ति नहीं और किसी जीव को दु:ख का निमित्त भी नहीं। ऐसा मार्ग इसमें हम .... सच्ची बात करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)